गुरु नानक देव की धर्म-साधना

पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ के गुरु नानक सिक्ख अध्ययन विभाग के तत्त्वावधान में सम्पन्न
और पी-एच० डी० की उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

1991

PANJAB UNIVERSITY LIBRARY

शोधछात्रा :
नरेश कुमारी

विषयानुक्रम

पृष्ठ संख्या

प्रथम भाग : भूमिका

प्रथम अध्याय विषय उपस्थापन (1-21)

1.1 विषय कथन (1)

1.1.1 धर्म : स्वरूप, तत्व एवं धारणा (3)

1.1.2 गुरु नानक देव धर्म साधना (5)

1.2 सम्बद्ध साहित्य का सर्वेक्षण (5)

1.3 विषय परिसीमन (18)

1.4 अध्ययन का महत्व (18)

1.5 अध्ययन का अनुक्रम (19)

द्वितीय अध्याय सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य -- धर्म : अवधारणा, स्वरूप एवं तत्व (22-55)

2.1 धर्म : व्युत्पत्ति एवं स्वरूप (22)

2.1.1 धर्म : परिभाषा (24)

2.1.2 धर्म : कुछ पाश्चात्य धारणाएं (26)

2.2 धर्म : कोशगत अर्थ (26)

2.3 धर्म : दार्शनिक स्वरूप (27)

2.4 धर्म : सनातन स्वरूप (31)

2.5 धर्म : व्यावहारिक स्वरूप -- नैतिकता एवं सदाचरण (36)

2.6 धर्म : स्थूल स्वरूप (38)

2.7 धर्म : रहस्यमय स्वरूप (39)

2.8 धर्म : बौद्धिक स्वरूप (41)

पृष्ठ संख्या

2.9 धर्म : वैज्ञानिक स्वरूप (43)
2.10 धर्म : सामाजिक स्वरूप (48)
2.11 प्राचीन भारतीय धर्म का स्वरूप (51)
2.12 धर्म साधना : तत्व विवेचन (54)

तृतीय अध्याय मूल का सन्दर्भ (56-96)

3.1 गुरु नानक देव : जीवन वृत्त (56)
3.2 युगीन परिवेश : राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक (64)
3.3 गुरु नानक देव : व्यक्तित्व (72)
3.4 गुरु नानक देव : कृतित्व (78)
3.5 गुरु नानक देव : युगनेतृत्व की भूमिका (92)

द्वितीय भाग : विवेचन

चतुर्थ अध्याय गुरु नानक काव्य : धर्म-परिकल्पना (97-116)

4.1 मध्ययुगीन लोक जागरण (97)
4.1.1 मध्ययुग अवधारणा एवं ऐतिहासिक सन्दर्भ (97)
4.1.2 मध्यकाल एवं लोक-जागरण (99)
4.1.3 लोकजागरण : तात्विक सन्दर्भ (100)
4.1.4 लोकजागरण-- निर्धारक तत्व तथा गुरु नानक देव (101)
4.2 सामाजिक सन्दर्भ और गुरु नानक देव (102)
4.3 गुरु नानक देव की विशिष्टता (103)
4.4 निराकार उपासना का ऐतिहासिक सन्दर्भ (104)
4.5 परम्परित भारतीय मत-सम्प्रदाय और गुरु नानक देव (105)

पृष्ठ संख्या

4.6 मध्यकालीन भारत : सूफी साधना की भूमिका (107)

4.7 सूफीमत और गुरु नानक देव (108)

4.8 गुरु नानक वाणी में धर्म का स्वरूप विवेचन (109)

4.8.1 मानवतावादी दृष्टि (109)

4.8.2 धर्म की अवधारणा (110)

4.8.3 हुक्म एवं सृष्टि (110)

4.8.4 धर्म एवं सदाचार (111)

4.8.5 आत्मसाक्षात्कार (112)

4.8.6 सहजावस्था (113)

4.8.7 नैतिकता (113)

4.8.8 धर्म : वास्तविक एवं कर्मकाण्डी (114)

4.9 समाहार (115)

पंचम अध्याय गुरु नानक वाणी : ब्रह्म तथा जीव का सन्दर्भ (117-158)

5.1 परमात्मा सम्बन्धी अवधारणा (117)

5.1.1 गुरु नानक वाणी : ब्रह्म के सगुण स्वरूप की नवीन उद्भावना (121)

5.1.2 गुरु नानक वाणी : निर्गुण ब्रह्म (124)

5.1.3 निर्गुण और सगुण : उभय स्वरूप (129)

5.1.4 अकाल पुरुष का सत्य स्वरूप (सत श्री अकाल) (130)

5.2 गुरु नानक वाणी : सत्य नाम की महिमा (132)

5.3 जीव सम्बन्धी अवधारणा (141)

5.3.1 गुरु नानक वाणी में जीव सम्बन्धी अवधारणा (143)

5.3.2 जीव व ब्रह्म (147)

5.4 ईश्वर के प्रति विश्वास (151)

5.5 प्रभु कृपा (153)

5.6 समाहार (156)

पृष्ठ संख्या

षष्ठ अध्याय गुरु नानक वाणी में भक्ति का स्वरूप (159-222)

6.1 भक्ति : व्युत्पत्ति, परिभाषा और स्वरूप (159)

6.1.1 नवधा भक्ति तथा गुरु नानक वाणी (167)

6.1.2 गुरु नानक वाणी में भक्ति (185)

6.1.3 भाव-भक्ति (189)

6.1.4 वैधी-भक्ति का खण्डन (190)

6.2 नाम माहात्म्य तथा गुरु नानक वाणी (191)

6.3 भक्ति : शृंगार भाव (202)

6.4 भक्तिरस की परिकल्पना तथा गुरु नानक वाणी (207)

6.5 मिलन की प्रबल आकांक्षा (213)

6.6 समाहार (219)

सप्तम अध्याय गुरु नानक वाणी में साधना के तत्व और सोपान (223-349)

7.1 गुरु की अवधारणा एवं महत्त्व (224)

7.2 शरीर सम्बन्धी दृष्टि (232)

7.3 माया की अवधारणा तथा गुरु नानक वाणी (243)

7.3.1 माया की प्रबलता और व्यापकता (248)

7.3.2 रूपात्मक शैली द्वारा माया का चित्रण (250)

7.3.3 माया-निवृत्ति (251)

7.4 मन की परिकल्पना (253)

7.5 ध्यान (262)

7.6 जाप (268)

7.7 नाम संग्रह (273)

7.8 भय एवं भय मुक्ति (277)

7.9 कर्म की अवधारणा और गुरु नानक वाणी का सन्दर्भ (283)

7.10 अस्तेय की अवधारणा और गुरु नानक वाणी (290)

7.11 ज्ञात (293)

7.12 मोक्ष एवं गुरु नानक वाणी (303)

7.12.1 मुक्ति प्राप्ति के साधन (307)

7.12.2 जीवन मुक्त (309)

पृष्ठ संख्या

7.13 योग -- वास्तविक और बाह्यरूपी (310)

7 7.13.1 प्रमुख योगमार्ग (313)

(क) अष्टांग योग (314)

(ख) यम (314)

(ग) नियम (314)

(घ) आसन (315)

(ङ) प्राणायाम (315)

(च) प्रत्याहार (315)

(छ) धारणा (316)

(ज) ध्यान (316)

(झ) समाधि (316)

7.14 योग एवं गुरु नानक वाणी (316)

7.14.1 गुरु नानक वाणी में हठयोग का खण्डन (317)

7.14.2 लययोग (322)

7.14.3 मंत्रयोग (323)

7.14.4 राजयोग (323)

7.15 नानक वाणी एवं वास्तविक योग (326)

7.15.1 शब्द-सुरति योग (329)

7.15.2 सहजा-भक्ति और गुरु नानक वाणी (332)

7.16 पवित्रता एवं नानक वाणी (335)

7.17 संयम की अवधारणा एवं नानक वाणी (337)

7.18 मनन (339)

7.19 आचरण (341)

7.20 समाहार (342)

पृष्ठ संख्या

अष्टम् अध्याय गुरु नानक वाणी में धर्म साधना के बाह्य उपक्रम (350-408)

8.1 तीर्थ की अवधारणा (351)

8.1.1 तीर्थ-स्नान का वास्तविक और अवास्तविक स्वरूप (356

8.2 सेवा की अवधारणा (360)

8.3 श्रम की अवधारणा (365)

8.4 दया (366)

8.5 दान (368)

8.6 दर्शन (375)

8.7 मानव मात्र के प्रति समभाव (378

8.8 कामनाओं का संस्कार (380

8.9 अहंकार (हउमै) का परित्याग (382)

8.10 भौतिक-आध्यात्मिक रोग मुक्ति (392)

8.11 पाखण्ड-खण्डन एवं गुरु नानक वाणी (395)

8.12 धर्म की बाह्यरूपिता एवं गुरु नानक वाणी (398)

8.13 स्वार्थहीनता (402)

8.14 विनम्रता (403)

8.14 परिवार सम्बन्ध|मानवीय अन्तर्सम्बन्ध (404)

8.15 समाहार (405)

नवम् अध्याय मध्यकालीन भारतीय धर्म साधना के सन्दर्भ में गुरु नानक वाणी (409-428)

9.1 वाणी में अस्वीकार्य तत्व (409)

9.2 वाणी में स्वीकार्य तत्व (415)

9.3 नानक वाणी की मौलिकता एवं विशिष्टता (420)

9.4 समाहार (426)

पृष्ठ संख्या

तृतीय भाग : समापन

दशम अध्याय उपसंहार (429-446)

10.1 अध्ययन का सार (429)

10.2 उपलब्धियां एवं निर्णय (432)

10.3 शोध-संकेत (445)

चतुर्थ भाग : परिशिष्ट

सहायक सन्दर्भ सूची (447-464)

प्राक्कथन

भक्तियुगीन काव्य की भावपूर्ण एवं प्रबोधपूर्ण पंक्तियां मुझे बचपन से ही प्रिय रही हैं। उनके भावों की अनुगूंज मेरे हृदय में बराबर बनी रही है। निर्गुण काव्य धारा की विशेषताएं शायद मेरे मन के अनुरूप बैठती थी, या यों कहें कि इनके माध्यम से ही मेरे चंचल मन को परिपक्वता की दिशा मिली। पी-एच० डी० शोध-प्रबन्ध के विषय-चयन के सन्दर्भ में मेरा यह झुकाव ही सम्भवतः मेरे लिए प्रेरक सूत्र रहा है, इसलिए मैंने 'गुरु नानक देव की धर्म साधना' पर शोध चिन्तन का निर्णय लिया।

गुरु नानक की वाणी, अपार्थिव चेतना के गिरि से फूटी आध्यात्मिक वेदना की मन्दाकिनी है, जो सहस्र-सहस्र अलौकिक भावनाओं की लहरियों को अपनी करुणा क्रोड़ में खिलाती हुई परम शान्ति के महासमुद्र की ओर निरन्तर प्रवाहित होती रही है। गुरु नानक देव सिक्ख धर्म के गुरु नहीं बल्कि समस्त मानव जाति के गुरु थे। उनकी वाणी भारत के पुनरुत्थान की वाणी बन गई तथा उनके साहित्य-सृजन की सुरभि से पंजाब ही नहीं अपितु समूचा भारतीय साहित्य जगत् सुवासित हुआ है। प्रतिष्ठित विद्वानों तथा साहित्यकारों द्वारा हिन्दी में गुरु नानक के कवि, धर्मोपदेशक, समाज-सुधारक तथा योगी-भक्त आदि रूपों को ही सर्वाधिक देखा गया है, परन्तु गुरु नानक के धर्म एवं साधनात्मक रूप को देखने की बहुत कम-चेष्टा की गई है। गुरु नानक का शुद्ध तथा प्रमुख स्वरूप दार्शनिक ही है। यह स्वरूप उनकी वाणी, उपदेश तथा कृतियों में सर्वत्र परिव्याप्त है। उनके अन्य पक्ष इसी स्वरूप में अन्तर्निहित हैं। गुरु नानक देव की वाणी का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि उन्होंने गीत अथवा पद-रचना मात्र नहीं की, अपितु निज ब्रह्म-विचार किया, जो आत्म-साधनार्थ है एवं जीवन का चरम लक्ष्य है।

धर्म की धारणा अपने मूलरूप में अत्यन्त जटिल है । धर्म की मूल चेतना को आत्मसात् करते हुए भी उसे शब्दों में परिभाषित करना दुष्कर है । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में धर्म-चेतना को मूलभूत तत्वों को रेखांकित और निरूपित करने के साथ ही एक ऐसा व्यापक निकष प्रस्तुत किया गया है जिस पर गुरु नानक देव की धर्म भावना के व्यापक स्वरूप को भली प्रकार परीक्षित और मूल्यांकित किया जा सके । वस्तुत: गुरु नानक की व्यापक चेतना युगीन यथार्थ की विकृतियों की प्रतिक्रिया स्वरूप उदित होते हुए भी युगीन सीमाओं में निबद्ध नहीं। सच तो यह है कि गुरु नानक की गहन और व्यापक धर्म-दृष्टि किसी संकीर्ण कसौटी को सहन नहीं कर सकती। यही कारण है कि प्रस्तुत शोधिका ने धर्म को एक सर्वांगीण मंगलोन्मुखी जीवन-व्यवस्था के रूप में ग्रहण किया है ।

अन्त में पारिवारिक और विभागीय असुविधाओं के चक्रव्यूह में फंसे रहकर कार्य को अनिर्णीत स्थितियों में से उबार ले आने का श्रेय मेरे निर्देशक डा० मैथिली प्रसाद भारद्वाज, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ को है, जिन्होंने शोध-प्रबन्ध की रूपरेखा से लेकर इसकी परिसमाप्ति तक सबल और पाथेय ही नहीं, अपितु दिशा भी दी है । इसके लिए मैं उनकी अनुगृहीत हूं। डा० दर्शन सिंह, अध्यक्ष, गुरु नानक सिक्ख अध्ययन विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ ने स्नेहपूर्वक मुझे जो परामर्श दिए, वे अविस्मरणीय हैं । विषय के चयन के सम्बन्ध में उनके सत्परामर्श एवं शुभाशीर्वाद से मैं लाभान्वित हुई हूं । इसके लिए उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने की शक्ति मुझ में नहीं है। 'दादा चेलाराम आश्रम निर्गुण बालिक' (सपरुन) सोलन के संचालक लक्ष्मण चेलाराम की मैं कृतज्ञ हूं जिन्होंने मुझे शोध-कार्य की ओर प्रोत्साहित किया और पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला में डा० जी० एस० आनन्द, अध्यक्ष, गुरु ग्रन्थ साहिब अध्ययन विभाग,

डा० जोध सिंह, प्रोफेसर, धर्म अध्ययन विभाग, और डा० हरनाम सिंह शान, भूतपूर्व अध्यक्ष, गुरु नानक सिक्ख अध्ययन विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ के पास मार्गदर्शन के लिए भेजा। गुरु नानक विश्वविद्यालय, अमृतसर के हिन्दी विभाग में कार्यरत डा० हरमोहिन्दर सिंह बेदी के प्रति भी आभार प्रकट करती हूं, जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर मुझे मेरे विषय से सम्बन्धित सामग्री से परिचित करवाया। मान्यवर टी० एस० नेगी, भूतपूर्व मुख्य सचिव एवं वर्तमान विधान सभा अध्यक्ष, हिमाचल प्रदेश की मैं आभारी हूं जिनकी प्रेरणा, अनुग्रह एवं असीम कृपा से यह कार्य सम्पन्न हो सका है ।

अपने माता-पिता के प्रति आभार प्रकट करना मात्र औपचारिकता ही होगी। वे मेरे जीवन सर्वस्व हैं और उनके प्रोत्साहन से ही मैं यह शोध-कार्य सम्पन्न कर सकी हूं । अनुज सुरेश, राकेश, राजेश, अनुजा शशि और सुधा -- इन सबको मैं पूर्ण हार्दिकता के साथ धन्यवाद दे सकती हूं । स्नेहिल बातों से प्रतिपल प्रेरित करने वाले परमजीत को धन्यवाद देना मेरे लिए दुष्कर लग रहा है, क्योंकि उस स्नेह के मध्य यह बाधा-स्वरूप ही होगा। बबलू और सुनील की व्यंग्य भरी बातें मुझे हंसा-हंसा कर कार्य पूरा करने की प्रेरणा देती रही हैं। इस शोधकार्य की सम्पन्नता पर मुझसे ज्यादा उन्हें प्रसन्नता होगी ।

केन्द्रीय राज्य पुस्तकालय, सोलन, केन्द्रीय राज्य पुस्तकालय चण्डीगढ़ एवं पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ के पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूं जिन्होंने समय-समय पर मुझे सहयोग दिया है। मैं उन लेखकों के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करती हूं जिनकी बहुमूल्य कृतियों का मैंने उपयोग किया है। श्री दीनानाथ शर्मा के प्रति आभार व्यक्त करना भी मेरा कर्तव्य है जिनकी सामयिक सहायता से यह कार्य अपने वर्तमान स्वरूप में सम्पन्न हो सका है।

नरेश कुमारी
(नरेश कुमारी)

प्रथम भाग : भूमिका

प्रथम अध्याय : विषय उपस्थापन

द्वितीय अध्याय : सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

तृतीय अध्याय : मूल का सन्दर्भ

प्रथम अध्याय

विषय उपस्थापन

1.1 विषय-कथन

सन्त साहित्य का अपनी विभिन्न विशेषताओं के कारण हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है । मध्यकालीन धर्म साधना की विभिन्न भक्ति धाराओं में एक धारा 'निर्गुण धारा' है। इस धारा के अन्तर्गत अनेक कवि परिगण्य हैं । गुरुनानक देव उन कवियों एवं साधकों में महत्वपूर्ण हैं । गुरु नानक का जन्म कार्तिक पूर्णिमा को 1469 ई0 में रायभोय की तलवंडी (जिला शेखूपुरा, पश्चिमी पाकिस्तान) में हुआ । इनका जीवन सन्तों और फकीरों की संगति में बीता । इनकी आध्यात्मिक भावनाओं और प्रवृत्तियों की चर्चा दूर दूर तक फैल गई। जो लोग घृणा, द्वेष, अविश्वास और निराशा की प्रबल अग्नि में दग्ध हो रहे थे, उन लोगों को गुरु नानक ने अपने अलौकिक प्रभाव से उस अग्नि से निकाला और प्रेम, सहृदयता, सद्भावना, विश्वास तथा एकता का सन्देश दिया । वे अपने जीवन की अन्तिम घड़ी तक अन्याय, अत्याचार, स्वार्थपरायणता, पाखण्ड, संकीर्णता, तमोगुण, रूढ़िवादिता एवं शोषण-प्रवृत्ति से जूझते रहे । इनका साहित्य लोक चेतना का अंग बनकर सम्पूर्ण उत्तरी भारत में विख्यात है । उत्तरी भारत में भक्ति-भाव को प्रतिष्ठित करने में गुरु नानक का महत्त्व कबीर व दादू के समान है। मध्ययुगीन समाज की जिन परिस्थितियों में गुरु नानक का पोषण हुआ और जिन सामाजिक, राजनैतिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों का सामना उन्हें करना पड़ा उनके कारण उनके व्यक्तित्व व काव्य को एक विशेष दृष्टि मिली।

इन रूढ़ियों और अंधविश्वासों का खण्डन और मानव एकता व सहकारिता की भावना को जागृत करना गुरु नानक वाणी का मुख्य उद्देश्य रहा है । गुरु नानक ने अपनी वाणी में सामाजिक विचारों एवं जनमानस की आवाज़ को निर्भीक परन्तु विनम्र भाव से मुखरित किया । सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और मिथ्याचारों का विरोध करते हुए भी उन्होंने कदापि कटु वाणी का प्रयोग नहीं किया ।

निर्गुण सन्तों की प्रमुख विशेषता थी कि वे अधिकांशत: सद्गृहस्थ थे। वे संसार को नहीं प्रत्युत सांसारिक मोह-माया को त्यागने का उपदेश देते थे । गुरु नानक उच्च कोटि के साधक, महान विचारक, समाज सुधारक, कर्मयोगी व कवि थे । उन्होंने भी अन्य संत कवियों की तरह यही उपदेश दिया कि मानव को संसार में रहते हुए स्वच्छ मन से लौकिक कार्यों को करते हुए, निष्काम भाव से, साम्प्रदायिक भेद-भाव एवं धार्मिक कट्टरता का विरोध करते हुए, मानवता की प्रतिष्ठा करनी चाहिए ।

उस समय क्लिष्ट से क्लिष्ट साधना-पद्धतियां प्रचलित थीं । कुछ ही जातियों व वर्णों को योग तथा भक्ति का अधिकार था । बहुसंख्यक समाज इन अधिकारों से वंचित था। गुरु नानक देव ने सरल से सरल पद्धतियों का प्रचलन किया। उनकी साधना के लिए किसी भी आडम्बर, दिखावा, पाखण्ड या वेशभूषा की अपेक्षा, न थी । गुरु नानक वाणी की प्रासंगिकता उसके मूल्यों में है --- मूल्य हैं मानवमात्र की एकता --- उसमें मनुष्य की एकता का स्वर स्वभावत: कुछ अधिक है । गुरु नानक देव की धर्म साधना की सामाजिक प्रासंगिकता उनके जगत् और जीव सम्बन्धी खण्डनों में न तब थी और न आज है । कबीर, दादू, नानक कोई भी खण्डन के लिए खण्डन नहीं करते, बल्कि जीव और जगत् को यह बताने के लिए कि कहीं भी कोई भेद नहीं है, सभी एक ही पिता की सन्तानें हैं । हिन्दू-मुसलमान, अपने-पराये सब की पीड़ा एक जैसी है, सब का सुख एक जैसा है । जाति, धर्म, अपना-पराया इस एकता को तोड़ते हैं । इसे खण्डन क्यों कहा जाए । और

यदि यह खण्डन होता तो घर-घर में यह गुरुवाणी कैसे बन जाता ।

यह सत्य है कि गुरु नानक वाणी में सामाजिक सम्बन्धों के प्राय: हर सामन्ती मूल्य का खण्डन मिलता है । यही इनकी धर्मसाधना की प्रासंगिकता है और यही उनकी समकालीन प्रासंगिकता थी । लेकिन यह खण्डन समाज विरोधी और विध्वंसक कदम नहीं है । यह मानना भ्रम है कि सामाजिक सम्बन्धों का खण्डन करने या जीव-जगत की अनित्यता में विश्वास करने के कारण गुरु नानक या कोई भी भक्त सामाजिक प्रासंगिकता को खो देता है । खण्डन का लक्ष्य यह सिद्ध करना है कि सभी मनुष्य समान हैं । सबको समान भाव से रहना चाहिए । कोई अपना नहीं, कोई पराया नहीं । जब दुनिया का कोई कण उस परमसत्ता से व्यतिरिक्त नहीं है, घर-घर में वही समाया हुआ है तब कैसा भेद ? सब जानते हैं कि सामाजिक सम्बन्ध कितने सुखद या दु:खद होते हैं । गुरु नानक वाणी में उपलब्ध खण्डन सामाजिक सम्बन्धों से प्राप्त सुखों-दु:खों को बढ़ाते नहीं अपितु संयमित करते हैं --- सुख में बहुत उछलो मत, दु:ख में बहुत पस्त मत हो जाओ । सामाजिक सम्बन्धों के खण्डन का उनका यही प्रयोजन है । यह वास्तव में जनतान्त्रिक व्यवस्था की खोज की अकुलाहट है । गुरु नानक ने इस अकुलाहट के समाधान की खोज में ही काव्य-रचना की है । उनकी धर्म-साधना का उद्देश्य मानवता का कल्याण करना ही रहा है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में गुरु नानक देव की धर्म-साधना का अध्ययन उपर्युक्त विविध आयामों के सन्दर्भ में ही करने का प्रयास हुआ है ।

1.1.1 धर्म : स्वरूप, तत्व एवं धारणा

धर्म केवल बौद्धिक उपलब्धि ही नहीं, बल्कि मनुष्य की स्वाभाविक एषणा है । हमारे धर्मग्रन्थों में धर्म का एकमात्र उद्देश्य हित और कल्याण

बताया गया है, जिसका आदि, मध्य और अन्त सभी कुछ कल्याणमय है। ऐसे कल्याणकारी धर्म का महत्व निर्विवाद सिद्ध है। वह व्यापक और शाश्वत सत्य है। धर्म से सुख, हित और कल्याण की प्राप्ति होती है। धर्म से बढ़कर मनुष्य का दूसरा कोई मित्र नहीं है। सभी मित्र संबंधियों से एक दिन साथ छूट जाता है, किन्तु धर्म जैसे मित्र का जीवन भर और जीवनोपरान्त भी साथ बना रहता है। धर्म पर आचरण करने से इस लोक में भी आयु, बल, यश, विद्या आदि जितनी भी निधियाँ हैं, वे सभी सहज ही मिल जाती हैं। संकट के समय में भी धर्म ही रक्षा करता है। अत: धर्म सर्वस्व है।

धर्म का सीधा अर्थ धारण करना है। संस्कृत में धर्म शब्द की व्युत्पत्ति (ध) धातु से हुई। 'य: धारयते इति स धर्म: ।' इन वाक्यों से धारण करने का ही भाव परिलक्षित होता है। प्रकृति गुणों के भेदाभेद से युक्त अपने स्वरूप को धारण करती है। आकाश, शब्द, नक्षत्र एवं सौरमण्डल को धारण करता है। मानव, पशु-पक्षी, कीट, पतंग, शुक, मूषक, अन्डज्, स्वेद्ज, जरायुज, उद्भिज, धान्य, तृण, वृक्ष, रस, फल, पुण्य, जन्म, मरण, पाप, पुण्य, सत्य, अहंकार आदि अगणित पद-पदार्थों के कोटि-कोटि योनियों को पृथ्वी धारण करती है। जल एवं उसमें उत्पन्न विविध जीव जन्तुओं तथा पद-पदार्थों को पाताल धारण करता है। अर्थात् चराचर जगत् एवं त्रैलोक्य की सत्ता को एकमात्र धारण करने वाला धर्म ही है। इसलिए धर्म अनेक व्याख्याओं और परिभाषाओं से संकुल है।

आज धर्म बुद्धि की कसौटी पर चढ़ा हुआ है। इस वैज्ञानिक युग में तर्क का ही बोलबाला है। बौद्धिक विकास की मानो बाढ़ आ रही है और स्वतन्त्र चिन्तन का मूल्य बढ़ रहा है। इस स्थिति में धर्म की रूढ़ धारणाएं अपना अस्तित्व बनाए बिना नहीं रह सकती। अत: आज उसी धर्म का अस्तित्व रह सकता है जिसमें बौद्धिक चुनौतियों को फैलने की क्षमता हो।

1.1.2 गुरु नानक देव : धर्म साधना

उपर्युक्त विवेचन के सन्दर्भ में आत्मा एवं परमात्मा के परस्पर मिलन का उपक्रम मानव जीवन का लक्ष्य माना जाता रहा है। ज्ञान, कर्म तथा भक्ति आदि इस उपक्रम के विभिन्न स्वरूप रहे हैं। तर्क और दर्शन द्वारा, पूजा-अर्चा, योग-साधना, हठयोग तथा इसी वर्ग की अन्यान्य साधनाओं द्वारा आत्मा की सिद्धि के प्रयास होते रहे हैं। परन्तु पूर्व परम्पराओं के श्रेष्ठ तत्वों को सुरक्षित रखते हुए भी, भक्ति अर्थात् भावपूर्ण आत्म समर्पण आत्मा की सिद्धि के सर्वोत्तम साधन के रूप में गुरु नानक के युग तक सर्वस्वीकार्य उपक्रम बन चुका था। भक्ति का सर्वजनसुलभ स्वरूप इसकी लोकप्रियता का कारण था। इसका सहज स्वरूप इसे सर्वजन सुलभ बनाता है। जाति तथा मत-मतान्तर के विभेद की सीमा इसे सीमित नहीं करती। विशेष प्रणाली, पद्धति, बाह्य-रूपिता अथवा कर्मकाण्ड का भक्ति के सन्दर्भ में कोई महत्व नहीं है। इन सब गुणों एवं विशेषताओं के कारण, एवं युगीन सामाजिक-राजनीतिक तथा दार्शनिक परिस्थितियों के दबाव में भक्ति ही धर्म साधना का एकमात्र सर्व-स्वीकार्य और सर्वव्यवहार्य रूप बन चुका था। इसी महान भक्ति आन्दोलन की निर्गुण सन्त परम्परा के पूर्व-पुरुषों में गुरु नानक देव परिगण्य हैं। वे अपने धर्म चिन्तन में आत्मा-परमात्मा के सम्बन्धों में, आत्म-सिद्धि के साधन में पूर्व-परम्परा के श्रेष्ठ तत्वों को स्वीकार करते हुए भी साधना की जड़ एवं कर्मकाण्डी स्थितियों का निषेध करते हैं। जल में कुम्भ और कुम्भ में जल के विभेद की स्थितियों को समग्र आत्मदैन्यपूर्ण आत्म-समर्पण द्वारा उच्छेदन गुरु नानक देव की भक्ति-साधना का केन्द्रीय आधार है।

1.2 सम्बद्ध साहित्य का सर्वेक्षण

तलस्पर्शी अध्ययन के लिए विषय एवं उसके क्षेत्र विशेष के सम्बन्ध में शोधपरक और समीक्षात्मक साहित्य का सर्वेक्षण प्रासंगिक ही नहीं, अनिवार्य

होता है । इस दृष्टि से महत्वपूर्ण रचनाओं का उनके प्रकाश काल-क्रमानुसार सर्वेक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है --

1.2.1 गोविन्द त्रिगुणायत, 1952, कबीर की विचारधारा, (हिन्दी) कानपुर : साहित्य निकेतन ।

कबीर की विचारधारा को प्रभावित करने वाले उपादान, आध्यात्मिक विचार, आध्यात्मिक सिद्धान्त, धार्मिक और सामाजिक विचार, विचारों की साहित्यिकता और अभिव्यक्ति पर विचार व्यक्त किए गए हैं ।

1.2.2 परशुराम चतुर्वेदी, 1952, मध्यकालीन प्रेम साधना, (हिन्दी) इलाहाबाद : साहित्य भवन ।

मध्ययुग या मध्यकाल, रूपसाधना, रससाधना एवं सभी प्रकार की साधनाओं पर प्रकाश डाला गया है तथा मध्यकालीन प्रेम साधना के सन्दर्भ में विचार हुआ है ।

1.2.3 हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1952, मध्यकालीन धर्म साधना (हिन्दी) इलाहाबाद : साहित्य भवन ।

प्रस्तुत पुस्तक में मध्यकालीन धर्म साधना बारे विवेचन हुआ है । पूर्वमध्य युग की विविध साधनाएं, साहित्य के माध्यम से धार्मिक सम्बन्ध तथा सूफी साधकों की मधुर साधना पर विचार-विश्लेषण हुआ है ।

1.2.4 भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव', 1957, मीरां की प्रेम साधना, (हिन्दी) पटना : श्री अजन्ता प्रेस ।

भुवनेश्वर नाथ मिश्र (माधव) ने अपने ग्रन्थ में शृंगार, वेदना तथा रागानुगाभक्ति और प्रेम के स्वरूप का सविस्तार विवेचन किया है ।

1.2.5 मुन्शी राम शर्मा, 1958, भक्ति का विकास, (हिन्दी) वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में मुन्शी राम शर्मा ने ईश्वर का अस्तित्व, स्वरूप

और भक्ति के स्वरूप बारे सविस्तार चर्चा की है ।

1.2.6 राधाकृष्णन्, 1960, धर्म और समाज, (हिन्दी), दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज़ ।

राधाकृष्णन् ने इस पुस्तक में धर्म की आवश्यकता, प्रेरणा तथा हिन्दू धर्म के बारे में प्रकाश डाला है ।

1.2.7 सरनाम सिंह शर्मा, 1960, कबीर : एक विवेचन, (हिन्दी) दिल्ली : हिन्दी साहित्य संसार ।

सरनाम सिंह ने अपने इस ग्रन्थ में समकालीन वातावरण, साहित्यिक वातावरण, वातावरण का प्रभाव : क्रिया और प्रतिक्रिया, आलोचना पद्धति, एकता का पथ, रहस्यवाद, योग-दर्शन तथा चिन्तन पक्ष के सन्दर्भों में विचार प्रकट किए हैं ।

1.2.8 जयराम मिश्र, 1961, नानक वाणी, (हिन्दी), इलाहाबाद : मित्र प्रकाशन ।

जयराम मिश्र ने इस ग्रन्थ में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति की चर्चा की है और गुरु नानक के स्थान को उच्च दर्शाया है । नानकवाणी के व्यावहारिक, सैद्धान्तिक तथा काव्य पक्ष के वर्णन के साथ-साथ प्रकृति चित्रण, भाषा, दार्शनिक सिद्धान्तों का वर्णन विश्लेषण किया है, तत्पश्चात् गुरु नानक वाणी का क्रमानुसार वर्णन प्रस्तुत किया है ।

1.2.8 भगवान दास, 1961, सब धर्मों की बुनियादी एकता (हिन्दी), वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन ।

प्रस्तुत पुस्तक में सब धर्मों तथा मज़हबों की एकता पर विचार हुआ है । मज़हब और साइंस, धर्म-मज़हब की आवश्यकता तथा धर्मों के अलग-अलग रीति-रिवाजों पर चर्चा हुई है ।

1.2.(10) रामजी लाल सहायक, 1961, कबीर दर्शन (हिन्दी)
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ ।

इस ग्रन्थ में ईश्वर दर्शन, आत्म दर्शन, माया, मोक्ष अथवा मुक्ति, योग साधना, भक्ति योग, कर्म योग, नैतिक संयम का कबीर से सम्बन्धित दार्शनिक विचारों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है ।

1.2.(11) स्वामी विवेकानन्द, 1961, धर्म रहस्य, (हिन्दी) नागपुर :
श्री रामकृष्ण आश्रम ।

इस पुस्तक में स्वामी विवेकानन्द ने सार्वभौमिक धर्म का आदर्श, सार्वभौमिक धर्म लाभ का उपाय तथा धर्म नाम की चीज़ से अवगत कराया है ।

1.2.(12) रामदत्त भारद्वाज, 1962, गोस्वामी तुलसीदास, (हिन्दी)
दिल्ली : भारती साहित्य मन्दिर ।

प्रस्तुत पुस्तक में तुलसी के सन्दर्भ में माया, जीव, मोक्ष, कर्म-ज्ञान तथा भक्ति आदि के बारे सविस्तार चर्चा हुई है ।

1.2(13) राधाकृष्णन, 1962, जीवन की आध्यात्मिक दृष्टि, (हिन्दी)
दिल्ली : राजकमल ।

प्रस्तुत पुस्तक में धर्म के विकल्प, दार्शनिक विचारधारा, मनुष्य की अध्यात्म-चेतना तथा मानवीय व्यक्तित्व और उसकी नियति का व्यौरा प्रस्तुत किया गया है ।

1.2(14) राम रतन भटनागर, 1962, मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास, (हिन्दी), दिल्ली : हिन्दी साहित्य संसार ।

प्रस्तुत पुस्तक में भक्ति साहित्य और नवजागरण एवं मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और समाज का विवेचन हुआ है ।

1.2(15) राधाकृष्णन्, 1963, धर्म तुलनात्मक दृष्टि में, (हिन्दी),
दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज़ ।

प्रस्तुत पुस्तक में तुलनात्मक धर्म की चर्चा हुई है और कष्ट सहन

द्वारा क्रान्ति सम्बन्धी विचारों को दर्शाया गया है ।

1.2(16) रामनरेश वर्मा, 1963, हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका, (हिन्दी) वाराणसी : ना० प्र० सभा ।

इस ग्रन्थ में मध्ययुग का विकास, भक्ति-आन्दोलन, भक्ति, भक्ति के विभाग, भक्ति भेद तथा भक्ति के स्वरूप पर चर्चा हुई है ।

1.2.(17) मनमोहन सहगल, 1965, सन्तकाव्य का दार्शनिक विश्लेषण, (हिन्दी) चण्डीगढ़ : भारतेन्दु भवन ।

मनमोहन सहगल ने इस ग्रन्थ में दर्शन, गुरु और गुरमुख, अकाल-पुरुष, जीवात्मा, माया, गुरु नानक का दार्शनिक लक्ष्य तथा लक्ष्यसिद्धि के अन्य दार्शनिक साधनों पर विवेचन किया है ।

1.2.(18) जयनाथ 'नलिन', 1966, भक्ति काव्य में माधुर्य भाव का स्वरूप, (हिन्दी) दिल्ली : बंसल एण्ड कम्पनी ।

इस ग्रन्थ में जयनाथ 'नलिन' ने माधुर्य भाव के उद्भव और विकास, निर्गुण पंथ में भक्ति का स्वरूप, वैष्णव धर्म में भक्ति का स्वरूप, सूफीमत में भक्ति का स्वरूप, निर्गुण काव्य में माधुर्य भाव में ब्रह्म का स्वरूप, साधक का स्वरूप, रस की साधना, सिद्धावस्था और निर्गुण भक्ति का सामाजिक मूल्यांकन किया है ।

12.(19) रामनारायण पाण्डे, 1966, भक्तिकाव्य में रहस्यवाद, (हिन्दी) दिल्ली : नैशनल पब्लिशिंग हाऊस ।

रामनारायण पाण्डे के इस ग्रन्थ में रहस्यवाद की परिभाषा, प्राचीन परम्परा, माया, सत्संग, गुरु, ईश्वर, नाम, मुक्ति के साधन तथा मुक्ति एवं साक्षात्कार आदि प्रसंगों के बारे में विचार विश्लेषण हुआ है ।

1.2.(20) राधाकृष्ण, 1968, आधुनिक युग में धर्म, (हिन्दी) दिल्ली : राजकमल ।

इस ग्रन्थ में विश्व समाज का उदय, धार्मिक दुरवस्था, यथार्थ

की खोज, आस्था और विवेक, यथार्थ अनुभव के रूप में धर्म तथा धार्मिक सहिष्णुता पर विचार-विश्लेषण हुआ है ।

1.2.(21) जोगेन्द्र सिंह, 1969, गुरु नानक दा सरूप (पंजाबी) दिल्ली : प्रीत प्रकाशन ।

इस ग्रन्थ में जोगेन्दर सिंह ने गुरु नानक की जीवन-साखियां, गुरु नानक का जन्म, जन्म-स्थान, चमत्कार, ऐतिहासिक करामातें तथा गुरु नानक को एक चिराग रूप में चित्रित किया है ।

1.2.(22) दलीप सिंह दीप, 1969 , जगत गुरु बाबा (पंजाबी), चण्डीगढ़ : अमन प्रकाशन ।

इस ग्रन्थ में गुरु नानक के जीवन पर आधारित मौलिक कहानियां, जपजी एक तुलनात्मक अध्ययन, नानक का जीवन-चरित तथा गुरु नानक के साहित्य की सविस्तार चर्चा हुई है ।

1.2.(23) सीता हांडा, 1969, गुरु नानक व्यक्तित्व और विचार (हिन्दी) जयपुर : चिन्मय प्रकाशन ।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रशस्तियां, गुरु नानक का जीवन वृत्त, लेखकों की दृष्टि में गुरु नानक का स्थान एवं गुरु नानक वाणी पर प्रकाश डाला गया है ।

1.2.(24) सुरेन्दर सिंह कोहली, 1969, गुरु नानक जीवन दर्शन अते काव कला, (पंजाबी), चण्डीगढ़ : पब्लिकेशन ब्यूरो ।

प्रस्तुत पुस्तक में गुरु नानक के जन्म स्थान, जीवन-चरित पर प्रकाश डाला गया है । गुरु नानक के जीवन दर्शन और काव्य-कला तथा व्यक्तित्व को भी निखारा गया है ।

1.2.(25) सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, 1969, गुरु नानक, (हिन्दी), दिल्ली : सूचना और प्रसारण मन्त्रालय ।

प्रस्तुत पुस्तक में अलग-अलग लेखकों ने गुरु नानक के विषय में

अलग-अलग सन्दर्भों में विचार व्यक्त किए हैं तथा अपनी शैली द्वारा गुरु नानक के व्यक्तित्व को उच्च दर्शाया है ।

1.2.(26) सेवा सिंह सेवक, 1969, गुरु नानक विश्वनूर, (पंजाबी) जालन्धर : पंजाब किताब घर ।

प्रस्तुत पुस्तक में जग चानण होया, ज्ञात गुरु बाबा का जीवन और सिद्धान्त, वारें तथा गुरु नानक बाणी का विवेचन किया गया है ।

1.2.(27) गुरबचन सिंह तालिब, 1970, गुरु नानक व्यक्तित्व और विचार, (हिन्दी) जालन्धर : गुरदास कपूर एण्ड सन्ज़ ।

प्रस्तुत पुस्तक में गुरु नानक की भक्ति, योग, नानक के यातना-सम्बन्धी दृष्टिकोण का सविस्तार विवेचन किया है तथा सामाजिक चेतना की ओर भी संकेत किया है ।

1.2.(28) जय भगवान गोयल, 1970, गुरमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, (हिन्दी) दिल्ली : हिन्दी साहित्य संसार ।

प्रस्तुत पुस्तक में गुरु नानक का युग, युगीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थिति तथा संतोख सिंह द्वारा लिखी गई पुस्तक गुरु नानक प्रकाश का वर्णन हुआ है ।

1.2.(29) निहाल सिंह गुरमुख, 1970, गुरु नानक जीवन, युग एवं शिक्षाएं, (हिन्दी) दिल्ली : नैशनल पब्लिशिंग हाऊस

प्रस्तुत पुस्तक में गुरु नानक देव की शिक्षाएं, जीवन-चरित एवं सिक्ख धर्म के अनिवार्य मूल तत्वों का वर्णन हुआ है। इसके अतिरिक्त गुरु नानक देव को अलग-अलग सन्दर्भों के रूप में विभिन्न लेखकों ने वर्णित किया है और अपनी लेखनी से गुरु नानक के व्यक्तित्व को पूरा महत्व दिया है ।

1.2.(30) मैथिली प्रसाद भारद्वाज, 1970, मध्यकालीन रोमांस, (हिन्दी) दिल्ली : रिसर्च।

प्रस्तुत पुस्तक में मैथिली प्रसाद भारद्वाज ने मध्यकालीन प्रेमाख्यान, भारतीय आख्यान परम्परा और नर-नारी सम्बन्धों के बारे में विषद् चर्चा की है।

1.2.(31) रत्न सिंह जग्गी, 1970, गुरु नानक रचनावली, (हिन्दी), पटियाला भाषा विभाग।

प्रस्तुत ग्रन्थ में काव्यरचना का आलोचनात्मक परिचय दिया गया है। गुरु नानक देव की रचनाओं के साथ-साथ सभी प्रकार के रागों का क्रमानुसार विवेचन एवं विश्लेषण किया है।

1.2.(32) जोध सिंह, 1971, गुरु नानक वाणी, (हिन्दी), नैशनल बुक ट्रस्ट ।

प्रस्तुत पुस्तक में जीव, मनुष्य, आत्मा, हउमैं, कर्म-सिद्धान्त, आवागमन के चक्र और सतगुरु की महत्ता का गुणगान किया गया है। तत्पश्चात् मुक्तिमार्ग तथा भौतिक-सिद्धान्तों पर समीक्षा कीगई है।

1.2.(33) मनमोहन सहगल, 1971, गुरु ग्रन्थ साहिब : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, (हिन्दी), पटियाला : भाषा विभाग।

प्रस्तुत ग्रन्थ में मनमोहन सहगल ने भक्ति आन्दोलन को वर्णित किया है। गुरुवाणी का संकलन, आवश्यकता, स्रोत पर प्रकाश डालते हुए संस्कृति, भाषा और साहित्य तथा सांस्कृतिक मूल्यों का सविस्तार ब्यौरा दिया है।

1.2.(34) हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, 1971, कबीर, (हिन्दी) दिल्ली : राजकमल।

प्रस्तुत पुस्तक में नाथपंथियों के सिद्धान्त हठयोग की साधना, योगपरक रूपक और उलटबासियों का वर्णन हुआ है। तत्पश्चात् दर्शन के

विषय और भारतीय धर्म साधना के सन्दर्भों में विचार हुआ है ।

1.2.(35) हरबंस सिंह, 1971, गुरु नानक तथा सिक्ख धर्म का उद्भव, (हिन्दी) पटियाला : पंजाबी युनिवर्सिटी ।

प्रस्तुत पुस्तक में गुरु नानक की धार्मिक शिक्षा, बाल्यकाल, जन्मस्थान, चमत्कार तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता पर प्रकाश डाला गया है ।

1.2.(36) नारायण भक्त, 1972, गुरु नानक देव : जीवन और दर्शन, (हिन्दी) दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन ।

प्रस्तुत पुस्तक में जीवन और दर्शन के सन्दर्भों में विचार हुआ है । तत्पश्चात् गुरु नानक देव से सम्बन्धित अलग-अलग पहलुओं पर विवेचन किया गया है ।

1.2.(37) परशुराम चतुर्वेदी, 1972, उत्तरी भारत की संत परम्परा, (हिन्दी), इलाहाबाद : लीडर प्रेस ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में भारतीय साधना का प्रारम्भिक विकास, साम्प्रदायिक रूप तथा सुधार, पूर्वकालीन सन्त, पंथ निर्माण का सूत्रपात, नानक पंथ व सिक्ख धर्म आदि का पूर्ण विवरण दिया गया है ।

1.2.(38) विश्वनाथ तिवाड़ी, 1972, ना को हिन्दू ना मुसलमान, (पंजाबी) चण्डीगढ़ : पब्लिकेशन ब्यूरो ।

प्रस्तुत पुस्तक में गुरु नानक की जीवनी, जन्म-स्थान, धार्मिक शिक्षाएं, यात्राएं तथा ज्योति-जोत समाने तक की संक्षिप्त टिप्पणी प्रस्तुत की गई है ।

1.2.(39) संतोख सिंह, 1972, गुरु नानक प्रकाश, (पंजाबी) भाषा विभाग : पटियाला ।

प्रस्तुत पुस्तक में गुरु नानक के धर्म उपदेश के प्रसंग, सिख उपदेश प्रसंग तथा बाबर युद्ध प्रसंग की जानकारी दी गई है ।

1.2.(40) त्रिलोचन सिंह, 1972, जीवन रहित गुरु नानक देह, (पंजाबी) दिल्ली : सिख गुरुद्वारा बोर्ड

प्रस्तुत पुस्तक में गुरु नानक की बाल्यावस्था, विद्या-प्राप्ति, समाज के विरुद्ध बगावत तथा गुरु नानक की यात्राओं पर प्रकाश डाला गया है ।

1.2.(41) राजकौर रैणा, 1973, गुरु नानक काव-विच आचार नीति (नैतकता) दा संकल्प, (पंजाबी) काश्मीर : जगजीत प्रकाशन ।

प्रस्तुत पुस्तक में गुरु नानक का जीवन, रचनाएं, नैतिकता का संकल्प तथा अलग-अलग धर्मों के स्वरूप का विवेचन किया गया है ।

1.2.(42) शकुन्तला रानी, 1973, महाभारत में धर्म, (हिन्दी) भरतपुर : भारती प्रकाशन मन्दिर ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में धर्म शब्द का अर्थ, प्राकृतिक और मानवीय धर्म, धर्म और सम्प्रदाय, वैदिक और वैशेषिक धर्म, धर्मशास्त्रों में धर्म, धर्म का स्वरूप, प्रमाण, लक्षण, अंग, धर्म और शील, परम धर्म, सनातन धर्म तथा धर्म के तत्वों की जानकारी दी गई है ।

1.2.(43) शमीर सिंह, 1973, गुरु तेग बहादुर जी, जीवन काव्य व चिन्तन, (हिन्दी) अमृतसर : देवेन्द्र सिंह प्रेमनगर, सैन्ट्रल जेल ।

प्रस्तुत पुस्तक में गुरु तेग बहादुर की वाणी, अनुभूति पक्ष, भाव प्रवणता, अभिव्यक्ति पक्ष, ब्रह्म, जगत्, सृष्टि, जीवात्मा अथवा मानव तथा भक्ति के साधनों पर प्रकाश डाला गया है ।

1.2.(44) सुखदेव सिंह शर्मा, 1973, धर्म दर्शन, (हिन्दी) पटना : बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी ।

प्रस्तुत पुस्तक में भारतीय धर्म-दर्शन की समकालीन समस्याएं, धर्म का भविष्य, धार्मिक भाषा का स्वरूप, तुलनात्मक धर्म, धर्म का भविष्य, विश्व धर्म, विश्व धर्म की धारणा, धर्म और प्रतीक, तथा हिन्दू धर्म के तात्त्विक स्वरूप का विवेचन हुआ है ।

1.2.(45) प्रभाकर माचवे, 1974, विभिन्न धर्मों में ईश्वर कल्पना, (हिन्दी) पटना : बिहार ग्रन्थ अकादमी ।

प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न धर्मों में ईश्वर के स्वरूप का विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

1.2.(46) भगवान दास तिवारी, 1974, मीरां की प्रामाणिक पदावली, (हिन्दी) इलाहाबाद : साहित्य भवन ।

प्रस्तुत पुस्तक में मीरां पदावली का स्वरूप, विकास तथा उसके वर्ण्य विषयों का वर्णन हुआ है। तत्पश्चात् मूल पदावली से समता और अन्तर सूचक तथ्यों पर विचार-विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है ।

1.2.(47) नित्यानन्द शर्मा, 1975, उत्तरमध्यकालीन हिन्दी काव्य में भक्ति का स्वरूप, (हिन्दी) दिल्ली : आशा प्रकाशन गृह ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में भक्ति-आन्दोलन व भक्ति के स्वरूप की सविस्तार चर्चा की गई है ।

1.2.(48) मनमोहन सहगल, 1975, श्रीगुरु ग्रन्थ साहिब (हिन्दी), लखनऊ : भुवन वाणी ट्रस्ट ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में नागरी लिपि में वाणी, भाव दोनों का सही निर्वाह करते हुए अनुवाद कार्य किया है तथा रागों और शब्दों का क्रमानुसार वर्णन विश्लेषण हुआ है ।

1.2.(49) सुरेन्दर सिंह जौहर, 1975, गुरु नानक एक जीवनी, (हिन्दी) जालन्धर : स्टार्लिंग पब्लिशर्ज ।

प्रस्तुत पुस्तक में नानक का युग, परिस्थितियां, यात्राओं, चमत्कारों तथा उपदेशों की चर्चा हुई है ।

1.2.(50) हरनाम सिंह शान, 1975, गुरु नानक दा शाहकार जपुजी, (पंजाबी) चण्डीगढ़ : पब्लिकेशन ब्यूरो ।

प्रस्तुत पुस्तक में हरनाम सिंह शान ने जपुजी की महता, पाठ,

नाम, समय, स्थान, महत्व और महात्म्य से अवगत कराया है । तत्पश्चात् जपुजी की कला, काव्यरूप इत्यादि की सविस्तार चर्चा की है ।

1.2.(51) गुरबचन सिंह 'राही', 1977, गुरु नानक वाणी विवेचन, (पंजाबी) अमृतसर : न्यू रनैरज बुक सैंटर ।

प्रस्तुत पुस्तक में गुरु नानक की जीवन-फलक, समकालीन वातावरण, जपुजी दार्शनिक और सदाचार सम्बन्धी अध्ययन तथा नानक के विचार जगत पर दृष्टि डाली गई है ।

1.2.(52) डी० एस० नरूला, 1978, गुरु नानक संगीतज्ञ (हिन्दी) जालन्धर : न्यु बुक कम्पनी ।

प्रस्तुत पुस्तक में गुरु नानक देव का जीवन-चरित, उदासियों का क्रमानुसार वर्णन, रचनाओं का संग्रह, रचनाओं का परिचय, वर्गीकरण, रागों में गीत-शैलियों के प्रकार, वार-साहित्य तथा भाव और रस के स्वरूप को प्रकट किया गया है ।

1.2.(53) कुलवन्त कौर कोहली, 1979, गुरु नानक देव जी दा संकल्प, (पंजाबी) पटियाला : भाषा विभाग ।

प्रस्तुत पुस्तक में जीव की उत्पत्ति, आगमन, जीव के पंच कोश, ब्रह्म, माया, हउमै और गुरु नानक के दर्शन सम्बन्धी विचारों को दर्शाया है।

1.2.(54) जागीर सिंह, 1981, जपु-प्रकाश, (पंजाबी) दिल्ली : रवी प्रकाशन ।

प्रस्तुत पुस्तक में जपुजी की महत्ता, जपुजी का पाठ, जपुजी का नाम, जपुजी के करता और इसका केन्द्रीय विषय तथा जपुजी की महिमा पर प्रकाश डाला गया है ।

1.2.(55) प्रशान्त वेदालंकार, 1983, धर्म का स्वरूप (हिन्दी) दिल्ली : गोविन्द राम हासानन्द ।

प्रस्तुत पुस्तक में धर्म का स्वरूप, लक्षण, साधन, धर्म का आचरण

तथा धर्म की सार्वभौमिकता का वर्णन किया गया है ।

1.2.(56) चरणसती शर्मा, 1984, तुलसी काव्य में धर्म और आचरण का स्वरूप, (हिन्दी), महरौली : प्रवीण प्रकाशन ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में तुलसी के युग की परिस्थितियां तथा समाज का चित्रण हुआ है । तत्पश्चात् धर्म की व्याख्या और स्वरूप के सन्दर्भों में विचार करते हुए धर्म के वैज्ञानिक रूप पर प्रकाश डाला गया है ।

1.2.(57) ईशर गियानी नारा, 1887, अथ जपु सिद्धान्त सूर्योदय, (पंजाबी) दिल्ली : गेट बाजार ।

प्रस्तुत पुस्तक में जपुजी का महत्व, पाठ, नाम का वर्णन हुआ है तथा जपुजी का समूचा भाव, सम्बोधन और सूर्योदय से पहले जपुजी का पाठ करने की विधि को बताया गया है ।

1.2.(58) गुरदेव सिंह, प्र० व० न०, गुरु नानक विचार अते काव कला, (पंजाबी), लुधियाना : लाहौर बुक शाप ।

प्रस्तुत पुस्तक में गुरु नानक की वाणी, योगदर्शन तथा साधना मार्ग के सन्दर्भों में विचार हुआ है। तत्पश्चात् परमात्मा का संकल्प, समाजवाद, छन्द, अलंकार, रसानुभूति तथा गुरु नानक के आगमन पर प्रकाश डाला गया है।

1.2.(59) गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, प्र० व० न०, गुरु नानक देवजी, (पंजाबी) दिल्ली : गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी ।

प्रस्तुत पुस्तक में गुरु नानक के आध्यात्मिक विचारों से संबंधित चर्चा हुई है और गुरु नानक को एक महान क्रान्तिकारी दर्शाया गया है ।

1.2.(60) नित्यानन्द शर्मा, प्र० व० न०, हिन्दी साहित्य का मध्यकाल, अलीगढ़ : भारत प्रकाशन मन्दिर ।

प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी साहित्य की पीठिका पर विचार हुआ है। मध्यकालीन सांस्कृतिक जागरण की प्रक्रिया, सन्त, सूफी तथा विभिन्न कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों पर विचार-विश्लेषण हुआ है ।

1.3 विषय-परिसीमन

गुरु नानक देव जी के दर्शन, चिन्तन, काव्य और सामाजिक-प्रदाय के सम्बन्ध में देश-विदेश की विभिन्न भाषाओं अनेक सन्दर्भों में खूब विचार हुआ है। उनके साहित्य को युगीन, प्रादेशिक, सार्वदेशिक और सार्वभौम सन्दर्भों में भी विवेचन--विश्लेषण का आधार बनाया गया है। परम्परित भारतीय चिन्तन की विकास-यात्रा के सन्दर्भ में भी, और विशुद्ध सिक्ख धर्म के साम्प्रदायिक रूप में आविर्भाव के सन्दर्भ में भी गुरु नानक देव की वाणी पर विचार हुआ है। उनकी धर्म-साधना के सम्बन्ध में विचार भी विद्वानों की रुचि और उनके श्रम से अछूता नहीं रहा है। परन्तु समग्र रूप में पौर्वात्य परम्परा और प्रभावों के सन्दर्भ में गुरु नानक देव के काव्य के विश्लेषण की अपेक्षा अभी बनी हुई है।

प्रस्तावित शोध-कार्य में भारतीय पूर्व-परम्परा में तथा नवागत (अरबी-ईरानी) इस्लामी परम्परा में धर्म-साधना की जिन परम्पराओं का विकास हुआ उनकी पृष्ठपीठिका में उत्तर-पश्चिमी भारत में उभरती हुई नवीन समंजस समाज-व्यवस्था की आशाओं और अपेक्षाओं की सिद्धि के साधन रूप में गुरु नानक देव की वाणी के आधार पर धर्म-साधना का विश्लेषण इस अध्याय का सीमित लक्ष्य है।

1.4 अध्ययन का महत्त्व

प्रत्येक शोध-कार्य ज्ञान की परिधि में कुछ वृद्धि करने के लिए वचनबद्ध

होता है । इस दृष्टि से वह अब तक प्राप्त ज्ञान की सीमा के प्रस्थान बिन्दुओं से आगे बढ़ने का प्रयास भी हो सकता है, और पूर्वागत तथ्यों के पुनर्मूल्यांकन का उपक्रम भीहो सकता है ।

प्रस्तुत शोधकार्य बृहत्तर भारतीय मध्यकालीन परिवेश में गुरु नानक देव की धर्म-साधना के विवेचन-विश्लेषण का लक्ष्य लेकर प्रयासरत है । इस कार्य की सम्पन्नता पर यह अपेक्षा हो सकती है कि एक ओर भारतीय धर्म साधना की अटूट परम्परा के सबल, सुदृढ़ और सार्थक तत्वों के सन्दर्भ में गुरु नानक देव के चिन्तन, दर्शन और साहित्य को रखकर उनका मूल्यांकन किया जा सके । इसके साथ साधन-क्षेत्र में गुरु नानक की युगिन मौलिकताओं, निजी अवदान तथा क्षेत्रीय एवं सार्वदेशिक महत्व को रेखांकित किया जाए । आशा है कि प्रस्तावित कार्य से परवर्ती शोधकर्ताओं को सहायता प्राप्त होगी तथा गुरु नानक देव पर किए गए शोधकार्य को आगे बढ़ाने में प्रस्तुत कार्य कुछ उपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

1.5 अध्ययन का अनुक्रम

सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध को चार भागों में विभक्त किया गया है । प्रथम भाग के प्रथम अध्याय में विषय कथन के उपरान्त सम्बद्ध साहित्य का सर्वेक्षण हुआ है । विषय-परिसीमन तथा अध्ययन का महत्व स्पष्ट करने के उपरान्त अध्ययन के अनुक्रम की संक्षिप्त रूपरेखा को अनुक्रमित किया गया है ।

द्वितीय अध्याय में सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत धर्म एवं साधना सम्बन्धी विचार हुआ है । इसमें धर्म के विभिन्न स्वरूपों का क्रमिक वर्णन-विश्लेषण किया गया है ।

तृतीय अध्याय में गुरु नानक देव के जन्म, जीवनवृत्त तथा युगिन परिवेश का राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक सन्दर्भों का परिचय

दिया गया है। तत्पश्चात् उनके व्यक्तित्व, कृतित्व एवं युग ने तत्व की भूमिका को विवेचित किया गया है ।

द्वितीय भाग में कुल छः अध्याय हैं । चतुर्थ अध्याय में गुरु नानक काव्य की धर्म-परिकल्पना की पृष्ठभूमि के रूप में लोकजागरण तथा मध्ययुग सम्बन्धी अवधारणा का ऐतिहासिक सन्दर्भ में विवेचन किया गया है । लोक-जागरण के तात्विक सन्दर्भ में तथा लोक जागरण के निर्धारक तत्वों के आधार पर गुरु नानक के काव्य की विशिष्टता को रेखांकित किया गया है। तत्पश्चात् परम्परित भारतीय मत-सम्प्रदायों और मध्यकालीन भारतीय सूफी साधना की पृष्ठभूमि में भी गुरु नानक देव की वाणी में धर्म के स्वरूप पर विचार का प्रयास किया गया है ।

पंचम अध्याय में ब्रह्म तथा जीव के सन्दर्भों में विचार का प्रयास किया गया है । ब्रह्म के सगुण-निर्गुण और निर्गुण-सगुण उभय स्वरूप, सत्यनाम और गुरु नानक देव का ईश्वर के प्रति विश्वास को अंकित व रेखांकित करने का प्रयास हुआ है ।

षष्ठ अध्याय में गुरु नानक वाणी में भक्ति के स्वरूप के सम्बन्ध में विवेचन किया गया है । इसमें भक्ति की व्युत्पत्ति, परिभाषा, स्वरूप और नवधा भक्ति पर विचार हुआ है । नाम माहात्म्य, शृंगार भाव, भक्ति रस और गुरु नानक की ईश्वर के प्रति मिलन की प्रबल आकांक्षा को वर्णित किया गया है ।

सप्तम् अध्याय में गुरु नानक वाणी में साधना के तत्व और सोपान के सन्दर्भों को विवेचित किया गया है । गुरु की अवधारणा एवं महत्व, शरीर, माया तथा मन की परिकल्पना को वर्णित किया है । नानकवाणी में ध्यान, जाप, नाम-संग्रह, भय एवं भयमुक्ति, कर्म, अस्तेय, मोक्ष और योगमार्ग की सविस्तार चर्चा की गई है । पवित्रता, संयम, मनन और आचरण के सन्दर्भों में भी विवेचन का प्रयास हुआ है ।

अष्टम् अध्याय में गुरु नानक वाणी में धर्म साधना के बाह्य उपक्रमों पर प्रकाश डाला गया है । इसमें तीर्थ-तीर्थस्नान, सेवा, दया, दान तथा मानव मात्र के प्रति समभाव आदि पर विचार हुआ है । कामनाओं का संस्कार, अहंकार-परित्याग, आध्यात्मिक रोग की बात करते हुए पाखण्ड-खण्डन तथा धर्म की बाह्यरूपिता को रेखांकित करने का प्रयास हुआ है । स्वार्थहीनता और मानवीय अन्तर्सम्बन्धों की संक्षिप्त रूपरेखा भी प्रस्तुत की गई है ।

नवम् अध्याय में मध्यकालीन भारतीय धर्म-साधना के सन्दर्भ में नानक-वाणी के परिप्रेक्ष्य में वाणी में स्वीकार्य और अस्वीकार्य तत्वों पर विचार हुआ है । नानकवाणी की मौलिकता एवं विशिष्टता और प्रासंगिकता पर विचार भी व्यक्त किए गए हैं ।

तृतीय भाग में दशम् अध्याय के अन्तर्गत अध्ययन का सार और उपलब्धियों को रेखांकित किया गया है ।

चतुर्थ खण्ड में परिशिष्ट के अन्तर्गत सहायक सन्दर्भ सूची दी गई है, जिसमें आकारादि क्रम से लेखकीय उपनाम की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग हुआ है ।

द्वितीय अध्याय

सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य -- धर्म : अवधारणा, स्वरूप एवं तत्व

'विषय उपस्थापन' सम्बन्धी पिछले अध्याय में विषय कथन के बाद सम्बद्ध साहित्य का सर्वेक्षण, विषय परिसीमन, अध्ययन का महत्व एवं अध्ययन के अनुक्रम की संक्षिप्त रूपरेखा को अनुक्रमित किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत धर्म की व्युत्पत्ति, परिभाषा एवं दार्शनिक, सनातन, व्यावहारिक, स्थूल, रहस्यमय, बौद्धिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, प्राचीन स्वरूप तथा धर्म-साधना आदि विषयों पर विवेचन अपेक्षित है।

2.1 धर्म : व्युत्पत्ति एवं स्वरूप

समग्र सृष्टि धर्म रूपा है। धर्म के बिना किसी वस्तु का वस्तुत्व स्थिर नहीं रह सकता। जैसे अग्नि का धर्म जलाना है और यदि इसकी दाहिका शक्ति नष्ट हो जाए तो अग्नि का अग्नित्व लुप्त हो जाएगा। इसी प्रकार मनुष्य का धर्म मननशीलता है। इस धर्म से रहित मनुष्य को मानव की संज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि यही तत्व तो मानव को पशुत्व से पृथक् कर मानवत्व की कोटि में लाता है और इसी मानव धर्म पर ही संस्कृति प्रतिष्ठित है। भारतीय संस्कृति के आदिकाल से लेकर अब तक सत्ताशील रहने का एकमात्र कारण धर्म ही तो है। यह धर्म ही मानव जाति को समाज शृंखला में आस्यूत करने वाला सूत्र है। धर्म का सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय विशेष

से न होकर मानवमात्र से है । इसी का आश्रय लेकर मनुष्य अपने लौकिक एवं पारलौकिक कर्तव्यों को निभाता है । लौकिक व्यवहार द्वारा वह समाज एवं राष्ट्र को विकासोन्मुख करता है । किसी भी राष्ट्र या समाज का वास्तविक रूप उसके धर्म द्वारा स्पष्ट होता है । धर्मविहीन राष्ट्र या समाज अमर्यादित और विशृंखलित हो जाता है और उसमें रहने वाला जनसमूह कर्तव्यपरायणता से विमुख हो जाता है । आदिकाल से लेकर अब तक मनुष्य ने अपनी इस विकसित स्थिति तक पहुंचने के लिए एवं अपनी मनुष्यता के अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए जिन तत्वों, धारणाओं, सिद्धान्तों और व्यापारों का आश्रय लिया, वे सभी धर्म के अन्तर्गत आते हैं ।

वास्तव में धर्म की कसौटी मनुष्य ही है । सृष्टि के अन्य पदार्थों एवं जीवों आदि के धर्म सहजात हैं परन्तु मनुष्य का धर्म प्रयत्न द्वारा उपलब्ध किया गया है । धर्म का विकास इसी लोक के बीच हमारे परस्पर व्यवहार के भीतर होता है । सामान्यतया धर्म वैयक्तिक एवं सामाजिक आचरणों का नियामक है । यह मनुष्य जीवन की आचार संहिता है जो हमें कर्तव्य पालन की शिक्षा देता है या व्यष्टि जीवन को समष्टि में विलीन करने का उपदेश देता है । मनुष्य की विकसनशीलता एवं धर्म की गतिमयता को ध्यान में रखते हुए अब धर्म के स्वरूप का विवेचन अपेक्षित है ।

धर्म शब्द `धृ` धातु में `मन्` प्रत्यय लगाने से बना है, `जो धारण करता है` वह धर्म है ।[1] वेदान्त दर्शन में "प्रेरणा को धर्म का लक्षण"[2] माना गया है। "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः"[3] के अनुसार तत्वज्ञान के द्वारा

1-- छान्दोग्योपनिषद्, गोरखपुर : गीताप्रेस, सं0 2028, 2123-1

2-- वेदव्यास, ब्रह्मसूत्र, 1, 1, 1

3-- कणाद, वैशेषिक दर्शन, प्रथम सूत्र

श्रेष्ठ मुक्ति प्राप्त करना ही धर्म है । भारतीय धर्मशास्त्रों में धर्म के साथ आचरण के महत्त्व को भी स्वीकार किया गया है। आचरण ही धर्म का व्यावहारिक रूप है । धर्मशास्त्रों में वेदों को धर्म का मूल और वेदविहित कर्म (आचरण) को धर्म माना गया है । ---"वेदोऽखिलो धर्ममूल ।"[4] आचरण को भी परमधर्म[5] स्वीकार किया गया है ।

2.1.1 धर्म : परिभाषा

विनय धर्म को जीवन का शाश्वत आधार मानते हुए लिखते हैं ---- "शाश्वत जीवन, शाश्वत धर्म के आचरण पर ही अवलम्बित है । धर्मसाधना, कर्म का अनुष्ठान आदि सब का समग्र ध्येय जीवन को उन्नत बनाना है ।"[6] श्रुति-स्मृति ग्रन्थों पर आधारित आचरण को भी धर्म कहा गया है।।"[7] रामखेलावन पाण्डे के मतानुसार -- "धर्म पदार्थ की पदार्थता, मूलतत्वता का निर्देशक है ।"[8] धर्म व्यक्ति के व्यवहार के लिए उचित निर्देशक है । सुरेशचन्द्र बेनर्जी के शब्दों में --- "धर्म उपयोगी निर्देशनों का समूह है । किन्तु निर्देशन चाहे अनेक हैं, ये हमारे जीवन को, व्यक्ति के रूप में, समाज के सदस्य के रूप में निर्देशन दिया करते हैं ।"[9]

4-- मनुस्मृति, 2, 36

5-- आचार: परमोधर्म: । -- मनुस्मृति, 1, 178

6-- विनय, महाभारत का आधुनिक प्रबन्धकाव्यों पर प्रभाव, दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1966, पृ0 359

7-- कल्याण, (हिन्दू संस्कृति अंक, जनवरी 1950), गीताप्रेस : गोरखपुर, 1950, पृ0 369

8-- रामखेलावन पाण्डे, भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक चेतना, पटना : अनुपम प्रकाशन, 1967, पृ0 86

9-- सुरेशचन्द्र बेनर्जी, धर्मसूत्र, उत्पत्ति एवं विकास का अध्ययन, कलकत्ता, पंथी पुस्तक सदन, प्रथम संस्करण, पृ0 1

"मनुष्यों की विशिष्टता दिखाने वाली यदि कोई वस्तु है तो वह धर्म है।"[10] "धर्म वह है, जो व्यक्ति और समाज को धारण करे, उसका पोषण और संवर्धन करे।"[11] गर्नारी महतो ने धर्म को कर्म का पर्याय माना है -- "वह कर्म जिसका सम्पादन, किसी सम्बन्ध या गुणविशेष के विचार से उचित और आवश्यक हो, धर्म है।"[12] औचित्य की दृष्टि से धर्म सार्वकालिक, सार्वदेशिक और सार्वभौमिक है। समाज में रहते हुए व्यक्ति जिस धर्म का पालन करता है, वही मानव धर्म है। धर्म व्यक्ति को दूसरों पर श्रद्धा एवं विश्वास करना सिखाता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी "धर्म को अन्य व्यक्ति में श्रद्धा उद्रिक्त करने वाला"[13] मानते हैं। धर्म मानव का उदार कर्तव्य है। "यह कर्तव्य मानवीय सम्बन्धों और परिस्थितियों के विविध रूपों में चरितार्थ होता है।"[14] धर्म समाज और व्यक्ति के लिए मंगलमय पथ प्रशस्त करता है। संसार की वास्तविकता को व्यक्त करना मानव का धर्म है। "धर्म उन सिद्धान्तों, तत्वों तथा जीवन-प्रणाली को कह सकते हैं जिससे मानव जाति परमात्मा-प्रदत्त शक्तियों के विकास से अपना ऐहिक जीवन सुखी बना सके, साथ ही मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा जन्म-मरण के झंझटों में न फंसकर शान्ति व सुख का अनुभव कर सके।"[15]

10-- बल्देव उपाध्याय, आर्य संस्कृति के मूलाधार, आगरा : शारदा मन्दिर, 1963, पृ० 1

11-- रामरत्न भटनागर, तुलसी नवमूल्यांकन, इलाहाबाद : स्मृति प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1971, पृ० 102

12: गर्नारी महतो, रामचरितमानस: नानापुराणनिगमागमसम्मत, इलाहाबाद : शोध साहित्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1974, पृ० 207

13-- हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, सातवीं बार, 1962, पृ० 82

14-- शकुन्तला रानी, महाभारत में धर्म, भरतपुर : भारती पुस्तक मन्दिर, प्रथम प्रकाशन, 1970, पृ० 8

15-- शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1944, पृ० 202

2.1.2 धर्म : कुछ पाश्चात्य धारणाएं

हरबर्ट स्ट्रोप ने "धर्म को व्यक्ति का सन्तुलन"[16] कहा है। हैरी एल० शैपोरी ने धर्म का व्यापक और सनातनस्वरूप साधुत्व की पूजा[17] में माना है। हरबर्ट डब्ल्यू श्वैनर के शब्दों में ---- "धर्म व्यक्ति के व्यक्तित्व में गम्भीरता पैदा करता है।"[18]

2.2 धर्म : कोशगत अर्थ

"धरती लोकान् धियते पुण्यात्माभिरिति"[19] अर्थात् धर्म लोक को धारण करता है तथा लोक में पुण्यात्माओं अथवा सज्जनों द्वारा धारण किया जाता है। धर्म को "कर्तव्य, कल्याणकारी कर्म, सुकृति, सदाचार, श्रेय"[20] का पर्याय भी माना जाता है। धर्म उस आचरण को कहते हैं, "जिससे समाज की रक्षा और कल्याण हो, सुखशान्ति की वृद्धि हो।"[21] भोलानाथ

16-- हरबर्ट स्ट्रोप, फार रिलीजन आफ एशिया, न्यूयार्क : हार्पर एण्ड रॉपब्लिशर्ज, 1968, पृ० 8

17-- हैरी एल० शैपोरी, मानव संस्कृति और समाज, (अनु०) रामानुज लाल, भोपाल : मध्यप्रदेश अकादमी, 1971, पृ० 361

18-- हरबर्ट डब्ल्यू श्वैनर, धर्म का स्वरूप अमरीका में, इलाहाबाद : लीडर प्रेस, प्रथम संस्करण, सं० 2020, पृ० 1

19-- जयशंकर जोशी, (सं०) हलायुधकोश, वाराणसी : सरस्वती भवन, सं० 2014, पृ० 370

20-- रामचन्द्र वर्मा (सं०), संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर, काशी : नागरी प्रचारिणी सभा, छठा संस्करण, 1958, पृ० 500

21-- आर० सी० पाठक, (सं०) भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोश, बनारस : श्री गंगापुस्तकालय गंगाधार, प्र० व० न०, पृ० 261

तिवारी के शब्दों में ---"धर्म व्यक्ति की वह प्रकृति अथवा स्वभाव है, जो उसमें सदा रहे।"[22] धर्म को व्यक्ति की चित्तवृत्ति भी कह सकते हैं ---"धर्म किसी वस्तु या व्यक्ति की वृत्ति, जो उसमें सदा रहे, उससे कभी अलग न हो, प्रकृति उचित अनुचित का व्यवहार करने वाली चित्तवृत्ति है।"[23] कोशकारों ने धर्म को गुण या विशेषता के रूप में भी मान्यता दी है ---" जिस गुण या विशेषता के कारण उपमेय की उपमान से तुलना की जाए, उसे धर्म कहते हैं।"[24] इस प्रकार केवल आचरण व्यवहार को ही धर्म नहीं कहते, बल्कि गुण या चित्तवृत्ति को भी धर्म माना गया है।

2.3 धर्म : दार्शनिक रूप

दार्शनिक भाषा में धर्म का अर्थ है --- " जिसके द्वारा व्यक्ति बहिर्मुखता को छोड़कर, वासनाओं के पाश से हटकर शुद्ध चिद्रूप या आत्मस्वरूप की ओर अग्रसर होता है।"[25] शास्त्रसम्मत विधि-विधान ही धर्म कहलाते हैं। धर्म सम्बन्धी रहस्य की गुत्थियों को सुलझाना दर्शन का काम है,। धर्म के विषय में अनादिकाल से सोचा जा रहा है, आज भी धर्म गवेषणा का विषय बना हुआ है। व्यक्ति के व्यक्तित्व की दृष्टि से धर्म ससीम होते हुए

22-- भोलानाथ तिवारी (सं0), तुलसी शब्द सागर, इलाहाबाद : हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्र0 व0 न0, पृ0 245

23-- नवलजी (सं0), नालन्दा विशाल शब्दसागर, दिल्ली : न्युइम्पीरियल बुक डिपो, सं0 2007, पृ0 639

24-- राजवंश सहाय (सं0), भारतीय साहित्य शास्त्रकोश, बिहार : हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1973, पृ0 572

25-- सुखलाल जी, दर्शन और चिन्तन, पं0 सुखलाल जी सम्मान समिति प्रकाशन, संस्करण सं0 2013, पृ0 9

भी असीम है । "धर्म है -- ब्रह्म के सत्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति, जिसकी असीमता का आभास अखिल विश्व में मिलता है ।"[26] धर्म को व्यक्ति-बुद्धि की ज्योतिर्मय अवस्था का परिणाम भी कह सकते हैं -- "धर्म चरम सत्ता की प्रत्यक्ष समझ (बुद्धि) है, वह प्रकाशोद्भव की अवस्था की प्राप्ति है ।"[27] परमात्मा की बुद्धि व्यक्ति की बुद्धि में एकमेक होकर धर्मरूप में समग्र समाज को परिचालित करती है, क्योंकि "धर्म जीवन के प्रत्येक पक्ष को आत्मसात् करते हुए अवश्य चलता है, पर किसी न किसी रूप में उसमें परोक्ष सत्ता की स्वीकृति अनिवार्य है ।"[28] धर्म को ऐसा सेतु भी माना गया है, जो दृश्य को अदृश्य से जोड़ता है। "असीम और अव्यक्त के प्रति हार्दिक संवेदना का नाम धर्म है और उसकी अनुभूति ही धर्म चेतना है ।"[29] धर्म-विषयक इसी भाव को पाश्चात्य विद्वान् सर वाल्टर येस्टे ने भी अभिव्यक्त किया है ---- "धर्म बहुत से तत्वों का मिश्रण है, वह कोई ऐसी विशिष्ट आकृति नहीं है, जिससे उसके गुण और स्वभाव को बताया जा सके । धर्म तो जीने और काम करने की इच्छाशक्ति की उत्तेजना है ।"[30] आचरण द्वारा ही धर्म की सहज प्राप्ति होती है। धर्म की परिभाषा में आचरण स्वयंमेव समाविष्ट हो जाता है, क्योंकि धर्म का अर्थ "कर्तव्य"[31] है ।

26-- रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, काशी : नागरी प्रचारिणी सभा, 1963, पृ0 154

27-- राधाकृष्णन, आधुनिक युग में धर्म, दिल्ली : राजकमल, 1968, पृ0 70

28-- श्रुतिकान्त, भारतीय देवभावना और मध्यकालीन हिन्दी साहित्य, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1973, पृ0 20-21

29-- वीरेन्द्रपाल श्रीवास्तव, गोस्वामी तुलसीदास सम्बन्धी समीक्षाओं और शोधों का अनुशीलन, इलाहाबाद : स्मृति प्रकाशन, 1974, पृ0 293

30-- इनसाइक्लोपीडिया, ब्रिटेनिका (भाग 19), लन्दन : दि इनसाइक्लोपीडिया कम्पनी लिमिटेड, 1910, पृ0 106

31-- भोलानाथ तिवारी, महेन्द्र चतुर्वेदी, व्यावहारिक हिन्दी अंग्रेजी कोश, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1970, पृ0 290

"धर्म को जीवन की वह स्थिति भी कह सकते हैं, जो व्यक्ति को कर्तव्य बन्धन में बांधती है ।"[32] कर्तव्य का बोध उसे नीति-ग्रन्थों से भी होता है। सरोज गुप्ता के शब्दों में ---"धर्म का अर्थ धारणा से है, जिससे मनुष्य की नैतिकता का मापदण्ड निर्धारित होता है ।"[33] धर्म की नीतिमत्ता उसको सामाजिक व्यवहार की शिक्षा देती है, जिससे सामाजिक और मानवीय मूल्यों के प्रति उस में विश्वास जाग्रत होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में धर्म को किसी न किसी रूप में स्वीकार करता है । धर्म की गति अबाधित है । कुछ विशेष परिस्थितियों में रूढ़ियों और अन्धविश्वासों एवं परम्पराओं को भी धर्म-रूप में स्वीकार कर लिया जाता है । इसी विचार की प्रतिक्रियास्वरूप राहुल जी ने कहा है ---"धर्म चलायमान प्रगतिशील समाज को पकड़कर रखना चाहता है ।"[34] अन्धविश्वासों को धर्म का संकीर्ण एवं विकृत रूप कह सकते हैं । धर्म में चमत्कार समाविष्ट हो जाने से अन्धविश्वासों को ही धर्म समझा जाने लगता है । इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए महाकवि दिनकर ने कहा है-- "धर्म अन्धविश्वास नहीं है, धर्म अलौकिकता में भी नहीं है, वह जीवन का अत्यन्त स्वाभाविक तत्व है ।"[35] प्रत्येक मानव का धर्म एक होता है, उसके धर्मसम्बन्धी मापदण्ड और मूल्य तो पृथक्-पृथक् हो सकते हैं, परन्तु धर्म पृथक् नहीं हो सकता ।

32-- विलियम्ज़ लिटिल, दि शारटर आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, आक्सफोर्ड : क्लैरेन्डन प्रेस, तृतीय संस्करण, पृ० 1697

33-- सरोज गुप्ता, रामचरित मानस की सूक्तियों का विवेचनात्मक अध्ययन, जयपुर : राजस्थान प्रकाशन, 1975, पृ० 140

34-- राहुल सांस्कृत्यायन, मानव समाज, कलकत्ता : आधुनिक पुस्तक भवन, 1951, पृ० 23

35-- नारायण चतुर्वेदी सं०, सरस्वती, लेख कर्मठ वेदान्त के स्वरूप विवेकानन्द, इलाहाबाद : नवम्बर 1955, पृ० 312

धर्म का क्षेत्र व्यापक एवं विस्तृत है, कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में धर्म की परिभाषाएं बदलती रहती हैं। कुछ विशेष मान्यताओं के अनुरोध के कारण धर्म अपनी व्यापक परिधि से सिकुड़कर संकीर्ण सम्प्रदाय बन जाता है। ये सम्प्रदाय सार्वभौम बनने की आकांक्षा से अपना प्रचार करते हैं, परन्तु आन्तरिक विरोधों के कारण काल-विलीन हो जाते हैं। वास्तव में "सम्प्रदाय आपस में नहीं टकराते, टकराते हैं सम्प्रदायों को मानने वाले लोग, जो कि एक दूसरे से सहमत नहीं हो पाते।"[36] धर्म में कभी अन्तर्विरोध नहीं होता। धर्म में तो मानवीयता के लिए उदार आग्रह होता है, तभी धर्म सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक बनता है। धर्म अनेक बातों के समन्वय द्वारा समाज को एकसूत्र में गुम्फित करने का अनथक प्रयास है। शकुन्तला रानी के शब्दों में -- -- "सार्वभौम धर्म मानवीय धर्म का वह रूप है जो प्रत्येक मनुष्य देश, काल, जाति, वर्ण आदि के भेद से परे, सभी परिस्थितियों में प्रत्येक मनुष्य का धर्म है।"[37] इस प्रकार धर्म मानव-समाज रूपी भवन का सुदृढ़ आधार स्तम्भ है।

धार्मिक संस्कार एवं विश्वास जीवन से निराश व्यक्ति में आशा का संचार करते हैं। --- "भय और धार्मिकता, श्रद्धालुता, आतंक, प्रेम और उकताहट में विह्वल होकर उसका मन ऐसी दशा में रहता है कि उसमें (व्यक्ति में) मानसिक विघटन पैदा कर दे, धर्म इस दशा से उसे त्राण देता है।"[38] धर्म से त्राण पाया हुआ व्यक्ति कुछ विश्वासों को मन में मूर्तिमान रूप दे देता

36-- डी० डी० कोशाम्बी, मिथक और यथार्थ, (अनु०)नन्दकिशोर नवल, दिल्ली : भारतीय अनुसन्धान, परिषद्, मैकमिलिन कम्पनी आफ इंडिया, प्रथम संस्करण, 1976, पृ० 2

37-- शकुन्तला रानी, पूर्वोक्त, पृ० 119-20

38-- रामानुजलाल (अनु०), पूर्वोक्त, पृ० 317

है, यहीं से धर्म में मूर्तिपूजा का प्रचलन हुआ। भय और आशंका के वैकल्पिक बचाव के लिए मानव ने जादू-टोनों का आश्रय लिया। इस प्रकार जादू-टोने और मूर्तिपूजा आदि का धर्म में समावेश, समाज की सम-विषम परिस्थितियों और आवश्यकताओं के कारण होता है।

धर्म समाज और व्यक्ति का पोषक है। धर्म-विरोधी व्यक्ति को भी किसी न किसी धर्म को अपनाना पड़ता है। धर्म व्यक्ति को स्वधर्म की शिक्षा देता है और समाज को अभ्युदय की ओर ले जाता है ---"मनुष्य इस बात का अनुभव कर सके कि सबके अन्दर वही एक आत्मा है, वह आत्मा हर व्यक्ति को, हर वस्तु की अभिव्यक्ति की, विकास की पूरी-पूरी स्वाधीनता देती है।"[39] इसलिए समाज में नैतिकता और सदाचार पर बल दिया जाता है। नीति धर्म का अंग है और नैतिकता से मानव का मानसिक परिष्कार होता है।

2.4 धर्म : सनातन स्वरूप

धर्म की विभिन्न परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो गया कि धर्म सार्वभौम और सार्वकालिक है। धर्म का मूल सदैव निर्मल, पवित्र एवं अपरिवर्तित रहता है परन्तु युग की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप धर्म के बाह्य रूप में परिवर्तन होते रहते हैं। धर्म का व्यापक स्वरूप सत्य, अहिंसा, करुणा, क्षमा, प्रेम आदि में देखा जा सकता है। ये तत्व ही मानव के चरित्र को आदर्श निर्धारित करते हैं, इनका सम्बन्ध मानव-मन की भावनाओं से है।

सत्य शब्द संस्कृत की 'अस' (ठहरना) धातु से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ होता है -- अस्तित्व होना। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी सत्य का अर्थ

39-- रवीन्द्र, श्री अरविन्द जीवन और दर्शन, दिल्ली : नवभारती सहकार प्रतिष्ठान, 1969, पृ0 96

परमसत्ता के अस्तित्व को माना है, "सत्य का अर्थ ही 'है' है । परम्परा क्रम से जिस सच्चिदानन्द को सुना गया है, उनके तीन तत्व हैं --- सत्, चित्, आनन्द । उसकी सत्ता त्रिकाल में है, इसलिए वह सत् है ।"[40] भारतीय धर्म-ग्रन्थों में सत्य को ऋत तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। "ऋत सन्तुलन का तत्व है, जो सारी सृष्टि को अपने नियमों में बाधे रहता है ।"[41] वेदों में सत्य को ही पृथ्वी का आधार माना गया है --"सत्येनोत्तभिता भूमि:"[42] अर्थात् सत्य के द्वारा पृथ्वी-स्तम्भित है। इसलिए पृथ्वी पर अवस्थित प्रत्येक वस्तु का अपना एक धर्म है, इस वस्तुधर्म को ही सत्य कहा गया है । योगदर्शन में "इन्द्रिय और मन के द्वारा प्रत्यक्ष देखकर या सुनकर अनुभव करके ठीक वैसे ही भाव को सत्य"[43] कहा गया है । कोई व्यक्ति पवित्र है, संन्यासी है, महात्मा है तो वह हमारी श्रद्धा का पात्र बन जाता है; परन्तु साधारण व्यक्ति के लिए तो वह दूर की चमकीली वस्तु ही होता है । साधारण व्यक्ति को उससे क्या लाभ, परन्तु जब सत्य जीवन में घुल-मिल जाता है, तो वह मन और आत्मा को पवित्र करता है और बाह्य जीवन को भी अपनी ज्योति से ज्योति कर देता है । उस ज्योति से जनसाधारण को भी जीवन का लक्ष्य मिलता है। संसार के अन्धकार में भटके प्राणियों को भी सही जीवन-दर्शन की प्राप्ति होती है । यही कारण कि सत्य का अर्थ 'यथातथ्य, विश्वस्त'[44] भी किया जाता है ।

40-- हजारी प्रसाद द्विवेदी, सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1979, पृ0 38

41-- वीरेन्द्रपाल श्रीवास्तव, पूर्वोक्त, पृ0 297

42-- गणेशदत्त शर्मा, ऋग्वेद में दार्शनिक तत्व, गाज़ियाबाद : विमल प्रकाशन, 1977, पृ0 17।

43-- पतंजलि, योगदर्शन, गोरखपुर : गीता प्रेस, नवम् संस्करण, सं0 2028, 2, 30

44-- मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव, ज्ञान शब्द कोश, बनारस : ज्ञानमण्डल, सं0 2013, पृ0 809

सत्य धर्म को चिरन्तनता-निरन्तरता प्रदान करता है । सत्य विश्व के सभी धर्मों को मान्य है । अहिंसा शब्द हिंसा का निषेधार्थक है, अर्थात् मन-वाणी-कर्म से किसी भी जीव के प्रति हिंसा से विरति । अहिंसा का अर्थ कोशकारों ने इस प्रकार दिया है --

"अद्रोह, किसी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट न देना ।"[45]

"जीवों या प्राणियों में हिंसा न करने की वृत्ति या भावना"[46] भी अहिंसा ही है ।

दार्शनिक शब्दावली में अहिंसा का लक्षण -- "सर्वथा सर्वभूतानाम् नाभिद्रोह: अहिंसा"[47] । भारत हमेशा से कृषि प्रधान देश रहा है, कृषि के लिए पशु-पालन भारतीयों का मुख्य और प्रारम्भिक व्यवसाय रहा है। अहिंसा का सिद्धान्त नि:सन्देह कृषि के लिए पशुओं की रक्षा करने और उन के बलात् अपहरण को रोकने की पार्थिव इच्छा का आदर्शीकरण था ।[48] इस लिए हिन्दू धर्म में अहिंसा के महत्व को स्वीकार किया गया । अहिंसा एक ऐसा प्रबल महाव्रत है, जिसका पालन करना तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है । अहिंसा के पथ पर चलने के लिए निष्कपट-नि:स्वार्थ भाव के प्रेम की आवश्यकता होती है । वर्तमान युग में नि:स्वार्थ भाव के सबसे सशक्त उदाहरण गांधीजी कहे जा सकते हैं, जिन्होंने अपने अहिंसा-भाव से समग्र

45-- आर० सी० पाठक, भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोश, पूर्वोक्त, पृ० 50

46-- रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश (खण्ड 1), प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सं० 2019, पृ० 234

47-- पतंजलि, योगदर्शन, 2, 30

48-- सुवीरा जायसवाल, वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, कलकत्ता : भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्, 1976, पृ० 122

भारत को अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध जागृत कर दिया था।

करुणा अहिंसा का मूल स्रोत है । करुणा अन्त:करण की सात्त्विक प्रवृत्ति है, जो दूसरों का दु:ख देखकर मन में उत्पन्न होती है और दूसरों का दु:ख दूर करने की प्रेरणा देती है । अहिंसा का अर्थ 'अनुकम्पा, दया'[49] है तो 'करुणा' किसी असमर्थ, असहाय, दु:खों अथवा संकट में पड़े हुए व्यक्ति को देखकर मन में होने वाली, उसके दु:ख की ऐसी अनुभूति है, जो उसका दु:ख दूर करने की प्रेरणा देती है ।[50] करुणा सात्त्विक मनोभावों की आदि संस्थापिका है। रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में --- "सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के लिए करुणा का प्रसार आवश्यक है । समाजशास्त्र के पश्चिमी ग्रन्थकार कहा करें कि समाज में एक दूसरे की सहायता अपनी-अपनी रक्षा के विचार से की जाती है, यदि ध्यान से देखा जाए तो कर्म क्षेत्र में परस्पर सहायता की सच्ची उत्तेजना देने वाली किसी न किसी रूप में करुणा ही दिखाई देगी ।"[51] वस्तुत: करुणा में स्वार्थ, अपने सुख के लिए आग्रह और कृपा का भाव नहीं रहता । करुणामय व्यक्ति के हृदय में 'निर्वैरता'[52] की भावना रहती है । करुणा एक ऐसा मनोवेग है जो अनायास ही उत्पन्न होता है । करुणा व्यक्ति को दूसरे के प्रति सहृदय बनाती है । यदि अहिंसा धर्म का शीर्ष-बिन्दु है, तो करुणा अहिंसा को व्यवहार्य रूप प्रदान करती

49-- मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव (सं0), पूर्वोक्त, पृ0 142

50-- (i) रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश (खण्ड 1), पूर्वोक्त, पृ0 466

(ii) रामचन्द्र वर्मा (सं0), प्रामाणिक हिन्दी कोश, बनारस : हिन्दी साहित्य कुटीर, सं0 2008, पृ0 255

51-- रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि (भाग पहला), प्रयाग : इण्डियन प्रेस, 1966, पृ0 21

52-- वही, पृ0 33

है। करुणा को धर्म का अपरिहार्य अंग कहा जा सकता है। यह व्यक्ति के आचरण को समाजोपयोगी बनाती है।

प्रेम का शाब्दिक अर्थ है -- 'अनुराग'।[53] मानक कोशकार में प्रेम को मन का कोमल भाव माना है --- "जो बीज किसी ऐसे काम, चीज़, बात या व्यक्ति के प्रति होता है, जिसे (वह) बहुत अच्छा, प्रशंसनीय तथा सुखद समझता है।"[54] व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति आग्रह या आत्मीयता ही प्रेम है। प्रेम से मिलता-जुलता भाव श्रद्धा और भक्ति में ही रहता है। श्रद्धा का क्षेत्र विस्तृत है, किसी पर दया या करुणा करने वाले के प्रति हमारे मन में जो भाव उत्पन्न होता है, वह श्रद्धा है। "श्रद्धा का मूलतत्व दूसरे के महत्व"[55] को स्वीकार करने में है। रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति को प्रेम का पर्याय माना है -- "भक्ति में किसी ऐसे सान्निध्य की प्रवृत्ति होती है, जिसके द्वारा हमारी महत्व के अनुकूल गति का प्रसार और प्रतिकूल गति का संकोच होता है।"[56] सामीप्य की कामना ही प्रेम और भक्ति को जन्म देती है। राममूर्ति त्रिपाठी का मत है--"दूर-दूर से जान्नियैता के गुणों और क्रियाओं के माध्यम से उत्पन्न श्रद्धा मानव-हृदय तृप्त न कर सकी तो वह सान्निध्य-कामी हुआ। दोनों का दोनों के जीवन में प्रवेश चाहने लगा। परिणाम यह हुआ कि श्रद्धा के साथ प्रेम का भी योग हुआ। इसका नाम भक्ति पड़ा।"[57] श्रद्धा और भक्ति को प्रेम की एक

53-- राममूर्ति त्रिपाठी, आगम और तुलसी, नई दिल्ली : मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लि०, 1977, पृ० 37

54-- रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, (खण्ड तीसरा), पूर्वोक्त, पृ० 665

55-- रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि (भाग पहला), पृ० 21

56-- वही, पृ० 33

57-- राममूर्ति त्रिपाठी, पूर्वोक्त, पृ० 37

विशिष्ट प्रवृत्ति कहा जा सकता है । प्रेम का स्तर लौकिक भी है, अलौकिक भी । प्रेम समाज में बन्धुता और समता की स्थिति उत्पन्न करता है । समाज में परिवार की सुदृढ़ नींव प्रेम और आस्था पर टिकी हुई है । इसलिए "प्रेम को महाव्रत"[58] माना जाता है । प्रत्येक धर्म, जाति, राष्ट्र एवं परिवार में प्रेम के अस्तित्व को समान भाव से स्वीकार किया गया है । विश्व का प्रत्येक धर्म मानव को प्रेम की प्रेरणा देता है ।

सत्य, अहिंसा, करुणा और प्रेम को धर्म का सनातन[59] एवं चिरन्तन रूप कह सकते हैं । यही धर्म का व्यापक एवं विश्वजनीन रूप कहा जा सकता है । अत: यही मानव का धर्म है ।

2.5 धर्म व्यावहारिक स्वरूप : नैतिकता एवं सदाचरण

धर्म का व्यावहारिक रूप नैतिकता और सदाचार से जुड़ा है । धर्म का अर्थ ---"सामाजिक कर्तव्य, लोक-व्यवहार सम्बन्धी नियम, औचित्य--आचार ।"[60] इसी रूप में धर्म का सामाजिक पक्ष उजागर होता है । भगवानदास ने धर्म को सदाचार के रूप में स्वीकार करते हुए कहा है -- "धर्म का हेतुयुक्त कार्यकरण सम्बन्धानुसंधानात्मक लोक-संग्रह सत्-कर्मोपयोगी ज्ञान समझा जाए।"[61] नीतिका अर्थ -- "लोकाचार, व्यवहार-पद्धति है ।"[62] धर्म वास्तविकता को

58-- पतंजलि, योगदर्शन, 2, 31

59-- (i) सहजानन्द सरस्वती, गीता हृदय, इलाहाबाद : किताब महल, प्रथम संस्करण, 1948, पृ0 838

(ii) गीता 16 । 2-3

60-- मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, पूर्वोक्त, पृ0 380

61-- भगवानदास, समन्वय, काशी : भारती भण्डार, 1985, पृ0 3

62-- भोलानाथ तिवारी, वृहत् पर्यायवाची कोश, इलाहाबाद : किताब महल, 1962, पृ0 56

जानने का मार्गदर्शन है, नीति मानवीय सम्बन्धों का आधारभूत सिद्धान्त है। धर्म व्यवहार का सैद्धान्तिक पक्ष है, तो नीति धर्म का व्यावहारिक पक्ष है।

भाग्यवती सिंह ने जीवन की गति को ही प्रगति का माध्यम माना है --- "जीवनगत परिस्थिति की यथार्थता के औचित्य का रखना मर्यादा की लीक पीटने से अधिक प्रगतिशील है।"[63] नीति में लोक संचालन की भावना निहित रहती है। व्यक्ति का आचरण समाज में विशिष्ट स्थान रखता है। "निष्काम कर्म नैतिक आचरण की नींव है और नैतिक जीवन यज्ञ रूप है।"[64] नैतिकता और सदाचरण के माध्यम से समग्र विश्व को एकसूत्र में बांधा जा सकता है और "इस एकता के रहस्य को समझने एवं उसके अनुसार चलने का प्रथम उत्तरदायित्व मनुष्य-समाज पर ही है।"[65] नैतिकता मनुष्य को कदम-कदम पर मर्यादित करती है। देवराज के शब्दों में ---"समाज का अस्तित्व आवश्यक रूप में नैतिक मूल्यांकन के अस्तित्व में सहचारित है।"[66] नैतिकता के मूल में लोकहित की भावना रहती है, जैसे ---"वर्णाश्रम की व्यवस्था सम्भावत: समाज में नीति की स्थापना के विचार से हुई है।"[67] मानव का लोकोपयोगी एवं व्यवहारोपयोगी सम्बन्ध परम्परा और समाज से होता है। असदअली के शब्दों में -----"संस्कृति से तात्पर्य समाज और जीवन का सर्वांगीण संस्कार, सुधार और विकास है।"[68] इस प्रकार धर्म और नैतिकता का आपस में

63-- भाग्यवती सिंह, तुलसी की काव्यकला, आगरा : सरस्वती पुस्तक सदन, संस्करण, सं0 2019, पृ0 83

64-- चरणदास शर्मा, तुलसी के काव्य में नैतिक मूल्य, दिल्ली : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, प्रथम संस्करण, 1971, पृ0 34

65-- जगदीशनारायण मलिक, हिन्दू नीतिशास्त्र, पटना:भारती भवन, 1959

66-- देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन (सृजनात्मक मानववाद की भूमिका), उत्तर प्रदेश : प्रकाशन ब्यूरो सूचना विभाग, 1957, पृ0 288

67-- आनन्द प्रकाश दीक्षित, तुलसीदास वस्तु और शिल्प, आगरा : सरस्वती पुस्तक सदन, 1959, पृ0 134

68-- असदअली, भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव, दिल्ली : एस0 आई0 एस0 प्रकाशन, 1971, पृ0 14

घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

2.6 धर्म : स्थूल स्वरूप

जहां धर्म के विश्वजनीन स्वरूप का महत्व स्वयंसिद्ध है, वहां उसके व्यावहारिक एवं आचरण पक्ष की प्रतिष्ठा को भी नकारा नहीं जा सकता, साथ ही रूढ़ि-परम्परा, रीति-नीति आदि धर्म के बाह्य एवं स्थूल स्वरूप को सर्वथा नगण्य नहीं माना जा सकता । धर्म-सुधारकों और बुद्धिजीवियों ने समय-समय पर युग की मांग के अनुरूप धर्म की आचरण-सम्बन्धी मान्यताओं में परिवर्तन किया । धर्म के इस रूप में मानव की शारीरिक और दैनिक क्रियाएं तथा बाह्याचरण भी समाविष्ट है ।

धर्म का स्थूल रूप यज्ञ, पूजापाठ और कर्मकाण्ड आदि के माध्यम से व्यक्त होता है । वैदिक युग के प्रारम्भ से ही धर्म में यज्ञादि कर्मकाण्डों की प्रधानता रही है । वैदिककाल में परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ किए जाते थे । ब्राह्मण युग में यज्ञ को परमात्मा से ऐश्वर्य मांगने की प्रार्थना के रूप में घसीट कर धरती पर सबसे महान् शक्ति के रूप में बदल दिया गया ।[69] क्रमशः धर्म में यज्ञादि कर्मकाण्डों से बाह्याडम्बरों का प्रचलन हुआ । धर्म के स्थूल रूप को प्रकट करने वाले उपकरण हैं --- अन्धविश्वास, रूढ़ परम्पराएं, शकुन-अपशकुन, ग्रह नक्षत्रों में विश्वास आदि। ये उपकरण व्यक्ति के आचरण को एक सीमा में बांधते हैं, परन्तु कभी-कभी धर्म का यह रूप समाज पर इतना हावी हो जाता है कि चारों ओर अज्ञान का प्रसार हो जाता है । पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आती परम्पराएं जब अपनी सार्थकता खोकर रूढ़ हो जाती हैं, तब वे अन्धविश्वासों को जन्म देती हैं । प्रकृति द्वारा प्रकट की गई अद्भुत घटनाओं,

---

69-- सूर्यकान्त, (अनु०), वैदिक धर्म एवं दर्शन, (द्वितीय भाग), आवेकीथ, दिल्ली : मोती लाल बनारसी दास, 1963, पृ० 471

ग्रहोपग्रहों द्वारा प्रकट विभिन्न क्रियाओं द्वारा व्यक्ति को अनेक संकेत मिलते हैं। यदा-कदा किसी विशिष्ट संकेत से उसे कार्य में सफलता या असफलता मिलती है, उसी के आधार पर शकुनापशकुनों का प्रचलन हुआ होगा और बाद में परम्परा में आने पर उन्हें धर्म के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। 'शकुन प्राय: अन्धविश्वासों पर आधारित होते हैं और उनके मूल में भावी भय एवं आशंका की भावना निहित होती है।'[70] मानव-मन प्राकृतिक भयों और शारीरिक कष्टों से छुटकारा चाहता है, इसके लिए वह कभी तो समीपस्थ परिवेश पर विचार करता है, कभी ग्रह-नक्षत्र एवं 'शकुन-अपशकुन'[71] विचारता है।

समाज के वैधानिक रूप को सुव्यवस्थित बनाने में धर्म के स्थूल रूप का योगदान अपरिहार्य है। धर्म के इस रूप का सम्बन्ध आचरण और व्यवहार-पक्ष से भी जुड़ा हुआ है। धर्म का यह रूप किसी भी जाति एवं देश की सभ्यता और संस्कृति में अन्तर्गर्भित रहता है।

2.7 धर्म : रहस्यमय स्वरूप

धर्म के रहस्यमय स्वरूप का सम्बन्ध मानव-मन की रहस्यानुभूति से है। धर्म का रहस्यमय रूप जादू-टोनों और शकुन आदि से जुड़ा हुआ है। प्रकृति के विविध रूपों और उनमें होने वाले क्षण-प्रतिक्षण परिवर्तनों को देखकर मानव का मन उस अदृश्य शक्ति के प्रति विस्मित हो उठता है जो इन सबकी नियामिका है। मानव मन में उस अदृष्ट, अलौकिक सत्ता के प्रति आकर्षण हो जाता है, यह आकर्षण उसे उस शक्ति से बांधता है, यही स्थिति

70-- दीपचन्द शर्मा, संस्कृत काव्य में शकुन, मेरठ : साहित्य भण्डार, 1966, (प्राक्कथन में)

71-- 'शक्नोति शुभाशुभ विज्ञातुमनेनेति।'
जयशंकर जोशी, सं० 2014, पूर्वोक्त, पृ० 648

दृढ़ानुराग है और अन्त में यही दृढ़ानुराग व्यक्ति को उस अदृश्य शक्ति से मिलन के लिए प्रेरित करता है। इस प्रक्रिया में उसकी लौकिक वासनाओं का उन्नयन होता है और वे आध्यात्मिक प्रेम में पर्यवसित हो जाती है । विस्मय या रहस्य की अनुभूति को धर्म का मूल कहा जा सकता है -- "विचारों की कोई भी गम्भीर साधना, विश्वासों की कोई भी खोज, सद्‌गुणों के अभ्यास का कोई भी प्रश्न, ये सब उन्हीं स्रोतों से उत्पन्न होते हैं, जिनका नाम धर्म है ।"[72] व्यक्ति की अनुभूति चिरन्तनता के साथ जुड़कर व्यक्ति का धर्म बन जाती है । ससीम की असीम से एकयानुभूति ही रहस्यानुभूति है । रामनारायण पाण्डे ने रहस्यवाद के स्वरूप को इस प्रकार स्पष्ट किया है -- "अज्ञात अनन्त-असीम शक्ति की जो प्रत्यक्षानुभूति विद्वानों को हुई और चिन्तन-मनन के पश्चात् उन्होंने जन-समुदाय के सम्मुख उसको व्यक्त करने का प्रयास किया वही कालानुक्रम से रहस्यवाद के नाम से अभिहित हुई ।"[73] रहस्यवादी प्रत्यक्षानुभूति के द्वारा उस अनन्त शक्ति के सन्देश को जनमानस तक पहुंचाता है और उसका आचरण लोक के लिए अनुसरण का विषय बन जाता है । यही धर्म का रहस्यमय रूप है ।

प्रत्यक्षानुभूति के आधार पर उस अनन्त-शक्ति को जानने के प्रयास में जादू-टोने भी उभर कर सामने आए । टामसन का मत है कि प्रारम्भ में जादू टोने का मूलभूत सिद्धान्त यह रहा होगा कि "वस्तुस्थिति पर नियन्त्रण का भ्रम उत्पन्न करके वस्तुस्थिति वास्तव में नियन्त्रण में आ जाती है ।"[74] जादू के मूल में रहस्य छिपा रहता है । के० दामोदरन ने जादू को धर्म का

72-- राधाकृष्णन, धर्म और समाज, दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज़, 1972, पृ० 51

73-- रामनारायण पाण्डे, भक्ति काव्य में रहस्यवाद, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1966, पृ० 2

74-- सुमन राजे, साहित्येतिहास संरचना और स्वरूप, कानपुर : ग्रन्थम् रामबाग, 1975, पृ० 71

आदि रूप माना है ---" जादू आदिकालीन धर्म का एक दूसरा रूप था, जो पाषाण-युग में शुरू हुआ ।"[75] जादू अज्ञेय सत्ता को प्राप्त करने का स्थूल प्रयास कहा जा सकता है ।

अप्राप्त की प्राप्ति और उस अप्राप्त अज्ञान को ज्ञान का विषय बनाने की इच्छा मानव की सहज और आन्तरिक प्रवृत्ति है । अज्ञेय को ज्ञेय बनाने की जिज्ञासा से वह निरन्तर कार्यरत रहता है और यही उसका धर्म और आचरण बन जाता है । इस प्रकार बुद्धि-इच्छा-भाव -- ये तीनों धर्म के रहस्यमय रूप के आवश्यक अंग हैं । रहस्यानुभूति ही व्यक्ति को सत्य को जानने की दिशा की ओर अग्रसर करती है और जो सत्य धर्म का आधार होता है, वही आचरण का आदर्श बन जाता है ।

2.8 धर्म : बौद्धिक स्वरूप

जब रहस्य की जिज्ञासा ज्ञान की दशा में अग्रसर होती है, तब वह दर्शन का विषय बन जाती है । "धर्म में परमात्मा, भविष्य, जीवन और चरित्र के विषय में विश्वास सम्मिलित है ।"[76] दर्शन धर्म के सम्मत क्षेत्र को प्रस्तुत करता है । "धर्म मनुष्य के भीतर पूर्व-प्राप्त देवत्व का प्रकट रूप है ।"[77] दर्शन धर्म के आधारभूत सिद्धान्त एवं लक्ष्य-प्राप्ति के साधन को निश्चित करता है । दर्शन व्यक्ति में उत्पन्न जिज्ञासा को तर्क बुद्धि द्वारा शान्त करता है । यही श्रद्धा और भक्ति का जन्म होता है, जो धर्म के अभिन्न अंग हैं । दर्शन

75-- के० दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा, (सं०) रामशरण शर्मा मंशी, दिल्ली : पीपुल्ज़ पब्लिशिंग हाऊस, पृ० 27

76-- निकाल मैकनीकल, दि लिविंग रिलीजनस आफ दि इण्डियन पीपल्ज़, लंदन : स्टूडेंट क्रिश्चियनज़ मूवमैण्ट प्रेस, 1934, पृ० 81

77-- स्वामी गम्भीरानन्द, सिलैक्शन आफ स्वामी विवेकानन्द, कलकत्ता : अद्वैताश्रम, 1963, पृ० 533

का विषय है --- ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, मोक्ष आदि । "हिन्दू धर्म का प्रथम सदस्य वह आत्मा है, जो सार्वभौम का निर्माता मानी गई है ।"[78] भारतीय दर्शन में आत्मा को ब्रह्म-रूप में स्वीकार किया गया है, जो जीवन में प्राण-रूप में निवास करती है और ब्रह्म का अविभाज्य अंग है । राधाकृष्णन का मत है ---"ब्रह्म की सर्वोपरि यथार्थता जगत् का आधार है ।"[79] ब्रह्म अपने ज्ञान-बल-क्रिया से सृष्टि का सृजन करता है और ब्रह्म की क्रियात्मक शक्ति माया को माना जाता है । "शंकर दर्शन में ब्रह्मा, विष्णु; शिव ये माया-विशिष्ट चैतन्य की उपाधि भेद से भिन्न-भिन्न संज्ञाएं स्वीकार की गई हैं और विशिष्ट सुख शुद्ध चैतन्य पर ही अधिष्ठित है ।"[80] अविद्या के कारण जीव, जगत् को नित्य समझकर मोह माया ग्रस्त हो जाता है और विद्या के कारण जीव भव-बन्धन की वास्तविकता से अवगत होकर उससे मुक्ति का प्रयास करता है। भव-बंधन से छुटकारा ही मोक्ष है । दर्शन को धर्म का बौद्धिक रूप माना गया है । जीव ब्रह्म रूपी मायावेष्टित परमात्मा के क्रियाकलाप को देखकर स्वयं भी वैसा ही आचरण करता है । उसका लक्ष्य मुक्ति है ।

समाज में जनकल्याण की भावना रहती है । "दर्शन हमें जीव की क्षुद्र स्थितियों से ऊपर उठकर विश्व-ब्रह्माण्ड की हलचल के केन्द्र में स्थापित कर देता है ।"[81] दर्शन लोकधर्म के संरक्षण को ध्यान में रखता है औरलोगों के जीवनदर्शन का मार्ग सुझाता है।

78-- जान डाउसन, ए क्लासीकल डिक्शनरी आफ हिन्दू माइथोलोजी एण्ड रिलीजन ज्योग्राफी, हिस्ट्री एण्ड लिट्रेचर, राटलेज एंड केगनपाल लि०, 1957, पृ० 56

79-- राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन (दूसरा भाग), (अनु०) नन्दकिशोर गोभिल विद्यालंकार, दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज़, 1972, पृ० 58।

80-- गिरधरशर्मा चतुर्वेदी, दर्शन अनुचिन्तन, कलकत्ता : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1964, पृ० 84

81-- देवराज, पूर्वोक्त, पृ० 280

2.9 धर्म : वैज्ञानिक रूप

धर्म और विज्ञान का पौर्वापर्य सम्बन्ध है । वैज्ञानिक उस विचारक को कहते हैं जो व्यक्ति के आन्तरिक और बाह्य रूपों का अनुसंधानात्मक विश्लेषण करता है । रामदत्त शर्मा ने वैज्ञानिक के रूप के कुछ इस प्रकार स्पष्ट किया है ---- "वह आकृति, गुण, स्वभाव, योग, क्रिया का विश्लेषण कर विभाजन के आधार पर सत्य को पाने का प्रयत्न करता है ।"[82] साहित्यकार भी वैज्ञानिक की भांति अपने युग का यथार्थ-वास्तविक निरूपण करता है । वह सामाजिक परिवेश में उलझी ग्रन्थियों को सुलझाने के प्रयत्न में अनवरत रत रहता है, व्यक्ति को उसके धर्म एवं कर्तव्य से परिचित कराता है । "धर्म और आचार में भक्ति, मन और शरीर की शुद्धि तथा खानपान का विचार सम्बन्धी विषय आते हैं ।"[82] शरीर, भोजन, वातावरण (वायुमण्डल), पेड़-पौधों से सम्बन्धित ज्ञान को विज्ञान कहते हैं ।

वस्तुत: धर्म और विज्ञान सत्य को जानने के दो भिन्न-भिन्न उपकरण हैं । दोनों पृथक-पृथक रूप में अधूरे हैं, जबकि ये दोनों मिलकर व्यक्ति, जाति, समाज और प्रकृति का यथार्थ ज्ञान एवं सम्बन्ध प्रस्तुत करते हैं । पाश्चात्य विज्ञान श्री हर्बर्ट स्टोप ने "धर्म और विज्ञान को व्यक्ति कीदो टांगों के सदृश"[84] माना है। इस प्रकार धर्म और विज्ञान व्यक्ति के जीवन को सन्तुलित एवं सुन्दर बनाते हैं । धर्म में भावुकता एवं विश्वास की प्रधानता है, विज्ञान तर्कसम्मत है। तर्कसम्मत होते हुए भी वैज्ञानिक को दूसरों के अनुसंधानों पर

82-- रामदत्त शर्मा, संस्कृत काव्यों में पशु पक्षी, जयपुर : देवनगर प्रकाशन, 1971, पृ० 64

83-- धीरेन्द्र वर्मा, (सं०), हिन्दी साहित्य कोश, (द्वितीय खण्ड), वाराणसी : ज्ञानमण्डल, सं० 2020, पृ० 645

84-- हरबर्ट स्ट्रोप, फोर रिलीजन आफ एशिया, न्यूयार्क : हार्पर एण्ड रा पब्लिशर्ज़, 1968, पृ० 20

विश्वास करना पड़ता है । इस प्रकार विज्ञान में भी विश्वास की आवश्यकता रहती है। धर्म भी केवल भावुकता का पर्याय नहीं । भारतीय न्याय और वैशेषिक तर्क-प्रधान दर्शन है ।

किसी भी धर्म का विज्ञान के साथ किसी भी प्रकार का मतभेद नहीं हो सकता। "भारत में चिकित्सा, कानून, जादू और धर्म एक ही मूल से निकले हैं ।"[85] धर्म कर्तव्य की प्रेरणा देता है, तो विज्ञान जीवन के सुख-साधनों को जुटाता है। धर्म श्रेय है, तो विज्ञान प्रेय है । धर्म में कर्म और भावना रहती है, तो विज्ञान में तर्क और बुद्धि । विज्ञान जब भावना रहित हो जाता है, तो विश्व के लिए घातक सिद्ध हो जाता है । इसका उदाहरण अणु-विस्फोट है । हिरोशिमा और नागासाकी, जापान के ये दो ही नगर क्या, विश्व के अनेक नगर भावनाहीन विज्ञान की बलिवेदी पर बलिदान हो चुके हैं । इसलिए बुद्धि एवं तर्क प्रधान विज्ञान को कर्म एवं भावना प्रधान धर्म की आवश्यकता रहती है । धर्म भावना से समन्वित विज्ञान विश्व में जनकल्याण का साधन बन जाता है। वास्तव में धर्म का लक्ष्य व्यक्तिगत एवं सामूहिक आचरण है । धर्म का मूल केन्द्र बिन्दु है -- संस्कारों का परिष्कार । किन्तु आचरण की पवित्रता के लिए तन-शुद्धि और मन-शुद्धि नितान्त आवश्यक है। धर्म में अनेक ऐसे अनुष्ठान उपलब्ध हैं, जिनका उद्देश्य तन-मन को शुद्ध करना है । यही धर्म का वैज्ञानिक रूप है । यहाँ पर धर्म अपने सूक्ष्म, तात्त्विक स्वरूप के साथ स्थूल क्रियात्मक स्वरूप को भी समेट लेता है ।

शरीर ही धर्म का आधार है और शरीर का क्रिया रूप है -- मन । "सूक्ष्म शरीर में भी मन अधिष्ठित रहता है ।"[86] मन का सूक्ष्म रूप आत्मा है ।

85-- चतुरसेन शास्त्री, भारतीय संस्कृति का इतिहास, मेरठ : रस्तोगी एण्ड कम्पनी, 1958, पृ० 2

86-- नरेन्द्र देव सिंह शास्त्री, वेदान्तसार (सूक्ष्म शरीरोत्पत्ति), मेरठ : साहित्य भण्डार, 1964,

तन-मन आत्मा की अन्विति से ही व्यक्ति का स्वरूप स्पष्ट होता है । मन का स्वरूप बहुत सीमा तक शरीर को प्रभावित करता है । "मन के आधारणीय मनोवेगों को रोकने से मानसिक रोग नहीं होते ।"[87] वैज्ञानिक दृष्टि से तन-शुद्धि के दो रूप कहे जाते हैं ---- एक नकारात्मक, दूसरा सकारात्मक । नकारात्मक रूप के अन्तर्गत शरीर के अनेक विकारों, मलों, विषों का निवारण होता है । आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति शारीरिक रोगों के निराकरण पर बल देती है । आयुर्वेद के आठ अंगों में पहला स्थान 'काय-चिकित्सा' का है।[88] इसके बाद ही शरीर-संवर्धन दिशा में प्रयत्न किया जाता है । रोगोपचार, स्नान, जलपान एवं प्राकृतिक चिकित्सा आदि के द्वारा शरीर को निर्विकार और निरोग बनाया जाता है । धार्मिक दृष्टि से स्नान, आचरण आदि का अपना महत्व है । स्मृति ग्रन्थों में स्नान-आचमन आदि को धार्मिक क्रियाओं के साथ वैज्ञानिक रूप में स्वीकार किया जाता है ।[89] शल्य-चिकित्सा के द्वारा शरीर के मलादि दूषित विकारों को निकाल दिया जाता है । शल्य का प्रयोग भी तभी किया जाता है, जब अन्य सभी उपाय निष्फल हो जाते हैं । 'शल्य' शब्द शल् (हिंसा) हिंसायाम् अथवा 'शल् शलनम्' से हिंसा अर्थ में प्रयोग होता है, जिससे शरीर में पीड़ाकर तत्वों की हिंसा हो ।[90] इस प्रकार तनशुद्धि का नकारात्मक पक्ष इसकी सकारात्मक दिशा में प्रथम और अनिवार्य शर्त है ।

87-- महर्षि चरक, चरक संहिता (प्रथम भाग), व्या० सत्यनारायण शास्त्री, वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत संस्थान, संस्करण 2033 सं०, 7 । 29

88-- वाग्भट, अष्टांग हृदयम् (विद्योतनी हिन्दी टीका सहित) अनु० अत्रिदेव गुप्त, वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज़; संस्करण 1959, पृ० 3

89--'अद्भिस्त प्रकृतिस्थाभिर्हीनाभि: फेनबुदबुदै ।'
बीस स्मृतियाँ, (द्वितीय खण्ड), याज्ञवल्क्यस्मृति, (सं०) श्रीराम शर्मा, बरेली : संस्कृति संस्थान, प्रथम संस्करण, 1966, 2 । 20

90-- अत्रिदेव विद्यालंकार, आयुर्वेद इतिहास, वाराणसी : भार्गव भूषण प्रेस, 1960 ई०, पृ० 58

तन शुद्धि के सकारात्मक पक्ष का सम्बन्ध शरीर के स्वस्थ्य-संवर्धन से है । इसी विषय को लेकर 'अष्टांग हृदयम्' का दूसरा अध्याय लिखा गया है और पांचवां (द्रव-द्रव्य विज्ञानीय) और छठा (अन्न स्वरूप विज्ञानीय) अध्याय शरीर-संवर्धन की दिशा में पौष्टिक एवं सात्त्विक आहार से सम्बद्ध है। साथ ही तैलमर्दन,[91] सैर, व्यायाम,[92] आसन प्राणायाम[93] आदि क्रियाएं भी शारीरिक स्वस्थ्य के लिए नितान्त आवश्यक हैं । इसके अतिरिक्त अनेक जड़ी-बूटियां भी शरीर के अन्दर विशिष्ट क्षमताएं उत्पन्न करती हैं । इन के ज्ञान को चिकित्सा-पद्धति में 'रसायन विज्ञान' 'शास्त्र' के नाम से जाना जाता है। "रसायन के सेवन से शरीर के रस-रक्तादि धातु पुन: नूतन हो जाते हैं, जिससे दीर्घायु मिलती है ।"[94] महर्षि च्यवन और ययाति आदि इसके पौराणिक उदाहरण हैं, जिन्होंने जड़ी-बूटियों के सेवन से पुन: यौवन और शक्ति को प्राप्त किया था। आधुनिक शल्य-चिकित्सा पद्धति में तो शल्य द्वारा शरीर के अवयवों को बदला तक जा सकता है । हिन्दू धर्म में अनेक वनस्पतियों-औषधियों के सेवन को धार्मिक अनुष्ठानों में समाहित कर लिया गया। "हिन्दुओं में पीपल, बरगद, तुलसी, गाय आदि की पूजा की जाती है । इनको क्षति पहुंचाना या नष्ट करना बड़ा अधार्मिक काम समझा जाता है ।"[95] दैनिक जीवन में उपयोगी इन वस्तुओं को धर्म के रंग में रंजित करके इनकी स्थिति को सुरक्षित कर दिया गया है ।

मानसिक परिष्कार भी धर्म का विशेष महत्वपूर्ण आधार है । मानसिक परिष्कार के लिए परिवेश शुद्धता की अपेक्षा रहती है। स्मृति ग्रन्थों

91-- वाग्भट, पूर्वोक्त, पृ0 16, 5, चरक संहिता, 5 । 86

92-- चरक संहिता, 7 । 32

93-- पतंजलि, योगदर्शन 2 । 39

93-- अत्रिदेव विद्यालंकार, पूर्वोक्त, पृ0 63-64

95-- शम्भूरत्न त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति और समाज, कानपुर : किताब घर, 1963, पृ0 83

में "गृहशुद्धि के लिए कूड़ा हटा देना, गन्दगी को जला देना, घर को लीपना-पोतना आवश्यक बताया गया है ।"[96] वहाँ आन्तरिक शुद्धि के लिए मन की संकल्पात्मक शक्ति को विकसित करना भी अत्यावश्यक है । भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल में आश्रमों का विशेष महत्व रहा है । अनेक प्रकार के वृक्षों से घिरे आश्रम में वातावरण तो परिष्कृत[97] रहता ही है तथा "मानसिक परिष्कार के लिए ध्यान, उपासना और अध्ययन पर भी बल दिया गया है ।"[98] 'श्रीमद्भागवद्गीता' में भी मन के स्थिरीकरण पर बल दिया गया है। मानसिक वृत्तियों की चंचलता समाप्त होने पर व्यक्ति 'स्थितप्रज्ञ' कहलाता है ।[99] दर्शन ग्रन्थों में भी धर्म का वैज्ञानिक रूप मान्य है । योगदर्शन में 'चितवृत्तियों के निरोध'[100] को ही 'योग' माना गया है। चितवृत्ति निरोध के लिए शारीरिक और मानसिक क्रियाओं की आवश्यकता होती है ।[101]

मानव पूर्णतया सुखी तभी हो सकता है, जब उसका शरीर और मन दोनों स्वस्थ हों और "धर्म एक पूर्ण पुरुष और पूर्ण संसार के सम्बन्ध में तथ्यात्मक स्थिति युक्त होकर विशुद्ध आदर्श के अनुभव को प्राप्त करने के साधनों के सम्बन्ध में अपने विचारों को प्रकट करने का मनुष्य का प्रयत्न है।"[102] इस प्रकार

96-- बीस स्मृतियां, (द्वितीय खण्ड) याज्ञवल्क्यस्मृति, द्रव्य शुद्धि प्रकरण वर्णनम्, 188

97-- कालिदास, अभिज्ञान शकुन्तलम्, टीकाकार गुरु प्रसाद शास्त्रिण, काशी : भार्गव पुस्तकालय, द्वितीय संस्करण, सं0 2005, 4, 8-11

98--'शान्तमिदमाश्रम् पदं' वही, 1, 14

99-- श्रीमद्भागवद्गीता, 2 । 55

100-- पतंजलि, योगदर्शन, 1, 2

101--'यम नियम आसन प्राणायाम धारणा ध्यान समाधि ।' योगदर्शन, 2 । 28, 29

102-- राधाकृष्णन, जीवन की आध्यात्मिक दृष्टि, अनु0 कृष्णचन्द्र, दिल्ली : कमल प्रकाशन, 1962, पृ0 24

धर्म और विज्ञान सत्य पर आधृत है । धर्म मानव को वास्तविक जीवन-दृष्टि प्रदान करता है । धर्म की वैज्ञानिकता व्यक्ति को सुख-समृद्धि पूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देती है ।

2.10 धर्म : सामाजिक स्वरूप

व्यक्ति को उचित-अनुचित, कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध कराने के लिए समाज में कुछ विधि-विधान होते हैं, ये विधि-विधान ही धर्म का सामाजिक रूप कहलाते हैं । "सोच समझकर बनाये नियमों के अनुसार संगठित रूप से चलने वाला समाज कहलाता है ।"[103] कुछ रीति-रिवाज़ तो समग्र समाज को मान्य होते हैं । वर्णाश्रम व्यवस्था इसका स्पष्ट उदाहरण है । "रीति-रिवाज़ को धर्म की संज्ञा दी जाती है । इसके साथ वर्णाश्रम में करने योग्य कर्म को भी धर्म कहा जा सकता है ।"[104] कुछ रीति-रिवाज़ अपने में रूढ़ हो जाते हैं । "ऐसी भावना से युक्त जन-रीतियों को रूढ़ि कहने लगते हैं ।"[105] रूढ़ियां लोक-रीतियों की अपेक्षा अधिक दृढ़ और कठोर होती हैं । अन्त में ये रूढ़ियां अन्धविश्वासों में बदल जाती है ।

संस्कारों को भी समाज में धार्मिक रीति-रिवाज़ के रूप में ही स्वीकार किया जाता है । संस्कार से तात्पर्य ---"शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं और व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानों से है, जिनसे वह समाज का पूर्ण विकसित सदस्य बन सके ।"[106]

103-- हरिभाउ उपाध्याय, भागवत धर्म, (दूसरा भाग), दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, 1976, पृ0 204

104-- गुरुदत्त, धर्म, संस्कृति और राज्य, दिल्ली : भारतीय साहित्य सदन, 1964, पृ0 23

105-- मोटूरि सत्यनारायण(सं0), विश्वज्ञान संहिता(भाग-1), दिल्ली : हिन्दी विकास समिति, 1967, पृ0 305

106-- राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, वाराणसी, चौखम्बा विद्या भवन, 1966, पृ0 19

संस्कारों में जन्म-विवाह-मृत्यु आदि का विशिष्ट महत्व है । विवाह संस्कार का कार्य है ---"दो व्यक्तियों को आत्म-विग्रह, आत्म-त्याग एवं परस्पर सहयोग की भूमि पर लाकर समाज को चलने देना"[107] विवाह प्रथा पर भी परिवार एवं समाज का सुदृढ़ भवन टिका हुआ है । चतुरसेन शास्त्री का अभिमत है ---"धार्मिक जीवन व्यावहारिक जीवन में मिला-जुला होता है ।"[108] अन्न उपजाना, कृषि करना, व्यवसाय, पशु-पालन, सन्तान-उत्पत्ति आदि सांसारिक कृत्य हैं, परन्तु इन सबके संरक्षण के हेतु प्रार्थना करना, विविध कष्टों के निवारण के निमित्त विधि-सम्पन्न कार्य " सभी समाजों में श्रद्धा और अन्ध-विश्वासों पर आधारित है ।"[109] वर्णव्यवस्था के मूल में व्यक्ति की श्रद्धा-भावना ही रही होगी। सुवीरा जायसवाल ने इस तथ्य को स्वीकार किया है ---" वर्णव्यवस्था पर नियोजित समाज का आधार श्रद्धा थी ।"[110] खेलावन पाण्डे का भी वर्णव्यवस्था के विषय में यही मत है ---"वह एक और संस्थान है और दूसरी ओर धर्म-संरक्षण की दृष्टि से धर्मरूपता अनिवार्य है ।"[111] पाण्डुरंग वामन काणे ने समाज के लिए वर्णव्यवस्था और व्यक्ति के लिए आश्रम-व्यवस्था को अनिवार्य आचरण माना है । उनके शब्दों में 'आश्रम' का अर्थ है ---" ऐसा जीवन-स्तर, जिसमें व्यक्ति खूब श्रम करता है । वर्णव्यवस्था के मूल में जनसामान्य की साहसहीन और अक्रान्तिकारी प्रवृत्ति भी मनोवैज्ञानिक

107-- पाण्डुरंग वामन काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, (अनु0) अर्जुन चौबे कश्यप, लखनऊ : हिन्दी समिति सूचना विभाग, 1963, पृ0 177

108-- चतुरसेन, भारतीय संस्कृति का इतिहास, मेरठ : रस्तोगी एण्ड कम्पनी, 1958, पृ0 2

109-- वही, पृ0 2

110-- सुवीरा जायसवाल, पूर्वोक्त, पृ0 218

111-- रामखेलावन पाण्डे, पूर्वोक्त, पृ0 57

स्तर पर काम करती है । वह अपने परम्परागत कार्य को सहर्ष स्वीकार कर लेता है,[112] क्योंकि नया आचरण अपनाकर उसे समाज से टक्कर लेनी होगी। आधुनिक युग में इस दिशा में कुछ नए क्रान्तिकारी प्रयास किए जा रहे हैं ।

मानव जीवन में पारस्परिक सम्बन्धों को विकसित करने के लिए एवं मनोरंजन के लिए उत्सव-पर्व-मेलों का आयोजन होता है । भारतीय समाज में धर्म से सम्बन्धित अनेक उत्सव-पर्व मनाए जाते हैं । "ये पर्व-उत्सव और त्योहार भारतीय समाज के मेरुदण्ड हैं । समाज में जब जब स्थिरता आई है, जब-जब उसकी प्रगति अवरुद्ध हुई है, तब-तब पर्वों, उत्सवों और त्योहारों ने उसको प्रगतिशील बनाया है, उसकी निष्क्रियता को चीर फेंका है ।"[113] इन पर्व, उत्सवों-मेलों के मूल में परम्परा निहित रहती है । इनका विश्वास, श्रद्धा और आस्था से निकट का सम्बन्ध है । "स्वीकृत विश्वास का शरीर परम्परा रहा है ।"[114] परम्परानिष्ठ भारतीय जीवन में पर्व-उत्सवों का धर्म से निकट का सम्बन्ध रहा है । व्रत-उपवासों का भी धार्मिक और वैज्ञानिक महत्व है । "वैष्णव धर्म के द्वारा अपनायी गई दूसरी लोकप्रिय प्रथा व्रतों को रखने की थी ।"[115] इन व्रत-उपवासों तथा पर्व-उत्सवों में पूजा आदि धार्मिक अनुष्ठान आज भी किए जाते हैं । पतनोन्मुखी समाज को व्यक्ति का धर्मनिष्ठ नैतिक आचरण ही बचा सकता है । धर्म और आचरण का सामाजिक रूप ही धर्म का विकसित रूप है, जो समाज में संस्कृति के रूप में अभिव्यंजित होता है ।

112-- पाण्डुरंग वामन काणे, पूर्वोक्त, पृ0 267

113-- हरगुलाल, मध्यकालीन कृष्ण काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, दिल्ली : भारतीय साहित्य मन्दिर, 1967, पृ0 227

114-- रेने वेलेक आस्टिन वारेन, साहित्य सिद्धान्त, (अनु0) बी0 एस0 पालीवाल, दिल्ली : लोक भारती प्रकाशन, प्र0 व0 न0, पृ0 141

115-- सुवीरा जायसवाल, पूर्वोक्त, पृ0 150

2.11 प्राचीन भारतीय धर्म का स्वरूप

धर्म के व्यापक रूप के अन्तर्गत हिन्दू धर्म विश्व के प्राचीनतम धर्मों में परिगण्य है । भारत में समय-समय पर अनेक धार्मिक सम्प्रदाय प्रादुर्भूत हुए, परन्तु वे क्रमश: हिन्दू धर्म में घुलमिल गए । हिन्दू धर्म का मूल रूप वैदिक आर्यों के जीवन में प्रतिच्छायित मिलता है । "हिन्दू धर्म सनातन धर्म का पर्याय है, क्योंकि यह वैदिक धर्म के सिद्धान्तों पर आधृत है ।" इसलिए भारत के सभी धर्म एवं सांस्कृतिक विचारधाराएं इसमें समाहित होती रही ---"भारतीय संस्कृति अनेक संस्कृतियों का समन्वित रूप है। भारतीय संस्कृति का एकमात्र अभिव्यंजक हिन्दू धर्म भी उसी की तरह एक समन्वयात्मक धर्म है ।"[117] हिन्दू धर्म को भारतीय धर्म भी कह सकते हैं । हिन्दू धर्म में विश्वास, संवेदना, धर्म-आचरण, पुनर्जन्म, भक्ति आदि से सम्बन्धित अनेक परम्पराएं प्रचलित हैं । "वैदिक युग में हिन्दू परम्पराएं उभर कर सामने आई थीं ।"[118] हिन्दू संस्कारों के मूल में भौतिक समृद्धि, आध्यात्मिकता तथा अशुभ प्रभावों से सुरक्षा की भावना निहित है । भारतीय जन-जीवन से हिन्दू धर्म का गहरा सम्बन्ध है । इसमें संसार परित्याग की व्यवस्था नहीं है, बल्कि भोग और भक्ति का अपूर्व मिलन है । हिन्दू धर्म समन्वयात्मक धर्म है। यहां सांसारिक सुखों के परित्याग की बात नहीं कही गई । हिन्दू धर्म में परिवार की नींव विश्वास और प्रेम पर आधृत है -- "हिन्दुओं में विवाह एक समझौता नहीं, बल्कि धार्मिक बन्धन है।[11]

116-- इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड ऐथिक्स (भाग-8), (सं0) जेम्स हेस्टिंग चार्ल्स स्कबीनर एण्ड सन्ज़, न्यूयार्क, 1958, पृ0 177

117-- हरगुलाल, मध्ययुगीन कृष्णकाव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, दिल्ली : भारतीय साहित्य मन्दिर, 1967, पृ0 227

118-- (सं0) ऐनिसलैय टी0 एम्बरी, दि हिन्दू ट्रैडीशनज़, भूमिका से, न्यूयार्क : दि माडर्न लायब्रेरी, 1966

119-- हरबर्ट स्ट्रीप, फोर रिलीजन आफ एशिया, न्यूयार्क : हार्पर एण्ड रो पब्लिशर्ज, 1968, पृ0 67

परिवार व्यवस्था के लिए धन की आवश्यकता होती है । धनसंचय एवं उपार्जन में यदि किसी को हानि नहीं होती, तो वह धनोपार्जन समाज हित के लिए भी श्रेयस्कर हो सकता है ।

हिन्दुओं में वर्ण-व्यवस्था के प्रचलन का मूल लक्ष्य श्रम-विभाजन ही रहा होगा। प्रत्येक वर्ण के पृथक्-पृथक् कर्तव्य निश्चित किए गए थे । बाद में परम्परा के अनुरूप वर्ण-व्यवस्था में जाति-भेद ने स्थान लिया। मध्ययुगीन समाज सुधारकों, कवियों एवं साधु सन्तों ने जाति-भेद का विरोध किया और भक्ति द्वारा ऊंच-नीच के भेद को समाप्त करने का प्रयास भी किया। "हिन्दुओं की विचारधारा में आध्यात्मिक और व्यावहारिक जीवन का जितना समन्वय मिलता है, उतना विश्व के किसी भी समाज में उपलब्ध नहीं है ।"[120] उन्होंने जीवन में एकांगिकता एवं अतिशयता को स्थान नहीं दिया, इसका स्पष्ट उदाहरण आश्रम व्यवस्था है । आश्रम व्यवस्था के मूल में अधिकार और कर्तव्य की भावना गूढ़ रूप से विद्यमान है । चारों आश्रम मानव की नैसर्गिक वृत्तियों को तृप्त करने एवं बन्धन-मुक्ति की व्यवस्था में सहायक है । यह आश्रम-व्यवस्था-- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास --- में अधिकार और कर्तव्य का, स्वार्थ और परमार्थ का उद्भूत समन्वय है । इनके द्वारा समाज की विरोधी सम्भावनाओं का उन्मूलन ही हिन्दुओं का मुख्य ध्येय रहा है ।

हिन्दू धर्म में मनोविज्ञान का भी महत्वपूर्ण स्थान है । यहां व्यक्ति के आचरण की अपनी ही विशिष्टता है । मानव का आचरण समाज में शिष्ट एवं सभ्य कहे जाने वाले लोगों के अनुरूप होना चाहिए । दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिए, जैसा हम अपने प्रति चाहते हैं ।

120-- शम्भूरत्न त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति और समाज, कानपुर : किताब घर आचार्य नगर, 1963, पृ0 219

हिन्दू धर्म में दर्शनशास्त्र का अपना विशिष्ट महत्त्व है । "हिन्दू धर्म में दर्शन को धर्म से पृथक् करना बहुत कठिन है ।"[121] धर्म परम्परा से सम्बद्ध है, तो दर्शन परम्परा को तर्क की कसौटी पर परखता है । "जीवन और उसके अस्तित्व के स्वभाव के विषय में पूछताछ करना दर्शन का विषय है ।"[122] हिन्दू धर्म में लौकिकता एवं अलौकिकता का अपूर्व समन्वय है । "हिन्दू धर्म जीवन की समग्रता का प्रतीक है । सर्वात्मवादी भी हिन्दू हो सकता है, विशिष्टाद्वैतवादी भी ।"[123] हिन्दू धर्म संसार की विषमताओं के कारण व्यक्ति को अपने दायित्व से भाग खड़े होने की शिक्षा नहीं देता, बल्कि सुधार एवं संस्कार के साथ संसार को भोगने का दिशा-निर्देश करता है ।

हिन्दू धर्म में वटवृक्ष, पीपल, तुलसी, नाग, गाय आदि की पूजा आदिकाल से चली आ रही है । इसके अतिरिक्त अनेक आस्थाएं तथा विश्वास प्राचीन काल से चले आ रहे हैं, जिनका आधुनिक काल में भी महत्त्व है । जैसे विवाह प्रथा एवं पारिवारिक व्यवस्था के द्वारा परस्पर सहयोग, संगठन एवं आत्मत्याग की भावना इत्यादि ।

हिन्दू धर्म प्रारम्भ से ही कर्म प्रधान रहा है। "हिन्दुओं में व्रतों और

121-- हैराल्ड टीटस, लिविंग इशूज़ आफ फिलासफी, दिल्ली : युरेसिया पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि०, भारत में प्रथम बार, 1968, पृ० 390

122-- राधाकृष्ण, हिस्ट्री आफ फिलासफी ईस्ट्रन एण्ड वेस्ट्रन (भाग-1), लन्दन : ऐडिशनल बोर्ड अन्डर दि चेयरमैनशिप आफ जार्ज ऐलन एंड अनविन (लि०) द्वितीयबार, 1957, पृ० 21

123-- रामप्रसाद मिश्र, हिन्दू धर्म, दिल्ली : सूर्य प्रकाशन, संस्करण 1972, पृ० 50

उपवासों की बड़ी महिमा है ।"[124] व्रतों एवं उपवासों द्वारा मन को एकाग्र करने का अभ्यास किया जाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्म अपने विस्तृत रूप में समाज की प्रेरक शक्ति है । हिन्दू धर्म व्यक्ति ने उसके अधिकारों और कर्तव्यों से अवगत कराता है ।

2.(12) धर्म साधना : तत्व विवेचन

उदात्त आदर्श की प्राप्ति के उद्देश्य से किया गया सात्विक कर्म साधना के अन्तर्गत समाविष्ट है । अध्ययनरत रहकर लक्ष्यसिद्धि की दिशा में बढ़ना छात्र की साधना है । धर्म के आचरण के लिए शारीरिक और मानसिक स्तर पर कष्ट सहना और आत्म-परिष्कार करना भी साधना का ही रूप है। रामचरितमानस में पार्वती शिव को पति रूप में पाने के लिए तपस्या करती दिखाई गई है । राम अनेक कठिनाइयों के मध्य से गुज़रते हुए पुनीत लक्ष्यों की सिद्धि की दिशा में अग्रसर होते हैं । राम की जीवन यात्रा एक साधक की सच्ची साधना है । गुरु नानक का लक्ष्य मानवता की सेवा करना था । एक साधक की भांति वह अनेक मुसीबतों को सहन करते हुए पुनीत लक्ष्य की सिद्धि की दिशा में अग्रसर होते हैं । मानवता की सेवा करना ही उनका धर्म और साधना है । शब्द कोशकारों ने भी साधना का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया है -- "कोई कार्य सिद्ध करना, मंत्रसिद्धि के लिए उपासना करना, शुद्ध करना, वश में करना ।"[125] साधना जीवन की ऊर्ध्वगति का प्रयास है । साधना का एक अंग हठयोग है -- "हठयोग चित्त निरोधकर गुह्य साधनाओं

124-- राधाकृष्णन, धर्म तुलनात्मक दृष्टि में, दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज़, द्वितीय संस्करण, 1965, पृ० 407

125-- आर० सी० पाठक, भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोश, बनारस : श्रीगंगा पुस्तकालय गंगाघाट, द्वितीय संस्करण, पृ० 527

के लिए मार्ग-प्रदर्शित करता है ।'[126] इसे राजयोग भी कहते हैं---' जिस प्रक्रिया से साधक सहज ही विषयातीत हो जाता है, विषयों के रहते हुए भी निरायास उनसे असम्पृक्त हो जाता है ।'[127] दर्शन में भी 'ईश्वर-प्राप्ति का एक मात्र साधन योग'[128] को माना जाता है । चित्त एकाग्रता से हठयोगी जब सभी प्रकार के आवरणों से मुक्त होकर अक्षर हो जाता है, उसे राजयोगी कहते हैं । हठयोग और राजयोग के अन्तर को शब्दकोश में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है -- "हठयोग का सम्बन्ध अधिकतर शरीर विकास और कायाकल्प से है और राजयोग का सम्बन्ध अधिकतर मुक्ति या मोक्ष से है ।"[129] धर्म और साधना का मूल रूप तपस्या, योग आदि क्रियाओं में समाहित है । लक्ष्य-प्राप्ति के लिए किया गया प्रयत्न ही साधना है ।

126-- धर्मवीर भरती, सिद्ध साहित्य, इलाहाबाद : किताब महल, 1968, पृ0 210

127-- राममूर्ति त्रिपाठी, तन्त्र और मन्त्र, इलाहाबाद : साहित्य भवन, 1975, पृ0 244

128-- पतंजलि, योगदर्शन, 4, 29

129-- धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश (भाग-1), वाराणसी : ज्ञानमण्डल, सं0 2020, पृ0 666

तृतीय अध्याय

मूल का सन्दर्भ

'सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य' सम्बन्धी पिछले अध्याय के अन्तर्गत धर्म की व्युत्पत्ति, परिभाषा एवं विभिन्न स्वरूपों के सन्दर्भ में विवेचन हुआ है। प्रस्तुत अध्याय में मूल के सन्दर्भ के अन्तर्गत गुरु नानक का जीवनवृत्त, युगीन परिवेश, व्यक्तित्व, कृतित्व एवं युग नेतृत्व की भूमिका पर विचार अपेक्षित है।

3.1 गुरु नानक देव : जीवन वृत्त

गुरु नानक का जन्म तलवंडी (पाकिस्तान) में संवत् 1526 विक्रमीय, वैशाखसुदी तृतीया को हुआ। गणनानुसार यह समय 15 अप्रैल, 1469 ई0 को पड़ता है।[1] गुरु नानक बारे ऐसी जनश्रुति है कि जब उन्होंने इस जगत में प्रवेश किया, उस समय वह रोए नहीं बल्कि मधुर मुस्कान के साथ इस जगत में आए। बचपन से ही गुरु नानक दानी स्वभाव के थे। द्वार पर आए व्यक्ति को कोई न कोई वस्तु उठाकर दान कर देते थे। जब खेलने जाते तो खेलते-खेलते इनकी प्रवृत्ति भक्ति की ओर लग जाती। गुरु नानक के ऐसे लक्षण उनके माता-पिता को अखरने लगे। उन्हें नानक के भविष्य

1-- जयराम मिश्र, <u>गुरु नानक देव</u>, इलाहाबाद : लोक भारती, 1972, पृ0 12

की चिन्ता रहने लगी ।[2]

1475 में, जब नानक 6 वर्ष के थे, तब उन्हें गोपाल पण्डित के पास पढ़ने भेजा गया । सं0 1478 में उन्हें संस्कृत सीखने के लिए पण्डित ब्रजनाथ शर्मा के पास भेजा गया। सं0 1480 ई0 में, 11 वर्ष की आयु में नानक को फारसी सीखने के लिए मौलाना कुतुबद्दीन के पास भेजा गया। कहा जाता है कि इसी अवस्था में इन्होंने 'सीहरफी' की रचना की ।[3] नानक की प्रतिभा का लोहा उनके सभी गुरुओं ने माना । गुरु नानक के साहित्य का अध्ययन करने पर जितनी भाषा एवं भावगत परिपक्वता परिलक्षित होती है, वह बिना विशद् अध्ययन किए सम्भव नहीं । वस्तुस्थिति यह है कि वह अत्यन्त विद्वान थे ।

चिन्तनशील प्रवृत्ति के कारण नानक हिन्दू तथा मुसलमान दोनों जातियों के संतों की संगति में अपना समय व्यतीत करते थे । अन्धविश्वासों तथा मिथ्याचारों से उन्हें सख्त नफरत थी । इस प्रकार एकान्तप्रिय रहने से उनके पिता मेहता कालू इस बात की चिन्ता में रहते थे कि भविष्य में नानक अपनी आजीविका कैसे कमाएगा। प्रकृति के माध्यम से ईश्वरानुभूति में नानक की प्रगाढ़ता उत्तरोत्तर बढ़ती गई । परिवार के लोगों ने इसे किसी भीषण रोग का लक्षण समझ कर वैद्य को बुलाया। जब वैद्य ने उनकी नाड़ी पकड़ने की चेष्टा की तो नानक ने वैद्य को अपने आन्तरिक प्रेम की वास्तविक स्थिति स्पष्ट की ।[4] वैद्य ने कालू को विश्वास दिलाया कि उसके पुत्र को किसी की सहानुभूति की आवश्यकता नहीं बल्कि वह तो दूसरों का सहयोगी बनेगा ।[5]

2-- जयराम मिश्र, गुरु नानक देव, पूर्वोक्त, पृ0 14

3-- सुरेन्द्रसिंह कोहली, फिलासफी आफ गुरु नानक, चण्डीगढ़ : पब्लिकेशन ब्यूरो, 1969, पृ0 1-2

4-- वैदु बुलाइया वैदगी पकड़ि ढंढोले बांह । भोला वैदु न जाणई करक कलेजे माहि। जयराम मिश्र, पूर्वोक्त, पृ0 761

5-- हरबन्स सिंह, दि हैरीटेज आफ दि सिक्खज़, दिल्ली : मनोहर पब्लिकेशन, 1983 , पृ0 16

वास्तव में वह समस्त मानवता के दु:खों को दूर करना चाहते थे ।[6]

गुरु नानक के पिता ने नानक को व्यवसाय में लगाने का विचार किया क्योंकि वे गुरु नानक को संसारी बनाना चाहते थे, इसलिए बीस रुपयों की राशि देकर व्यापार करने को कहा । गुरु नानक ने बीस रुपयों की राशि रास्ते में चले भूखे साधुओं के खानपान पर खर्च कर दी क्योंकि उनका क्षुधा से नानक की आत्मा तड़प उठी थी। उनकी दृष्टि में यही सच्चा सौदा था ।

गुरु नानक सांसारिक व्यवहार के प्रति उदासीन रहने लगे । इसलिए इनके पिता ने सं0 1487 में[7] नानक की शादी पक्खोवाल गांव जिला गुरदासपुर के मूलचौना की सुपुत्री सुलक्खनी से कर दी। 1494 में उनके घर बाबा श्रीचन्द और सं0 1496 में बाबा लखमीदास नामक दो पुत्र पैदा हुए ।[8] पारिवारिक मोह भी नानक को सांसारिकता में प्रवृत्त न कर सका। दु:खी और असन्तुष्ट पिता को शान्त करने के लिए बड़ी बहन नानकी ने उन्हें अपने पास बुला लिया। नानकी अपने पति जयराम के साथ सुलतानपुर में रहती थी जो नवाब दौलत खां के यहां उच्च पद पर आसीन थे। सं0 1485[9] में गुरु नानक को मोदीखाने में भण्डाराध्यक्ष नियुक्त किया गया। कहा जाता है कि यहां भी वह सफल नहीं हो पाए। गिनती करते-करते जब तेरह तक पहुंचते थे तो `तेरा`

6-- सुरेन्दर सिंह कोहली, पूर्वोक्त, पृ0 2

7-- वही, पृ0 3

8-- हरबंस सिंह, गुरु नानक एण्ड ओरीजिन्स आफ दि सिक्ख फेथ, बम्बई : एशिया पब्लिशिंग, 1969, पृ0 93

9-- सुरेन्दर सिंह कोहली, पूर्वोक्त, पृ0 3

अर्थात् सब कुछ ईश्वर का ही है, इसी सुध में खो जाते थे ।[10] शाह के पास इस अनियमितता की खबर पहुंच गई । ऐसी जनश्रुति है कि जांच करने पर कोई भी कमी नहीं पाई गई ।

सं० 1497 की एक अन्य घटना है । अन्य लोगों की भांति नानक पास की नदी में प्रात:काल स्नान के लिए जाते थे और वहीं किनारे पर प्रार्थना करते थे। एक दिन वह बेंई नदी में स्नान के लिए गए और तीन दिनों तक निकट की एक गुफा में समाविस्थ रहे । प्राय: सभी लोगों ने यह विश्वास कर लिया कि गुरु नानक देव नदी की तेज़ जलधारा में डूब गए हैं, किन्तु नानक तो ईश्वरीय भक्ति में खोए हुए थे । उन्हें तभी ईश्वरीय आह्वान और प्रकाश की प्राप्ति हुई ताकि वे अपना सन्देश फैलाएं और समाज पर आए हुए संकटों को दूर करें । सचेत होने पर प्रबुद्ध नानक गुफा से बाहर आए और उनके मुख से ये शब्द निकले ---`न को हिन्दू है न मुसलमान`[11] इसका अर्थ उनके विचारानुसार यह था कि सभी मानवमात्र हैं, उसी महान शक्ति की सन्तान हैं। इसका दूसरा अर्थ यह भी था कि हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ने अपने धर्मों के सिद्धान्तों की अवहेलना की है, इसलिए वे सच्चे अर्थों में हिन्दू अथवा मुसलमान नहीं रहे ।[12]

यात्राएं (उदासियां)

`उदासी` शब्द उदास से बना है, जिसका भाव है उपराम, दुनिया

10-- हरबंस सिंह, पूर्वोक्त, पृ० 90-91

11-- टी० एल० वासवानी, गुरु नानक : प्रोफेट आफ लाइफ, पूना : ईस्ट एण्ड वेस्ट सिरीज़, 1957, पृ० 9

12-- गुरमुख निहाल सिंह, गुरु नानक : जीवन, युग एवं शिक्षाएं, दिल्ली : नेशनल, 1970, पृ० 38

से विरक्त । इसी प्रकार उदासी का भाव है उपरामता, विरक्तता, किनाराकशी ।[13] उदासियों से भाव गुरु नानक की भिन्न-भिन्न यात्राओं से है ।[14] सं० 1499 में गुरु नानक सुल्तानपुर से लाहौर गए। वहां कुछ दिनों बाद ऐमनाबाद में भाई लालो के पास ठहरे । वहां से वह स्यालकोट गए फिर तलवंडी ।[15] सं० 1501 में अपनी प्रथम यात्रा के दौरान गुरु नानक ने पूर्व में हिन्दू धार्मिक केन्द्रों और तीर्थ स्थलों का भ्रमण किया। चुनियां, कुरुक्षेत्र, पेहोवा और करनाल से होते हुए वह हरिद्वार पहुंचे और वहां से दिल्ली गए। फिर अलीगढ़, मथुरा, कानपुर, लखनऊ, आयोध्या होते हुए बनारस आए । कहा जाता है कि वहां वह कबीरदास से भी मिले । इसके बाद वह बकसर, छपरा आदि होते हुए पटना पहुंचे । वहां से राजगीर और गया गए । फिर मंघीर, भागलपुर, मालदा, मोरशीदीबाद, वर्दमान, ढाका आदि होते हुए कामरूप पहुंचे । इसके पश्चात् वे सिलहट, सच्चर, मणिपुर और लोशाइ गए। वापसी के दौरान वे अगरतला, चन्दनपुर, कलकत्ता, कटक, जगन्नाथपुरी, जब्बलपुरी, चन्देरी, फांसी, ग्वालियर, भरतपुर, रेवाड़ी, गुड़गांव, जगराऊं आदि स्थानों पर होते हुए सं० 1510 में वे सुल्तानपुर लौट आए ।[16]

मुख्यतीर्थ स्थानों में गुरु नानक ने अपने श्रोताओं में प्रचार का एक अद्भुत तरीका अपनाया । उदाहरण के लिए हरिद्वार में उन्होंने उगते सूर्य को जल अर्पित करते देख उन्हें इस प्रथा की सारहीनता बताई । उन्होंने पश्चिम दिशा की ओर गंगाजल उछालना शुरू कर दिया। लोगों द्वारा पूछे जाने पर

13-- सुरेन्दर सिंह कोहली, पंजाबी साहित्यकोश भाग-1, चण्डीगढ़ : पब्लिकेशन ब्यूरो, पृ० 11

14-- वही, पृ० 11

15-- सुरेन्द्र सिंह कोहली, 1969, पूर्वोक्त, पृ० 4

16-- वही, पृ० 4-5

उन्होंने कहा कि मैं पंजाब में अपने खेतों को पानी दे रहा हूं । लोगों को हंसते देख उन्होंने कहा कि जब मेरा दिया हुआ जल इस पृथ्वी पर स्थित मेरे खेतों को नहीं पहुंच सकता, तो तुम लोगों द्वारा चढ़ाया जल पितृलोक में कैसे पहुंचेगा ? इस उत्तर ने हिन्दू तीर्थयात्रियों की आंखें खोल दीं ।

दूसरी उदासी अथवा यात्रा के दौरान इनके साथ सईदो और गेबो दो जाट शिष्य थे । इस यात्रा के दौरान गुरु नानक ने मुख्य रूप से कसूर, भठिंडा, बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, अजमेर, पुशकर, नसीराबाद, लोधीपुर, आबू, अहमदनगर, उज्जैन, होशंगाबाद, नरसिंहपुर, नागपुर, फतेहाबाद, गोलकुण्डा, हैदराबाद, बिदर, पण्ढारपुर, तैन्जोर, त्रिचनापल्ली, नागापट्टम, रामेश्वर, संगलादीप, कोइम्बूटर, कालीकट, गोआ, रत्नगिरि, नासिक, पंचवटी, बड़ौदा, अहमदनगर, भावनगर, जूनागढ़, पोरबन्दर, द्वारिका, उमरकोट, टांडा, शूजाबाद, उच, तुलाम्बा आदि स्थानों में भ्रमण किया । तलवंडी में अपने माता-पिता से मिलकर सं० 1574 में वे सुल्तानपुर पहुंचे ।[17] इस अवसर पर उनकी पोशाक दूसरे ढंग की थी । सिर पर एक लम्बी रस्सी को पगड़ी के रूप में बांधा, एक हाथ में मोटा डंडा, दूसरे में भिक्षापात्र। जहां रुकते खड़ाऊं पहनते। चोगा पहले जैसा हीथा। विवादास्पद प्रश्नों का वे उल्लेखनीय ढंग से हल निकालते ।[18] इस काल में उनका उद्देश्य प्रसिद्ध बौद्ध तथा जैन तीर्थस्थलों को देखना था। लंका में उन्होंने शिवनाभ को अपना शिष्य बनाया। लौटते समय दो अमीर खत्री दुनीचन्द और करोड़ीमल उनके शिष्य बने ।[19]

अपनी तीसरी यात्रा के अन्तर्गत गुरु नानक ने मुख्य रूप से नूरपुर,

---

17-- सुरेन्द्र सिंह कोहली, 1969, पूर्वोक्त, पृ० 5

18-- ट्रम्प, आदिग्रन्थ, पृ० XXXIV

19-- सीता हांडा, गुरु नानक व्यक्तित्व और विचार, जयपुर : चिन्मय प्रकाशन, गुरु नानक पंच शताब्दी वर्ष, पृ० 13

कांगड़ा, डलहौज़ी, ज्वालामुखी, धर्मशाला, मणिकरण, रिवाल्सर, नादौन, सकेत, मण्डी, कुल्लू, चम्बा, बिलासपुर, काहलूर, कीरतपुर, सपाटू, गढ़वाल, मंसूरी, चकरौता, श्रीनगर, बदरीनारायण, मानसरोवर, भीमकोट, रानीखेत, अल्मोड़ा, नैनीताल, गोरखमाता, पीलीभीत, गोरखपुर, धौलागढ़, पशुपति, महादेव (नेपाल), तमलुंग, लाच्चे, दार्जिलिंग, तराशीशु, जोंग (भूटान), लखीम, ब्रह्मकुंड, शिवपुर, रानीगंज, जनकपुर, सीलामढ़ी, काशीपुर, जालन्धर आदि गए। सं० 1517 में वे करतारपुर लौट आए ।[20] इस बार इस यात्रा के साथी एक लुहार और दूसरा रंगरेज़ था। इस यात्रा के दौरान उनका अनेक योगियों और सिद्धों से वार्तालाप हुआ ।[21]

करतारपुर में कुछ समय रहने के पश्चात् गुरु नानक पश्चिम की ओर अपनी चौथी यात्रा पर ~~सन~~ रवाना हुए । इस यात्रा के दौरान ऐमनाबाद, वज़ीराबाद, गुजरात, रोहतास, पिण्ड दादनखान, डेरा इस्माइलखान, डेरा-गाज़ीखान, शिकारपुर, हैदराबाद, कराची, मक्का, मदीना, बगदाद, तेहरान, जलालाबाद, पेशावर, हसन अब्दल, पुन्छ, स्यालकोट आदि स्थानों का भ्रमण किया । सं० 1521 में जब बाबर ने ऐमनाबाद पर आक्रमण किया था, तब गुरु नानक वहां लौटे । तत्पश्चात् वे करतारपुर लौट आए और अपना शेष जीवन उन्होंने वहीं व्यतीत किया । अपने जीवन के इस भाग में वह अचल, बटाला, मुलतान, हरिद्वार आदि स्थानों पर गए ।[22]

गुरु नानक की यात्राओं (उदासियों) के उपरोक्त संक्षिप्त उल्लेख के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरु नानक जन-कल्याणार्थ भारत के कोने-कोने तक तो गए ही, लेकिन अरब देशों, अफगानिस्तान, तिब्बत और

20-- सुरेन्दर सिंह कोहली, 1969, पूर्वोक्त, पृ० 56

21-- सीताहाडा, पूर्वोक्त, पृ० 13

22-- सुरेन्दर सिंह कोहली, 1969, पूर्वोक्त, पृ० 6

PANJAB UNIVERSITY LIBRARY
539892

लंका निवासियों को भी सत्यता की राह दिखाई। सम्भव है कि ऐसे स्थान जहां गुरु नानक ने यात्राएं की हैं, अभी प्रकाश में आने शेष हों, क्योंकि गुरु नानक के जीवनवृत्त का आधार पुरातन जन्म साखियां ही हैं। मेरा प्रयास गुरु नानक की यात्राओं का सविस्तार वर्णन करना नहीं, बल्कि उनके जीवन-वृत्त एवं दर्शन का अध्ययन करना है।

गुरु नानक ने अपना शेष जीवन एक किसान की तरह बिताया। फिर गुरु नानक देव ने अनुभव किया कि उन्होंने जिस संकल्प को लेकर जन-जीवन में परिवर्तन लाना चाहा, उसकी नींव में अभी परिपक्वता नहीं आई है। अत: अपने आन्दोलन को चलाए रखने के लिए उन्होंने अपने जीवन काल में ही भाई लहना जी को 14 जून 1539 को अपनी आत्मिक ज्योति को उनमें प्रज्वलित कर गुरुगद्दी प्रदान की।[23]

अन्तिम समय निकट जानकर गुरु नानक जी ने गुरुगद्दी भाई लहणा जी को देकर उनका नामकरण गुरु अंगददेव स्थापित कर दिया। गुरुगद्दी देने के समय अपनी सारी आयु की कमाई (रचनाओं का संग्रह) अपनी तथा अन्य भक्तों की वाणि संग्रह भी अर्पित कर दिया।[24] इस प्रकार उन्होंने गुरुपद की स्थापना की।

गुरु अंगददेव को गुरुगद्दी पर बिठाने के ठीक पांच दिन बाद गुरु जी ज्योति-ज्योति में लीन हुए। यह घटना अश्विन वदी 10, संवत् 1596

23-- महेन्द्र सिंह प्रभाकर, गुरु नानक व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पटना : ज्ञानपीठ, 1969, पृ0 59

24-- डी0 एस0 नरुला, गुरु नानक संगीतज्ञ, जालन्धर : न्यू बुक कम्पनी, 1978, पृ0 13

विक्रमीय को घटित हुई ।[25]

3.2 युगीन परिवेश

मध्ययुगीन भक्तिकाव्य का स्वर इतनी दीनता, आत्म-निषेध और आध्यात्मिक सुख प्राप्ति की लालसा से भरा हुआ है कि उसमें अपने परिवेश की विसंगतियों और क्रूरताओं के प्रति कवि की प्रतिक्रिया ढूंढ निकालना आसान नहीं है । पहला प्रश्न तो यही उत्पन्न होता है कि इन भक्त कवियों में किस सीमा तक अपने चारों ओर के समाज में तेज़ी से घट रही घटनाओं के प्रति जागरूकता का भाव विद्यमान था और यदि कुछ था भी तो उनके प्रति उनकी प्रतिक्रिया किस रूप में थी । 'कोउ नृप होइ हमें का हानी' अथवा 'सन्तन को कहा सीकरी सों काम । आवत जात पनहिया टूटें बिसरि गए हरिनाम' के माध्यम से जो प्रतिक्रिया व्यक्त होती है, उसमें अपने चारों ओर के व्यापक परिवेश के प्रति सक्रिय जागरूकता की अपेक्षा उपेक्षा या निर्लिप्तता का भाव ही अधिक है ।[25ए]

गुरु नानक के व्यक्तित्व की पूर्ण महत्ता समझने के लिए उस युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों पर एक विहंगम दृष्टि डाल लेना समीचीन है ।

युगीन परिवेश : राजनीतिक

राजनीतिक दृष्टि से गुरु नानक का समय पांच राजाओं के शासनकाल

25-- जयराम मिश्र, पूर्वोक्त, पृ० 241

25ए-- महीपसिंह, गुरु नानक और विद्रोह की भूमिका, हरबंस सिंह (सं०) गुरु नानक दी प्रोफिट आफ दा पीपल, दिल्ली : सिंह सभा, 1970, हिन्दी भाग, पृ० 1

से सम्बन्धित है । अपने जीवन के 70 वर्षों के दौरान गुरु नानक ने बहलोल लोधी 1451 से 1489, सिकन्दर लोधी 1489 से 1517, इब्राहिम लोधी 1517 से 1526, बाबर 1526 से 1530, तथा हमायूं 1530 से 1540 तक पांच राजाओं का शासनकाल देखा ।[26] गुरु साहिब के समय बहलाल खां लोधी (1451-89) दिल्ली का बादशाह था। उसने देश को एकसूत्र बांधने का प्रयत्न किया परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। इसका एक कारण यह था कि केन्द्रीय शक्ति दुर्बल हो गई थी । इतना ही नहीं, दिल्ली शासन स्वतन्त्र जागीरदारों के ऊपर निर्भर था । लोधी वंश में प्रसिद्ध सिकन्दर लोधी था जो एक अच्छा राजप्रबन्धक होने के बावजूद अत्यन्त साम्प्रदायिक व कठोर शासक था।[27] अच्छा राज प्रबन्धक होने के कारण उसकी जो न्यायप्रियता और उदारता की भावना थी, वह अपने सहधर्मियों तक ही सीमित थी ।[28] इसी समय दौलत खां लोधी के आक्रमण एवं राणा सांगा की बाबर से गुप्त सहायता मांगने से बाबर का साहस बढ़ गया और उसने सन् 1520 में भारत पर पुन: आक्रमण किया। पंजाब के सैयदपुर में घमासान युद्ध हुआ परन्तु बाबर के हाथों सैयदवंशी सुल्तानों की पराजय हुई । बाबर ने सैयदपुर नगर को नष्ट कर दिया । वहां के लोगों को मौत के घाट उतार दिया । शेष बचे लोगों को बन्दी बना लिया और उन्हें अनेक यातनाएं दी गई।[29] यहां तक कि गुरु नानक और भाई लालो को भी पकड़ लिया था।[30] सन् 1526 ई0 में बाबर ने इब्राहिम लोधी को पराजित

26-- हरिराम गुप्त, हिस्टरी आफ दि सिक्खज़ (भाग-1), दिल्ली : मुन्शीराम मनोहर लाल, 1984, पृ0 14

27-- जी0 एस0 छाबड़ा, अडवान्सड हिस्टरी आफ पंजाब, जालन्धर : न्यू अकेडमिक, 1971, पृ0 4

28-- इन्दु भूषण बैनर्जी, एवोल्यूशन आफ दि खालसा खण्ड-1, कलकत्ता : ए0 मुखर्जी 1963, पृ0 40

29-- हरिराम गुप्त, हिस्टरी आफ दि सिक्ख गुरुज़, दिल्ली : यू0 सी0 कपूर एण्ड सन्ज़, 1973, पृ0 56

30-- वही, पृ0 16

करके दिल्ली सिंहासन भी संभाल लिया ।

गुरु नानक के समय की राजनीतिक परिस्थिति का स्वरूप तत्कालीन शासन की धर्मान्धता, संकीर्णता और असहिष्णुता के कारण विकृत हो चुका था। उन दिनों हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच बड़ी ईर्ष्या और घृणा थी और गैर-मुस्लिम प्रजा पर मुसलमान शासकों के बहुत अत्याचार हो रहे थे ।[31] निर्लज्ज अवसरवादिता तथा अनैतिक लालच प्रतिदिन की घटनाएं थी और वह छिछोरापन, जिसमें वायदे जल्दी से जल्दी के मौकों पर तोड़ने के लिए किए जाते थे, यह उस नैतिक अपकर्ष की ओर संकेत करता है जो राजनीतिक विघटन के साथ-साथ व्याप्त हो रहा था और जिससे देश पीड़ित था ।[32]

निष्कर्ष

गुरु नानक के समय के परिवेश के उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि तत्कालीन राजनीतिक परिवेश में अव्यवस्था और अराजकता, सामाजिक परिवेश में उथल-पुथल, भ्रष्टाचार, धार्मिक परिवेश में बाह्य आडम्बर और रूढ़िवादिता तथा नैतिक पतन व मानसिक दासता आदि सामान्य बातें थीं। चारों ओर का वातावरण दूषित था जिसमें लोग विवशता की अवस्था में जकड़े हुए किसी ऐसे सम्बल की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे जो उन्हें इस दुष्चक्र से मुक्ति दिला सके ।

युगीन परिवेश : सामाजिक

गुरु नानक देव के समय की सामाजिक स्थिति ह्रासोन्मुख रही है । तत्कालीन समाज दो वर्गों में विभक्त था -- हिन्दू वर्ग और मुसलमान वर्ग ।

31-- मोहम्मद लतीफ, हिस्टरी आफ दि पंजाब, दिल्ली : युरेसिया, 1964, पृ० 240

32-- इन्दु भूषण बैनर्जी, पूर्वोक्त, पृ० 40

हिन्दू वर्ग मुसलमानों के अधीन था इसलिए उनकी उपेक्षा की जाती थी ।[33] हिन्दुओं को जजिया-कर तथा यात्रा-कर जैसे और भी कई कर देने पड़ते थे।[34] अगर हिन्दू लोग `जजिया` न देते तो उन्हें जिन्दा रहने का अधिकार नहीं था।[35] हिन्दू-समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्गों में और पुन: उपजातियों में बंटा था। किन्तु उनमें परस्पर एकता नहीं थी ।[36] पुरुष स्त्रियों की तरह नाज़ुक थे।[37] उनमें झूठे अभिमान, राष्ट्र प्रेम के अभाव, देश की सुरक्षा की ओर से लापरवाही, मन्दिरों में धन का अनुचित से संचय, पुरुषों का स्त्रैण होना, `ओम शान्ति शान्ति` व `दया धर्म का मूल है` के नारे तथा समस्याओं का सामना करने के स्थान पर घर-बार छोड़कर संन्यास लेने की प्रवृत्ति ने उत्तर-पश्चिम के पड़ोसियों के आक्रमण के लिए द्वार खोल दिए ।[38] दास-प्रथा का प्रचलन था। धन की अधिकता के कारण मुसलमानों में अन्धविश्वास बढ़ गया था और धर्म का प्रभाव क्षीण हो रहा था, अलाउद्दीन के शासनकाल में दोआब के हिन्दुओं के साथ कठोरतापूर्ण व्यवहार किया गया ।[39]

समाज में नारी का दर्जा बहुत गिरा हुआ था। युवतियों को शासक वर्ग उठाकर ले जाता था। इस स्थिति से बचने के लिए माता-पिता तीन तरीके अपनाते थे -- प्रथम, लड़की को पैदा होते ही मार देते थे, दूसरे, पांच-छ:

33-- जी0 एस0 छाबड़ा, पूर्वोक्त, पृ0 12

34-- वही, पृ0 12

35-- ईश्वरी प्रसाद, भारतीय मध्ययुग का इतिहास, इलाहाबाद : इण्डियन प्रेस, 1955, पृ0 514

36-- हरिराम गुप्त, 1984, पूर्वोक्त, पृ0 22-23

37-- वही, पृ0 23

38-- वही, पृ0 24

39-- ईश्वरी प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ0 14

साल की उम्र में उनका विवाह कर देते थे, तीसरे उन्हें भद्दे कपड़े पहनाते थे ताकि वे आकर्षक न लगें।[40] देश के कुछ भागों में स्त्रियों का व्योपार भी खूब चल रहा था। बहु-विवाह तथा सती-प्रथा चालू थी क्योंकि उस समय के हिन्दू सोचते थे कि किसी विधवा के पतिव्रत्य और अपने पति के प्रति निष्ठा का तकाजा यही है कि वह अपने मृत पति की चिता में खुद भी जल मरे।[41] मुसलमान भी अपनी औरतों को घरों में कैद रखते थे, खुली हवा और सूर्य के प्रकाश से दूर रखा जाता था और आज़ादी से घूमने-फिरने की अनुमति नहीं थी।[42] जहां तक भोजन का प्रश्न है, हिन्दू अधिकतर शाकाहारी थे जबकि मुसलमान मांसाहारी।[43] मुसलमानों में मद्यपान प्रचलित था, औरतें भी डटकर पीती थीं। राजपूत अफीम का प्रयोग करते थे जबकि धार्मिक आचार्य भांग का सेवन करते थे।[44]

सारांश यह है कि गुरु नानक के युग में समाज में निराशा, हीन-भावना और विषय विलासिता का बोलबाला था। छुआछूत, ऊंच-नीच तथा जातिवाद की भावना ने समाज को दुर्बल बना दिया था। भारतीय समाज की ऐसी अधोगति की अवस्था में गुरु नानक का आगमन हुआ।

युगीन परिवेश : धार्मिक

गुरु नानक के समय के धार्मिक परिवेश में बाह्याडम्बर, रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास तथा भ्रष्टाचार व्याप्त था। मुसलमान और हिन्दू दोनों ही अपना

40-- हरिराम गुप्त, 1984, पूर्वोक्त, पृ० 27

41-- सुरिन्दर सिंह जौहर, गुरु नानक एक जीवनी, जालन्धर : स्टार्लिंग, 1975, पृ० 8

42-- वही, पृ० 208

43-- जी० एस० छाबड़ा, पूर्वोक्त, पृ० 17

44-- वही, पृ० 18

नैतिक स्तर गंवा चुके थे और साम्प्रदायिकता के गर्त में पड़े हुए थे ।[45] सत्य की असलीयत को भुलाकर हिन्दू-मुसलमान दोनों व्यर्थ के पाखण्डों को धर्म समझ रहे थे । इसके अतिरिक्त मज़हबों के आगू अपने-अपने मज़हबों की श्रेष्ठता के प्रचार को ही अपना लक्ष्य समझ बैठे थे तथा हठधर्मी होने के कारण असहनशीलता की बीमारी से ग्रसे हुए थे ।[46] इस सम्बन्ध में नारंग- लिखते हैं कि गुरु नानक के समय का धर्म मात्र खाने-पीने के विशेष रूपों, स्नान के खास तरीकों और मस्तिष्क पर तिलक छापे लगाने तथा अन्य ऐसे ही बाहरी दिखावों तक सीमित था। उस समय जनमानस में प्रचलित सारा हिन्दुत्व इसी में था कि जहां भी मूर्तियां रखने की अनुमति मिल जाए वहां मूर्ति-पूजा आरम्भ कर दी जाए, जब कभी भी अनुमति मिल सके गंगा स्नान तथा अन्य पवित्र स्थानों की यात्रा कर ली जाए, मृत्यु तथा विवाह सम्बन्धी कुछ अनुष्ठान कर लिए जाएं, ब्राह्मणों के उपदेशों का पालन किया जाए तथा उन्हें अपार धन-सम्पत्ति दान में दी जाए ।[47] पंथ जिसका मूल ऐक्य और संगठन है, सार्वलौकिकता का गुण गंवा चुका था। विघटन इतना हो चुका था कि संन्यासियों में दस और योगियों में बारह श्रेणियां उदित हुई थी ।[48] ब्राह्मण लोग वेद, पुराण शास्त्रों का आधार ले-लेकर खण्डन-मण्डन और शास्त्रार्थ करते थे। छत्तीसों प्रकार के पाखण्ड जन्त्र-मन्त्र, चमत्कार, ऋद्धि-सिद्धियों के आश्रय में लोग पनप रहे थे ।[49] उच्चवर्ग के लोग दरबारी जीवन के अनुरूप ढल

45-- करतार सिंह, लाइफ आफ गुरु नानक देव, अमृतसर : जयदेव सिंह जोगेन्दर सिंह, 1937, पृ० 17

46-- युनैस्को, सेक्रेड राइटिंग्ज़ आफ दि सिक्खज, लन्दन : जौरज ऐलिन एण्ड यूविन, 1965, पृ० 18

47-- जी० सी० नारंग, ट्रांसफारमेशन आफ सिक्खइज्ज़म, दिल्ली : न्यू बुक सोसाइटी, 1946, पृ० 5 या 19

48-- मनमोहन सहगल, गुरु ग्रन्थ साहिब : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, पटियाला : भाषा विभाग, 1971, पृ० 12

49-- हरिराम गुप्त, 1984, पूर्वोक्त, पृ० 38

गए और निम्नवर्ग जाति-पाँति के बन्धनों से राहत पाने के लिए इस्लाम का सहारा लेने लगा।[50] शासन की ओर से भी धर्म में हस्तक्षेप किया जाता है। सिकन्दर लोधी के समय हिन्दुओं व मन्दिरों का अनादर किया गया।[51] बाबर के समय मन्दिरों को तोड़कर मस्जिदें बनाई गई और मूर्तियों से मांस तोला गया।[52] लाहौर के गवर्नर अकबर के समय हिन्दुओं को अनेक प्रकार की मानसिक यातनाएं दी गई।[53] 'डेरा गाज़ी खां' नामक स्थान पर हिन्दू केवल गधे की सवारी कर सकते थे।[54] परिणामस्वरूप हिन्दू और मुसलमानों की घृणा एवं द्वेष चरम सीमा पर पहुंच चुका था।[55]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि धर्म के नाम पर हिन्दुओं में आडम्बर, कर्मकाण्ड और मिथ्याचरण थे, तो मुसलमानों में अत्याचार, अनीति और निर्लज्जता। धर्म के वास्तविक रूप को कोई नहीं पहचानता था। ईश्वर या खुदा के नाम पर हत्या, लूटमार और चोरी, सब उचित समझ लिया जाता था। धर्म की पवित्रता और गरिमा नष्ट हो चुकी थी, सर्वत्र अन्धेरगर्दी थी।

युगीन परिवेश : साहित्यिक

गुरु नानक के समय एक ओर संस्कृत, पंजाबी, उर्दू और हिन्दी के मिश्रित रूप में साहित्यिक रचना हो रही थी, तो दूसरी ओर फारसी भाषा

50-- भाई गुरदास, वार 1, पउड़ी 19

51-- नित्यानन्द शर्मा, <u>हिन्दी साहित्य का मध्यकाल</u>, अलीगढ़ : भारत प्रकाशन, प्र0 व0 न0, पृ0 49

52-- अब्दुल्ला, <u>तारीख-ए-दाउदी इन इलियन एंड डाउसन</u> कलकत्ता : सुशील गुप्ता, 1958, पृ0 14-15

53-- हरिराम गुप्त, 1973, <u>पूर्वोक्त</u>, पृ0 14

54-- श्रीराम शर्मा, <u>रिलीजस पोलिसी आफ दि मुगल एम्प्ररर्स</u>, बम्बई : एशिया, 1962, पृ0 14

55-- हरिराम गुप्त, 1973, <u>पूर्वोक्त</u>, पृ0 14

के साहित्य की रचना और संस्कृत से फारसी में अनुवाद कार्य भी किया जा रहा था।[56] फारसी साहित्य में रचना करने वाले अधिकतर विद्वान मुसलमान थे जबकि 'अरबी' कुरान की भाषा होते हुए भी जन-साधारण में अधिक लोकप्रिय न हो सकी थी।[57] संस्कृत और अपभ्रंश जैसी भाषाओं का प्रयोग सिद्ध, नाथ तथा जैनी करते थे। तत्कालीन साहित्यिक परिवेश में सूफियों और जैनियों ने धार्मिक कथाओं के आधार पर लोकभाषा का प्रयोग करते हुए प्रेमगाथाओं की रचना की । गुरु नानक ने अपने समय की संस्कृत एवं फारसी भाषाओं को अपनी वाणी का आधार न बनाकर जनसाधारण में बोली जाने वाली भाषा को ही अपने विचारों का माध्यम बनाया। लेकिन उनकी भाषा में संस्कृत एवं फारसी के शब्द भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं । गुरु नानक के समय के साहित्यिक परिवेश में 'अरबी' कुरान की भाषा होने के बावजूद पंजाब में लोकप्रिय न बन सकी।[58] चिकित्सा, दर्शन व ज्योतिष जैसे विषयों का संस्कृत से फारसी में अनुवाद किया गया।[59] उस समय साहित्य में काव्य के शास्त्रीय विधि-विधानों का उपयोग कम अथवा नाममात्र के लिए ही होता था। प्रबन्ध काव्य तो बहुत ही कम रचे जाते थे । मुक्तक क्षेत्र में था। आबद्ध परम्परा के पुजारी ही कुछ करते दिखाई देते थे । जिस प्रकार जैनों और चारणों के स्वर में कोई प्रगति नहीं दीख पड़ती थी, उसी प्रकार सन्त वाणियों में भी गतानुगतिकता ही प्रमुख थी। उनका प्रचलन मुक्तक रूप में था।[60] अभी तक

56-- जीत सिंह सीतल, सुल्तनत काल में भाषा व साहित्य, हिस्टरी आफ दि पंजाब, खण्ड 3, फौजा सिंह (सं0), पटियाला : पंजाबी युनिवर्सिटी, 1972, पृ0 383-387

57-- बख्शीश सिंह, पंजाब अंडर सुल्तानस, दिल्ली : स्टार्लिंग, 1968, पृ0 171-176

58-- बख्शीश सिंह, पूर्वोक्त, पृ0 171

59-- वही, पृ0 173

60-- सरनाम सिंह शर्मा, कबीर एक विवेचन, दिल्ली : हिन्दी साहित्य संसार, 1960, पृ0 103

छन्द-क्षेत्र में कोई नवीनता नहीं आई थी । दोहा, चौपाई, सबद, रमैणी, गीत, बानी आदि का प्रयोग रूढ़ हो गया था।[61]

उक्त विश्लेषण से सिद्ध हो जाता है कि गुरु नानक का युग राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिवेश की दृष्टि से विषमताओं का युग था। गुरु नानक ने इस युग के यथार्थ रूप को निकट से देखा था और उसे कलिकाल के रूप में चित्रित किया। उन्होंने प्रभु-भक्ति का आश्रय लेकर भारतीय जनता में अटूट विश्वास जाग्रत किया और जन-साधारण को धर्म-मर्यादा-सम्मत आचरण का संदेश दिया ।

3.3 गुरु नानक देव : व्यक्तित्व

वेषभूषा, प्रकृति और प्रतिभा ही व्यक्तित्व के ऐसे उपकरण हैं, जिनके प्रकाश में एक व्यक्ति को दूसरे से पृथक किया जा सकता है । अत: इन्हीं के आधार पर प्रस्तुत अध्याय में गुरु नानक का व्यक्तित्व-चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है ।

(1) वेशभूषा और रूपाकृति

वेषभूषा यद्यपि व्यक्तित्व का स्थूल अंग है, किन्तु इससे व्यक्ति विशेष के वातावरण और उसकी मानसिक अवस्था का अनुमान लगाने में पर्याप्त सहायता मिलती है । गुरु नानक की वेशभूषा का वर्णन जन्म-साखियों एवं अन्य पुस्तकों में उपलब्ध होता है । उन्होंने किसी एक वेशभूषा को नहीं अपनाया अपितु स्थान एवं अवसर के अनुसार वे वेषभूषा बदलते रहे । हिन्दू तीर्थस्थलों पर जाते समय उन्होंने हिन्दुओं के पहरावे को अपनाया। इस्लाम

61-- सरनाम सिंह शर्मा, *कबीर एक विवेचन*, पूर्वोक्त, पृ0 106

धर्म के लोगों को मिलते समय वे काजियों की वेशभूषा धारण करते थे । इसी तरह नाथ योगियों के स्थानों में जाते समय योगी रूप को धारण करते थे।[62] अपनी यात्राओं के दौरान वे प्राय: मुसलमान फकीरों एवं सूफियों की भांति ढीला एवं लम्बा चोगा पहनते थे, परन्तु इसका रंग हिन्दू एवं योगियों के भगवे जैसा होता था। कमर में सफेद कमरबन्द, सिर पर मुसलमानी टोपी, टोपी के चारों तरफ पगड़ी बांधते थे और कभी-कभी हड्डियों की माला भी गले में बांध लिया करते थे ।[63] कभी-कभी गुरु नानक हाथ में डंडा एवं भिक्षापात्र भी रखते थे । साथ में ग्रन्थ तथा दरी भी रखते थे जिसका प्रयोग गोष्ठियों में किया करते थे ।[64]

गुरु जी की रूपाकृति अति सुन्दर तथा मोहक थी । दाई दौलता से लेकर नवाब दौलत खां तक जो भी उनके सम्पर्क में आया वह उनकी मोहक आकर्षणशक्ति से प्रभावित हुए बिना न रह सका।[65] नाम खुमारी में रंगे मस्त नयन, सफेद दांत, लम्बी दर्शनीय दाढ़ी, हाथ में माला, सन्त पुरुषों वाली पोशाक, मुस्कराते ओष्ठ जिनमें फुहारों की तरह अमृत वचनों का जल किलकारियां मार रहा हो ।[66] सच तो यह है कि इस दैवी व्यक्तित्व वाले का चित्र खींचने के लिए शब्द अनुपलब्ध हैं ।

62-- ज्ञान सिंह, तवारीख गुरु खालसा, अमृतसर : बाज़ार माई सेवा, 1952, पृ० 143

63-- तेजासिंह एंड गंडा सिंह, ए शार्ट हिस्टरी आफ दि सिक्खज़, बम्बई : ओरियन्ट लॉंगमैन्ज़ लि०, 1950, पृ० 11

64-- पद्म, गुरु नानक : एक विवेचन, जालन्धर : क .लाल एण्ड कम्पनी, 1972, पृ० 29

65-- भाई गुरदास, वार 11, पउडी 13

66-- मोहन सिंह, सिंध गोष्ठी इक सर्वपखी अधियैन, लुधियाना : लाहौर बुक शाप, 1970, पृ० 18

(2) सच्चे विश्व शिक्षक

गुरु नानक देव ने संसार के लोगों को परमात्मा के ऐश्वर्य, सर्वशक्तिमत्ता, अन्तर्यामित्व और सर्वव्यापकता का सन्देश देकर उसके सान्निध्य के आनन्द की अनुभूति करना चाहते थे। उन्होंने लोगों को परमात्म रस का आस्वादन करा के सांसारिक प्रलोभनों एवं वासनाओं से मुक्ति दिलाने का मार्ग प्रशस्त किया।[67] उनके उपदेश समस्त मानवता के लिए हैं। समस्त सम्प्रदायों तथा मानव वर्गों के प्रति उनका व्यवहार समान था। हिन्दुओं, मुसलमानों, सिद्धों तथा सूफियों, सब के साथ उनका स्वर समान रहता था। उन्होंने मिथ्या कर्मकाण्ड पर प्रहार किया, किन्तु कभी किसी धर्म पर नहीं। अन्य लोगों के धर्मों के प्रति उनकी सहिष्णुता एवं सहानुभूति की भावना सर्वथा आधुनिक थी। धर्म सुधार सम्बन्धी उनके विचार भक्तिमार्गी आचार्यों के विचारों से भी अधिक उदार थे। गुरु नानक के धर्म-शिक्षक तथा मुक्तिदाता के रूप का चित्रांकन भाई गुरदास ने किया है।[68] इतना ही नहीं, इनकी शिक्षाएं वैज्ञानिक होने के कारण सभी युगों और कालों के लिए समान रूप से उपयोगी हैं।

67-- करतार सिंह, पूर्वोक्त, पृ० 273

68-- सतिगुर नानक प्रगटिआ मिटी धुंधु जगि चानणु होआ ।।
जिउ कर सूरज निकलिआ तारे छपे अंधेर पलोआ ।।
सिंधु बुके म्रिगावली भैनी जाइ ना धीर धरोआ ।।
जिथै बाबा पैर धरे पूजा आसण थापण सोआ ।।
सिध आसण सभ जगत दे नानक आदि मते जे कोआ ।।
घर-घर अंदर धरमसाल होवै कीरतन सदा विसोआ ।।
बाबे तारे चार चक, नौ खण्ड प्रिथमी सचा ढोआ ।।
गुरमुखि कलि विधि प्रगट होआ ।।

— भाई गुरदास, वार 1, 27

(3) समाज सुधारक

गुरु नानक दूर दृष्टि वाले सुधारक थे और उनका एकमात्र उद्देश्य पीड़ित मानवता का उद्धार करना था । उन्होंने ऐसे समाज की कल्पना की थी जिसमें कोई छोटा-बड़ा, ऊंचा-नीचा नहीं था। उनकी धारणा थी कि प्रभु की दृष्टि में सभी प्राणी समान हैं । उन्होंने जन-साधारण के उद्धार के लिए भारत के अतिरिक्त विदेशों में भी यात्रा की । भारत के प्रधान तीर्थ-स्थलों पर उनके जाने का उद्देश्य पाखण्डों, बाह्याचारों और निःसार विधि विधानों की तीव्र भर्त्सना करना था। उन्होंने हिन्दुओं के तीर्थ-स्नान, उपवास, सूर्य को जल चढ़ाना, छूतछात तथा सूतक प्रथा आदि की निन्दा की । योगियों को वास्तविक योगी तथा मुसलमानों को वास्तविक मुसलमान बनने की सलाह दी । नारी की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए उसे अनिन्दनीय कहा ।

इस प्रकार गुरु नानक को समाज सुधारक के रूप में देखा जा सकता है । उन्होंने समाज की कुरीतियों पर कुठाराघात कर लोगों को उससे अलिप्त रहना सिखलाया ।

(4) पारिवारिक जीवन एवं योग-साधना

गुरु नानक पूर्ण योगी एवं आदर्श गृहस्थ थे। जीवन भर उन्होंने दूसरों के लिए कार्य किया। उन्होंने जनता के सामने जीवित उदाहरण रखा कि गृहस्थी में रहकर भी किस प्रकार प्रलोभनों और आकर्षणों से बचा जा सकता है । उनके दो पुत्र थे जिनका आध्यात्मिक उन्नति पर उन्होंने विशेष बल दिया और परमात्मा के नाम का बीज उनकी हृदय भूमि में बोया। अपने पुत्रों की शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए उन्होंने खेतों में कठिन परिश्रम किया। सतनाम के प्रकाश का छींटा उन्होंने स्थान-स्थान पर दिया। सम्पूर्ण मानव जाति उन्हें अपना मित्र और रक्षक बनाने के लिए आवाज़ दे रही थी।

उन्होंने अपनी धन-सम्पत्ति गरीबों में बांट दी और गृहत्याग कर जनता की सेवा में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। वह पूर्ण योगियों की तरह निरंकार से जुड़े रहते थे । दूसरों के दु:ख-क्लेश अपनाकर उन्होंने जगत की भलाई का कार्य किया जो एक सच्चे योगी को करना चाहिए ।

(5) मानवीय संवेदनाओं के चितेरे

गुरु नानक उच्चकोटि के तत्व चिन्तक, समाज सुधारक और मानवीय संवेदनाओं के चितेरे थे । रूढ़िवाद के प्रति अश्रद्धा होने पर भी उनका काव्य-पक्ष अछूता नहीं रहा है । कविता लिखना उनका ध्येय नहीं था, किन्तु उनकी भावनाओं एवं अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम था। उनकी वाणी में अनेक अलंकार आ गए हैं । इनकी सम्पूर्ण वाणी गेय है । अत: इनके काव्य में सरसता, माधुर्य, प्रवाहमयता तथा लय आदि स्वयं ही समावेश हो गया है । इनके काव्य में शृंगार, वीर, रौद्र, वीभत्स, करुण, शान्त आदि अनेक रस तथा उनके अनुगामी भावों का समावेश मिलता है किन्तु उनका प्रधान रस शान्त ही है ।

(6) विविध बोलियों के ज्ञाता

गुरु नानक बहुत देशों की बोलियां बड़ी जल्दी बोलने और समझने लग पड़े थे । उन्होंने अपना उपदेश पंजाबी बोली में नहीं दिया, बल्कि प्रत्येक देश के लोगों को उस देश की बोली में उपदेश ताकि उन तक अपने विचार पहुंच सकें । वह विदेशों में सैर करने नहीं गए थे, उनका उद्देश्य जन-साधारण तक अपना ईश्वरीय सन्देश सुनाना और जलते हुए संसार को ठण्डक देना था। यही कारण है कि स्थानीय बोलियों और भाषाओं में प्रचलित बोलचाल के शब्द उनके काव्य में आ गए हैं ।

(7) कर्मयोगी

गुरु नानक की वाणी का अध्ययन करने से गीता के कर्मयोग का

सिद्धान्त याद आता है । गुरु नानक ने संसार का त्याग न करके उसमें रहकर निर्लिप्त भाव से कर्म करने का उपदेश दिया है। उनका कहना था कि सत्कर्मों का करना आवश्यक है, इसलिए गुरु नानक ने सत्य से भी ऊपर सत्य के आचरण पर बल दिया है । उन्होंने लोगों को समझाया कि दूसरों के दोष निकालने से पहले स्वयं के कार्यों को दोष देना चाहिए, क्योंकि सब अपने किए हुए कर्मों के फल ही भोगते हैं । उनके विचार में सद्कर्मों का करना अत्यन्त आवश्यक था ।

(8) मानवतावादी

गुरु नानक समस्त सृष्टि को, उसके प्रत्येक प्राणी को उस परमपिता की सन्तान मानते थे । वह सही अर्थों में मानवतावादी थे । उनका यह मानवतावाद केवल उनके वस्तु नियोजन में नहीं मिलता बल्कि उनकी कला तथा भाषा शैली में भी परिलक्षित होता है । गुरु नानक का धर्म मानवता पर आश्रित है क्योंकि वे तो दृश्य जगत् के मूल में जाकर उसकी वास्तविकता को देखना चाहते थे । अत: गुरु नानक ने धर्म के उस स्वरूप को जनता के सामने रखा जो सर्वजन सुलभ हो और जो वर्ण, जाति, वर्ग से परे मानव की आत्मा से सीधा सम्बन्ध रखता हो ।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरु नानक प्रेम, शान्ति, भ्रातृत्व-भावना, धार्मिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता के सन्देशवाहक थे । उन्होंने योगमार्ग का वास्तविक रूप समझाया तथा संन्यास के स्थान पर कर्मयोग की महत्ता स्थापित की । उनका उद्देश्य मानवता का उद्धार करना तथा उसे धर्म के बाह्याचारों, रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों के गर्त से निकाल कर धर्म का वास्तविक अर्थ बतलाना था। उनके लिए सत्य की बड़ी महत्ता थी पर उससे

भी ऊपर वह सत्य-आचरण को मानते थे । उन्होंने अपनी कल्पना को साकार करने की चेष्टा की जो भौतिक और आध्यात्मिक दृष्टियों से पूर्णतया विकसित हुई । गुरु नानक व्यक्तित्व के इन विविध पहलुओं में विशेष महत्व किसका है, यह कहना कठिन है । संक्षेपत: यह कहा जा सकता है कि उनका व्यक्तित्व उनके काव्य में प्रतिबिम्बित है । उनका काव्य उनके व्यक्तित्व की भांति सन्तुलित है । उसमें कवि की संवेदना, सहृदय की ग्रहणशीलता, भक्त की भाव-दृष्टि, समाज-सुधारक का उत्साह, समाज संस्कारक की परिष्कृत दृष्टि का उद्भुत समन्वय है । उन्होंने विविध स्रोतों से प्रेरणा ग्रहण कर अपने व्यक्तित्व को काव्य के माध्यम से प्रस्फुटित किया।

3.4 गुरु नानक देव का कृतित्व

अध्ययन की सुविधा के लिए रत्न सिंह जग्गी[69] ने गुरु नानक की वाणी को चार प्रमुख वर्गों में विभक्त किया है -- (1) बृहदाकार कृतियां जो संख्या में छ: हैं -- जपु, सिध गोसटि, ओंकार, पट्टी, बारहमासा और थिती । (2) लघवाकार कृतियां, (3) वार काव्य तथा (4) फुटकर पद्य, श्लोक आदि ।

गुरु नानक वाणी को निम्नलिखित रागों में क्रम से वर्गीकृत किया गया है --

सिरी राग	:	सलोक, तिपदे, चउपदे, असटपदी तथा एक वार ।
माझ राग	:	सलोक, असटपदी तथा पहरे ।
गउड़ी राग	:	तिपदे, चउपदे, पांचपदे, छ:पदे, असटपदी, छंत तथा पट्टी ।

69-- रत्नसिंह जग्गी, गुरु नानक रचनावली, पटियाला : भाषा विभाग, 1970, पृ0 14 (भूमिका से)

आसा राग	:	सलोक, दुपदे, तिपदे, चउपदे, पांचपदे, छ:पदे, असटपदी, छंत तथा एक वार ।
गूजरी राग	:	सलोक, चउपदे तथा असटपदी ।
बिहागड़ा राग	:	केवल सलोक ।
वडहंस राग	:	सलोक, चउपदे, छंदतथा अलाहणिआ ।
सोरठ राग	:	सलोक, चउपदे, पांच पदे तथा असटपदी ।
धनासरी राग	:	चउपदे, पांचपदे, असटपदी, छंत और आरती ।
तिलंग राग	:	दुपदे, तिपदे, चउपदे तथा असटपदी ।
सूही राग	:	सलोक, चउपदे, पांचपदे, छ:पदे, असटपदी, छंट, सुचज्जी तथा कुचज्जी ।
बिलावल राग	:	सलोक, चउपदे, असटपदी, छंट, थिती, तथा एक वार ।
रामकली राग	:	सलोक, तिपदे, चउपदे, असटपदी, छंत, ओंकार, सिध गोसटि ।
मारु राग	:	सलोक, तिपदे, चउपदे, पांच पदे, छ: पदे असटपदी तथा सोलहे ।
तुखारी राग	:	छंत तथा बारहमाह ।
भैरउ राग	:	चउपदे, पांचपदे तथा असटपदी ।
बसंत राग	:	तिपदे, चउपदे तथा असटपदी ।
सारंग राग	:	सलोक, चउपदे तथा असटपदी ।
मलार राग	:	सलोक, चउपदे, पांचपदे, असटपदी तथा एक वार ।
परभाती राग	:	चउपदे और असटपदी ।

<u>जपुजी</u> : गुरु नानक देव कृत `जपुजी ` पंजाबी साहित्य की सर्वाधिक दार्शनिक और सूत्रमयी रचना है ।[70] यह एक सूत्रमयी दार्शनिक कृति है।

70-- सुरेन्द्र सिंह कोहली, <u>पंजाबी साहित्यकोश भाग-2</u>, चण्डीगढ़ : पब्लिकेशन ब्यूरो, 1976, पृ0 336

'आदि-ग्रन्थ' की वाणी एक प्रकार से जपुजी का ही विस्तृत भाग है। जपुजी की वाणी गायन करने की अपेक्षा विचारणीय अधिक है। इस वाणी के विचार-गाम्भीर्य एवं सैद्धान्तिक परिपक्वता को देखते हुए यह सरलतया कहा जा सकता है कि यह वाणी गुरु नानक देव जी के अन्तिम वर्षों में पूर्ण की गई होगी। 'जपु' अथवा परमात्मा के स्मरण (सिमरन) का महत्व सिक्ख-धर्म में लगभग सर्वोपरि है इसलिए इस वाणी का नाम 'जपु' गुरु अंगद द्वारा रखा गया था।[71] जी पद इसके साथ सम्मान-सूचक है। इस रचना के प्रारम्भ में मंगलाचरण सूचक कुछ शब्द लिखे हैं, जिस में सिक्ख धर्म के सिद्धान्तों का बीजरूप मिल जाता है। यह मंगल इस रचना का अंग होने के अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप में मूल मंत्र भी है, जिसकी व्याख्या 'जपु' वाणी में और फिर सम्पूर्ण गुरुवाणी में हुई है। परमात्मा की यह गुणचर्चा औपनिषदिक् दर्शन से काफी सामीप्य रखती है, किन्तु परमात्मा की प्राप्ति गुरु के प्रसाद द्वारा बताकर दार्शनिक अभिरुचियों का भावनात्मक अनुभूतियों से समन्वय स्थापित कर दिया गया है। मूल प्रश्न -- 'किव सचिआरा होईए, किव कूड़ै तुटै पालि' --- का उत्तर 'अमृत वेला सचुनाऊ वडिआई वीचार' द्वारा देकर भक्ति भावना की स्थापना की गई है। इस वाणी के अन्त में बड़े कलात्मक ढंग से भक्त की विजय की घोषणा की गई है --

जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि ।
नानक ते मुख ऊजले केती छुटी नालि ।।

यह रचना छन्दबद्ध होते हुए भी पिंगल के नियमों का पालन नहीं

71-- सुन श्री अंगद बदन ठानी । बीन बीन नीके गुरु बानी ।
आन सुहावन कीन सुहानी। तब जप नाम धर्यो गुणवानी ।।
-- सन्तोष सिंह, <u>नानक प्रकाश</u>, उत्तरार्द्ध, मक्खन सिंह हड्डाली (सं0), अ0 52

करती । इसमें विराज, दोहरा, सलोक, सोरठा, चौपई, दवैया, हंस आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है । इसमें मूलमन्त्र के अतिरिक्त दो श्लोक और अड़तीस पउड़ियां हैं । श्लोक आदि और अन्त में है और बीच में पउड़ियां रखी गई हैं । इसकी भाषा सधुक्कड़ी है । भावों की अभिव्यक्ति के लिए यत्र-तत्र फारसी के शब्दों का प्रयोग किया गया है, किन्तु भारतीय शब्दावली का आधार अधिक है । इस कृति में अनुप्रास, यमक, श्लेष, पुनरुक्तिवदाभास, परिकर, दृष्टांत, विभावना, रूपक, विनोक्ति, उल्लेख, उपमा, काव्यलिंग आदि अलंकारों का सहज प्रयोग हुआ है ।

सिद्ध गोसटि : दार्शनिक दृष्टि से यह वाणी एक महत्वपूर्ण रचना है, इसका अभिप्राय: सिद्धों के साथ हुआ गुरु नानक का वार्तालाप है । इस वाणी का मूल आशय प्रभु मिलन का महत्व और साधन बतलाना है। छन्द के दृष्टिकोण से यह रचना अन्य रचनाओं की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित है । इसमें कुल 73 पउड़ियां अथवा पदे हैं । 1 से 18 तक चार पंक्तियों वाले हैं और 19 से 73 तक छ: पंक्तियों वाले हैं । इनकी मात्रा संख्या भी दो प्रकार की है, यथा 16:12 और 8:8 । इसमें संगीत की आवश्यकता के अनुसार कतिपय अतिरिक्त मात्राओं का प्रयोग भी हुआ है। प्रथम पद के पश्चात् दो पंक्तियां `रहाउ` (टेक) की है, जो उपरोक्त 73 पदों से अलग है और गोष्ठी की मूल समस्या को प्रस्तुत करती है । सारी रचना पउड़ियों का संकलन है । अगर एक पउड़ी में सिद्धों का प्रश्न है तो दूसरी में उत्तर । कई पउड़ियों में प्रश्न तथा उत्तर दोनों सम्मिलित हैं ।

ओंकार : इस वाणी में गुरु नानक के दर्शन के अत्यन्त महत्व-पूर्ण पक्षों पर सूक्ष्म प्रभाव देखने को मिलता है । प्रभु की सर्वव्यापकता, उसके अद्वैतवादी स्वरूप, द्वन्द्व भाव से उत्पन्न होने वाले अहंकार और माया की विविधता के भुलावे से अवगत कराके गुरु नानक उपदेश के द्वारा नाम-स्मरण का सुझाव देते हैं। इस रचना का मूल प्रतिपाद्य `रहाउ` वाली दो पंक्तियों में दिया गया है।

इसमें प्रयुक्त भाषा सधुक्कड़ी है । सामी शब्दावली का अभाव विशेष द्रष्टव्य है ।[72] इस रचना में कुल मिलाकर 54 पद हैं और दो पंक्तियां 'रहाउ' (टेक) की अतिरिक्त है । इनमें से 10 पद (2-6, 11, 12, 35, 53, 54) चार-चार पंक्तियों वाले हैं, 41 पद (1, 7-10, 13-20, 22-26, 28-34, 36-38, 40-52) आठ आठ पंक्तियों वाले हैं और 3 पद (21, 27, 39) नौ-नौ पंक्तियों वाले हैं । इन पदों पर किसी विशेष छन्द के लक्षणों का आरोपण नहीं किया जा सकता, फिर भी दोहा, चौपाई, दवैया, निसैनी, चन्द्रायण, राधिका आदि कतिपय छन्दों के लक्षणों का स्वरूप इस कृति में देखा जा सकता है ।

<u>पट्टी</u> : पट्टी किसी छन्द विशेष का नाम नहीं, यह एक काव्य विधा है ।[73] 'पट्टी' अथवा 'पटिया' उस तख्ती को कहते हैं जिस पर बच्चे वर्णमाला लिखना सीखते हैं । इसी परम्परा के आधार पर उस रचना को भी पट्टी कहा जाने लगा, जिसमें वर्णमाला के प्रत्येक वर्ण की काव्यमयी व्याख्या प्रस्तुत की गई हो । 'पुरातन जन्म साखी' के अनुसार इसकी रचना तब हुई जब 7 वर्ष की आयु में नानक पांधा (उपाध्याय) के पास पढ़ने के लिए गए थे ।[74] भाई बाले वाली जन्मसाखी में भी यही प्रसंग आया है ।[75] किन्तु रत्नसिंह जग्गी इस कृति को गुरु नानक की प्रौढ़ावस्था में रचित मानते हैं ।[76]

72-- रत्नसिंह जग्गी, <u>गुरु नानक दी विचारधारा</u>, दिल्ली : नवयुग, 1969, पृ0 57

73-- रत्नसिंह जग्गी, 1970, <u>पूर्वोक्त</u>, पृ0 XXV (भूमिका से)

74-- भाई वीरसिंह, <u>पुरातन जन्मसाखी</u>, अमृतसर, 1959, पृ0 1-3

75-- भाई बाले वाली <u>जन्मसाखी</u>, लिख्यो संस्करण

76-- रत्नसिंह जग्गी, 1969, <u>पूर्वोक्त</u>, पृ0 58

इस रचना में कुल 35 पद हैं और प्रत्येक पद दो पंक्तियों का है। 'रहाउ' वाली दो पंक्तियां इसके अतिरिक्त हैं। इनके छन्द का स्वरूप दोहे के पर्याप्त समीप है किन्तु मात्राओं का कोई बन्धन स्वीकार नहीं किया गया है। अनुप्रास-छटा, प्रतीक-योजना और मधुर भाषा इस रचना के कलात्मक गुण हैं।

बारहमासा : 'तुखारी' राग में संकलित यह रचना गुरु नानक के अन्तिम दिनों की कृति मानी जाती है, जब वे करतारपुर में निवास करते थे।[77] इस रचना में जीवात्मा की परमात्मा से एकात्म होने की प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है। यह प्रक्रिया वियोग से संयोग की ओर सहज भाव से विकास करती है।

'बारहमासा' का आरम्भ चेत मास से हुआ है। इसके शुरू में चार पद भूमिका के हैं, शेष 13 पदों में से 12 का सम्बन्ध प्रत्येक मास से है और अन्तिम पद में गुरु नानक ने अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। प्रत्येक पद में छ: पंक्तियां हैं, किन्तु इन की मात्राओं की संख्या में समानता नहीं है। इस कृति के राग को भावना के अनुकूल चुना गया है। इसकी भाषा सरल किन्तु प्रादेशिक है। विरह-भावना की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त शब्दावली का प्रयोग किया गया है, किन्तु सामी भाषाओं की शब्दावली का इसमें लगभग अभाव है। प्रकृति का भी अत्यन्त सुन्दर रीति से चित्रण हुआ है। प्रकृति-चित्रण के सम्बन्ध में गुरु नानक की अनुभूति बड़ी सूक्ष्म है। अधिकांशत: पंजाब के 'बार' के इलाके की प्राकृतिक पृष्ठभूमि में गुरु नानक की आत्मा को बिरह की अभिव्यक्ति का अवसर मिला है।

थिति : बिलावल राग में संकलित 20 पदों की इस रचना में गुरु

77-- रत्नसिंह जग्गी, 1969, पूर्वोक्त, पृ0 60

नानक ने चन्द्रमा की गति के अनुसार मानी गई तिथियों का आध्यात्मिक विश्लेषण किया है । उस समय लोगों में अन्धविश्वासों के प्रभावाधीन दिनों, वारों और तिथियों के सम्बन्ध में कई प्रकार की रूढ़ भावनाएं एवं भ्रमिक शंकाएं प्रचलित थीं। स्वतन्त्र, उन्मुक्त और कल्याणकारी प्रकृति वाले गुरु नानक को ये धारणाएं मान्य नहीं थी। उनके विचार में सभी घड़ियां परमतत्व की एकता की ही द्योतक हैं ।[78]

इसमें कुल 20 पद हैं और प्रत्येक पद में 6 पंक्तियां हैं। `रहाउ` की दो पंक्तियां उक्त संख्या के अतिरिक्त है। छन्द के दृष्टिकोण से यह रचना चौपाई के तोल की है । मात्राओं में असमानता सर्वत्र है । द्वितीय, पंचमी, एकादशी, द्वादशी और अमावस्या का विश्लेषण दो-दो पदों में किया गया है और शेष 10 का एक-एक पद में । इसकी भाषा अत्यन्त सरल है जिसमें नानक जी ने विनम्रता के साथ अपनी बात की पुष्टि की है । अनुप्रास की छटा आकर्षक बन पड़ी है ।

पहरे : सिरी राग के अन्तर्गत गुरु नानक द्वारा रचित दो `पहरे` संकलित हैं ।`पहर` अथवा `प्रहर` से भाव है -- दिन अथवा रात्रि का चौथा भाग । गुरु नानक ने मनुष्य को बनजारा कहकर सम्बोधित किया है जो अपनी आयु रूपी रात्रि को संसार रूपी असुरक्षित स्थान में व्यतीत करता है और अपने जीवन की रक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकता। इसमें स्थान-स्थान पर मनुष्य जन्म रूपी अमूल्य पदार्थ को व्यर्थ में कामादिक विषय-वासनाओं रूपी चोरों द्वारा न चुराए जाने के लिए उपदेश दिया गया है और जीवन के वास्तविक लक्ष्य की पूर्ति पर बल दिया गया है। प्रथम पहर में चार पद हैं और दूसरे में पांच । प्रत्येक पद में छः पंक्तियां हैं, जिनकी रचना प्रकृति कुंडलियां

78-- रत्नसिंह जग्गी, 1970, पूर्वोक्त, पृ० XL

छन्द से पर्याप्त साम्य रखती है। मात्राओं की संख्या का बन्धन स्वीकार नहीं किया गया ।

सो-दर : इसका संकलन आसा राग में हुआ है । `सोदर` इसका कोई नाम-विशेष नहीं । भाई कान्ह सिंह के अनुसार --- " इसके आरम्भ में `सोदर केहा सो घर केहा` पाठ होने के कारण यह संज्ञा हो गई है, जिस प्रकार `ईश` शब्द आदि में होने के कारण उपनिषद् का नाम ईशवास्य हो गया है और केनेषितं पद करके केन उपनिषद कहलाती है ।[79] इसमें प्रभु के महान द्वार की कल्पना की गई है जहां पर अनेकानेक देवी-देवता, सिद्ध-योगी, योद्धा-ज्ञानी आदि खड़े यशोगान कर रहे हैं । वहां विराजमान प्रभु सबकी देख-रेख कर रहा है। इस पद की `जपु` नामक कृति की 27वीं पउड़ी से अत्यधिक समानता है । इस पद्य में कुल 22 पंक्तियां हैं और उनमें मात्रागत असमानता है ।

अलाहणियां : `अलाहणी` पंजाबी के शोक-परक गीतों की एक विधा है । इसमें सामान्यत: मृत व्यक्ति के गुणों का दु:खदायक स्वर में स्तवन किया जाता है । गुरु नानक ने इस लोक-गीत को बड़ी सफलता से साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर वडहंस राग में पांच अलाहणियां लिखी हैं । ये पद्य वैराग्य से परिपूर्ण है, किन्तु कहीं भी निराशा अथवा उदासीनता का आभास नहीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु नानक ने इन पद्यों में जिज्ञासु को मृत्यु के भय का निवारण करने, निर्वेद भाव उत्पन्न करने और मोह ग्रस्त भौतिकता से मुक्ति प्राप्त करने का उपदेश दिया है ।[80]

79-- (सं0) कान्ह सिंह, महान कोश, पटियाला : भाषा विभाग, 1960, पृ0 174

80-- रत्नसिंह जग्गी, 1969, पूर्वोक्त, पृ0 66

इन पांच अलाहणियों में से पहली, दूसरी, चौथी और पांचवी में छ:-छ: पंक्तियों के चार पद हैं और छन्द का विधान कुंडलियों से साम्य रखता है, भले ही मात्राओं की गणना ठीक न बैठती हो । तीसरी अलाहणी में चार-चार पंक्तियों के आठ पद हैं और इनके अतिरिक्त प्रथम पद के पश्चात् एक पंक्ति `रहाउ` `टेक` की भी है ।

आरती : धनासरी राग में प्रस्तुत कविता नवम् चौपदे के रूप में संकलित है । इसमें कुल चार पद हैं । पहला, दूसरा और चौथा पद दो-दो पंक्तियों का है किन्तु तीसरे की चार पंक्तियां हैं, ये चार पंक्तियां लम्बाई में उक्त दो जितनी ही हैं। इनके अतिरिक्त प्रथम पद के पश्चात् दो पंक्तियां `रहाउ` की भी हैं । इस वाणी में हिन्दू मत की परम्परागत आरती के स्थान पर परमात्मा की विराट् और सहज आरती की महिमा का गुणगान किया गया है। इस आरती में ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार जुटी हुई है । इस रचना का शब्दचयन अपना विशेष महत्त्व रखता है। अनुप्रास की छटा विशेष द्रष्टव्य है ।

कुचज्जी : सूही राग के अन्तर्गत 16 पंक्तियों की प्रस्तुत रचना में जीवात्मा रूपी बुरे आचरण वाली स्त्री (मनमुख व्यक्ति) का स्वरूप-चित्रण किया गया है। अपने दूषित आचरण के फलस्वरूप जीवात्मा रूपी स्त्री परमात्मा से बिछुड़ जाती है और द्वैत तथा अहं भाव के कारण अनेक प्रकार के कष्ट और दु:ख सहन करती है । `पुरातन जन्म साखी` के अनुसार इस वाणी का उच्चारण कामरूप (आसाम प्रदेश) की रानी नूरशाह के प्रति हुआ था,[81] जिसने गुरु नानक देव की जादू-टोने के द्वारा वश में करने का यत्न किया था। इसकी भाषा पश्चिमी क्षेत्र की पंजाबी है ।

81-- (स0) भाई वीर सिंह, पूर्वोक्त, पृ0 33-37

सुचज्जी : `सुचज्जी` `कुचज्जी` का विपरीतार्थक शब्द है । इस का शाब्दिक अर्थ होता है --`अच्छे आचरण वाली स्त्री,` जिसके फलस्वरूप उसका पति प्रसन्न हो । प्रस्तुत वाणी में इस शब्द का एक लक्ष्यार्थ भी है, अर्थात् ऐसी जीवात्मा जो सांसारिकता का त्याग करके परब्रह्म में पूर्णरूपेण अनुरक्त हो और उसकी भावना अथवा इच्छा में अपने-आपको समर्पित कर चुकी हो । 10 पंक्तियों की यह रचना सूही राग के अन्तर्गत संकलित है । इसकी भाषा `कुचज्जी` के विपरीत सधुक्कड़ी है ।

उपर्युक्त लघु रचनाओं के अतिरिक्त दो अन्य वाणियों की भी कई बार स्वतन्त्र रूप में गणना की जाती है, इनमें से एक तो सिरी राग के अन्तर्गत अष्टपदियों के पश्चात् संकलित है और जिसका आरम्भ `जोगी अंदरि जोगिआ तू भोगी अंदरि भोगिआ` से होता है। इसमें तीन पंक्तियों वाले 24 पद हैं । प्रथम पद की उक्त पहली दो पंक्तियों को एक पंक्ति करके लिखा गया है, किन्तु `जोगिआ` और `भोगिआ` के अनुप्रास से इनके दो होने के तथ्य की पुष्टि हो जाती है। इस पद के पश्चात् एक पंक्ति `रहाउ` (टेक) की भी है। इसमें प्रभु का बड़ी रागात्मक शैली में स्तवन हुआ है और गुरु, सत्संगति आदि के महत्व पर भी प्रकाश डाला गया है ।

दूसरी वाणी तिलंग राग के अन्तर्गत अष्टपदी के रूप में शंकलित है। इसकी `रहाउ` (टेक) वाली पंक्ति (राइसा पिआरे का राइसा जितु सदा सुख होई) के आधार पर `आदि-ग्रन्थ` की कतिपय प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों की सूची में इसको `राइसा मण` लिखा गया है, किन्तु साधारणतया इसकी गणना अष्टपदियों में होती है । `राइसा` से भाव रासो पद्धति का प्रसंग है । इसमें दो पंक्तियों वाले कुल दस पद हैं और `रहाउ` (टेक) की पंक्ति इनके अतिरिक्त है । इस शब्द को `किड़ी पठाणा` नामक ग्राम में उच्चरित बताया जाता है। इस शब्द में गुरु नानक ने परमात्मा की नायक रूप में स्तुति की है, क्योंकि स्तवन के द्वारा ही उसका मेल सम्भव है ।

वार-काव्य : गुरु नानक ने माझ, आसा और मलार तीन रागों में तीन वारों की रचना की है। `आसा की वार` गुरु नानक की सर्वप्रिय रचना है। सिक्ख मत की नित्य सभाओं और अन्य मांगलिक अवसरों पर इसका कीर्तन किया जाता है । इस वार की पउड़ियों में रहस्यवाद अनुभूति की अभिव्यक्ति हुई है तथा श्लोकों में `कुदरत` और सृष्टि का विवरण प्रस्तुत करते हुए मनुष्य की आत्मिक शुद्धि पर बल दिया गया है । धार्मिक एवं सामाजिक पाखण्डों पर प्रहार करना श्लोकों का प्रमुख विषय रहा है । गुरु के महत्व पर बल दिया गया है, क्योंकि उसके बिना अन्धकार ही अन्धकार व्याप्त है ।

`आसा की वार` में 24 पउड़ियां और 45 श्लोक हैं । प्रत्येक पउड़ी के साथ इनका वितरण एक समान नहीं हुआ । प्रत्येक पउड़ी के साथ ये कम से कम दो और अधिक से अधिक पांच तक संकलित हैं । श्लोकों में चरण-संबंधी समानता नहीं है । लगभग सभी पउड़ियां पांच-पांच पंक्तियों की है और सभी की अन्तिम पंक्ति का आकार अपेक्षाकृत छोटा है, जिसमें सम्पूर्ण पउड़ी का सारांश दिया होता है । बिम्ब विधान और युग-चित्रण इस वार के श्लोकों की सर्वप्रमुख विशेषता है । इसकी भाषा मलोही पंजाबी हो, किन्तु सधुक्कड़ी का अंश अधिक है और शब्दावली का स्वरूप अधिकतर तद्भव है ।

`माझ की वार` में 27 पउड़ियां हैं और 46 श्लोक । इस वार की पउड़ियों में गुरु नानक की धार्मिक एवं दार्शनिक मान्यताओं की चर्चा है। दार्शनिक विचार परमात्मा, आत्मा, जीव और जगत् से सम्बन्धित है । धार्मिक विचारों के द्वारा गुरु, गुरु-शब्द और नाम साधना के महत्व का प्रतिपादन हुआ है । गुरु नानक का अभिमत है कि प्रभु ने अनेक विधि-विधानों और रूप-रंगों वाले जगत् की रचना की है और इसमें तरह-तरह के पदार्थ एवं भोग-सामग्री भी प्रस्तुत की है । यह एक तरह का मायावी प्रपंच है। मूर्ख व्यक्ति इसमें फंसकर यम की नाना प्रकार की यातनाएं सहन करते हैं । इसके विपरीत सच्चे साधक गुरु की शरण में पड़कर नामरूपी अमूल्य वस्तु प्राप्त

करते हैं जो इस संसार रूपी भवसागर में तरने में सहायक सिद्ध होती है ।

इस वार की प्रत्येक पउड़ी में 8 पंक्तियां हैं, किन्तु उनमें मात्रागत असमानता सर्वत्र है और पउड़ी अंक 1, 14 और 16 में यह असमानता और भी अधिक है । इस वार के साथ गुरु नानक के 46 श्लोक भी संकलित हैं जिन का पउड़ी अनुसार वितरण समान रूप में नहीं हुआ । भाषा की दृष्टि से यह वार पंजाबी के अधिक निकट है । श्लोकों में पंजाबी रूप और भी अधिक है । खण्डन-मण्डन के फलस्वरूप कठोर और व्यंग्यात्मक शब्दावली की प्रधानता है । अरबी-फारसी के शब्द भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं ।

गुरु नानक द्वारा विरचित तीसरी वार 'मलार की वार' है। इस में 28 पउड़ियां हैं किन्तु 27वीं पउड़ी गुरु अर्जुन कृत है । इस वार में प्रकट किए गए विचारों और भावनाओं का आसा और माझ रागों की वारों से यथेष्ट साम्य है । इस वार में कुरीतियों एवं कलुषित परम्पराओं को त्याग कर यथार्थ धर्म को ग्रहण करने की भावना को प्रकट किया गया है। श्लोकों में अधिकतर प्रचलित धार्मिक परम्पराओं, सामाजिक मूल्यों, राजनैतिक अत्याचारों, आर्थिक विषमताओं के प्रति गुरु नानक के असंतोष का स्वर मुखरित हुआ है । युग-चित्रण का इतना सजीव रूप मध्ययुगीन काव्य में बहुत कम मिलता है । मांस-भक्षण के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत करते समय जिस सशक्त एवं तर्कपूर्ण शैली का प्रयोग किया गया है, वह गुरु नानक की सर्जनात्मक प्रतिभा एवं प्रभावोत्पादकता का प्रतीक है ।

इस वार की प्रत्येक पउड़ी में आठ पंक्तियां हैं, किन्तु मात्रागत असमानता सर्वत्र है । इनके साथ संकलित गुरु नानक के श्लोकों का सम-विभाजन नहीं है, किसी के साथ एक श्लोक है, किसी के साथ दो और किसी के साथ चार ।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुरु नानक विरचित तीनों वारें मनुष्य को प्रभु तथा उसकी कुदरत, उसकी निजी प्रकृति तथा गुरु कृपा-दृष्टि द्वारा मनुष्य को देवता बनाने का उपकार तथा मन मत पर चलने वालों को निरुत्साहित करने के लिए एवं गुरमत पर चलने वालों के श्रेष्ठ जीवन की संभावनाओं को प्रकट किया गया है ।

चौपदे अथवा शब्द : 'चौपदा' किसी छन्द-विशेष का नाम नहीं है । यह एक ऐसा छन्द विधान है जिसके अन्तर्गत लगभग चार पद संगृहीत हों । 'पद' अथवा 'पदा' से अभिप्राय: पंक्ति अथवा पंक्ति-समूह है । प्रस्तुत प्रकरण में इन पदों की पंक्ति संख्या 1 से 4 तक है । गुरु नानक ने पदों के रूप-आकार में परिवर्तन किया है । गुरु नानक से पूर्व पदों में केवल दो समतुकान्त पंक्तियां होती थी । गुरु नानक ने उस नियम को न अपना कर इनकी गिनती कवियों की निजी प्रतिभा और रुचि पर छोड़ दी है । ये पंक्तियां मात्राओं की गणना के बन्धनों से मुक्त है और किसी छन्द विशेष की कैद भी स्वीकार नहीं करती । इन पंक्तियों को 'तुकें' भी कहा जाता है । गुरु नानक वाणी में अधिकतर चौपदे मिलते हैं, इसलिए इस रचना का नाम उसी के अनुरूप चौपदा रखा गया है । गुरु नानक ने इस प्रकार के 206 पद्य लिखे हैं । गुरु नानक का प्रत्येक पद अपने-आप में पूर्ण है और इनमें दार्शनिक तथा धार्मिक तथ्यों का उद्घाटन किया गया है। इनमें उस युग में व्याप्त कलुषित परम्पराओं और ऐतिहासिक परिस्थितियों का भी यत्र-तत्र वर्णन हुआ है ।

अष्टपदियां : साधारणतया उस छन्द-प्रबन्ध को जिसमें आठ पद अथवा पदियां इकट्ठी हों, अष्टपदी कहते हैं ।[82] प्रत्येक पद अथवा पदी में एक से लेकर चार तक पंक्तियां होती हैं और प्रथम पद के पश्चात एक अथवा दो

82-- रत्न सिंह जग्गी, 1969, पूर्वोक्त, पृ० 77

पंक्तियां `रहाउ` की भी होती है । गुरु नानक कृत 121 अष्टपदियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक में आठ पद अथवा पदियां हों । यह संख्या न्यूनाधिक भी हो सकती है किन्तु इन्हें अष्टपदियां इसलिए कहा गया है क्योंकि अधिकांशत: ये अष्टपदों वाली है । पदों अथवा पदियों की संख्या के दृष्टिकोण से गुरु नानक ने 4 सप्तपदियां, 92 अष्टपदियां, 12 नवपदियां, 8 दशपदियां और 3 बारहपदियां लिखी हैं और इनके अतिरिक्त रामकली राग की अन्तिम अष्टपदी 25 पदों की है ।[83] अष्टपदियों में दर्शन तथा धर्म पर गम्भीरता से विचार किया गया है । इन अष्टपदियों में सरल भाषा का प्रयोग हुआ है । इनके केन्द्रीय विषय को अलंकारों की लपेट में लाकर दुरूह बनाने का यत्न नहीं किया गया है ।

छंत : गुरु नानक ने 24 छंतों की रचना की है जो 7 रागों में संकलित हैं । इन में अधिकांशत: छंत 4 पदों वाले हैं, किन्तु `छंत` के लिए पदों की संख्या निश्चित नहीं है। अधिकांशत: छंतों में लोक गीतों की परम्पराओं में कुछ शब्दों एवं पंक्तियों की पुनरावृत्ति भी हुई है । इन छंतों में भक्ति अनुप्राणित शृंगार रस की जो धार्मिक एवं मर्यादित अभिव्यक्ति हुई है और रहस्यानुभूति को जिस तीव्रता से अभिव्यक्त किया गया है, इसके उदाहरण सन्त काव्य में बहुत कम मिलते हैं ।

सोलहे : मारू राग के अन्तर्गत गुरु नानक विरचित 22 सोलहे हैं । जिस प्रकार चार और आठ पदों के समुदाय का नाम क्रमश: चौपदा और अष्टपदी है, उसी प्रकार सोलह पदों के समुदाय का नाम `सोलहा` अथवा षोडशपदी है । किन्तु यह आवश्यक नहीं कि सभी में 16 पद ही हों, इनकी संख्या न्यूनाधिक भी हो सकती है । इसके लिए साधारणतया धनकला, चित्रकला

83-- रत्नसिंह जग्गी, 1969, पूर्वोक्त, पृ0 77

आदि छंदों का प्रयोग किया किया गया है। प्रत्येक पद में प्रथम तथा द्वितीय विश्राम पर समानुप्रास है और इन दोनों पंक्तियों का आकार लगभग समान होता है, परन्तु तीसरी पंक्ति इनसे लम्बी और लगभग दुगुनी होती है जिस के अन्त में सामान्यतया काफिया रदीफ के लय पर दीर्घस्वर वाला कोई शब्द रहता है। इस प्रकार प्रत्येक पद में तीन-तीन पंक्तियां होती हैं। इन सोलहों में निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप, सृष्टि रचना, हुक्म की अटलता, योग की सूक्ष्म प्रक्रिया आदि पदार्थों पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है। इनकी भाषा सरल है जो वस्तु स्थिति का भलीभांति बोध कराने में समर्थ है।

सलोक (श्लोक) : गुरु नानक ने लगभग 250 श्लोकों की रचना की है। इनमें से 115 श्लोक गुरु नानक द्वारा रचित तीन वारों के साथ संकलित है और शेष 145 श्लोकों में से 107 श्लोक अन्य गुरु कवियों सिरी, बिहागड़ा, वडहंस, सोरठ, सूही, बिलावल, रामकली, मारु और सारंग रागों के अन्तर्गत संकलित है। इनके अतिरिक्त 3 श्लोक सहसंकृती हैं, दो श्लोक `जपु` नामक वाणी के आदि तथा अन्त में तथा दो श्लोक मारु राग के प्रथम तथा पंचम चौपदों के साथ दिए गए हैं। इन श्लोकों के लिए न कोई छन्द निश्चित है और न ही पंक्तियों की संख्या। एक पंक्ति से लेकर 26 पंक्तियों तक ये श्लोक मिल जाते हैं। श्लोक में किसी एक विषय को लेकर गुरु नानक अपना मत प्रकट करते हैं और जब तक उस विचार की पूर्णतया अभिव्यक्ति नहीं हो पाती, तब तक श्लोक की रचना-प्रक्रिया चलती रहती है, चाहे वह कितनी ही पंक्तियों का विस्तृत क्यों न हो जाए। इनके लिए उल्लाला, चन्द्रमणि, सरसी, हाकल, दोहा, सार आदि अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। इन श्लोकों की भाषा में पंजाबी का प्रभाव अधिक है और शैली पाखण्डों पर चोट करने वाली है।

3.6 गुरु नानक देव : युगनेतृत्व की भूमिका

गुरु नानक देव जी का प्रादुर्भाव सारी मानव जाति के लिए एक

वरदान सिद्ध हुआ । उनके पदार्पण से राष्ट्र के मानवों को एक नूतन प्रेम, नई प्रेरणा तथा नया पथ उपलब्ध हुआ । उन्होंने अज्ञानान्धकार में प्रसुप्त विश्व को सचेत व जाग्रत किया तथा उनके लुटे वैभव व भूले हुए अपने वास्तविक रूप से साक्षात्कार करने का भरसक प्रयत्न जारी रखा ।

अध्यात्म तथा प्रेम की मूर्ति गुरु नानक देव पंजाबियों एवं भारतीयों के ही नहीं बल्कि अखिल विश्व के मानव मात्र के हैं । परब्रह्म परमात्मा ने उन्हें प्राणिमात्र के दिलों में प्यार भरने तथा जन्म-मृत्यु के भयंकर कष्टों से त्राण के निमित्त ही भेजा था । इसीलिए वे समस्त सृष्टि के प्राणियों के हैं । उन्होंने एकता का सन्देश विश्व के समस्त मानवों को दिया । आध्यात्मिक एकत्व का सन्देश देकर द्वैत व द्वेष भावना मिटाई, तथा समस्त मत-मतान्तरों-सम्प्रदायों के समन्वय से पारस्परिक अपूर्व प्रेम-सौहार्द जाग्रत किया । उन्होंने प्राणिमात्र के हृदय में परब्रह्म परमात्मा का उपरोक्ष कराया । उनकी दीव्य व विशाल आँखें अन्तरात्मा कीप्रखर छटा से प्रकाशित होती रहती थी ।प्रकृति की सौन्दर्य छटा में उन्हें अलौकिक सत्ता के ही दर्शन होते थे । अलौकिक-भव्य-भावनाओं से प्रदीप्त उनका मुख-कमल नर-नारियों के विचित्र आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बना। इसी कारण सभी वर्गों के लोग उनसे प्यार करते थे । उनका हृदय समुद्र की भाँति अगाध, मन हिमालय की भाँति उच्च तथा अहंकार व्योम की भाँति शून्य था। उन्हें सम्पूर्ण विश्व परमात्मामय प्रतीत होता था । जिज्ञासुओं, मुमुक्षुओं तथा प्रेमियों को उन्होंने अकाल पुरख का अपरोक्ष करवाया । लोगों ने अपनी दृष्टि के अनुसार उन्हें कई कुछ कहा । पर उन्होंने लोक सेवा के हितार्थ स्वयं को एक आदमी और प्रभु की नाम खुमारी में स्वयं को मस्त पाया --

कोई कहे भूतना कोई कहे बेताला ।

कोई कहे आदमीनानक बेचारा ।।[84]

अर्थात् बेचारे नानक को किसी ने भूत, बेताल और किसी ने आदमी कहा। इतिहास उन लोगों से नहीं बनता जिन्हें महान कहा जाता है बल्कि उन लोगों से बनता है जिन्हें लोग पागल कहते हैं।[85] गुरु नानक के बारे में यह उक्ति बिल्कुल उचित है । बेशक वह वाहिगुरु का रूप थे, परमगुरु थे पर उन्होंने स्वयं को प्रभु का सेवक ही कहा ।[86] वह ऐसे सतगुरु थे जिन्होंने विश्व को मानव प्यार के धागे में पिरो दिया। जो अन्धेरे में ठोकरें खा रहे थे, उन्हें नेकी की राह पर चलाया । उन्होंने कभी भी स्वयं को ईश्वर या पैगम्बर, परमात्मा का अवतार या गुरु नहीं कहा ।[87] राजिन्दर सिंह `लांबा` लिखते हैं --- `उन्होंने प्रत्येक दर्शन को छुआ, हरेक ज्ञान को टटोला, सभी मर्मों पर विचार किया, सब हादसों पर सोचा, सभी दु:खों को महसूस किया, अन्त में कुछ लकीरें हमारे लिए खींची, कुछ सोचें हमें दी । यह सोचें हमें सब मुसीबतों, सब अन्धेरों, सब झमेलों, सब दु:खों से छुटकारा दिला सकती हैं । उसके जलवे में रब का प्रकाश था। उसके हृदय में इन्सानी दर्द था, जिस की चीसें कभी वह अडोल सह जाया करता था, पर कभी बोल कर अपना गुस्सा निकाल लेता था। वह सतयुग, त्रेता, द्वापर का अवतार नहीं था, वह तो कलियुग का पीर बन के आया था। युगों की कहानियां आम तौर पे बहुत गुंझलदार और लम्बी होती हैं, परन्तु `बाबा नानक` सादे शब्दों में,

---

84-- जयराम मिश्र, नानकवाणी, इलाहाबाद : मित्र प्रकाशन, सं0 2018, पृ0 579

85-- टी0 एल0 वासवानी, पूर्वोक्त, पृ0 1

86-- वही, पृ0 3

87-- खुशवन्त सिंह, ए हिस्टरी आफ दि सिक्खज़, लन्दन : प्रिंसटन प्रैस, 1963, पृ0 41

साधारण भाषा में, सीधे-सादे लोगों से उनकी बातें करने आया था। उसने ज़ोर से आवाज़ दी, कुछ दौड़ कर उसके जहाज चढ़ गए, उसने हंसकर उन्हें गले लगा लिया। औरों को कहा कि उन्हें भी किसी न किसी जहाज़ का आसरा जरूर ले लेना चाहिए ताकि कलियुग के अन्धे पानी के गोतों से वो बच जाएं। उसने किसी एक को भी अपने जहाज परचढ़ने के लिए मजबूर नहीं किया, उसकी नज़र में सब बेड़े बराबर थे। सभी राहें एक मंज़िल की ओर जाती है, दिशा ठीक होनी चाहिए, यह उसका निजी विश्वास था।[88]

वास्तविकता यह है कि गुरु नानक स्वयं बहुत अच्छे थे, इसलिए उन्हें कोई बुरा दिखाई नहीं दिया। वह स्वयं बहुत ऊंचे थे, उन्हें कोई भी छोटा दिखाई नहीं दिया। उन्होंने धरती के स्वरूप तथा उस पर रहने वाले लोगों की आत्मा को बदल कर अच्छे गुणों की ओर प्रेरित किया। इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं कि संसार के अनेक धर्मों और देशों में अनेक महापुरुष अवतरित हुए हैं परन्तु गुरु नानक उन में परिगण्य हैं। गुरु जी मध्ययुग के एक महान् लोकनायक कहे जाते हैं जिनकी कथनी और करनी समान थी। उन्होंने अपने प्रत्येक उपदेश को पहले खुद पर लागू किया फिर मनुष्यता के उपदेश में लाया। नर में नारायण का दर्शन करना उनका अपना लक्ष्य था। इसी लक्ष्य को लेकर वह जनता-जनार्दन के हृदयों में उतर आए थे। उनकी आध्यात्मिक सुगन्धि आज भी सृष्टि के कण-कण में सुरभित है। भारतीय सन्तान उनके उपकारों से तभी मुक्त हो सकेगी, जब वह महलों से लेकर झोंपड़ियों तक उनके आध्यात्मिक ज्ञान का सन्देश पहुंचाएगी।

सारांश यह है कि गुरु नानक का युग पाखण्डों, रूढ़ियों तथा विरोधी विचारों का युग था। उन्होंने उस युग का नेतृत्व किया एक लोक नायक बनकर।

88-- लाजिन्दर सिंह लांबा, नानक साइर ऐव कहत है, दिल्ली : पंजाबी बुक सटोर, 1969, पृ0 12

वह सही अर्थों में लोकनायक थे। उस युग का समाज वर्गों, जातियों एवं सम्प्रदायों में विभक्त था। पाखण्डपूर्ण प्रवृत्तियां लोगों के दिलों में घर कर गई थी। संसार में झूठ तथा भ्रष्टाचारी का राज्य था। इन आपसी वैर-विरोधों का सामंजस्य करने के लिए ही गुरु नानक ने जन्म लिया था। समन्वयवाद का नारा उन्होंने संसार के कोने-कोने तक लगाया। इतनी अधिक जागरूकता नानक जैसे सन्त के अतिरिक्त और किसी में नहीं देखी जाती। उन्होंने लोगों की बुराइयों को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया परवर्ती इतिहास इसका साक्षी है।

द्वितीय भाग : विवेचन

चतुर्थ अध्याय	:	गुरु नानक काव्य : धर्म-परिकल्पना
पंचम अध्याय	:	गुरु नानक वाणी : ब्रह्म तथा जीव का सन्दर्भ
षाष्ठ अध्याय	:	गुरु नानक वाणी में भक्ति का स्वरूप
सप्तम् अध्याय	:	गुरु नानक वाणी में साधना के तत्त्व और सोपान
अष्टम् अध्याय	:	गुरु नानक वाणी में धर्म साधना के बाह्य उपक्रम
नवम् अध्याय	:	मध्यकालीन भारतीय धर्म साधना के सन्दर्भ में गुरु नानक वाणी

चतुर्थ अध्याय

गुरु नानक काव्य : धर्म परिकल्पना

मूल के सन्दर्भ सम्बन्धी पिछले अध्याय के अन्तर्गत गुरु नानक देव का जीवन-वृत्त, युगीन परिवेश, व्यक्तित्व, कृतित्व एवं युग नेतृत्व सम्बन्धी संक्षिप्त विचार हुआ है । प्रस्तुत अध्याय में मध्ययुगीन लोकजागरण, गुरु नानक देव का सामाजिक सन्दर्भ, गुरु नानक देव की विशिष्टता, निराकार उपासना का ऐतिहासिक सन्दर्भ, परम्परित भारतीय मत-सम्प्रदायों के परि-प्रेक्ष्य में गुरु नानक देव, मध्यकालीन भारत में सूफी साधना की भूमिका एवं गुरु नानक वाणी में धर्म के स्वरूप आदि विषयों पर विचार हो रहा है ।

4.1 मध्ययुगीन लोक जागरण

4.1.1 मध्ययुग : अवधारणा एवं ऐतिहासिक सन्दर्भ

प्राचीन सभ्यताओं के क्लासिकी समाजों के सन्दर्भ में मध्यकाल का आरम्भ सातवीं आठवीं शताब्दी में स्वीकार किया जाता है। भारतीय इतिहास के अनुसार भी मध्यकालीन प्रवृत्तियां वर्धन साम्राज्य की समाप्ति के साथ लगभग इसी काल में उभरती प्रतीत होती है। विश्व-इतिहास में मध्यकाल का विस्तार सातवीं शती ईसवी से सत्रहवीं शती ईसवी तक लगभग एक हजार वर्षों का स्वीकार होता है । भारत के इतिहास के अनुसार यह काल

उन्नीसवीं शती तक खिंच जाता है और इस प्रकार 1200 वर्षों के सुदीर्घ कालायाम को समेटता है । यह काल पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल के रूप में विभाजित होता है। पूर्व मध्यकाल बारहवीं शताब्दी तक माना जाता है,[1] जिसके बाद उत्तरमध्यकाल उन्नीसवीं शती तक चलता है । यह वर्गीकरण क्लासिकी सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन मूल्यों के एक विशिष्ट काल में ह्रास तथा कुछ ऐसे नवीन मूल्यों के विकास तथा वृद्धि पर आधारित है, जो सुनिश्चित क्लासिकी नहीं थे ।

पूर्वमध्यकाल क्लासिकी मूल्यों के ह्रास के साथ सम्बद्ध, जबकि उत्तर-मध्यकाल में लोक धर्मों, लोक वृत्तियों, रोमानी आदर्शों तथा जीवन-सम्बन्धी वैयक्तिक मूल्यों का अभ्युदय होता है ।

भारत में क्लासिकी राजनैतिक शक्ति का ह्रास हर्षवर्धन की मृत्यु के साथ आरम्भ होकर तेरहवीं शताब्दी में केन्द्रीय इस्लामी सत्ता की स्थापना तथा हिन्दू-शासन के पतन के साथ पूर्णता प्राप्त करता है । यह एक साम्राज्य द्वारा दूसरे साम्राज्य की पराजय मात्र न होकर राजनीति के लौकिक आधार से पूरी तरह विच्छिन्न हो जाने की प्रक्रिया का अन्तिम छोर था। वस्तुत: यह प्रक्रिया साम्राज्य की स्थापना से पूर्व ही प्रारम्भ हो चुकी थी । यह मानव के सामाजिक इतिहास का सुविज्ञात तथ्य है कि विभिन्न समाजों के आरम्भिक कबीलाई स्वशासन के आधार रूप में जनतान्त्रिक तथा लोकप्रिय आकांक्षाएं एवं गणतान्त्रिक स्वीकृति के तत्वबीज रूप में विद्यमान रहे हैं । क्लासिकी व्यवस्था तक पहुंचने वाले सभी समाजों ने अपनी आरम्भिक स्थितियों से किसी न किसी प्रकार के लोकप्रिय स्वशासन (चाहे वह कुछ विशिष्ट सुविधा-सम्पन्न या निहित-

---

1-- यह काल विभाजन इतिहासाधारित है । हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकाल और उत्तरमध्यकाल की अवधारणा इससे भिन्न है ।

स्वार्थ वाले वर्गों तक ही सीमित रहा हो) को अवश्य जिया और अनुभव किया ।[2]

क्लासिकी मजहबों (हिन्दू-मु इस्लाम और ईसाई) की छिन्न-भिन्नता मध्यकाल की विशेषता है । मध्यकाल को पतनकाल, अन्धकारकाल, अवनतिकाल, हीनता का काल आदि भी कहा जाता है । परन्तु इस नामकरण के पीछे भी सामन्ती दृष्टि और आभिजात्य रंगीन चश्मा ही मुख्य कारण रहा है । निरपेक्ष दृष्टि से इसे क्लासिकी व्यवस्था के विरुद्ध लोक के जागरण, विद्रोह, क्रान्ति और स्वतन्त्रता के संघर्ष के रूप में देखा जा सकता है ।[3]

4.1.2 मध्यकाल एवं लोकजागरण

भारत में इस्लामी शासन के स्थिर हो जाने के बाद ही इस प्रक्रिया का आरम्भ होता है । हिन्दू-मुसलमान, दोनों मज़हबों की रूढ़ मान्यताओं को कड़ा आघात प्राप्त होता है। पौराणिक हिन्दू धर्म उच्चवर्गीय कट्टरता, रूढ़िवादिता और शोषण से निराश लोक इससे पहले भी उससे विमुख होकर बौद्ध, जैन, सिद्ध, तान्त्रिक और गोरखनाथ के नाथपंथ आदि मतों की ओर उन्मुख हो चुका था।[4] इस्लाम का अनुयायी लोक भी इस्लामी शासन होने पर

2-- मैथिलीप्रसाद भारद्वाज, गुरु तेग बहादुर वाणी के समाजशास्त्रीय अ आयाम, नवम् गुरु पर बारह निबन्ध, रमेश कुन्तल मेघ (सं0), अमृतसर : गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, पृ0 43-49

3-- गैरिसन हर्बर्ट, दि बैक ग्राउण्ड आफ इंग्लिश लिट्रेचर, क्लासिकल एंड रोमांटिक, लन्दन : 1950, पृ0 289

4-- मैथिली प्रसाद भारद्वाज, मध्यकालीन रोमांस, (प्राक्कथन), दिल्ली : रिसर्च, 1970, पृ0 ii, iii

भी स्वयं को सामन्तों द्वारा उतना ही शोषित तथा दमित अनुभव कर रहा था। ऐसे अवसर पर, तथा इस स्थिति से, लोक व्यवस्था के विरुद्ध विभिन्न रूपों और तरीकों से अपना विरोध तथा प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, तो दूसरे रूप में वह भाव भरे मन से प्राचीन 'अच्छे समयों और अच्छे शासकों' को याद करके प्रकारान्तर से वर्तमान को अस्वीकार करता है। भारतीय सन्दर्भ में इस दृष्टि से कबीर और गुरु नानक देव आदि प्रथम वर्ग के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं, जो अपनी समकालीन अभिजात्यवादी राजनीतिक, सामाजिक मतवादी तथा सांस्कृतिक व्यवस्था से सम्बद्ध हर चीज़ का खण्डन करते हैं। दूसरे वर्ग के प्रतिनिधि तुलसीदास हैं जो कबीर और नानक की तरह अपनी समकालीन व्यवस्था से पूरी तरह असन्तुष्ट तो थे, परन्तु इसका विकल्प और समाधान अपने कल्पित आदर्श रामराज्य में ढूंढने की कोशिश करते हैं जो अपनी संरचना में साम्राज्यवादी होने पर भी प्रजा-वत्सल रूप में कल्पित हुआ है।[5] लोक की क्रान्ति में कबीर और गुरु नानक देव जैसे क्रान्तिकारी मार्ग दर्शकों के माध्यम से लोक अपने नये व्यक्तित्व और नये अस्तित्व की पहचान करता है।

4.1.3 लोकजागरण : तात्त्विक सन्दर्भ

अभिजात वर्ग के क्लासिकी धर्म, देव परम्परा, नैतिक मान्यता, जीवन पद्धति और यहां तक कि क्लासिकी ईश्वर के प्रति भी ये सब अपने-अपने ढंग से अनास्था प्रकट करते हैं, और इस प्रकार लोक को एक नई आस्था, नया विश्वास, नया व्यक्तित्व और समाज में नया मूल्य तथा नया स्थान प्रदान करते हैं। अभिजात वर्ग की मानसिक गुलामी से मुक्त, नवजागृत लोक अब उसकी धार्मिक-साहित्यिक विधाओं के प्रति भी अनास्था प्रकट करता है। इसलिए

5-- मैथिली प्रसाद भारद्वाज, गुरु तेग बहादुर वाणी के समाजशास्त्रीय आयाम, नवम गुरु पर बारह निबन्ध, पूर्वोक्त, पृ0 49-50

सभी सन्तों, भक्तों और धर्म गुरुओं द्वारा प्रचारित उपदेश अभिजात हिन्दू और मुसलमान दोनों के आडम्बरयुक्त कर्मकाण्ड, कठोरता और नियन्त्रण से मुक्त है । मानसिक दासता से मुक्त और नवव्यक्तित्व से सम्पन्न लोक अपने सहज अनुभव, सहज चिन्तन तथा सहज भावनाओं की अभिव्यक्ति में भी अब मुक्त हो जाता है ।[6]

4.1.4 लोकजागरण-निर्धारक तत्व तथा गुरु नानक देव

गुरु नानक देव, असंदिग्ध रूप में अभिजात्यवादी परिशुद्धतावादी परम्परा के समानान्तर भारत में प्राचीनकाल से प्रवाहित होने वाली तथा विकास चक्र में समय-समय पर उभरने वाली, लोक धर्मों तथा लोक आस्था की सरणी के महत्वपूर्ण मध्यकालीन प्रस्फुटन माने जा सकते हैं । लोक धर्मों तथा लोक व्यवस्थाओं के इस मध्ययुगीन नेता के धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक चिन्तन तथा आचार में जो भेद लक्षित होता है, वह केवल देशकाल भेद की सतही परिणति मात्र है । मूल आस्था लगभग सर्वत्र एक सी है तथा उसमें त्याग, दया, क्षमा, ममत्वहीनता, विश्व की नश्वरता, सच्चरित्रता तथा ईश्वरीय दयालुता के प्रति आस्था के तत्व समान हैं, इन सब धर्मों और विचार परम्पराओं की पराजागतिक दृष्टि ने क्लासिकी-अभिजात्यवादी व्यवस्थाओं के दमन से परिचित नवलोक को जो नवीन मूल्य प्रदान किए हैं, वे सम्भवत: इनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है । क्लासिकी विश्व के धन-सम्पत्ति जैसे भौतिक साधनों; परम्परित शक्ति केन्द्रों तथा अभिजात्यवादी मूल्यों के समक्ष प्रश्नचिन्ह लगाकर, इन्होंने एक झटके से लाखों-

---

6-- (i) मैथिली प्रसाद भारद्वाज, मध्यकालीन रोमांस : लोक का मुखर विवेचन (लेख)
(ii) परिशोध 14, चण्डीगढ़ : हिन्दी विभाग पंजाब विश्वविद्यालय, जनवरी 1971, पृ0 51

करोड़ों की संख्या में सर्वसामान्य लोक को मानसिक-वैचारिक दासता से मुक्त करा दिया। अपनी पराजागतिक परिकल्पना में उन्हें ऐसे विश्वासों, मूल्यों और भविष्य का आश्वासन दिया, जो सुनिश्चित रूप में जागतिक जीवन में बहुत महान, श्रेष्ठ और काम्य थे। यही लोकजागरण का निर्धारक तत्व है।

4.2 सामाजिक सन्दर्भ और गुरु नानक देव

उपर्युक्त तत्व गुरु नानक देव जैसे मध्यकालीन लोक नेता को केवल भाषा, कवि अथवा धर्मगुरु की सीमा तक परिसीमित न करके सामाजिक सन्दर्भ, सामाजिक संगति, सामाजिक उपयोगिता और सामाजिक क्रान्तिकारिता की महनीय प्रतिबद्धताएं प्रदान करता है। इस नवजागरण में इनका त्याग, संन्यास अथवा विश्व की क्षणभंगुरता का स्वर का स्वर इनके पलायन को सूचित नहीं करता। यह इनकी वैयक्तिक मोक्षकामना की स्वार्थपूर्ति को भी सूचित नहीं करता। यह अभिजात्यवादी सम्पन्नता, अर्थ या धन की श्रेष्ठता और भौतिक जीवन की चमक-दमक और नकली मूल्यों के प्रति एक प्रकार की स्वाभिमानपूर्ण वितृष्णा, घृणा और अमान्यता को स्पष्ट ~~करता है~~, करता है, तथा अधिक स्वस्थ, निर्भयतापूर्ण और काम्य वैश्विक सामाजिक तथा नैतिक जीवन का आश्वासन देता है। विश्व और वैश्विक सम्बन्धों की अनित्यता और असारता समग्र गुरु नानक वाणी के चिन्तन का सार है। योगी के लक्षण-कथन में गीता का कथन प्रतिध्वनित होता है। सुख-दुःख, हर्ष-शोक, मान-अपमान से अप्रभावित रहना श्रेष्ठ गुणों के रूपमें स्थापित हुए हैं। ईश्वर पर आस्था, एकांतिक भक्ति और समग्र भाव से शरणागति एकमात्र कर्तव्य और उपाय माने गए हैं। जागतिक सम्बन्धों को अनित्य स्वीकार किया गया है और मोह, माया, क्रोध, मद, काम, लोभ आदि को इस अनित्य संसार में मानव को लिप्त करने वाले हीन अवगुणों के रूप में मानकर परित्याज्य कहा गया है। पाखण्ड और रूढ़ि-त्याग का स्वर नानक वाणी का प्रमुख विषय है।

4.3 गुरु नानक देव की विशिष्टता

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि मध्यकाल में जन्म से लेकर, मध्यकालीन लोकजागरण तथा लौकिक क्रान्ति का प्रभाव ग्रहण करते हुए भी गुरु नानक अपनी विशिष्टता बनाए रखते हैं। क्लासिकी भारतीय महानता और गरिमा से वह सुपरिचित थे। बाद में क्लासिकी मूल्य-व्यवस्था और जीवन व्यवस्था के ह्रास को भी वह अनुभव करते हैं। पर मध्यकाल के मुख्य मतवादी, धार्मिक और साम्प्रदायिक प्रतिक्रियात्मक रूपों से वह अपनी विशिष्टता बनाए रखते हैं। सन्त मत अपने भक्ति, श्रद्धा तथा वैष्णवता के गुणों के बावजूद भी सामाजिक सन्दर्भों में खण्डनात्मक तथा नकारात्मक रुख अपनाता है। उसके पूर्ववर्ती नाथ-पंथ, सिद्ध तथा तान्त्रिक सम्प्रदाय तो लोक के अभ्युदय की महत्वपूर्ण भूमिका निर्माण करने के बाद भी व्यवहारत: गुह्य, असामाजिक तथा जादू-टोने आदि से समन्वित साधनों और रूढ़ियों का रूप धारण कर चुके थे। सूफी साधकों में प्रेम की पीर, काव्य की प्रबन्धात्मकता तथा ह्रास-शील सामन्ती व्यवस्था का अस्वीकार तो अवश्य था, पर वे भी केवल जीवन के एकमात्र पक्ष को ही अभिव्यक्ति दे पा रहे थे। सम्भवत: गुरु नानक की दूरदर्शी प्रतिभा ने इस तथ्य को पहचान लिया था। इस प्रकार मध्यकालीन समाज-व्यवस्था, शासन व्यवस्था, परिवार-व्यवस्था, धर्म, सम्प्रदाय, मत लोक-व्यवहार--- सब प्रकार के ह्रास और हीनता में गुरु नानक जड़ रूढ़ियों का समर्थन तो नहीं करते, पर अन्य मत-मतान्तरों की तरह वह केवल खण्डनात्मक, विनाशक और विध्वंसक, अथवा पलायनवादी मुद्रा भी धारण नहीं करते। वह स्वधर्मपरायणता का महनीय स्वरूप परिकल्पित करके मध्यकालीन अन्धकार की विच्छिन्नता का आश्वासन भारतीय जनता के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। इसे भले ही कल्पित आदर्श अथवा `यूरोपिया` कहा जाए, पर समग्र मध्यकाल में इससे अधिक स्वस्थ, शालीन, सुव्यवहार्य तथा सर्वग्राह्य दर्शन और जीवन-प्रक्रिया भारत में अन्यत्र सुलभ नहीं है। मध्यकालीन लोकजागरण की पृष्ठपीठिका में यही तत्व गुरु नानक की महनीय समन्वयात्मक तथा सृजनात्मक देन के रूप में स्वीकार्य है।

4.4 निराकार उपासना का ऐतिहासिक सन्दर्भ

गुरु नानक के उदय से पूर्व ही हिन्दू धर्म पर संकट के काले बादल छा रहे थे। इस्लाम काफिरों को जो कुछ दे सकता था, हिन्दुओं को वह सब कुछ मिला। शासन की छत्रछाया में हिन्दू लोग मुसलमान बन रहे थे। हिन्दुओं के बहुदेववाद और मूर्तिपूजन के प्रति इस्लाम की स्थायी घृणा थी और दोनों धर्मों में सम्बन्ध स्थापित होने की कोई आशा नहीं थी। उस समय तक जितने मुस्लिम विजेता आए उन्होंने मन्दिर की मूर्तियों का अपमान किया। हिन्दुओं की धार्मिक स्वतन्त्रता पर आघात हो रहे थे। जो हिन्दू इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेता था उसके लिए सब द्वार खुले थे। हिन्दू-धर्म ने अपने ऊपर आए सब आघातों का बड़े साहस से सामना किया। एक ओर धर्म परिवर्तन की परम्परा बनी रही दूसरी ओर हिन्दू धर्म ने दृढ़ बनने के प्रयत्न किए। इस प्रकार धर्म-रक्षा की भावना ने नए सिद्धान्तों और सम्प्रदायों को जन्म दिया। इस समय हिन्दु धर्म में अनेक आन्दोलन हुए जो केवल भक्ति पर आश्रित थे, कर्मकाण्ड पर नहीं। नि:सन्देह भारतीय भक्ति का रूप बहुत प्राचीन है, किन्तु उस समय उसकी लोकप्रियता का कारण हिन्दुओं की निराशा थी जो तत्कालीन आघातों से उत्पन्न हुई थी।

इससे यह स्पष्ट है कि मध्यकालीन भक्ति का उद्‌य इस्लाम के आक्रमण के उत्तर के रूप में हुआ था। उनके उपास्य देवों के नाम कुछ भी रहे हों, किन्तु सभी मध्यकालीन भक्तों ने यह स्वीकार किया है कि एक परमात्मा हमारा उपास्य है और उसी के अनुग्रह से हमारी मुक्ति संभव है। भिन्न-भिन्न नामों से प्रख्यात राम, कृष्ण, शिव आदि एक ही अनन्त शक्ति के प्रतीक हैं। गुरु नानक वाणी में इस तथ्य का दर्शन सहज रूप से किया जा सकता है। इस्लाम के बढ़ते हुए प्रचार की प्रतिक्रिया के रूप में भारतीय धर्मों ने उसके प्रति सहिष्णुता का परिचय दिया। यद्यपि कुछ मुसलमान शासकों ने भी यहां के धर्मों के प्रति सहिष्णुता दिखलाई किन्तु वे अपने नैतिक दृष्टिकोण से

इस्लाम की बढ़ती हुई कट्टरता का नियन्त्रण न कर सके । इस्लाम जैसे नए धर्म में इस प्रकार की कट्टरता स्वाभाविक थी, किन्तु उससे भारतीय हृदय की उपजाऊ भूमि में रचनात्मिका भावना के अनेक बीज अंकुरित हो उठे ।

4.5 परम्परित भारतीय मत-सम्प्रदाय और गुरु नानक देव

गुरु नानक के युग तक आते-आते भारतीय चिन्तन तथा साधना की अनेक धाराओं का उद्गम तथा विकास हमारे सामने आ जाता है । गुरु नानक के युग में भारत दो भिन्न समाजों में विभक्त था -- एक भारतीय धर्म साधना का पोषक था और दूसरा अभारतीय धर्म साधना का । भारतीय धर्म साधना का पोषक समाज अनेक धर्मों और सम्प्रदायों से क्षत-विक्षत होते हुए भी अपनी सांस्कृतिक एकता रखता था, किन्तु अभारतीय धर्म ने जो समाज तैयार किया था, वह भारतीय समाज से एकदम भिन्न था; इसलिए देश में विरोध का वातावरण था । हिन्दू-समाज में अनेक धार्मिक सम्प्रदाय थे जिनमें वैष्णव, शैव और शाक्त प्रधान थे । इनके अतिरिक्त बौद्ध, जैन और वैदिक कर्मकाण्डी भी थे । इन धर्म साधनाओं में पारस्परिक विरोध था। जिस प्रकार शिव, विष्णु और शक्ति की प्रधानता को लेकर उनके उपासकों में विरोध था, उसी प्रकार उनकी साधना भी संघर्ष को जन्म देती थी ।

उस समय की तान्त्रिक साधना को भुलाना असम्भव है । वैसे तो तान्त्रिक साधना बहुत से सम्प्रदायों और मतों में फैल चुकी थी किन्तु गुरु नानक के युग में वह पराकाष्ठा पर थी । तान्त्रिक सिद्ध शक्ति की पूजा करते थे । उन्होंने मांसाहार, सुरापान तथा व्यभिचार को साधना के रूप में स्वीकार किया हुआ था। इधर उनके आचरण की तो यह दशा थी, उधर वे लोग सामान्य जनता को सिद्धियों के चमत्कार दिखाकर प्रलोभन से बहकाते थे। स्पष्टत: इस प्रकार की साधना साधकों के पतन के साथ-साथ समाज पर भी बुरा प्रभाव डाल रही थी। परिस्थितियां मानों जनसाधारण को उद्धार के लिए व्याकुल थी ।

हिन्दुओं में बहुदेवोपासना और मूर्ति-पूजा के अनेक विधि-विधान विद्यमान थे। पुजारियों के हृदय में संकीर्णता, पाखण्ड और दुराचार का आवास था। बाह्याचार चरम सीमा पर पहुंच चुका था। स्नान, छापा, तिलक, माला, वस्त्र आदि के बल पर ही अनेक पाखण्डी भक्त, साधु और महात्मा बने हुए थे और भोली-भाली जनता को बहका कर अपना उल्लू सीधा करने में संलग्न रहते थे। इन बाह्याचारों की प्रबलता और बाहुल्य से सत्य-धर्म अन्धकार में था। श्रद्धा और विश्वास के स्थान पर अन्ध भक्ति और दंभ का बोलबाला था। वर्णव्यवस्था ने कर्म के आधार पर परित्याग करके जन्माश्रय स्वीकार कर लिया था। शूद्रों को सामाजिक सौभाग्य से वंचित कर दिया था। हिन्दुत्व की सीमाओं में उन्हें मुक्ति संभव नहीं थी। इस्लाम के द्वार के भीतर उन्हें अपने दुर्भाग्य से छुटकारा दृष्टिगोचर हो रहा था। यही कारण था कि अवर्ण लोग मुसलमान बन रहे थे। जो लोग इस्लाम नहीं भी चाहते थे, वे भी तत्कालीन हिन्दुत्व से ऊब गए थे। समाज का दण्डित व्यक्ति अब असहाय न था इच्छा करते ही वह एक सुसंगठित समाज का सहारा पा सकता था। ऐसे ही दक्षिण में भक्ति का आगमन हुआ जो बिजली की चमक के समान विशाल देश के इस कोने से उस कोने तक फैल गया। इसने दो रूपों में अपने आपको प्रकाशित किया। यही वे दो धाराएं हैं जिन्हें निर्गुण धारा और सगुण धारा नाम दे दिया गया है। इन दोनों साधनों ने दो पूर्ववर्ती धर्म केन्द्रों के केन्द्र बनाकर ही अपने आपको प्रकट किया। सगुण उपासना ने पौराणिक अवतारों को केन्द्र बनाया और निर्गुण उपासना ने योगियों अर्थात् नाथपंथी साधकों के निर्गुण परब्रह्म को। पहली साधना ने हिन्दू जाति की बाह्याचार की शुष्कता को आन्तरिक प्रेम से सींचकर रसमय बनाया और दूसरी साधना ने बाह्याचार की शुष्कता को ही दूर करने का प्रयत्न किया। एक ने समझौते का रास्ता लिया, दूसरी ने विद्रोह का, एक ने शास्त्र का सहारा लिया, दूसरी ने अनुभव का, एक ने श्रद्धा को पथ-प्रदर्शक माना, दूसरी ने ज्ञान को, एक ने सगुण भगवान को अपनाया, दूसरी ने निर्गुण भगवान को। पर प्रेम दोनों का ही मार्ग था, सूखा ज्ञान दोनों को ही अप्रिय था, केवल

बाह्याचार दोनों में से किसी को सम्मत नहीं था, आन्तरिक प्रेम निवेदन दोनों को इष्ट था, अहैतुक भक्ति दोनों की काम्य थी, आत्मसमर्पण दोनों के साधन थे, भगवान की लीला में दोनों ही विश्वास करते थे ।[7]

4.6 मध्यकालीन भारत : सूफी साधना की भूमिका

गुरु नानक के समय में इस्लाम धर्म के साथ-साथ सूफी मत भी ज़ोरों पर था। आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का यह कहना ठीक ही है -- 'मज़हबी मुसलमान हिन्दू धर्म के मर्मस्थान पर चोट नहीं कर पाए थे, वे केवल उसके बाहरी शरीर को विक्षुब्ध कर सकते थे, पर सूफी लोग भारतीय साधना के अविरोधी थे । उनके उदारतापूर्ण प्रेममार्ग ने भारतीय जनता का चित्त जीतना आरम्भ कर दिया था। फिर भी ये लोग आचार-प्रधान भारतीय समाज को आकृष्ट नहीं कर सके । उनका सामंजस्य आचार-प्रधान हिन्दू धर्म के साथ नहीं हो सका । यहां यह बात स्मरणीय रखने की है कि न तो सूफी मतवाद और न योगमार्गीय निर्गुण परम तत्व की साधना ही उस विपुल वैराग्य के भार को वहन कर सकी जो बौद्ध संघ के अनुकरण पर प्रतिष्ठित था। देश में पहली बार वर्णाश्रम व्यवस्था को एक अननुभूतपूर्ण विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा था। अब तक वर्णाश्रम व्यवस्था का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। आचार भ्रष्ट व्यक्ति समाज से अलग कर दिए जाते थे और वे एक नई जाति की रचना कर लेते थे[8] जिसे 'राज और समाज' किसी का आदर प्राप्त नहीं था, किन्तु सूफीमत की आड़ में इस्लाम अपनी सहानुभूति का आकर्षण दे रहा था, उसको केवल स्वीकार करने की देर थी । कुछ भारतीय विचारों के आवरण में सूफीमत इस्लाम का पोषक था। कुछ

7-- हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, 1952, पूर्वोक्त, पृ० 99-100

8-- हजारी प्रसाद, कबीर, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1960, पृ० 174-75

भारतीय विचारों के आवरण में सूफीमत इस्लाम का पोषक था। यही कारण था कि हिन्दू-समाज इस्लाम का सामना करता हुआ भी सूफीमत का विशेष विरोधी नहीं था। तत्कालीन निर्गुणोपासना की विरह भावना में जिस तीव्रता का समावेश हुआ वह प्राय: सूफीमत की ही प्रेरणा थी ।[9]

4.7 सूफी मत और गुरु नानक देव

सूफियों की विचारधारा का गुरु नानक पर प्रभाव परिलक्षित होता है जैसे एक ईश्वर में विश्वास, गुरु और शिष्य का महत्व, प्रेम और विरह की चरम सीमा, बाह्य आडम्बर, भेषों इत्यादि में विश्वास न होना, किन्तु इन समानताओं के साथ-साथ असमानताएं भी दृष्टिगोचर होती हैं और वह हैं भी महत्वपूर्ण । सूफीमत उदासीनता का भाव रखता है जबकि गुरु नानक संसार को कर्मक्षेत्र मानते हैं। किसी भी पंजाबी सूफी कवि की रचना में 'निर्गुण' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ। सूफी कयामत के बाद पुण्य-पाप का हिसाब होना मानते हैं, यह सिद्धान्त गुरु नानक के कर्मवाद से मेल नहीं रखता। सूफी काव्य साधना-प्रधान काव्य है जबकि गुरु नानक काव्य विचार प्रधान आध्यात्मिक काव्य है। सूफियों की इश्क-साधना उनकी काव्य चेतना का केन्द्र बनती है, पर गुरु नानक भक्ति पर बल देते हुए भी कर्म और ज्ञान का त्याग नहीं करते । इसके अतिरिक्त गुरू नानक काव्य में मर्यादा का उल्लंघन करने वाली अतिवादी सूफी रुचियों का बहुत ही अभाव है ।

सारांश में कहा जा सकता है कि जिस वातावरण में गुरु नानक रहे, वह इस्लाम का प्रभाव ग्रहण करने के लिए खुला था। महमूद गज़नवी से लेकर बाबर तक के आक्रमणों के लिए पंजाब भारत का प्रवेश द्वार था । इन

9-- सरनाम सिंह शर्मा, 1960, पूर्वोक्त, पृ0 97

आक्रमणकारियों के साथ ही एक नया धर्म, नई संस्कृति और एक नया जीवन ढंग भी आया । सैनिकों और धार्मिक विद्वानों की एक नई धारा ने मध्यकाल के भारतीय जीवन में प्रवेश किया । गुरु नानक के युग में पंजाब भारत के अन्य किसी भाग की अपेक्षा अधिक समय मुस्लिम शासन में रह चुका था। ऐसे ही वातावरण में गुरु नानक ने अपना जीवन व्यतीत किया । फिर यह स्वाभाविक बात थी कि उनके धार्मिक विचारों में कुछ इस्लामी, विशेषतया सूफी प्रभाव के चिन्ह मिलते । अपने आरम्भिक जीवन में गुरु नानक ने फकीरों के साथ पर्याप्त समय बिताया और यह धारणा उचित है कि उन्होंने इन फकीरों से काफी कुछ ग्रहण किया । फिर भी यह समझना उचित नहीं होगा कि गुरु नानक के उपदेशों में इस्लाम का बड़ा अंश था। इनके हिन्दुओं के धार्मिक विचारों के परम्पराओं के अनुसार भी अर्थ निकाले जा सकते हैं । वास्तव में उनका समन्वयवाद साम्प्रदायिकता के विरुद्ध था ।

4.8 नानक वाणी में धर्म का स्वरूप विवेचन

4.8.1 मानवतावादी दृष्टि

गुरु नानक देव सिक्ख धर्म के जन्मदाता थे। उन्होंने जो आदर्श जीवन के सिद्धान्त मनुष्य को दिए उसे आज हम सिक्ख धर्म के नाम से जानते हैं । यह धर्म सबसे अधिक बल एक ईश्वर की भक्ति अर्थात् नाम-स्मरण पर देता है और मनुष्य को निरर्थक विश्वासों तथा कर्मकाण्डों को त्याग कर, उच्च, निर्मल धार्मिक तथा सदाचारिक गुण धारण करके, आचरण को पवित्र रखने की शिक्षा देता है । इसका कार्य क्षेत्र यहीं तक सीमित नहीं बल्कि इसका मनोरथ तो मनुष्य को उसके जीवन क्षेत्रों, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक आदि में उचित मार्गदर्शन करवाना है । अपने इस मौलिक तथा स्वतन्त्र धर्म को प्रचारित करने के लिए गुरु नानक को उस समय के प्रचलित धर्मों का विरोध भी सहना पड़ा, क्योंकि उन्होंने उनके अनुचित कार्यों का बड़े साहस तथा

निर्भयता से खण्डन किया था। प्रत्येक मनुष्य चाहे वह किसी भी धर्म को मानने वाला क्यों न हो उसे उस धर्म की असलीयत का भी अहसास कराया । ऐसे गुरु नानक देव का धर्म मज़हबों, सम्प्रदायों से ऊपर उठकर मानवतावादी भावना तक आ पहुंचता है । प्रत्येक धर्म के मानवीय समझौते के आधार पर गुरु नानक उसकी अपनी पहचान कराते हैं । गुरु नानक ने मनुष्य के बने बनाए चौखटे पर कुछ जड़ने की कोशिश नहीं की बल्कि उन्होंने मानवता पर बल देते हुए मनुष्य को आध्यात्मिक जीवन पद्धति सिखाई ।

4.8.2 धर्म की अवधारणा

जपुजी साहिब में 34वीं पउड़ी धर्म खण्ड कहलाती है । इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि परमात्मा ने रात्रि, ऋतुएं, तिथियों, वार, पवन, जल, अग्नि, पाताल आदि की रचना की । उन सब के बीच पृथ्वी को धर्मशाला[10] रूप में स्थापित किया। इससे भाव यह है कि पृथ्वी धर्मबद्ध है और धर्म आश्रित है । धर्म के नियमानुसार प्रकृति के सारे तत्व अपनी अपनी जगह काम करते हैं और यह अनन्त रूपों में बसा हुआ संसार धर्म के द्वारा ही चल रहा है । इस धर्मखण्ड में कच्चे लोग कर्म की अग्नि में पकाए जाते हैं ।[11] इसके अतिरिक्त धर्महीन स्थिति का वर्णन गुरु नानक रूपकों द्वारा करते हैं। अगर कलियुग एक छुरी है तो राजागण कसाई बन गए हैं और धर्म अपने पंख पर न मालूम कहां उड़ गया है और झूठ की अमावस्या में सत्य का चन्द्रमा कहीं खो गयाहै।[12]

4.8.3 'हुक्म' एवं सृष्टि

जैसे वेदों में 'ऋत' शब्द के अर्थों में प्रकृति के नियमों के लिए प्रयोग

10-- राती रुती थिती वार । पवण पानी अगनी पाताल ...।।
जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 96

11-- कच पकाई ओथै पाइ । -- वही, पृ0 96

12-- कलिकाती राजे कासाई धरमु पंखु करि उडरिआ ...। — वही, पृ0 191

होता है, उसी प्रकार गुरु नानक देव 'हुक्म' शब्द सृष्टि विधान के नियमों के लिए प्रयोग करते हैं। 'हुक्म' ही सृष्टि का मूल कारण है। जैसे कुछ विद्वान् हुक्म से परमात्मा की इच्छा का अर्थ लेते हैं, ऐसे ही गुरु नानक 'हुक्म रजाई' को धर्म के रूप में ग्रहण करते हैं। जगत का प्रसार परमात्मा की इसी इच्छा के द्वारा संचालित होता है। परमात्मा की यह इच्छा ही दूसरे शब्दों में धर्म कहलाती है और परमात्मा की रज़ा के अनुसार, जो अपनी क्रिया शक्ति को मिला देता है वह धर्म का पालन कर रहा होता है --[13]

हुकमि रज़ाई चलणा नानक लिखिआ नालि ।।1।।

अगर मनुष्य जगत के नियमों का पालन न करके उसमें विघ्न डालता है तो वह अधर्मी या ज़ालिम कहलाता है। इससे स्पष्ट है कि प्रकृति के नियमों या मर्यादा में चल कर ही धर्म की स्थापना की जा सकती है।

4.8.4 धर्म एवं सदाचार

गुरु नानक देव ने कई स्थानों पर 'धर्म' शब्द को 'सदाचार' के अर्थों में प्रयुक्त किया है। वह संसार के सब कार्यों से सत्य को ऊंचा मानते हैं, पर सत्य से भी ऊंचा उन्होंने सत्य आचरण को माना है।[14] दूसरों का हक छीनना उनको स्वीकार्य नहीं है। उनका विचार है कि पराया हक मुसलमान के लिए सुअर और हिन्दू के लिए गाय है।[15] गुरु नानक अनुसार कुचज्जी (आचारहीन नाम रूपी आत्मा) अपने पति से बिछुड़ जाती है और

13-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 80

14-- सचुह ओरै सभु को उपरि सचु आचारु ।।5।। -- वही, पृ० 155

15-- हकु पराइआ नानका उसु सूअर उस गाइ ।

-- वही, पृ० 179

जब तक वह सुचज्जी या अच्छे आचार वाली नहीं हो जाती, तब तक इसका परमात्मा रूपी पति से मेल नहीं हो सकता ।[16]

4.8.5 आत्मसाक्षात्कार

धर्म की सबसे बड़ी विशेषता अपनी पहचान है । गुरु नानक देव अपनी पहचान पर बहुत बल देते हैं --

आतम महि रामु राम महि आतमु चीनसि गुर बीचारा ।[17]

अपने आपकी पहचान से ही प्रभु की प्राप्ति सम्भव है । जीव और ब्रह्म की एकता से ही गुरु नानक जीव में ब्रह्म का अस्तित्व मानते हैं ।

4.8.6 सहजावस्था

जैन शास्त्रों में धर्म की यह परिभाषा की गई है कि किसी वस्तु का सहज स्वभाव ही उसका धर्म है ।[18] सहज स्वभाव पर पड़े आवरण को अधर्म कहा जाता है । जैसे लकड़ी का सहज स्वभाव पानी के ऊपर तरना है, परन्तु यदि उसके ऊपर भारा लोहा रख दिया जाए तो वह डूब जाती है। ऐसे ही मनुष्य के भी सहज स्वभाव हैं जैसे सत्य बोलना, चोरी न करना, दूसरों को दु:ख न देना इत्यादि । परन्तु यदि इनके साथ असत्य नामक अवगुण साथ लग जाए तो मनुष्य अपना रास्ता भटक जाता है । इससे सिद्ध होता है जो मनुष्य बाह्य बन्धनों से स्वतन्त्र होकर अपने सहज स्वभाव अनुसार काम करता है, वह धर्म की राह पर चलकर आत्मा के आनन्द को भोगता है । इस प्रकार अपने स्वरूप में स्थिरता ही धर्म की सबसे बड़ी देन है।

16-- मंनु कुचजी अंमावणि डोसड़े हउ किउ सहु रावणि जाउ जीउ ....।
जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 450

17-- वही, पृ० 698

18-- प्रीतम सिंह, पहिली पातशाही श्री गुरु नानक देव जी (पंजाबी), लुधियाना : पंजाबी भवन, 1969, पृ० 386

गुरु नानक वाणी में सहज प्रवृत्तियाँ सम्बन्धी अनेक उदाहरण मिलते हैं। सहजावस्था की स्थिति जब मनुष्य को प्राप्त हो जाती है फिर उसे चिन्ता नहीं रहती क्योंकि परमात्मा के दरबार में उसे प्रतिष्ठा मिलती है।[19] सहज-सम्बन्धी उक्तियों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण सप्तम् अध्याय में किया जाएगा।

4.8.7 नैतिकता

आजकल धर्म के स्थान पर नैतिकता को विशेष महत्व दिया जा रहा है। धर्म नीतियाँ जब मनुष्य को अपने आप से अवगत कराएं या प्रभु-प्राप्ति की ओर प्रेरित करें तब ही उनका महत्व स्वीकार किया जा सकता है। हर युग के परिवर्तन के साथ-साथ चाहे धर्म के उद्देश्य वही रहें पर धर्म नीतियों में देश और काल के अनुसार परिवर्तन होना आवश्यक है। जो पुरानी धर्म नीतियाँ हैं, उनका इतना महत्व नहीं है। जैसे कि ज्ञान, भक्ति और कर्म आदि किसी एक में जब धर्म नीतियों का झुकाव हो जाता है, तभी इतिहास में उथल-पुथल होने लगती है। बुद्ध के समय में बढ़ते हुए कर्मकाण्ड प्रति क्रान्ति हुई और ज्ञान को धर्मनीति में उच्च स्थान दिया गया। ऐसे ही ज्ञान के अकेले निवृत्ति मार्ग को छोड़ कर भक्ति मार्ग, परवर्ती मार्ग आदि ने धर्म नीतियों में नया मोड़ लाया है। गुरु नानक ज्ञान भक्ति और कर्म आदि धर्म नीतियों में सन्तुलन पैदा करते हैं। यह सन्तुलन मानवीय जीवन में आध्यात्मिक और सामाजिक तालमेल लाकर किया गया है। उदाहरण के लिए जपुजी साहिब में ज्ञान खण्ड, कर्मखण्ड आदि खण्डों में व्याख्या करके इनके तालमेल का महत्व दिखाई देता है। ज्ञानखण्ड में परमात्मा की शक्तियों के ज्ञान का वर्णन है जो मानसिक मण्डल है, इसमें कई ब्रह्मा, देवता, चन्द, सूर्य और सिद्ध अनन्त सृष्टि की रचना करते हैं। परन्तु हरेक कर्म का अन्तिम अनुभव ज्ञान में

19-- सहजे सहजु मिलै सुखु पाईऐ दरगह पैधा जाए ॥4॥
--जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 800

परिवर्तित हो जाता है, जिसका कोई अन्त नहीं। इसलिए वेदों में भी नेती-नेती (अनन्त) कहकर ज्ञान की महिमा दर्शायी गई है।

4.8.8 धर्म : वास्तविक एवं कर्मकाण्डी

कर्मखण्ड अर्थात् जपुजी की 34वीं और 37वीं पउड़ीयों में महाबली शूरवीरों का निवास माना है, जिनमें राम ही समाया है। सरम खण्ड में लज्जा, मान, प्रतिष्ठा का महत्व बताया गया है जिसमें स्मृति, मन, बुद्धि की रचना होती है। सच खण्ड में निरंकार परमात्मा का वास बताया गया है। यह सच खण्ड वह हुक्म अथवा धर्म है जो जगत के प्रसार में नियम के अनुसार सम्बन्ध रखता है। इस विवेचन में धर्मखण्ड को सबसे पहले रखा गया है तथा धर्म ही प्रकृति के सारे नियमों का नियामक दर्शाया गया है और धरती इन सबके आधार रूप में एक धर्मशाला मानी गई है। इसलिए धर्म शेष सारे ज्ञान, कर्मखण्डों में सन्तुलन करके जगत् और जीव को अपनी जगह स्थिर करता है। इसके अतिरिक्त गुरु नानक हिन्दू-मुस्लिम धर्म-नीतियों में जहाँ-जहाँ भी अन्तर वर्णित है या अन्तर-विरोध है, उसका उल्लेख करते हैं तथा वास्तविक धर्म नीतियों की ओर प्रेरित करते हैं। हिन्दू चौके में बैठकर छूआछात का ध्यान रखते हैं पर मुसलमानों का कलमा पढ़-पढ़ कर हलाल किया बकरा खाते हैं। हिन्दू गाए और ब्राह्मण से कर लेते हैं फिर स्वयं ही गाय के गोबर के बल पर संसार सागर से पार भी उतरना चाहते हैं।[20] इसलिए गुरु नानक के पाखण्ड छोड़कर सच्चा नाम-स्मरण का उपदेश देते हैं। ऐसे ही नमाज पढ़ने वाले काज़ियों पर करारा व्यंग्य किया है, जो मनुष्य को खाने वाले हैं और रिश्वत खोर हैं, ये असत्यभाषी हैं और ~~मम~~ शर्म-धर्म दोनों इनसे दूर हैं।[21]

20-- गउ बिरहामण कउ करु लावहु गोबरि तरणु न जाई .... ।
जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 348

21-- वही, पृ0 348

इससे सिद्ध होता है कि गुरु नानक धर्म-नीतियों के बाह्य पक्ष दिखावे वाली रूढ़ियों की जगह धर्म के आन्तरिक पक्ष पर विशेष बल दिया है । उन्होंने जिस धर्म का प्रचार किया है, उसमें मनुष्य को वह गुण अपनाने के लिए प्रेरित किया है जिनसे मानवता का कल्याण हो तथा भाई चारे की भावना, सहनशीलता, विनम्रता और सद्‌गुणों का प्रसार हो सके ।

4.9 समाहार

गुरु नानक देव मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य की सन्त परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है । वैश्विक स्तर पर होने वाले मध्यकालीन लोकजागरण तथा लौकिक क्रान्ति का प्रभाव ग्रहण करते हुए भी उनकी विशिष्टता कायम रहती है । क्लासिकी भारतीय महानता और गरिमा का उन्हें ज्ञान था। यही कारण है कि बाद में उन्होंने क्लासिकी मूल्य-व्यवस्था और जीवन-व्यवस्था के ह्रास को भी अनुभव किया । पर मध्यकाल के मुख्य मतवादी, धार्मिक और साम्प्रदायिक प्रतिक्रियात्मक रूपों से वह अपनी विशिष्टता बनाए रखते हैं । सन्तमत अपने भक्ति, श्रद्धा, प्रेम आदि सद्‌गुणों के होते हुए भी धर्म की बाह्यरूपिता में खण्डनात्मक रुख अपनाता है । उसके पूर्ववर्ती नाथपंथ, सिद्ध तथा तान्त्रिक सम्प्रदाय तो लोक के अभ्युदय की महत्वपूर्ण भूमिका निर्माण करने के बाद भी व्यवहारत: गुह्य, असामाजिक तथा जादू-टोने आदि से मस समन्वित साधनाओं और रूढ़ियों का रूप धारण कर चुके थे । सूफी साधकों में आत्मा और परमात्मा के आध्यात्मिक विलास वर्णन का ऐसा चित्र खिंचा, नख-शिख का ऐसा चिन्तन हुआ कि जन-साधारण के लिए आध्यात्मिक पक्ष गौण और भौतिक पक्ष प्रधान हो गया। उनका रूपक इतना अव्यक्त था, रहस्यवाद इतना जटिल तथा आध्यात्मिक संकेत इतने सूक्ष्म थे, जिससे साधारण बुद्धि वाले पाठक विलास की ओर ही अधिक अभिप्रेरित होते थे । सम्भवत: गुरु नानक की दूरदर्शी प्रतिभा ने इस तथ्य को पहचान लिया था। उन्होंने युग की नाड़ी पहचान कर, तदनुरूप उसका निदान किया ।

उन्होंने समसामयिक परिस्थितियों का गहन मनन और चिन्तन किया। उन्होंने समय और परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुसार अपनी वाणियों द्वारा पीड़ित मानवता का उद्धार करने का प्रयास किया। गुरु नानक का भारतीय तथा विशेष रूप में हिन्दी साहित्य पर जो प्रदाय और उपकार है उसे सहज ही बताया नहीं जा सकता। वह मानव-जाति के उद्धार के लिए अपनी बहुमूल्य साहित्य निधि छोड़ गये हैं। नानक वाणी में धर्म की बाह्यरूपिता के सन्दर्भ में कटु वाक्य है तो, किन्तु औषधि का घूंट कड़वा ही होता है। गुरु नानक का भारतीय मध्यकालीन संस्कृति की एकता को बनाए रखने का प्रयास सराहनीय है। भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् वर्तमान समय में जिन आदर्शों को स्थापित करने का प्रयास हो रहा है, उनका आरम्भिक स्वरूप नानक वाणी में सहज देखा जा सकता है। नि:सन्देह मध्यकालीन लोकजागरण की पृष्ठभूमि ठिका में यही तत्व गुरु नानक की महनीय समन्वयात्मक तथा सृजनात्मक देन के रूप में मान्य है।

पंचम अध्याय

गुरु नानक वाणी : ब्रह्म तथा जीव का सन्दर्भ

गुरु नानक काव्य की धर्म-परिकल्पना के अन्तर्गत पिछले अध्याय में मध्ययुगीन लोक जागरण का वर्णन-विश्लेषण हुआ है, जिसमें सामाजिक सन्दर्भ और गुरु नानक देव की विशिष्टता को रेखांकित किया गया है। निराकार उपासना का ऐतिहासिक सन्दर्भ, परम्परित भारतीय मत-सम्प्रदाय और गुरु नानक देव तथा भारत में सूफी साधना और नानकवाणी में धर्म के स्वरूप आदि के सन्दर्भों में भी विवेचन हुआ है। प्रस्तुत अध्याय में गुरु नानक वाणी का ब्रह्म तथा जीव के सन्दर्भ में परमात्मा सम्बन्धी अवधारणा, सत्यनाम की महिमा, जीव सम्बन्धी अवधारणा, ईश्वर के प्रति विश्वास एवं प्रभु-कृपा आदि उपशीर्षकों में विवेचन-विश्लेषण अपेक्षित है।

5.1 परमात्मा सम्बन्धी अवधारणा

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त (1 । 90) में बताया गया है कि सृष्टि के सारे लोग नक्षत्र देवी-देवता, जड़-चेतन, समस्त पदार्थ एक ऐसे पुरुष का अंग हैं जो सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त तथा उससे बाहर भी विद्यमान है। यह अद्वैत की पहली अनुभूति कही जा सकती है। पुरुष के अतिरिक्त ऋग्वेद

में परम तत्व को नाम-रूपात्मक जगत से अलग अव्यक्त और निर्गुण, परम सत्य और मूल तत्व रूप में भी चित्रित किया गया है तथा नकारात्मक शैली द्वारा उसे सत्य, असत्य एवं अनिर्वचनीय दर्शाया गया है।[1] उपनिषदों में ब्रह्म का पूर्ण रूप में वर्णन हुआ है। ब्रह्म के व्यक्त, अव्यक्त, निर्गुण, निराकार, अजन्मा, अकर्ता आदि स्वरूप दर्शाए गए हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् (3 । 1) में सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, गति, पालन, स्थिति और नाश के कारण को 'ब्रह्म' कहा गया है।[2] श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार ब्रह्म तीन प्रकार का है -- भोक्ता, भोग्य तथा प्रेरिता। इस उपनिषद् का सारा प्रतिपाद्य भक्ति, भोग्य तथा प्रेरिता को इस त्रिपुटी के आसपास ही चक्कर लगाता है। भोक्ता, जीवात्मा है, भोग्य प्रपंच है और प्रेरयिता स्वयं परमात्मा ही है।[3] श्रीमद्भगवतगीता में ब्रह्म के व्यक्त, अव्यक्त तथा व्यक्ताव्यक्त आदि स्वरूपों का वर्णन है, यथा ---

> 'सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवार्जितम् ।
> असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ।।' 14 ।।[4]

वह सब भूतों के बाहर है और भीतर भी है, वह चराचर है, सूक्ष्म और अविज्ञेय है तथा दूर होकर भी निकट है --

> 'बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
> सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्ति के च तत् ।। 15 ।।[5]

1-- रामजी लाल (सहायक), कबीर दर्शन, लखनऊ विश्वविद्यालय, 1962 ई०, पृ० 119

2-- छान्दोग्यउपनिषद् (शांकरभाष्य सहित) गोरखपुर : गीता प्रेस, सं० 2011 वि०, (3 । 14 । 1)

3-- तुलसीराम शर्मा, श्वेताश्वतरोपनिषद, दिल्ली, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 1976, पृ० 17

4-- सहजानन्द सरस्वती, पूर्वोक्त, पृ० 93

5-- वही, पृ० 793

भारत में बुद्ध के उपदेशों के प्रचार के समय बहुत से लोगों ने यह प्रश्न किया---`आप कौन हैं ?` और, जब स्वयं बुद्ध के पास लोग अपना प्रश्न लेकर गए, तब जो उत्तर उन्होंने दिया, वह उनके सम्पूर्ण उपदेशों का सार है। उन्होंने पूछा --`क्या आप ईश्वर हैं ?` `नहीं`। `देवदूत है ?` `नहीं।` `साधु है?` `नहीं।` `तब आप क्या हैं?` गौतम बुद्ध ने कहा मैं बुद्ध हूं। यही उत्तर उनका नाम बन गया। बौद्ध धर्म एक ऐसे व्यक्ति से आरम्भ होता है जो जड़-अवस्था से चेतन अवस्था में आया।[6] जैन विचारधारा के सम्बन्ध में कहा जाता है कि चौबीस आध्यात्मिक नेताओं ने इस धर्म का उपदेश दिया, जिन्हें तीर्थंकर कहा जाता है। इनके नाम हैं--- ऋषभनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदनाथ, सुमितनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभ, पुष्पदंत (सुविधिनाथ), शीतलनाथ, श्रीयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और महावीर। जैन परम्परा के अनुसार जैन धर्म का उद्भव ऋषभनाथ से हुआ। इन्हें आदि नाथ भी कहा जाता है। भागवत्पुराण भी इस बात का समर्थन करता है कि ऋषभनाथ जैनमत के संस्थापक थे। इन चौबीस तीर्थंकरों में ऋषभनाथ और महावीर के नाम सबसे अधिक सम्मान के साथ लिए जाते हैं। जैन लोग `जिन` के अनुयायी कहे जाते हैं। `जिन` का अर्थ है विजेता। यह उपाधि महावीर को दी गई थी।[7]

न्याय-वैशेषिक दर्शनों में ईश्वर-सम्बन्धी चर्चा संदिग्ध है। इनके अनुसार ईश्वर जगत् का कर्ता व सर्वज्ञ, चेतन-तत्त्व, जगत् का आधार, वेदों का रचयिता है। इसी केप्रेरणा से परमाणु में क्रिया होती है और फिर

6-- प्रभाकर माचवे, सुरेन्द्रनारायण दफ्तुआर, विभिन्न धर्मों में ईश्वर कल्पना, पटना : बिहार ग्रन्थ अकादमी, 1974, पृ0 11

7-- वही, पृ0 22

परमाणु-- संयोग से सृष्टि-रचना होती है ।[8] सांख्यदर्शन का कहना है --- 'सामान्य पदार्थ को प्रत्यक्ष के द्वारा, तथा अतीन्द्रिय को अनुमान के द्वारा, परन्तु जो इन दोनों कोटियों से भिन्न है उसके लिए तो श्रुति-वाक्यों से ही सिद्ध किया जाता है ।'[9] पातंजल योग दर्शन का उल्लेख है ---' क्लेश, कर्म, विपाक और आशय इन चारों से जो सम्बन्धित नहीं है तथा जो सब पुरुषों से उत्तम है, वह ईश्वर है ।'[10] वेदान्त में ब्रह्म की स्पष्ट कल्पना हुई है । शंकर का कथन है --'जिसका स्वरूप सदा सर्वदा अखण्ड रूप में एक ही सा बना रहे, वही पारमार्थिक सत्ता हो सकती है ।'[11]

विशिष्टाद्वैत दर्शन के अनुसार तीन नित्य और स्वतन्त्र पदार्थ हैं -- परमात्मा (ईश्वर), चित (जीव) और अचित (प्रकृति)। परमात्मा चित (जीव) और अचित (जड़-प्रकृति) दोनों तत्वों से युक्त है, उनमें विद्यमान है । वह अंगी (अंशी) और जीव तथा प्रकृति उसके अंग (अंश) हैं ।[12] द्वैताद्वैत मत अनुसार परमात्मा अविद्या, राग, द्वेष, अस्मिता, अभिनिवेश इन पांच दोषों से भिन्न है । यह अन्य पदार्थों से भिन्न तथा अभिन्न दोनों हैं । इसी से इसे द्वैत भी और अद्वैत भी दोनों ही कहा जाता है । ब्रह्म सगुण है, निर्गुण नहीं। यह सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक है । अपने भक्तों की रक्षार्थ अवतार धारण करता है ।[13] शुद्धाद्वैत दर्शन में ब्रह्म ही एकमात्र तत्व है । व्यवहार दशा में सभी वस्तुएं ब्रह्मस्वरूप मानी जाती हैं । माया भगवान की शक्ति है । शक्ति और ब्रह्म में अभेद है । निराकार, सच्चिदानन्द तथा सर्वशक्तिमान, सामर्थ्यवान

8-- रामजी लाल 'सहायक', पूर्वोक्त, पृ0 122

9-- वही, पृ0 22

10-- पातंजल, योगदर्शन, 1 । 27

11-- रामजी लाल 'सहायक', पूर्वोक्त, पृ0 122

12-- धीरेन्द्र वर्मा (सं0), सं0 2020, पूर्वोक्त, पृ0 723

13-- वही, पृ0 350

ब्रह्म बिना किसी निमित्त के अपने अंश से, धर्म रूप से, क्रिया रूप से तथा प्रपंच से देख पड़ता है । संगम लाल पाण्डे के अनुसार इस ब्रह्म के तीन रूप हैं -- पारब्रह्म या पुरुषोत्तम अन्तर्यामी और अक्षर ब्रह्म । इनमें पहला ब्रह्म का आधिदैविक और तीसरा आध्यात्मिक रूप कहे जाते हैं ।[14] द्वैतदर्शन अनुसार परमात्मा अनन्त गुणों से परिपूर्ण है। वह उत्पत्ति, स्थिति, संहार, नियमन, ज्ञान, आवरण, बन्धन और मोक्ष का कर्ता है । वह जीव, जड़ और प्रकृति से अत्यन्त विलक्षण है ।[15] वह एक होकर भी नाना रूप धारण करता है ।

5.1.1 गुरु नानक वाणी : ब्रह्म के सगुण स्वरूप की नवीन उद्भावना

गुरु नानक देव के आगमन के समय प्रभु के बारे में दो विचार प्रचलित थे । पहला विचार था कि प्रभु शरीर धारण करके देवताओं के रूप में इस संसार में आता है । इसी विचार के अधीन गीता में इस सिद्धान्त पर विशेष बल दिया गया है तथा वेदों में देवताओं की स्तुति में मन्त्र उच्चारित किए गए हैं । दूसरे विचार के अनुसार प्रभु का कोई शरीर नहीं है अर्थात् वह निर्गुण है । उपनिषदों में भी यह विचार दिया गया है कि प्रभु इस संसार से दूर है और उसका कोई शरीर नहीं है । गुरु नानक देव मुख्यत: प्रभु के निर्गुण स्वरूप का ही कथन करते हैं । कहीं-कहीं ईश्वर के सगुण स्वरूप की भी नानक वाणी में बिल्कुल नवीन अर्थों में व्यंजना प्राप्त होती है । सांख्यवादी सृष्टि रचना में प्रकृति का बहुत बड़ा हाथ मानते हैं । उनका कहना है कि बिना प्रकृति की सहायता के सृष्टि-रचना हो ही नहीं सकती । परन्तु गुरु नानक देव ने स्पष्ट रूप से इस बात को माना है कि 'निर्गुण ब्रह्म' ने बिना किसी

14-- धीरेन्द्र वर्मा (सं0), सं0 2020, पूर्वोक्त, पृ0 767

15-- बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, वाराणसी : शारदा मन्दिर, 1971, पृ0 402-403

आलम्बन के अपने-आपको सगुण रूप में प्रकट किया --

> आपे करता पुरखु विधाता । जिनि आपे आपि उपाइ पछाता ।।
> आपे सतिगुरु आपे सेवकु आपे स्रसटि उपाई है ।। 1 ।।[16]

अर्थात् प्रभु आप ही कर्तापुरुष, सृष्टि रचयिता, सेवक तथा सद्गुरु है । उसने समस्त जगत् को उत्पन्न करके सब प्राणियों को अपने अपने धन्धे में लगा दिया है --

> आपि उपाइआ जगतु सबाइआ । जिनि सिरिआ तिनि धंधै लाइआ।।5 ।।[17]

परमात्मा इस सृष्टि को उत्पन्न करके उसकी देख-भाल स्वयं करता है --
सम उपाईअनु आपि आपे नदरि करे ।[18]

प्रभु के विराट्स्वरूप का गुरु नानक देव ने स्थान-स्थान पर चित्रण किया है। उस विराट्स्वरूप के चित्रण में प्रभु का सगुण स्वरूप व्यंजित है। उदाहरणार्थ --

> गगन मै थालु रवि चन्दु दीपक बने
> तारिका मंडल जनक मोती ।
> धूपु मल आन लो, पवणु चवरो करे,
> सगल बन राइ फूलंत जोती ।।[19]

जिस प्रकार निर्गुण ब्रह्म अनन्त है और उसका कथन नहीं किया जा सकता, उसी

16-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 620

17-- वही, पृ0 612

18-- वही, पृ0 370

19-- वही, पृ0 416

प्रकार सगुण ब्रह्म का विराट् स्वरूप भी कथन की सीमा से परे है । तभी गुरु नानक देव ने (जपुजी) में कहा है --

अंतु न जापै कीता आकारु । अंतु न जापै पारावारु ।।
अंत कारणि केते बिललाहि । ता के अंत न पाए जाहि ।।
एहु अंतु न जाणै कोइ । बहुता कहीऐ बहुता होइ ।।24 ।।[20]

गुरु नानक वाणी में कई स्थानों पर परमात्मा को सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामिन्, भक्त-वत्सल, दाता, पतितपावन, परमकृपालु, सर्वप्रेरक, सहायक, सखा, माता-पिता, स्वामी, शीलवन्तु, शरणदाता आदि विशेषणों से युक्त कर उसके सगुण स्वरूप को अभिव्यक्त किया गया है । उन्होंने स्थान-स्थान पर अवतारवाद का खण्डन किया है। यथा--

(i) मन महि झूरै रामचंदु सीता लछमण जोगु ।[21]
(ii) आगै अंतु न पाइओ ताका कंसु छेदि किआ वडा भइआ ।।3।।[22]

सृष्टि का रचयिता प्रभु सृष्टि उत्पन्न करके स्वयं ही उसमें व्याप्त हो रहा है --
'सृसटि उपाइ रहे प्रभ छाजै ।'[23]

दादू भी गुरु नानक की तरह परम तत्व ब्रह्म को सर्वत्र समाया हुआ मानते हैं ---
'दादू देखू दयाल कूं, सकल ररहा भरपूरि ।
रोम रोम मैं रमि रह्या, तू गिनि जाने दूरि ।।[24]

रविदास ने भी कुछ ऐसा ही कहा है --
रविदास हमारो राम तो, सकल रह्यो भरपूरि ।
रोम रोम महि रमि रह्यो, राम मसूक न दूरि ।।2।।[25]

20-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 90
21-- वही, पृ0 811
22-- वही, पृ0 251
23-- वही, पृ0 626
24-- परशुराम चतुर्वेदी, दादू दयाल ग्रन्थावली, वाराणसी : ना0 प्र0 सभा, सं0 2023, पृ0 50
25-- पृथ्वीसिंह आज़ाद, रविदास दर्शन, (श्रीगुरु रविदासजी की साखियां), (क्रमशः)

गुरु नानक कहते हैं -- सृष्टि को पैदा करने वाला सारा कार्य-भार संभालता है --

आपे करे कराए करता जिनि एह रचना रचीऐ । 7 ।।[26]

अन्य देवी-देवताओं में भटकने अथवा विश्वास करने की अपेक्षा गुरु नानक ने एक ईश्वर की कल्पना की --

साहिबु मेरा एको है । एको है भाई एको है ।। 1 ।। रहाउ ।।[27]

यह बात उपनिषदों में भी पाई जाती है । इस्लाम का एकेश्वरवाद तो प्रसिद्ध ही है ।

एक ईश्वर की परिकल्पना करते हुए कबीर ने भी कहा है --

हमारे राम रहीम करीमा कैसो , रांम सति सोई ।

बिसमिल मेटि बिसंभर एकै और न दूजा कोई ।। टेक ।। 9 ।।[28]

गिरिधर गोपाल के बिना मीरां ने भी दूसरा किसी को नहीं माना --

म्हारां री गिरधर गोपाल दूसरा णा कूयां । 1 ।।[29]

5.1.2 गुरु नानक वाणी : निर्गुण ब्रह्म

गुरुनानक वाणी में ब्रह्म को निराकार स्वीकार किया गया है । अपने मूलमन्त्र में गुरु नानक ने परमात्मा के स्वरूप की परिभाषा इन शब्दों में दी है --

---

(पूर्व पृष्ठ से)

चण्डीगढ़ : श्री गुरु रविदास संस्थान, 1973, पृ0 2

26--जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 796

27--वही, पृ0 250

28-- सीताराम चतुर्वेदी, कबीर-संग्रह, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1971 ई0, पृ0 64

29-- भगवान दास तिवारी, मीरां की प्रामाणिक पदावली, इलाहाबाद : साहित्य भवन, 1974, पृ0 127

"1 ओं सतिनाम करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ।।"[30]

उपर्युक्त वाणी सिक्खों का मूलमन्त्र है । इस वाणी में समस्त गुरुओं का आध्यात्मिक सिद्धान्त वर्णित है । इसका अर्थ इस प्रकार है -- वह शक्ति एक है । ओंकार स्वरूप है, सत्यनाम वाली है, करतार है, आदि पुरुष है, भय तथा वैर से रहित है । उस शक्ति पर समय अथवा काल का प्रभाव नहीं पड़ता । वह जन्म से मुक्त है । स्वयंभू है, उसका प्रकाश अपने आप से ही है, गुरु कृपा द्वारा ही उसे जाना जा सकता है । इससे मिलती-जुलती बात गुरु नानक राग सोरठि में करते हैं । यहाँ उन्होंने परमात्मा को अलख, अपार, अगम तथा अगोचर कहा है । वह काल रहित तथा इन्द्रियों के भय से रहित है । कर्म-सिद्धान्त उस पर लागू नहीं होता। वह जन्म-मरण से भी मुक्त है और उसकी कोई जाति भी नहीं । मोह और भ्रम भी उसमें नहीं है --

अलख अपार अगंम अगोचर ना तिसु कालु न करमा ।
जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिसु भाउ न भरमा ।। 1 ।।[31]

गुरु नानक देव कहते हैं कि अरबों साल पहले अन्धकार ही अन्धकार था। उस समय न पृथ्वी थी, न आकाश, प्रभु का हुक्म मात्र था। न दिन था, न रात थी, चन्द्रमा और सूर्य नहीं थे, प्रभु शून्य समाधि लगाए बैठा था। उस समय जीवों की चार खानियां (अंडज, जेरज, स्वेदज और उद्भिज), बाणी, पवन, पानी, उत्पत्ति, विनाश, आवागमन, खंड, पाताल, सात समुन्दर, नदी, स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, पाताल, दोजख, जन्नत, काल, नरक, स्वर्ग, जीवन, मृत्यु, आना-जाना, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नारी, पुरुष, जात, जन्म, दुःख, सुख, यती, सती, वनवासी, सिद्ध, साधिक, सुखवासी, योगी, जंगम, वेश, नाथ, जप, तप, संयम, व्रत, पूजा, शौच (पवित्रता), तुलसी, माला,

---

30-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 79

31-- वही, पृ० 392

गोपी, कान्ह (कृष्ण), गऊ, ग्वाला, तन्त्र-मन्त्र, पाखण्ड, बाँसुरी, कर्म, धर्म, माया, ममता, निन्दा, स्तुति, जीवजन्तु, गोरखनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, ज्ञान, ध्यान, कुल, उत्पत्ति, गिनतियाँ, वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, देवता, मन्दिर, गौ, गायत्री, होम, यज्ञ, तीर्थ, स्नान, पूजा, मुल्ला, काजी, शेख, हाजी, प्रजा, राजा, अहंकार, दुनिया, कहना-कहलाना, भाव, भक्ति, शिव, शक्ति, साजन, मीत, रक्त, वीर्य, वेद, कतेब, स्मृति, शास्त्र, पाठ, पुराण उदय, अस्त कुछ भी नहीं था। केवल एक प्रभु अपने-आप में लीन था, उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था । यथा --

अरबद नरबद धुंधूकारा । धरणि न गगना हुकमु अपारा ।।

-- -- -- -- --

कहता बकता आपि अगोचरु आपे अलखु लखाइदा ।। 13 ।।[32]

'सुखमनी साहिब' में गुरु अर्जुन देव ने निर्गुण ब्रह्म के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है --- जब निराकार, अदृश्य, अवर्ण, अरेख, अविनाशी, अव्यक्त, अगोचर, निरंजन, निरंकार, अछल, अछेद, अभेद, एकमात्र निर्गुण ब्रह्म था, तब पाप-पुण्य, हर्ष-विषाद, मोह-मुक्त, बंधन-मोक्ष, नरक-स्वर्ग, अवतार शिव-शक्ति, निर्भय-भयभीत, जन्म-मरण, मान-अभिमान, छल-प्रपंच, क्षुधा-पिपासा, वेद-कतेब, शकुन-अपशकुन, चिन्ता-अचिन्ता, श्रोता-वक्ता आदि द्वैत भावों के लिए कोई भी स्थान नहीं था, क्योंकि निर्गुण ब्रह्म स्वयं में ही प्रतिष्ठित था--

जब अकारु इहु कछु न द्रिसटेता । पाप पुंन तब कह ते होता ।।
जब धारी आपन सुंन समाधि । तब बैर बिरोध किसु संगि कमाति ।।
जब इस का बरनु चिहनु न जापत । तब हरख सोग कहु किसहि बिआपत।।
जब आपन आप आपि पारब्रह्म । तब मोह कहा किसु होवत भरम ।।

32-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 645-46

आपन खेलु आपि वरतीजा । नानक करनैहारु न दूजा ।।1।।
जब होवत प्रभ केवल धनी । तब बंध मुकति कहु किस कउ गनी ।।
जब एकहि हरि अगम अपार । तब नरक सुरग कहु कउन अउतार ।।[33]

गुरु नानक देव निर्गुण ब्रह्म की इस स्थिति को पूर्ण रूप से समझते थे । निर्गुण ब्रह्म का वर्णन करते हुए उन्होंने `जपुजी` के प्रारम्भ में कहा है --

सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि ।[34]

अर्थात् परमात्मा के सम्बन्ध में लाखों बार सोचने का प्रयास करने पर भी, सोचते बनता नहीं है ।

उसके माता-पिता, पुत्र, भाई कोई भी सम्बन्धी नहीं है । उसमें काम भावना नहीं है और न ही उसकी कोई स्त्री है । वह कुलरहित निरंजन है । सर्वत्र उसकी ज्योति विद्यमान है--

ना तिसु मात पिता सुत बंधव ना तिसु कामु न नारी ।
अकुल निरंजन अपर परंपरु सगली जोति तुमारी ।। 2 ।।[35]

प्रभु का अन्त पाना मुश्किल है। परमात्मा वास्तव में भेद-अभेद-- दोनों से रहित है । परमात्मा निर्गुण भी है, सगुण भी है, निराकार भी है, साकार भी है, व्यक्त भी है, अव्यक्त भी है और इन सबसे रहित तथा विलक्षण भी । जहां मन-बुद्धि नहीं पहुंच सकते, परमात्मा वहां भी है और परमात्मा को लक्ष्य बनाकर मन बुद्धि से हम जिस किसी भी स्वरूप की धारणा

33-- अर्जुनदेव,सुखमनी साहिब, अमृतसर : चतरसिंह जीवनसिंह,पृ0 439-40
34-- जयराम मिश्र, स0 2018, पृ0 79
35-- वही, पृ0 392

करते हैं, परमात्मा वहां भी है ।[36] गुरु नानक कहते हैं मैं ऐसे परमात्मा पर बलिहारी जाता हूं --

बलिहारी कुदरति वसिआ तेरा अंतु न जाई लखिआ ।। 1 ।। रहाउ ।।[37]

कर्म, धर्म सब प्रभु के हाथ है। उसका भण्डार अक्षय है । वह दयालु है और अपनी कृपा के अनुसार प्राणियों को अपने में मिला लेता है --

करमु धरमु सचु हाथि तुमारे । बेपरवाहु अखटु भंडारे ।।
तू दइआलु किरपालु सदा प्रभु आपे मेलि मिलाइदा ।। 14 ।।[38]

गुरु नानक ने प्रभु को पूर्ण पुरुष कहा है। एक सत्य-सनातन, असीम, अनन्त, विज्ञानानन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण है । ~~इसनउ~~ उनके सिवा न तो कुछ है, न हुआ और न होगा। उन पर-ब्रह्म का ज्ञान भी उन परब्रह्म को ही है, क्योंकि वे ज्ञानस्वरूप ही है । उनके अतिरिक्त और जो कुछ भी प्रतीत होता है, सब कल्पनामात्र ही है ।[39] गुरु नानक कहते हैं कि गुरु की शिक्षा द्वारा जो व्यक्ति प्रभु को जानता है, वह उसमें समा जाता है --

पूरे का किआ सभ किछु पूरा घटि वधि किछु नाही ।
नानक गुरमुखि ऐसा जाणै पूरे मांहि समांही ।। 32 ।।[40]

प्रभु की आन्तरिक ज्योति संसार के सभी प्राणियों के अन्तर्गत व्याप्त

36-- साधुराम सुखदास, जीवन का कर्तव्य, गोरखपुर : गीता प्रेस, सं0 2040, पृ0 141

37-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 342

38-- वही, पृ0 641

39-- जयदयाल गोयन्दका, ध्यान और मानसिक पूजा, गोरखपुर : गीता प्रेस, सं0 2039, पृ0 4

40-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 813

है । प्रभु स्वयं ही भोक्ता और संसार के तीनों लोकों का स्वामी है --

अंतरि जोति भली जग जीवन । सभि घट भोगै हरि रसु पीवन ।।
आपे लैवै आवे देवै तिहु लोई जगत पित दाता है ।। 3 ।।[41]

5.1.3 निर्गुण और सगुण उभय स्वरूप

परमात्मा के निर्गुण और सगुण स्वरूपों के अतिरिक्त गुरु नानक ने उसके उभय स्वरूपों को माना है । उनका विचार है कि ब्रह्म निर्गुण भी है, सगुण भी है । इसके अतिरिक्त वह निर्गुण और सगुण दोनों ही एक साथ है। गुरु नानक देव ने `सिद्ध-गोष्ठी` में कहा है कि परमात्मा ने अव्यक्त निर्गुण से सगुण ब्रह्म को उत्पन्न किया और वह दोनों आप ही है--

अविगतो निरमाइलु उपजे निरगुण ते सरगुण थीआ ।[42]

गुरु अमरदास जी ने इसी बात को पुष्ट करने के लिए स्पष्ट कहा है कि परमात्मा निर्गुण और सगुण स्वरूप अपने आप ही है । जो महान् तत्व को पहचानता है, वही वास्तविक पंडित है --

निरगुण सरगुण आपे सोई । ततु पछाणै सो पंडितु होई ।।
।। 1 ।। 31 ।। 32 ।।[43]

पांचवें गुरु अर्जुन देव ने अनेक स्थलों पर कहा है कि परमात्मा निर्गुण और सगुण दोनों है --

`तूं निरगुन तूं सरगुनी ` ।। 2 ।। 5 ।। 143 ।।[44]

41-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 634

42-- वही, पृ0 541

43-- जयराम मिश्र, श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन, पृ0 94

44-- वही, पृ0 94

गुरु नानक वाणी के अनुसार परमात्मा के स्वरूप के विवेचन में यह देख लिया गया है कि परमात्मा निर्गुण भी है, सगुण भी है तथा निर्गुण और सगुण दोनों ही है। वह निर्भय, निरवैर, अजोनि काल से मुक्त सत्य नाम वाला है। इसके अतिरिक्त ज्योति स्वरूप, निरंजन, सुन्न और अगम-अगोचर, निराकार तथा अनिर्वचनीय है, वह वर्णन का विषय नहीं बन सकता। वह सर्वव्यापक तथा घट-घट वासी होने के साथ-साथ `सच खण्ड` वासी भी है। `सच खण्ड` की कल्पना आध्यात्मिक जगत को गुरु नानक की नवीन और मौलिक देन कही जा सकती है। गुरु नानक ने ईश्वर के प्रति निष्ठा को पूरी तरह दृढ़ करके उसके साथ भावात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लिए हैं। इसलिए उन्होंने परमात्मा को निराकार से साकार बना लिया है परन्तु यह याद रखने योग्य बात है कि जहाँ भी उन्हें ब्रह्म के तात्त्विक विवेचन का अवसर मिला है, वहाँ उन्होंने उसे निर्गुण, निरंजन तथा निर्लिप्त ही कहा है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वह जैसा भी है, बस वैसा ही है, ज्यादा तर्क-वितर्क करना उचित नहीं है। उस पर विश्वास रखना चाहिए। गुरु नानक वाणी के अनुसार उसकी प्राप्ति अनेक प्रकार के साधनात्मक प्रयत्नों के बावजूद गुरु कृपा के बिना असम्भव है।

5.1.4 अकाल पुरुष का सत्य स्वरूप (सत श्री अकाल)

मुण्डक उपनिषद 2-2-8 में ईश्वर के पर और अपर दो रूपों का उल्लेख है। इन्हीं को निरपेक्ष और सापेक्ष रूप कहा जाता है। निरपेक्ष रूप में ईश्वर जगत् और जीव से असम्बद्ध, एकान्त और कूटस्थ है। वह काल्पनिक नहीं, वास्तविक है, जड़ नहीं चेतन है, निरानन्द नहीं, सानन्द है, ससीम नहीं, असीम है। देश और काल दोनों की परिधि से परे है, अनेक नहीं एक है, वह सर्वशक्तिमान है, समस्त अवलम्बनों का अवलम्बन है। वह किसी पर आश्रित नहीं है। वह जो कुछ करता है उस में कोई बाधा नहीं डाल सकता। ईश्वर का सापेक्ष स्वरूप जगत और जीव की दृष्टि से है। जगत् के सम्बन्ध

से वह रचयिता, पालयिता और संहारक है । जगत् को भी वह शून्य से नहीं, प्रथम से विद्यमान प्रकृति के उपादान से बनाता है । जीव के सम्बन्ध में ईश्वर शासक, न्यायी, पिता और भक्तवत्सल है । जीव अपूर्ण है, ईश्वर पूर्ण है। जीव अणु है, ईश्वर विभु है । जीव अल्पज्ञ है, ईश्वर आप्त है। जीव प्रकृति के सम्पर्क से अपवित्र बनता है, परन्तु पवित्र स्वरूप प्रभु के सम्पर्क से पुनः पवित्र हो जाता है । ईश्वर सापेक्ष और निरपेक्ष दोनों ही रूपों में छिपा नहीं है, साधक उसका साक्षात् कर सकते हैं ।[45]

सुकरात सत्य को ही मानता है । जो चीजें मनुष्य के हाथ की हैं, उन्हें देवता पर लादना व्यर्थ है ।[46] प्लैटो के अनुसार ईश्वर शिवम् है । वह कभी कोई बुराई कर ही नहीं सकता । ईश्वर यदि मनुष्य को सजा भी देता है, तो उसे बेहतर बनाने के लिए । ईश्वर राग-द्वेष से परे है । वह अपनी ही प्रतिभा मानव के रूप में बनाना चाहता है । दुनिया जो चलती है, वह संयोग से नहीं, पर ईश्वरेच्छा से । ईश्वर वह अटलास है, जिसके कंधों पर दुनिया टिकी है । तारे भी अपनी गति से नहीं, ईश्वर के गणित के अनुसार चलते हैं ।[47] अरस्तु के अनुसार धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, राजनीति के क्षेत्र असम्बद्ध नहीं, पर अलग-अलग है । कर्म-विपाक मनुष्य के हाथों है, पर शुद्ध चिन्तन का क्षेत्र ईश्वर का है । ईश्वर ही सब कुछ चलता है, पर वह स्वयं अचल है । वह विचारों का विचार है ।[48]

गांधी जी 'ईश्वर सत्य है' की अपेक्षा 'सत्य ही ईश्वर है'

45-- मुन्शीराम शर्मा, भक्ति का विकास, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 1958 ई०, पृ० 4-5

46-- प्रभाकर माचवे, पूर्वोक्त, पृ० 27

47-- वही, पृ० 27-28

48-- वही, पृ० 28

कहना अधिक पसन्द करते थे, क्योंकि उनका कहना था कि ईश्वर का खण्डन किया जा सकता है, लेकिन सत्य का खण्डन नहीं किया जा सकता । वास्तव में गांधी-विचारधारा सत्य की साधना है । सत्य ही उसका लक्ष्य है तथा सत्य की पूजा एवं आराधना के लिए वह संसार के समस्त दु:खों का आलिंगन करने को तत्पर है ।[49] नानक वाणी में ईश्वर के स्वरूप को सत्य माना गया है, इसका वर्णन इसी अध्याय में (परमात्मा सम्बन्धी अवधारणा` के अन्तर्गत मूलमन्त्र में किया गया है। गुरु नानक के सत्य नाम की महिमा का वर्णन आगे किया जा रहा है ।

5.2 गुरुनानक वाणी : सत्यनाम की महिमा

`सत्य` शब्द का शाब्दिक अर्थ है -- यथार्थ, ठीक, वास्तविक, सही, असल ।[50] `सतिनाम` परमात्मा के नाम को ही कहा गया है । जो नित्य, अनश्वर, स्थायी एवं अपरिवर्तनीय है, वही सत्य है । इसका अर्थ यह है कि एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है । गुरु नानक देव जी ने `जपुजी` में कहा है -

आदि सचु जुगादि सचु । है भी सचु नानक होसी भी सचु ।।[51]

अर्थात् वह परमात्मा भूतकाल में सत्यरूप से स्थित था, युगों के प्रारम्भ में भी सत्य रूप से विद्यमान था, वर्तमान काल में भी सत्य है और भविष्य में भी सत्य रहेगा। राग वडहंस में गुरु नानक देव सच्चे प्रभु से सच्चा प्यार मांगते हुए कहते हैं --

सचड़ा साहिबु सचु तू सचड़ा देहि पिआरो ।।[52]

जो व्यक्ति सत्य परमात्मा में अनुरक्त है, उसका सत्य से मेल है --

नानक सचै मेलु सचै रतिआ ।। 8 ।।[53]

49-- प्रभाकर माचवे, पूर्वोक्त, पृ0 86

50-- (सं0) रामचन्द्र वर्मा, संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, पूर्वोक्त, पृ0 671

51-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 79

52-- वही, पृ0 378

53-- वही, पृ0 770

सच्चे गोविन्द (प्रभु) के गुण और नाम सच्चा है --

साचो साचा नाउ गुण गोविंदु है जीउ ।। 1 ।।[54]

गुरु नानक शरीर को कागज़, मन को दवात और जीभ को सत्य लिखने वाली कलम कहते हैं। ऐसा लेखक धन्य है जो हृदय में धारण करके सत्य लिखता है --

काइआ कागदु जे थीऐ पिआरे मनु मसवाणी धारि ।
ललता लेखणि सच की पिआरे हरि गुण लिखहु वीचारि ।।
धनु लेखारि नानका पिआरे साचु लिखै उरिधारि ।। 8 ।।[55]

सच्चा शिष्य सच्चे परमात्मा के सच्चे आसन पर विराजमान होता है --

सचे आसणि सचि रहै सचै प्रेम पिआर ।। 4 ।।[56]

गुरु नानक प्रभु से कहते हैं कि तेरा सच्चा नाम तेरी इच्छा के रूप में मेरे मन में रहता है --

नामु तेरा सदा साचा सोइ मैं मनि भाणा ।। 2 ।।[57]

जिन्होंने सत्य परमात्मा से प्रेम किया है, उनके हिस्से सत्य ही आता है --

सचे सेती रतिआ सचो पलै पाइ ।। 5 ।।[58]

जिन लोगों ने सत्य से साक्षात्कार कर लिया है, वे लोग चारों युगों में सुखी रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों ने अहंकार और तृष्णा को मार कर अपने हृदय में सत्य को ही धारण कर रखा है --

---

54-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 422

55-- वही, पृ0 403

56-- वही, पृ0 140

57-- वही, पृ0 372

58-- वही, पृ0 140

जिनी सचु पछाणिआ से सुखीए जुग चारि ।
हउमै तृसना मारि कै सचु रखिआ उर धारि ।। 6 ।।[59]

गुरु नानक इस तथ्य को निरूपित करते हुए कहते हैं कि सत्य का सौदा करने वाले को सदैव लाभ होता है । सच्ची भक्ति एवं सच्ची अरदास करने वालों को भी ईश्वर प्रतिष्ठा देता है --

साचउ वखरु लादीए लाभु सदा सचु रासि ।
साची दरगह बैसई भगति सची अरदासि ।।
पति सिउ लेखा निबड़ै रामु नामु परगासि ।। 7 ।।[60]

सत्य परमात्मा असत्य से नहीं बल्कि सत्य द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। उसके साथ चित्त लगाकर दोबारा जन्म नहीं लेना पड़ता --

सचि मिलै सचिआस कूड़ि न पाईऐ ।
सचे सिउ चितु लाइ बहुड़ि न आईऐ ।। 2 ।।[61]

सच्चा साधक सत्य परमात्मा से मिलने पर सुख प्राप्त करता है ---

सचु मिलै सचु उपजै सच महि सचि समाइ ।। 4 ।।[62]

गुरु नानक मनुष्य को उदाहरण देकर समझाते हुए कहते हैं कि सत्य रूपी शराब में गुड़ के बदले सच्चे नाम का मीठा पड़ता है --

सचु सरा गुड़ बाहरा जिसु विचि सचा नाउ ।। 2 ।।[63]

59-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 135

60-- वही, पृ0 135

61-- वही, पृ0 299

62-- वही, पृ0 110

63-- वही, पृ0 104

स्पष्ट है ऐसी शराब का स्वाद अत्यन्त मीठा होता है । गुरु नानक के कथनानुसार ईश्वर के बनाए हुए खंड, ब्रह्मंड, लोक, आकार, विचार, दरबार, हुक्म, फरमान, बख्शिश, चिन्ह, जीव, स्तुति, गुणगान, कुदरत सब सच्चे हैं। यथा ---

सचे तेरे खंड सचे ब्रहमंड ।
सचे तेरे लोअ सचे आकार ।।
सचे तेरे करणे सरब बीचार ।।
सचा तेरा अमरु सचा दीबाणु ।।

सच तेरा हुकमु सचा फुरमाणु ।।
सचा तेरा करमु सचा नीसाणु ।।
सचे तुधु आखहि लख करोड़ि ।।
सचै सभि ताणि सचै सभि जोरि ।।
सची तेरी सिफति सची सालाह ।।
सची तेरी कुदरति सचे पातिसाह ।।
नानक सचु धिआइनि सचु ।
जो मरि जंमे सु कचु निकचु ।। 3 ।।[64]

सच्चा परमात्मा निश्चल और शाश्वत है ---
निहचलु एकु सचा सचु सोई ।। 6 ।।[65]

सच्चे परमात्मा के सच्चे गुणों का वर्णन अनन्त भावों में किया जाता है । भगवान सम्पूर्ण धर्म, ऐश्वर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य, त्याग, प्रेम, दया, विनय, करुणा, क्षमा, शान्ति, सत्य, संतोष, सरलता, कोमलता, उदारता, भक्तवत्सलता, धीरता, वीरता, गम्भीरता, निर्भयता,

---

64-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 325

65-- वही, पृ० 235

बुद्धिमता आदि अनन्त गुणों के महान् सागर हैं।[66] गुरु नानक के अनुसार --

साचा साहिबु साचु नाइ भाखिआ भाउ अपारु ।। 4 ।।[67]

सच्चा सौदा करने वाले सत्य को पहचान लेते हैं --

नानक वसतु पछाणसी सचु सउदा जिसु पासि ।। 4 ।।[68]

सच्चा नाम जपने वालों को सच्चे महल में स्थान मिलता है --

सचे दै दरि जाइ सचु चवाइऐ ।।
सचे अंदरि महलि सचि बुलाइऐ ।
नानक सचु सदा सचिआरु सचि समाइऐ ।। 11 ।।[69]

गुरु नानक सत्य बोलने और स्वयं को पहचानने का उपदेश देते हैं --

बोलहु साचु पछाणहु अंदरि ।
दूरि नहीं देखहु करि नंदरि ।। 11 ।।[70]

गुरुवर प्राणी को समझाते हुए कहते हैं कि सत्य को सत्य ही समझना चाहिए --

नानक साचे कउ सचु जाणु ।। 1 ।।[71]

सृष्टि का पालनकर्ता तथा रचयिता सच्चा है। वह स्वयंभू, अलख एवं अपार है --

सचु सिरंदा सचा जाणीऐ सचड़ा परवदगारो ।।
जिनि आपीनै आपु साजिआ सचड़ा अलख अपारो ।। 1 ।।[72]

66-- जयदयाल गोयन्दका, आत्मोद्धार के सरल उपाय, गोरखपुर : गीता प्रेस, सं० 2040, पृ० 25

67-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 81

68-- वही, पृ० 111

69-- वही, पृ० 190

70-- वही, पृ० 620

71-- वही, पृ० 104

72-- वही, पृ० 378

गुरु नानक देव का कथन है कि सच्चे गुरु की सच्ची शिक्षा द्वारा सत्य परमात्मा को परखने से तन-मन शीतल हो जाते हैं --

साचे गुर की साची सीख ।
तनु मनु सीतलु साचु परीख ।। 3 ।।[73]

दिन, रात, चांद, सूर्य, तारागण सब लोप हो जाएंगे, एक सच्चा मुकाम वही है --

ओही एकु है नानक सचु बुगोइ ।। 8 ।।[74]

प्रभु का नाम, महल सच्चा है और उसका नामस्मरण करना ही सच्चा व्यापार है --

तेरा नामु सचा जीउ सबदु सचा वीचारो ।
तेरा महलु सचा जीउ नामु सचा वापारो ।। 4 ।।[75]

सच्चे प्रभु के सच्चे नाम को भूलना गुरु नानक के लिए मुश्किल है --

सो किउ विसरै मेरी माइ ।
साचा साहिबु साचै नाइ ।। 1 ।। रहाउ ।।[76]

सद्गुरु को मित्र बना कर ही मनुष्य सत्य-परमात्मा को प्राप्त कर सकता है -

नानक सतगुरु मीतु करि सचु पावहि दरगह जाइ ।। 4 ।।[77]

73-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 203

74-- वही, पृ0 160

75-- वही, पृ0 243

76-- वही, पृ0 247

77-- वही, पृ0 120, 152

सच्चा ईश्वर सच्चा ही पसन्द करता है --

आपे सचु भावै तिसु सचु ।
अंधा कचा कचु निकचु ।। 1 ।। रहाउ ।।[78]

एक सच्चिदानन्द घन परमात्मा ब्रह्म ही सत्य तत्व है, उनके सिवा सिवा जो कुछ भी प्रतीत होता है, सब अनात्म है, अवस्तु है । उनके सिवा कोई वस्तु है ही नहीं । काल और देश भी उनके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। एकमात्र वही है और उनका वह ज्ञान भी उन्हीं को है । वे नित्य ज्ञानरूप, सनातन, निर्विकार, असीम, अपार, अनन्त, अकाल और अनवद्य परमानन्दमय है । वे सद्सद् विलक्षण अचिन्त्यानन्दस्वरूप है ।[79] गुरु नानक ने प्रभु को सत्य घोषित करते हुए कहा --

साचा सचु सोई अवरु न कोई । 1 ।।[80]

गुरु नानक की तरह दादू भी एकमात्र राम को ही सत्य मानते हैं ।[81]

सत्य के बिना मनुष्य प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सकता । गुरु नानक कहते हैं --

साच बिना बरि सिफै न कोई ।
साच सबदि बोलै पति होई ।। 15 ।।[82]

अन्यत्र गुरु नानक कहते हैं कि प्रभु की कचहरी और नाम सच्चा है --

नानक सचा सचि नाई सचु सभा दीवानु ।। 12 ।।[83]

सच्चे प्रभु की शरण भी सच्ची है --

78-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 129

79-- जयदयाल गोयन्दका, सं० 2039, पूर्वोक्त, पृ० 6

80-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 606

81-- परशुराम चतुर्वेदी, सं० 2023 वि०, पूर्वोक्त, पृ० 406

82-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 623

83-- वही, पृ० 731

सचु हरिनामु सचु है सरणा ।

सचु गुरु सबदु जितै लगि तरणा ।। 4 ।।[84]

एक सत्य प्रभु के अतिरिक्त सारा जगत बणजारा है --

सचा साहु इकु तूं होरु जगतु वणजारा ।। 3 ।।[85]

गुरु नानक सभी प्राणियों में सत्य परमात्मा का निवास मानते हैं --

सभु सचो सचु वरतदा जिसु भावै तिसै बुझाइ जीउ ।। 20 ।।[86]

सत्य को याद रखने के लिए गुरु के शब्द द्वारा अपार परमात्मा से मेल होना ज़रूरी है --

नानक साचु न वीसरै मेले सबदु अपारु ।। 8 ।।[87]

सभी लोगों का सच्चे दरबार में लेखा होगा परन्तु वही छूटेगा जो नाम से युक्त होगा --

सभना का दरि लेखा सचै छूटसि नाम सुहावणिआ ।। 3 ।।[88]

गुरु नानक तो सच्चे प्रभु पर ही विश्वास करते हैं --

सचे दीन दइआल मेरे साहिबा सचे मनु पतीआवणिआ ।। 1 ।।[89]

उन्हें प्रभु का सहारा प्राप्त है --

वाहु वाहु साचे मैं तेरी टेक ।

हउ पापी तूं निरमलु एक ।। 1 ।। रहाउ ।।[90]

गुरु नानक प्रभु को सच्चा साहिब कहते हैं । सत्य की कमाई वही

84-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 659

85-- वही, पृ० 179

86-- वही, पृ० 162

87-- वही, पृ० 151

88-- वही, पृ० 172

89-- वही, पृ० 172

90-- वही, पृ० 205

व्यक्ति कर सकता है, जिसे सत्य प्राप्त हो । यह गुरु द्वारा संभव है, मूर्ख लोग इस बात को नहीं जानते और व्यर्थ ही अपना अमूल्य जीवन गंवा देते हैं । यथा --

सचा साहिबु एकु तूं जिनि सचो सचु वरताइआ ।
जिस तूं देहि तिसु मिलै सचु ता तिन्ही सचु कमाइआ ।।
सतिगुरि मिलिये सचु पाइआ जिन्ह कै हिरदै सचु वसाइआ ।
मूरख सचु न जाणन्ही मनमुखी जनमु गवाइआ ।।
विचि दुनीआ काहे आइआ ।। 6 ।। [91]

असत्य भाषी लोगों को गुरु नानक ने कूकर और सूकर कहा है। भोंक-भोंक कर ये लोग मर जाते हैं और अपनी दुर्बुद्धि के कारण हरी के दरबार में हार खाते हैं --

कूकर-सूकर कही अहि कूड़िआरा ।
भउकि मरहि भउ भउ भउ हारा ।।
मनि तनि झूठे कूड़ु कमावहि दुरमति दरगह हारा है ।। [92]

इस सिद्धान्त में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि गुरु नानक देव ने ईश्वर को सत्य माना है और लोगों को सत्य का आश्रय लेने, उसका अर्थ समझने तथा उस पर आचरण करने पर बल दिया है। सत्य का विषाय बड़ा व्यापक है । इस पर बहुत अधिक लिखा जा चुका है तब भी इसमें मन के सारे भाव व्यक्त नहीं हो पाए हैं । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में इसे संक्षिप्त में ही समाप्त करने की चेष्टा की है ।

91-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 336
92-- वही, पृ० 629

5.3 जीव सम्बन्धी अवधारणा

'जीव' का अर्थ है -- प्राणियों का चेतन तत्व, जीवात्मा, आत्मा, प्राण, जीवतत्व, जान, प्राणी जीवधारी ।[93] तटस्थ लक्षणअथवा परमात्मा की व्यावहारिक प्रतीति जीव होती है। अविद्या जीव का अज्ञान है । यही आत्मा जब नामरूप की उपाधि से युक्त होता है, तब जीव कहलाता है । जिसे व्यक्ति कहा जाता है वही जीव है। जब अन्त:करण आत्मा को नाम-रूप की उपाधि से सीमित कर देता है, तो इस चैतन्य को साक्षी कहा जाता ~~है-।-जीव-कन~~ है और जब अन्त:करण व्यक्तित्व का निर्माण करता है, तो इसे जीव कहा जाता है । जीव का ही सम्बन्ध शुभ-अशुभ कर्मों के फल से होता है । अन्त:करण विशिष्टो: जीव: अन्त:करणोवहितासाक्षी (वेदान्त परिभाषा, पृ0 102) ।[94]

गीता में जीव परमात्मा का अंश माना गया है।[95] आत्मा और जीव में कोई तात्विक अन्तर नहीं है। आत्मा नित्य है। वह अकाट्य, अछेद्य, अक्लेद्य है । शस्त्र उसे छेद नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता और वायु उसे सुखा नहीं सकती ।[96] यह अविनाशी है और शरीर

93-- रामचन्द्र वर्मा, सं0 2028 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 432

94-- रामजी लाल सहायक, पूर्वोक्त, पृ0 166

95-- ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन: ।
सहजानन्द सरस्वती, पूर्वोक्त, पृ0 824

96-- नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक: ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत: ।। 23 ।।
--सहजानन्द सरस्वती, पूर्वोक्त, पृ0 442

के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता ।[97] कर्मों के फल से उत्पन्न हुए सुख-दु:ख को जीव भोगता है, इसलिए उसे संसारी ही कहा जाता है । जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है, परन्तु फल भोगने में परतन्त्र है, या परमात्मा के हुक्म अधीन है । कर्म करके ही वह अनेक प्रकार की योनियों में जन्म लेता है और कर्म करके ही वह उचित मार्ग पर चलता है। ये कर्म दो प्रकार के हैं, शुभ तथा अशुभ । इन्हीं को पुण्य और पाप कहा जाता है । इनका फल क्रमवार सुख और दु:ख है । पूर्वदेह को त्याग कर ही जीव अपने कर्मों के अनुसार स्वर्ग और नरक में पहुंचता है ।[98]

जीव की संख्या के सम्बन्ध में विभिन्न दर्शनों में मतभेद है । न्याय, वैशि वैशेषिक आदि जीव की अनेक संख्या मानते हैं। सांख्यवादी जीव को स्वतन्त्र और अनादि तो कहते हैं, परन्तु बद्धपुरुष की ये अनेक संख्या मानते हैं । अद्वैतवादी जीव की अनेकता में विश्वास नहीं करते । इनका मत है कि जीव एक और अद्वैत तत्व है । उत्पत्ति के आधार पर जीव चार प्रकार के हैं -- जैरज, अण्डज, स्वदेज, उद्भिज । निवास स्थान की दृष्टि से जीवों के तीन वर्ग हैं -- जलवासी, थलवासी तथा नभवासी । अलग-अलग योनियों में भटकने वाले जीवों की गिनती 84 लाख है । जीव की चार अवस्थाएं मानी गई हैं-- जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति । पहली तीन अवस्थाओं का सम्बन्ध अभिमानी जीवों से है, चौथी अभिमान मुक्त जीव की है ।

97-- न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूय: ।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।। 20 ।।
-- सहजानन्द सरस्वती, पूर्वोक्त, पृ0 435

98-- पूर्व देहं परित्यज्य जीव: कर्मवशानुग: ।
स्वर्गं व नरकं वापि प्राप्नोति स्वकृतेन वै ।
देवी भागवत पुराण (भाषा टीका), बम्बई : वेंकटेश्वर प्रेस,
2011 वि0, (4 । 21 । 22-23)

5.3.1 गुरु नानक वाणी में जीव सम्बन्धी अवधारणा

जीव आत्मा की चैतन्यशक्ति है, इसमें सुख-दु:ख अनुभव करने की शक्ति तथा चेतना है। यह असीम व अनन्त चैतन्य शक्ति का अंश है। इसका जन्म बड़े भाग्य से होता है। गुरु नानक देव ने परमात्मा के `हुक्म` से जीव की उत्पत्ति मानी है ---

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई ।
हुकमि होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई ।। 2 ।।[99]

राग `गउड़ी` में गुरु नानक ने इसी बात को स्वीकार किया है कि जीव `हुक्म` से ही अस्तित्व में आते हैं और `हुक्म` से ही परमात्मा में मिल जाते हैं। अत: जीव को हुक्म का पालन करना पड़ता है --

न जीउ मरै न डूबै तरै । जिनि किछु कीआ सो किछु करै ।।
हुकमे आवै हुकमे जाइ । आगै पाछै हुकमि समाइ ।। 2 ।।[100]

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जीव कहाँ से आता है और इसके अन्तर्गत किसका निवास है ? गुरु नानक इन प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार देते हैं -- जीव परमात्मा से उत्पन्न होता है और उसके अन्तर्गत परमात्मा का, निवास रहता है। एक ओंकार, सत्य-स्वरूप, कर्तापुरुष, ~~जीव~~ निर्भय, निर्वैर, अकाल मूर्ति, अजोनि, स्वयंभू का जब जीव के अन्तर्गत निवास है, तब जीव अमर क्यों न हो ? इसलिए स्थान-स्थान पर जीव की अमरता के संकेत मिलते हैं --

देही अंदरि नामु निवासी । आपे करता है अविनासी ।।
ना जीउ मरै न मारिआ जाई करि देखै सबदि रजाई है ।। 13 ।।[101]

99-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 80

100-- वही, पृ० 201

101-- वही, पृ० 620

जीव अनन्त हैं। उस परमात्मा ने पृथ्वी पर अनेक जीवों के विधान(जुगति) और अनेक जातियां, किस्में (रंग) निर्मित की । उन जीवों के अनन्त रूप और अनन्त नाम हैं --

तिसु विचि जीअ जुगति के रंग । तिनके नाम अनेक अनंत ।।[102]

जीव अल्पज्ञ है । जयराम मिश्र अपनी कृति 'श्रीगुरु ग्रन्थ दर्शन' में जीव की अल्पज्ञता बारे लिखते हैं -- 'जिस समय जीव परमात्मा के महान् स्वरूप से अहंकार और मायावश पृथक होता है, उस समय वह अल्पज्ञ हो जाता है । जीव की दशा वैसी ही होती है, जैसे अनन्त सागर से पृथक होने से एक बूंद की होती है अथवा जैसे अग्नि के अनन्त पुंज से पृथक होने से चिनगारी की होती है ।'[103]

शरीर को खाक में मिलाकर जीव न जाने कहां चला जाता है ? जिसने उसे पैदा किया है वही उसकी चेतन एवं जड़ अवस्था में विद्यमान रहता है--

देही भसम रुलाइ न जापी कह गइआ ।
आपे रहिआ समाइ सो विसमादु भइआ ।। 6 ।।[104]

जीव से सम्बन्धित मन में कई प्रकार के प्रश्न उत्पन्न होते हैं । जीव कहां से आता है, कहां चला जाता है और किस प्रकार मुक्त होता है तथा किस प्रकार अविनाशी परमात्मा में लीन होता है ?

जातो जाइ कहा ते आवै ।
कह उपजै कह जाइ समावै ।

102-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 96

103-- जयराम मिश्र, 1960, पूर्वोक्त, पृ0 165

104-- जयराम मिश्र, 2018, पृ0 449

किउ बंधिआे किउ मुकती पावै ।
किउ अविनासी सहजि समावै ।। 2 ।।[105]

गउड़ी राग में उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर देते हुए गुरु नानक कहते हैं-- जीव सहज ही आता है और सहज ही जाता है । मन के संकल्पों-विकल्पों के अनुसार जीव उत्पन्न होता है और उनके नाश से वह परमात्मा में समा जाता है । गुरु के उपदेश द्वारा मुक्त होकर सांसारिक बन्धनों से छूट जाता है --

सहजे आवै सहजे जाइ । मन ते उपजै मन माहि समाइ ।।
गुर मुखि मुकतो बंधु न पाइ । सबदु बीचारि छुटै हरिनाइ ।। 2 ।।[106]

गुरु नानक ने जीव को माया के विनाशकारी प्रभाव से निर्लिप्त रहने का आदेश भी दिया है । फिर भी जीव माया के प्रपंचों तथा यमराज के जाल में ~~फै~~ फंसता ही रहता है --

माइआ ममता पवहि खिआली ।
जमपुरि फासहिगा जमजाली ।।
हेह के बन्धन तोड़ि न साकहि ।
ता जमु करे खुआरी जीउ ।। 5 ।।[107]

जीव अज्ञानी है । जागते हुए भी चोटें खाता रहता है । इच्छाएं पूरी न होने पर उन्हें यहां से लेकर चला जाता है । इन बातों पर विचार करते हुए गुरु नानक देव कहते हैं --

जागतु बिगसै मूठो अंधा । गलि फाही सिरि मारे धंधा ।।
आसा आवै मनसा जाई । उरझी ताणी किछु न बसाई ।। 1 ।।[108]

105-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 204
106-- वही, पृ0 204
107-- वही, पृ0 584
108-- वही, पृ0 784

अपने कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। गुरु नानक जीव को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि तुझे भारी सजा सहन करनी पड़ेगी --

हउमै जलिआ मनहु विसारे । जमपुरि वजहि खड़ग करारे ।।
अब कै कहिऐ नामु न मिलई तू सहु जीअड़े भारी जीउ ।। 4 ।। 109

अर्थात् नाम-जप के बिना भारी कष्ट उठाने पड़ते हैं । देहान्त हो जाने पर धूल से धूल मिल जाती है । ऐसी स्थिति में जीव को नाम का सहारा मिलता है । यदि मनुष्य नाम-रहित है तब उसकी सारी चतुराई नष्ट हो जाती है । गुरु नानक के अनुसार --

खेहू खेह रलाईऐ ता जीउ केहा होइ ।।
जलीआ सभि सिआणपा उठी चलिआ रोइ ।।
नानक नाम विसारिऐ दरि गइआ किआ होइ ।। 4 ।। 110

ईश्वर ने सभी जीवों को एक जैसा ज्ञान दिया है। जिसकी जैसी समझ है, उसका वैसा ही मार्ग है । उसके कर्म के अनुसार उसका आना-जाना बना रहता है --

एका सुरति जेते है जीअ । सुरति विहूणा कोइ न जीअ ।।
जेही सुरति तेहा तिन राहु। लेखा इको आवहु जाहु ।। 1 ।। 111

ईश्वर लेने-देने में कोई ढील नहीं करता । गुरु नानक जीव को सतर्क करते हुए कहते हैं कि चालाक बनने का कोई फायदा नहीं, ईश्वर कर्मों के अनुसार ही फल देता है --

---

109-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 584

110-- वही, पृ0 108

111-- वही, पृ0 128

काहे जीअ करहि चतुराई । लैवै दैवै ढिल न पाई ।। 1 ।। रहाउ ।।[112]

गुरु नानक जीव से कहते हैं कि सब कुछ खोटा ही है । मृत्यु आने पर शरीर रूपी मिट्टी का किला ढह कर मिट्टी का ढेर बन जाता है। शरीर के अन्दर जो मन रूपी चोर रहता है, उसका भी पता नहीं चलता --

नानक ढेरी ढहि पई मिटी संदा कोटु ।
भीतरि चोरु बहालिआ खोटु वे जीआ खोटु ।। 27 ।।[113]

गुरु नानक संसार के सभी प्राणियों को प्यार करते थे, अत: उन्हें खुश देखने की उनके दिल में बड़ी तमन्ना थी । गुरु नानक जीव और परमात्मा में सम्बन्ध कायम करते हुए ईश्वर से जीवों पर क्रोध न करने की प्रार्थना करते हैं --

तेरे जीअ जीआ का तोहि । कित कउ साहिब आवहि रोहि ।।
जे तू साहिब आवहि रोहि । तू ओना का तेरे ओहि ।। 2 ।।[114]

अर्थात् अगर परमात्मा जीवों पर रोष करेगा तो वे बेचारे कहां जाएंगे ? वे उसी के ही हैं ।

5.3.2 जीव व ब्रह्म

नानक ने जगत् को `सचु हुकमी होवन जीअ` एवं `करमी आवै कपड़ा` कहा है। इसका आशय यही है कि प्रकृति एवं जीवात्मा अकाल पुरुख ही के

112-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 128

113-- वही, पृ० 740

114-- वही, पृ० 128

दो पक्ष हैं। स्वतन्त्र सत्ता न जगत् की है और न जीव की, क्योंकि ब्रह्म और जीव की एकता की बार-बार उन्होंने स्मृति दिलाई है।[115] उपर्युक्त वाक्यों की व्याख्या भागवत धर्म एवं विशिष्टाद्वैत के सिद्धान्त के अनुसार करने पर भागवत दर्शन की भाँति परमात्मा को अवतार धारण करने के सिद्धान्त को भी मानना पड़ता है। नानक अवतार में विश्वास नहीं करते। परमात्मा को अवतार मानकर उसे ससीम मानने का उन्होंने खण्डन किया है।[116] भागवत धर्म में भी यद्यपि वासुदेव के स्वरूप को ब्रह्म रूप ही माना गया है, परन्तु परमात्मा के गोलोकवासी स्वरूप की मान्यता से बचने के उपाय का क्या होगा ? नानक का परमात्मा का `हुक्म` भी परब्रह्म की एक से अनेक होने की इच्छा ही का अर्थ प्रकट करता है। `करमी आवै कपड़ा` द्वारा केवल पुनर्जन्म एवं कर्म-सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने पर भी परमात्मा के एक रस, एवं सृष्टि को ब्रह्ममय मानने के सिद्धान्त में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता। नानक आत्मा एवं परमात्मा में उसी सीमा तक भेद मानते हैं, जितने समय तक जीवात्मा अहंभाव ग्रस्त हो कर इस भौतिक शरीर में बद्ध है।[117] उन्हीं के विचार के अनुसार अहंभाव का आवरण हटते ही जीव परमात्मा में लीन हो जाता है।[118] लीन का अर्थ `जल जलहि समाना` है, राधा स्वामियों के अनुसार धंसना नहीं। केवल शरीर-बद्ध आत्मा के रूप में जीवात्मा और परमात्मा में भेद मानने के बाद पुन: दोनों के अभेद पर नानक ने बल दिया है।[119] जीव उसी समय तक अपने आप को परमात्मा से भिन्न समझता है जब तक वह माया के आवरण से युक्त है। माया का आवरण हटते ही वह अपने-आपको (जो वास्तव में है) वही अर्थात्

115-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 129, 130, 124, 425, 33, 205

116-- वही, पृ० 148, 251, 329

117-- वही, पृ० 588

118-- वही, पृ० 55

119-- वही, पृ० 146, 588

परमात्मास्वरूप समझने एवं तदनुकूल आचरणकरने लगता है ।

सन्तों ने स्थान-स्थान पर प्रेम और भाव-भक्ति के माध्यम द्वारा ईश्वर से सम्बन्ध कायम करने का प्रयत्न किया है । प्रेम और भाव-भक्ति की पवित्र भावना का स्फुरण प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में नहीं होता । इसके लिए हृदय की पवित्रता एवं सात्विकता अत्यधिक अनिवार्य है । किन्तु यह निश्चित नहीं कि हृदय की पवित्रता एवं सात्विकता के होते हुए प्रेम का उदय हो, इसके लिए परमात्मा-तत्व के अलौकिक सौन्दर्य की अनुभूति, ज्ञान तथा उत्कृष्ट विरह की जागृति का होना आवश्यक है । गुरु नानक का आत्म-वर्णन स्वनुभूति पर आधारित है। वह आत्मा-परमात्मा में कोई भेद नहीं मानते । अंश-अंशी भाव अथवा जल से कमल, जल से मछली, जल से दूध, बादल से चातक तथा सूर्य से चकवी के सम्बन्धों द्वारा अपने मत का प्रतिपादन करते हैं --

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी जल कमलेहि ।
लहरी नालि पछाड़िए भी विगसै असनेहि ।
जल महि जीअ उपाइ कै बिनु जल मरणु तिनेहि ।। 1 ।।

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी मछुली नीर ।
जिउ अधिकउ तिउ सुखु घणो मनि तनि सांति सरीर ।।
बिनु जल घड़ी न जीवई प्रभु जाणै अभ पीर ।। 2 ।।

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी चात्रिक मेह ।
सर भरि थल हरी आवले इक बूंद न पवई केह ।
करमि मिलै सो पाईऐ किरतु पइआ सिरि देह ।। 3 ।।

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी जल दुध होइ ।
आवटणु आपे खवै दुध कउ खपणि न देइ ।।
आपे मेलि विछुंनिआ सचि वडिआई देइ ।। 4 ।।

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी चकवी सूर ।
खिनु पलु नींद न सोवई जाणै दूरि हजूरि ।।
मनमुखि सोझी ना पवै गुरमुखि सदा हजूरि ।। 5 ।। 120

यहाँ ऐसा लगता है कि गुरु नानक ने गीता की तरह जीवात्मा को भगवान् का अंश स्वीकार किया है । इसके साथ ही शंकर की तरह आत्मा-परमात्मा को अभेद माना है । वास्तविकता यह है जब आत्मा का परमात्मा से परिचय हो जाता है उस समय उसके मन में विचित्र प्रकार की भावना का उदय होता है । यह भावना इतनी तीव्र होती है कि आत्मा-परमात्मा के मिलन को तड़फती रहती है और उसमें सब प्रकार की कलुषित भावनाएँ भस्म हो जाती हैं । सूफी मत वाले इस स्थिति को `फना` के नाम से पुकारते हैं । इसके पश्चात् अन्तिम स्थिति आती है, जब आत्मा-परमात्मा में पूर्ण तादात्म्य स्थापित हो जाता है और उसमें किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रहता । उस समय आत्मा स्वयं को परमात्मा का अंग समझने लगती है और उसमें अंश-अंशी भाव का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है । इसे साधक की `सिद्धावस्था` भी कहा गया है । गुरु नानक इस स्थिति को प्राप्त कर चुके थे। वैसे तो सारा मानव-समाज उनका अपना था, फिर भी उन्होंने उसे अपना नहीं कहा क्योंकि वह उसकी नश्वरता को जानते थे । इसीलिए एक स्थान पर बड़े विनम्र भाव से प्रभु को कहते हैं कि तुम्हारे बिना मेरा और कोई नहीं है --

मेरे प्रीतमा मैं तुझ बिनु अवरु न कोइ ।
मैं तुझ बिनु अवरु न भावई तू भावहि सुखु होइ ।। रहाउ ।। 121

उपरोक्त से सिद्ध होता है कि जीव, शरीर में स्थित परमात्मा का अंश है, किन्तु अपनी असमर्थता के कारण परमात्मा से भिन्न है। तत्व सम्बन्धी

120-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 148-49

121-- वही, पृ० 152

अभेदता के कारण उसमें परम शक्ति में लीन होने की विशिष्टता तो मौजूद है परन्तु परम सत्ता की विशेषताओं को ग्रहण करने का सामर्थ्य नहीं है। जीव की पृथक पृथक शक्ति कुछ भी नहीं है। उसकी सारी शक्तियों का मूल स्रोत परमात्मा है। उसकी सभी क्रियाएं, इच्छाएं एवं प्रवृत्तियां परमात्मा के हुक्म के अधीन हैं। जीव बेचारा प्रभु का आज्ञाकारी मात्र है। परमात्मा की इच्छा अनुसार ही जीव ऊँची-नीची योनियों में वास करता है। जब तक जीव अहंकारवश होता है, तब तक कर्म चक्र में पड़ता रहता है। एक शरीर के नष्ट होने पर दूसरा शरीर धारण करता है परन्तु जब उसकी प्रवृत्ति निष्काम हो जाती है, तब वह मुक्ति का अधिकारी बन जाता है।

5.4 ईश्वर के प्रति विश्वास

निर्व्याज भाव से अशंक विश्वास और सम्पूर्ण आत्म-समर्पण-- ये भक्ति के दो अनिवार्य आधार-स्तम्भ हैं। परन्तु अशंक विश्वास बहुत कठिन साधना है। यह न तो सब को सुलभ है, और न सब के लिए सहज व्यवहार्य। सामाजिक जीवन में इस कारण अनेक बार कठोर विरोध भी सहन करना पड़ता है। जब कोई मनुष्य किसी व्यक्ति विशेष, गुरू अथवा परमात्मा पर अशंक विश्वास करने लगता है तथा समाज उसका उपहास उड़ाने लगता है। गुरु नानक के काल में कुछ लोगों ने गुरु नानक का भी उपहास उड़ाया, परन्तु गुरु नानक इस बात की परवाह नहीं करते थे क्योंकि उन्हें ईश्वर पर अशंक विश्वास था। उन्होंने जनता को चेतावनी देते हुए कहा कि मेरे विश्वास की बदनामी मत उड़ाओ। जिस प्रकार लाखों लकड़ियों के ढेर को एक चिनगारी नष्ट कर देती है, उसी प्रकार एक नाम पापों की राशि को दग्ध कर देता है--

लोका मत को फकड़ि पाइ।
लख मड़िआ करि एकठे एक रती ले भाहि ।। 1 ।। रहाउ ।।[122]

122-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 271

पूर्ण श्रद्धा और पूर्ण विश्वास अनन्य भक्ति के प्रमुख लक्षण माने गए हैं ।[123] जो भगवान के भक्त होते हैं, उन्हें भगवान पर पूरा विश्वास रहता है । उनकी इच्छाएं स्वयं ही पूरी हो जाती हैं। गुरु नानक इसी बात को राग बिहागड़ा में इस प्रकार कहते हैं --

सभु किछु तेरै वसि है तू सचा साहु ।
भगत रते रंगि एक कै पूरा वेसाहु ।। 2 ।।[124]

अर्थात् प्रभु सच्चा शाह है और सब कुछ उसके वश में है । भगवान का भजन करने वाले भक्त हरी के नाम में रंगे रहते हैं और उन्हें उसी का पूर्ण विश्वास रहता है । गुरु नानक की तरह तुलसीदास को भी राम-नाम पर पूर्ण विश्वास है ।[125]

सारांश यह है कि गुरु नानक देव को अशंक विश्वास था कि परमात्मा सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, परम दयालु, पतितपावन और अन्तर्यामी है । विश्वास ही प्रेम और प्रिय की स्थिति का प्रमाण है । क्योंकि जहां विश्वास है वहां प्रियतम है, वहीं प्रेम है । विश्वास के बिना प्रेम उसी प्रकार नहीं ठहर सकता जिस प्रकार बालू की दीवार नहीं टिक सकती । मनुष्य जो भी क्रियाएं करता है उसे परमात्मा देखता है, इस प्रकार का विश्वास हो जाने पर मनुष्य झूठ, छल, कपट, बेईमानी, हिंसा, व्यभिचार इत्यादि अनुचित कार्य नहीं कर सकता । गुरु नानक के कहने का आशय यही है कि सभी प्राणियों को ईश्वर की सत्ता पर विश्वास होना चाहिए और बार-बार भगवान् के अस्तित्व में विश्वास उत्तरोत्तर तीव्रता के साथ बढ़ाना चाहिए ।

123-- सरनाम सिंह, 1960, पूर्वोक्त, पृ0 397
124-- जयराम मिश्र, स0 2018, पृ0 366

125-- चुन्नीलाल, तुलसी पदावली, दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, 1971, पृ0 28

5.5 प्रभु-कृपा

सिख दर्शन में प्रभु की कृपा पर बहुत बल दिया गया है। प्रभु-कृपा अनिवर्चनीय है । इसके विषय में कहना असम्भव है । प्रभु-कृपा से परमात्मा के सच्चे दरवाजे पर जाने से सच्चा सुख मिलता है --

किरपा ते सुखु पाइआ साचे परथाई ।। 3 ।।[126]

प्रभु कृपा अहंकार कोभी नष्ट कर देती है --

जा हरि प्रभि किरपा धारी । ता हउमै विचहु मारि ।। 1 ।।[127]

गुरु नानक का कथन है कि कुछ लोगों के गुनाहों को सद्गुरु ने पूरी तरह बख्श कर अपनी पूर्ण कृपा कर दी है --

इकि धुरि बखसि लए गुरि पूरै सची बणत बणाई ।
हरि रंग राते सदा रंगु सा चा दुख विसरे पति पाई ।। 1 ।।[128]

अर्थात् कुछ लोगों पर सद्गुरु ने अपनी कृपा करके उनकी सच्ची बनावट बना दी है । हरी के रंग में अनुरक्त होने से उन पर सच्चा रंग सदैव चढ़ा रहता है, दु:ख विस्मृत हो जाते हैं और प्रतिष्ठा मिलती है ।

प्रभु बड़े उदार दिल वाला है । यदि वह चाहे तो अपनी कृपा करके मनुष्य को अपने में मिला लेता है --

नदरि करे जे आपणी आपे लए रलाइ जीउ ।। 24 ।।[129]

तुलसीदास ने भी इसी तरह की मिलती-जुलती बात लिखी है कि ऐसा उदार प्रभु के सिवा और कौन हो सकता है --

---

126-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 302

127-- वही, पृ0 499

128-- वही, पृ0 800

129-- वही, पृ0 161

ऐसो को उदार जग माही ।

बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाही ।। 1 ।।[130]

प्रभु बड़ा कृपालु है । उसकी कृपा से बुरे आचरण वाला व्यक्ति भी अच्छा बन जाता है । यदि वह चाहे तो कौए को भी हंस बना दे । उसके लिए बगुले और हंस में कोई भी अन्तर नहीं । परन्तु यह सब उसकी कृपा से ही सम्भव है --

किआ हंसु किआ बगुला जा कउ नदरि करेइ ।

जो तिसु भावै नानका कागहु हंस, करेइ ।। 7 ।।[131]

सूरदास ने भी यही बात कहते हुए कहा है --

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कछु दरसाइ ।

बहिरौ सुनै, गूंग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ ।। 1 ।।[132]

अर्थात् प्रभु कृपा से लंगड़ा पहाड़ लांघ सकता है, अंधा सब कुछ देख सकता है, बहिरा सुन सकता है, गूंगा बोल सकता है और गरीब सिर पर छत्र धारण करके चल सकता है । सद्गुरु की प्राप्ति प्रत्येक व्यक्ति को नहीं होती। यदि प्रभु कृपा करे तभी सद्गुरु मिलता है --

नदरि करहि जे आपणी ता नदरी सति गुरु पाइआ ।। 3 ।।[133]

भगवान की भक्ति गुरु-कृपा से मिलती है। सद्गुरु चाहे तो मनुष्य को धर्मराज की अधीनता भी स्वीकार नहीं करनी पड़ती, अर्थात् गुरु कृपा

130-- चुन्नीलाल, <u>पूर्वोक्त</u>, पृ0 33

131-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 170

132-- धीरेन्द्र वर्मा, <u>सूरसागर-सार</u>, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, सं0 2015, पृ0 15

133-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 330

से लेन-देन के सम्बन्ध भी समाप्त हो जाते हैं --

भाई रे गुर किरपा ते भगति ठाकुर की ।
सतिगुर वकि हिरदै हरि निरमलु ना जम काणि नजम की बाकी ।। [134]
।।1।। रहाउ

परमात्मा की एक कृपा दृष्टि से साधक निहाल होजाते हैं --
नानक नदरी नदरि निहाल ।। 38 ।। [135]

प्रभु सब प्राणियों पर अपनी कृपा उनके कर्मों के अनुसार ही करता है । जीव अपने कर्मों के अनुसार ही जगत में जन्म लेता है किन्तु मोक्ष केवल प्रभु-कृपा से ही प्राप्त होता है --
करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु ।। 4 ।। [136]

इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रभु कृपा अथवा गुरु-कृपा प्राप्त करने के लिए जीव को उत्तम कर्म करने पड़ते हैं ।

यहां यह प्रश्न होता है कि प्रभु अपनी कृपा किस प्रकार करता है ? परमात्मा जब भी अपनी कृपा-दृष्टि करता है, साधु-सन्तों अथवा महात्माओं द्वारा ही करता है । वह स्वयं मनुष्य का चोला धारण कर संसार में अपने मिलन की उत्सुकता एवं शौक पैदा करके लोगों से भक्ति करवाता है और फिर अपने में मिला लेता है । प्रभु-कृपा उन पर होती है जो कृपा को खींचते हैं । कृपा को वही खींच सकता है जो कृपालु प्रभु से निकटता रखता है । निकटता में आकर्षण है जो प्रभु को आकर्षित करती है और उसकी कृपा स्वच्छन्द विचरने लगती है । ईश्वर की कृपा से ही गुरमुखों की संगत मिलती

134-- जयराम मिश्र, सं० 2013, पृ० 362

135-- वही, पृ० 98

136-- वही, पृ० 81

है, फिर उन महात्माओं की कृपा से हमारी सुरति `अनहद` शब्द से जुड़ सकती है जिसका अभ्यास निरन्तर करने से सांसारिक मोह लुप्त होजाता है ।

5.6 समाहार

गुरु नानक वाणी में मुख्यत: ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप का ही प्रतिपादन हुआ है, किन्तु निर्गुण होते हुए भी उसे `करता पुरख` तथा स्वयंभू कहा गया है । सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का कारण वह ब्रह्म एक, ओंकार स्वरूप तथा सत्यनाम वाला है जो निर्भय, निर्वैर तथा त्रिकालातीत है । वह ब्रह्म अगम्य, अगोचर, निरंजन, निर्लिप्त, अलक्ष्य, निराकार एवं ज्योति स्वरूप है । गुरु नानक का ब्रह्म अनिर्वचनीय, वर्णनातीत एवं `सच खंड` वासी है । यद्यपि गुरु नानक वाणी में ब्रह्म की व्यावहारिक सत्ता का प्रतिपादन कर उसके सगुण स्वरूप का ही वर्णन किया गया है तथापि गुरु नानक की मूल आस्था निर्गुण ब्रह्म में ही है । गुरु नानक वाणी में प्रतिपादित ब्रह्म का स्वरूप मूलत: वेदों तथा उपनिषदों पर आधारित है । भले ही लोग उस पर इस्लाम का प्रभाव मानते रहे, किन्तु इसका आधार वेद तथा उपनिषद ही है । यह बात उल्लेखनीय है कि इस विषय में गुरु नानक बहुत उदार थे । जहां कहीं भी उन्हें अच्छाई प्राप्त हुई उसको ग्रहण कर अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर उसे जनसाधारण के लिए उपयोगी एवं ग्राह्य बना दिया ।

गुरु नानक देव ने केवल ब्रह्म को ही चरम सत्य कहा है अन्य वस्तुएं तो मिथ्या हैं । ब्रह्म ही पारमार्थिक सत्य है । वह काल देश और अवस्था से परे अर्थात् सकल अतीत है । वह परमात्मतत्त्व हर समय, हर जगह, हरेक वस्तु में अपरिवर्तित रूप से विद्यमान रहने के कारण सत् कहा जाता है । वह अपने आप को भी स्वयं ही जानता है इसलिए उसे चेतन भी कहते हैं । वह स्वयं ही ज्ञान-स्वरूप तथा चित्स्वरूप है । जिसने सत्यमार्ग को पहचान लिया है उसे असत्यमार्ग

पर नहीं चलना चाहिए। जब जीवन सत्यमय हो जाए तभी सत्य आचरण की सिद्धि होती है । सत्यशील मनुष्य का हृदय निर्मल हो जाता है । सत्य धर्म का पालन करने वाला मनुष्य निर्भय हो जाता है उसे परमगति प्राप्त होती है इसमें संशय नहीं ।

गुरु नानक देव ने जीवात्मा को परमात्मा का ही अंश माना है। उनके अनुसार जीव के लिए आत्मा ही चैतन्य शक्ति है, जो वस्तुत: असीम व अनन्त चैतन्य शक्ति का ही अंश है । अत: मूलत: आत्मा और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है । आत्मा को ही ब्रह्म कहा गया है । दार्शनिक दृष्टि से गुरु नानक अद्वैतवादी थे और धार्मिक दृष्टि से व्यवहारवादी । स्वभावत: वे जीव के विषय में दो प्रकार की बातें करते हैं --- एक जीव को ईश्वर मानकर और दूसरी जीव को संसारी मान कर । निर्गुण ब्रह्म के सन्दर्भ में देखा गया है कि जगत के कण-कण में ब्रह्म ही विराजमान है । ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं । इसीलिए चेतन जीव ही नहीं, जड़ जगत भी उसी ब्रह्म का साक्षात विग्रह है । हर नाम उसी का नाम है, हर रूप उसी का रूप है । जब जड़ जगत तक ब्रह्म अभिन्न है तो जीव की अभिन्नता पर सन्देह नहीं किया जा सकता । यही जीव जब माया के आवरण से मुक्त हो जाता है, ज्ञान की ज्योति जग उठने से उसका माया का आवरण समाप्त हो जाता है, तब यह जीव ब्रह्म रूप हो जाता है ।

गुरु नानक देव ईश्वर पर अशंक विश्वास करते हैं । उनका विश्वास है कि ईश्वर एक है, उसी ने सारा ब्रह्माण्ड बनाया है और वही इसको चला रहा है । ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास मात्र अनुमान पर आधारित नहीं है, यह विश्वास व्यक्ति के उन अनुभवों का परिणाम है, जो विवेक संगत है ।

गुरु नानक ने प्रभु-कृपा और गुरु-कृपा को बहुत मान्यता दी है क्योंकि गुरु की प्राप्ति प्रभु-कृपा से ही हो सकती है । `किरपा करे

जो आपनी, ता सतिगुरु मैलि मिलाया' का भाव इस कथन की पुष्टि करता है। अगर प्रभु की कृपा की ओर ध्यान दिया जाए, तब ऐसा प्रतीत होता है कि प्रभु कृपा के सागर हैं, किन्तु वस्तुत: ऐसा कहना भी स्तुति में निन्दा ही है, क्योंकि सागर की तो एक सीमा होती है और प्रभु की कृपा सीमारहित है। संसार में कृपा के नाम से जो वस्तु दिखाई देती है, वह सारे संसार की कृपा मिलकर उस कृपा सागर की एक बूंद के बराबर भी नहीं हो सकती। प्रभु की कृपा अपरिमित और अनन्त है। आकाश का भी कहीं अन्त आ सकता है, किन्तु प्रभु की कृपा का तो अन्त ही नहीं आता। जब मनुष्य को प्रभु कृपा का ज्ञान हो जाता है कि भगवान इतने कृपालु हैं, तब वह कृपा के रहस्य को समझकर उसी समय प्रभु का सुहृद बन जाता है।

षष्ठ अध्याय

गुरु नानक वाणी में भक्ति का स्वरूप

गुरु नानक वाणी में ब्रह्म तथा जीव सम्बन्धी पिछले अध्याय में परमात्मा सम्बन्धी अवधारणा, सत्यनाम की महिमा, जीव सम्बन्धी अवधारणा, ईश्वर के प्रति विश्वास एवं प्रभु-कृपा आदि उप-शीर्षकों में विवेचन विश्लेषण हुआ है । प्रस्तुत अध्याय `गुरु नानक वाणीमें भक्ति का स्वरूप` के परिप्रेक्ष्य में जिनके अन्तर्गत भक्ति की व्युत्पत्ति, परिभाषा, स्वरूप, नवधाभक्ति, नानकवाणी में भक्ति, नाम माहात्म्य, शृंगारिक भक्ति, भक्ति-रस एवं मिलन की प्रबल आकांक्षा आदि समाविष्ट हैं, इनका विवेचन-विश्लेषण अपेक्षित है ।

6.1 भक्ति : व्युत्पत्ति, परिभाषा और स्वरूप

व्युत्पत्ति और शब्दार्थ

`भक्ति` संस्कृत भाषा के अनुसार स्त्रीलिंग शब्द है जिसकी व्युत्पत्ति भज् + क्तिन के रूप में मान्य है । इस व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में सब महत्वपूर्ण कोश एकमत हैं । `हलायुधकोश` के अनुसार इस शब्द का अर्थ सेवा, गौणवृत्ति, भंगी, अनुराग, ईश्वरेपरानुरक्ति, उपासना तथा ईश्वर विषये परम प्रेम निर्देशित हुए हैं ।[1] `संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभम्` उपर्युक्त अर्थों को स्वीकार

1-- जयशंकर जोशी, (सं0) 1967, पूर्वोक्त, पृ0 437

करते हुए भी इस में भिन्नता, पृथकता, बंटवारा, बाँट, विभाग, अंश, विभाग करने वाली रेखा आदि अर्थों का भी समावेश करता है।[2] 'संस्कृत-हिन्दीकोश' में भक्ति के निम्नलिखित अर्थ दिए गए हैं -- वियोजन, पृथक्करण, विभाजन, प्रभाग, अंश, हिस्सा, उपासना, अनुरक्ति, सेवा, स्वाभिभक्ति, सम्मान, पूजा, श्रद्धा आदि।[3] 'संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर'[4] 'हिन्दी राष्ट्र भाषा कोश',[5] 'ज्ञान शब्दकोश'[6] में भी लगभग इन्हीं शब्दों अथवा रूपों में भक्ति के विभिन्न अर्थ स्पष्ट किए गए हैं। ईश्वर के प्रति अनुराग, उपासना, सम्मान, पूजा, श्रद्धा आदि भक्ति का एक रूप तथा बाँटना, विभाजित करना, पृथक्करण आदि इसके दूसरे अर्थ रूप में दिए गए हैं। यह स्पष्ट है कि प्रस्तावित शोध कार्य में भक्ति का प्रथम अनुराग, अनुरक्ति, पूजा, उपासना वाला पक्ष ही अभिप्रेत है।

हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 के अनुसार भज् धातु से 'भक्ति' शब्द की उत्पत्ति हुई है, जिसका अर्थ भजना है।[7] 'हिन्दी शब्द-सागर' के अनुसार 'भक्ति' शब्द के अनेक अर्थ लिए गए हैं। जैसे अनेक भागों में विभक्त करना,

---

2-- द्वारका प्रसाद शर्मा, (सं0), <u>संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ</u>, इलाहाबाद : रामनारायण लाल, द्वितीय संस्करण, 1957, पृ0 816

3-- वामन शिवराम आप्टे, (सं0), <u>संस्कृत हिन्दी कोश</u>, दिल्ली : मोती लाल बनारसीदास, 1966, पृ0 726

4-- रामचन्द्र वर्मा (सं0), सं0 2028, <u>पूर्वोक्त</u>, पृ0 759

5-- विश्वेश्वर नारायण श्रीवास्तव, <u>हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश</u>, प्रयाग : इंडियन प्रेस, 1952, पृ0 1100

6-- मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव (सं0), <u>पूर्वोक्त</u>, पृ0 590

7-- धीरेन्द्र वर्मा (सं0), सं0 2020, <u>पूर्वोक्त</u>, पृ0 441

बांटना, भाग, विभाग, अंग, अवयव, खंड, वह विभाग जो रेखा द्वारा किया गया हो, विभाग करने वाली रेखा, सेवा, सुश्रूषा, पूजा, अर्चन, श्रद्धा, विश्वास, रचना, अनुसार तथा स्नेह ।[8]

भक्ति की अवधारणा : ऐतिहासिक सन्दर्भ

यजुर्वेद (26 । 13) में भक्ति का उल्लेख मिलता है । यहां कहा गया है कि हे प्रभो हमारी अभीष्ठ सिद्धि तथा पूर्ण तृप्ति के लिए कल्याणकारी बन कर हमारे ऊपर सब ओर से सुख और शान्ति की वर्षा कीजिए ।[9] ब्राह्मण काल में कर्मकाण्ड की प्रबलता के कारण भक्ति का प्रवाह कुण्ठित हो गया था। उपनिषद् युग में निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति के लिए मन, आकाश, सूर्य, अग्नि, यज्ञ आदि सगुण प्रतीकों की उपासना के स्पष्ट संकेत मिलते हैं।[10] 'मैत्र्युपनिषद', 'छान्दोग्योपनिषद्', 'मुण्डकोपनिषद्', 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' आदि उपनिषदों में शिव, रुद्र, विष्णु, अच्युत, नारायण आदि को परमात्मा के रूप कहकर उनकी उपासना का निर्देश है ।[11] कुछ विद्वानों ने ऋग्वेद के अतिरिक्त सिन्धु-सभ्यता की शिव-पूजा को भक्ति का आदिरूप प्रमाणित किया है । इन विद्वानों तथा उनके समर्थकों को तो भक्ति का ऐसा मूर्त प्रमाण अन्यत्र प्राप्त नहीं । आर्यों के पूर्व द्रविड़ों में यही भक्ति जन्म ग्रहण कर चुकी थी और प्रचलित हो चुकी थी ।[12]

हड़प्पा तथा मोहन जोदड़ो की खुदाई में कुछ मूर्तियों के अवशेष मिले हैं जिससे पता लगता है कि सम्भवत: उस युग में शिश्न पूजा की जाती थी।

8-- श्यामसुन्दर दास (सं०), हिन्दी शब्दसागर (सातवां भाग), काशी : ना० प्र० सभा, सं० 2027, पृ० 3603

9-- रामजी लाल 'सहायक', पूर्वोक्त, पृ० 348

10-- धीरेन्द्र वर्मा, सं० 2020, पूर्वोक्त, पृ० 524

11-- वही, पृ० 524

12-- सत्येन्द्र, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्त्विक अध्ययन, आगरा : विनोद पुस्तक भवन, 1960, पृ० 368-69

विद्वानों का अनुमान है कि भारतवर्ष में जब आर्यों का आगमन हुआ तो आर्यों और अनार्यों में संघर्ष हुआ तब सिन्धु सभ्यता की ये द्रविड़ जातियां पीछे हटती गयीं और दक्षिण भारत में बस गईं। इस प्रकार भक्ति के बीज द्रविड़ों में सिन्धु सभ्यता के युग में ही विराजमान थे। बाद में इसी भक्ति भावना का पूर्ण विकास हुआ। इस प्रकार भक्ति का उद्गम स्थान सिन्धु-सभ्यता को माना गया है।[13]

देवी भागवत में भी कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग -- तीनों ही मोक्ष प्राप्ति के मार्ग माने गए हैं, परन्तु इन तीनों में भक्तियोग ही सुलभ है क्योंकि वह केवल मानसिक है, बिना शरीर को कष्ट दिए सम्पन्न होता है।[14] शिव पुराण में मुक्ति का मूल ज्ञान, ज्ञान का मूल भक्ति, भक्ति का मूल प्रेम, प्रेम का मूल शिव, गुण, श्रवण, गुण-श्रवण का मूल सत्संग तथा सत्संग का मूल सद्गुरु माना गया है। देवता तथा भक्ति के सम्बन्ध में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध स्थापित करते हुए बीजांकुर की उपमा प्रस्तुत की गई। जिस प्रकार अंकुर से बीज तथा बीज से अंकुर उत्पन्न होता है, उसी प्रकार देवता प्रसाद से भक्ति तथा भक्ति के द्वारा देवता की प्रसन्नता प्राप्त होती है।[15] विष्णु पुराण में भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है -- 'कर्मफल के वश होकर जिन-जिन योनियों में परिभ्रमण करूं, उन सभी योनियों में तुम्हारे प्रति मेरी अचल भक्ति बनी रहे। अविवेकी मनुष्य की विषयों में जैसे आसक्ति रहती है, तुम्हारा स्मरण करते हुए तुम्हारे प्रति भी वैसे ही प्रीति रहे तथा

13-- रामधारी सिंह दिनकर, <u>संस्कृति के चार अध्याय</u>, दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज़, 1956, पृ० 28

14-- रामनारायण पाण्डेय, <u>पूर्वोक्त</u>, पृ० 256

15-- <u>वही</u>, पृ० 257

वह मेरे हृदय से कभी विलग न हो ।'[16] नारद ने अपने भक्तिसूत्र में अनेक भक्तों के विचारों का उल्लेख करके भक्ति के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है --

(i) 'पूजा दिष्वनुराग: इति पराशर्य: ।'[17]
पराशर के मतानुसार पूजा आदि में अनुराग रखना ही भक्ति है ।

(ii) 'कथादिष्विति गर्ग: ।'[18]
गर्गाचार्य के अनुसार भगवान के कीर्तन, भजन तथा कथा आदि में प्रीति रखना ही भक्ति है ।

इन सभी आचार्यों के विचारों को एकत्रित करके नारद ने भक्ति के सम्बन्ध में अपना मत प्रस्तुत करते हुए लिखा है ---'भगवान के प्रति अपने समस्त कर्मों को अर्पित करना और उनका विस्मरण होने पर व्याकुल होना भक्ति है ।'[19] शांडिल्य भक्तिसूत्र में 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' द्वारा भक्ति का स्वरूप स्पष्ट किया गया है ।[20] इस परिभाषा में अनुराग के द्वारा चित्त के द्रवीभाव को प्रमुख स्थान दिया गया है ।

16-- नाथ योनि सहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्व चला भक्तिरच्युतास्तु सदात्वयि ।।
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्व नपायिनि ।
त्वामनु स्मरत: सा मे हृदयान्मापसर्पतु ।।
-- विष्णु पुराण, 1 । 20 । 20, गोरखपुर : गीताप्रेस

17-- नारद भक्तिसूत्र, गोरखपुर, गीताप्रेस, पृ0 16

18-- वही, पृ0 17

19-- नारदातुतदर्पिताखिलाचारितातद्विस्मरणे व्याकुल तेति ।'
-- नारद भक्ति सूत्र, पृ0 19

20-- विजयेन्द्र स्नातक रूपगोस्वामी (सं0), हिन्दी भक्ति रसामृत सिंधु, दिल्ली : विश्वविद्यालय दिल्ली, 1963, भूमिका से

गीता में भक्तियोग की पूर्ण प्रतिष्ठा है। भगवद्भक्त और भक्ति का विषद वर्णन गीता में किया गया है। भगवान् कृष्ण ने कहा है -- 'जो मुझे सब सत्कर्मों का अर्पण करके सत्यपरायण होते हुए, अनन्य भाव से मेरा ध्यान कर मुझे भजते हैं, वही मेरे सच्चे भक्त हैं।'[21] महाभारत में कृष्ण-प्रणामी अथवा भक्त दस अश्वमेध यज्ञों के करने वाले से भी श्रेष्ठ हैं क्योंकि अश्वमेध करने वाले को तो 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति' के अनुसार पुनः संसार में आना पड़ता है परन्तु, कृष्ण को प्रणाम करने वाला पुनः जन्म नहीं लेता।[22] तुलसीदास का एक दोहा इसी बात का पुष्टिकरण करता है -

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥[23]

अद्वैतवादी शंकराचार्य ने भक्ति के लक्षण को इस प्रकार बताया है ---

मोक्ष कारण सामग्र्यां भक्तिरेवा गरीयसी।
स्व स्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्याभिधीयते॥[24]

रामानुजाचार्य ने भक्ति का लक्षण इस प्रकार किया है ---

'स्नेहपूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्युच्यते बुधैः।'[25]

अर्थात् स्नेहपूर्वक किया गया ध्यान ही भक्ति है। रामानुजाचार्य ने भक्ति के साथ-साथ 'ध्यान' को भी विशेष स्थान दिया है। वल्लभाचार्य ने

21-- येतु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मांध्यायन्त उपासते॥ 6॥
--- सहजानन्द सरस्वती, पूर्वोक्त, पृ0 771

22-- रामनारायण पाण्डेय, पूर्वोक्त, पृ0 257

23--मूलसम्पादक--रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास, तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड (रामचरितमानस), वाराणसी : ना0 प्र0 सभा0, सं0 2030 वि0, पृ0 478

24-- शंकराचार्य, विवेक चूड़ामणि, गोरखपुर : गीता प्रेस, पृ0 31

25--'गीता' पर रामानुज भाष्य, अध्याय 7 की अवतरणिका

भक्ति-सम्बन्धी मत प्रकट करते हुए कहा है ---

> 'माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़: सर्वतोऽधिक: ।
> स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यथा ।।[26]

दक्षिण में आळवार भक्तों द्वारा भक्तिमार्ग की स्थापना हुई। आळवारों का 'प्रबन्धम्' अशिक्षित या अर्धशिक्षितों की रचना का संग्रह बना। आळवार भक्तों ने कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड का विरोध किया और एकमात्र विष्णु-भक्ति का ही प्रतिपादन किया।[27] आगे चलकर भक्ति-मार्ग कई धाराओं में विभक्त हुआ। यथा -- सगुण भक्तिधारा, ज्ञानमूलक भक्तिधारा एवं निर्गुण भक्तिधारा आदि। अवतार की प्रतिष्ठा एवं उन अवतारों के पूजापाठ का विधान ग्रहण कर सगुणधारा, विष्णुभक्ति, रामभक्ति, कृष्णभक्ति के रूप में सगुण पंथी भक्तों द्वारा प्रचारित हुई, दूसरी ओर निर्गुण पंथी भक्तों द्वारा निर्गुण-भक्तिधारा का प्रचार किया गया। चैतन्य महाप्रभु के पहले से ही बंगाल में वैष्णव सम्प्रदाय की एक शाखा 'सहजिया' के नाम से प्रख्यात थी। कालान्तर में सहजिया वैष्णवों ने अरूप ब्रह्म में सरूप का क्रमश: आरोप करते हुए मानवीय प्रेम की स्थापना की और निर्गुणभक्ति-धारा में प्रेममयी आनन्दधारा का प्रत्यावर्तन हुआ।[28] संतमत के अनुयायियों ने ज्ञानमूलक निर्गुण भक्ति को अपनाया। कबीर तथा गुरु नानक भी निर्गुण भक्ति की ओर उन्मुख हुए।

हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है -- 'आत्मसमर्पण भक्ति की

26-- वल्लभाचार्य, तत्वदीप (सप्रकाश), बनारस, विद्याविलास प्रेस, पृ0 1। 45

27-- परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरीभारत की संत परम्परा, इलाहाबाद : सं0 2021 वि0, पृ0 84

28-- रामजी लाल 'सहायक', पूर्वोक्त, पृ0 350

पहली शर्त है ।[29] रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार --"भक्ति में किसी ऐसे सान्निध्य की प्रवृत्ति होती है जिसके द्वारा हमारे महत्त्व के अनुकूल गति का प्रसार और प्रतिकूल गति का संकोच होता है। रामचन्द्र शुक्ल अपनी सूत्र शैली में कहते हैं कि धर्म की रसात्मक अनुभूति भक्ति है ।[30] जब व्यक्ति अपने समस्त भावों को निष्काम भाव से आराध्य को समर्पित कर देता है, यही भक्ति कहलाती है । तीव्र अनुसंघर्ष का प्रसन्न परिणाम भक्ति है ।[31] जब भक्त अपने सभी भाव भगवान को समर्पित कर देता है, उसे भाव भक्ति कहते हैं ।[32] सेवा का यह भाव न तो सेव्य के भय के कारण उदित होता है और न सेवक के स्वार्थ के कारण। उसमें केवल शुद्ध प्रेम की प्रेरणा होती है ।[33] भक्ति-व्यक्ति की मानसिक आवश्यकता है। मानसिक आवश्यकताओं के कारण ईश्वर की विशिष्ट सत्ता में मनुष्य की आस्था उत्पन्न हुई । सत्ता की पूजा करना धर्म का प्रमुख ध्येय होता है ।[34] भक्त परमात्मा के प्रति श्रद्धा से विनम्र हो जाता है और विनम्रता उसके जीवन पथ को संतुलित कर देती है । प्रभु के चिन्तन में आत्म-विस्मृत होकर ही भक्त ब्रह्मानन्द का अनुभव कर सकता है । भक्ति के लिए मानस केन्द्रण का होना आवश्यक है, जो मन की एकाग्रता से ही संभव है ।[35]

29-- हजारी प्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्म साधना, इलाहाबाद : साहित्य भवन, चतुर्थ संस्करण, 1970, पृ0 60

30-- रामचन्द्र शुक्ल, 1953, पूर्वोक्त, पृ0 27

31-- रामप्रसाद मिश्र, हिन्दी का नवीन इतिहास, कानपुर : साहित्य निकेतन, 1967, पृ0 140

32-- चरणसखी शर्मा, तुलसी काव्य में धर्म और आचरण का स्वरूप, दिल्ली : प्रवीण प्रकाशन, 1984, पृ0 135

33-- सरनाम सिंह शर्मा, हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव, इलाहाबाद : रामनारायण लाल प्रकाशन; 1952, पृ0 148

34-- रामप्रसाद मिश्र, 1967, पूर्वोक्त, पृ0 140

35-- नन्द किशोर तिवारी, मध्ययुग के भक्तिकाव्य में माया, इलाहाबाद : शोध साहित्य प्रकाशन, 1974, पृ0 191

6.1.1 नवधा भक्ति तथा नानक वाणी

बृहत हिन्दी कोश के अनुसार 'नवधा' शब्द से तात्पर्य नौ प्रकार से की जाने वाली भक्ति -- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन है ।[36] हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश में भी यही अर्थ दिए गए हैं ।[37] 'श्रीमद्भागवत्' में इनका वर्णन इस प्रकार है --

'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम् ।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्' । (7 : 5 : 23)[38]

वेदों में नवधा भक्ति के आंशिक संकेत मिलते हैं। इनका वर्णन ऋग्वेद, (1 : 256 : 2, 1 : 254 : 1, 1 : 255 : 44, 1 : 154 : 4) में हुआ है ।[39] 'बृहदारण्यक' में श्रवण मनन, निदिध्यास और साक्षात्कार का उल्लेख है ।[40] गीता में नवधा भक्ति का उल्लेख अध्याय 3 : 30, अ0 4 : 24, 34, अ0 9 : 34, 24, अ0 23 : 25, अ0 22 : 39, 40, 41, अ0 26 : 73 में किया गया है ।[41]

गुरु नानक देव जी की भक्ति प्रमुख रूप में निर्गुण भक्ति है। इसलिए इसमें पादसेवन, अर्चन और वंदन का वर्णन उस रूप में नहीं मिलता जिस रूप में सगुण भक्त कवियों ने किया है । यहां पादसेवन निर्गुण (निराकार) ब्रह्म का है, साक्षात्कार मूर्ति का नहीं, अर्चन भी साक्षात्कार मूर्ति का न

36-- कालिका प्रसाद (सं0), बृहत हिन्दी कोश, वाराणसी : ज्ञानमण्डल, सं0 2030, पृ0 692

37-- विश्वेश्वर नारायण श्रीवास्तव, पूर्वोक्त, पृ0 818

38-- धीरेन्द्र वर्मा (सं0), सं0 2020, पूर्वोक्त, पृ0 404

39-- वही, पृ0 404

40-- वही, पृ0 404

41-- वही, पृ0 404

होकर निर्गुण ब्रह्म का है और वंदन साक्षात्कार मूर्ति का न होकर निर्गुण ब्रह्म के प्रति है । अब नवधा भक्ति के सम्बन्ध में अलग-अलग विचार अपेक्षित हैं ।

श्रवण : इस नव लक्षणा भक्ति का पहला लक्षण `श्रवण` है। भगवान् के प्रेमी भक्तों के द्वारा कथित भगवान् के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, तत्व और रहस्य से पूर्ण अमृतमयी कथाओं का श्रद्धा और प्रेमपूर्वक श्रवण करना एवं उन अमृतमयी कथाओं का श्रवण करके प्रेम में मुग्ध हो जाना श्रवण भक्ति का स्वरूप है ।[42] इसमें अध्ययन एवं पठन का भी समावेश है । गुरु नानक देव जी ने `जपुजी` में आठवीं पउड़ी से लेकर ग्यारवीं पउड़ी तक श्रवण की महत्ता बतलाई है । यथा--

सुणिऐ सिध पीर सुरिनाथ । सुणिऐ धरति धवल आकास ।।
सुणिऐ दीप लोअ पाताल । सुणिऐ पोहि न सकै कालु ।।
सुणिऐ ईसरु बरमा इंदु । सुणिऐ मुखि सालाहणु मंदु ।।
सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद । सुणिऐ सासत सिमृति वेद ।।
सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु । सुणिऐ अठसठि का इसनानु ।।
सुणिऐ पड़ि पड़ि पावहि मानु । सुणिऐ लागै सहजि धिआनु ।।
सुणिऐ सरा गुणा के गाह । सुणिऐ सेख पीर पातिसाह ।।
सुणिऐ अंधे पावहि राहु । सुणिऐ हाथ होवै असगाहु ।।
नानक भगता सदा विगासु । सुणिऐ दूख पाप का नासु ।। 11 ।।[43]

अर्थात् श्रवण से साधारण व्यक्ति सिद्ध, पीर, देवता, नाथ, इन्द्र हो जाते हैं । श्रवण से धरती, वृषभ, आकाश, द्वीप, चौदह लोक, पाताल स्थित

42-- जयदयाल गोयन्दका, श्री भरत जी में नवधा भक्ति (कल्याण वर्ष 24, संख्या 11), गोरखपुर : गीता प्रेस, नवां संस्करण, सं० 2038, पृ० 6

43-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 83

है तथा काल के प्रभाव से भी मनुष्य स्वतन्त्र हो जाता है । जिसने प्रभु का नाम श्रवण किया है, वह शिव, ब्रह्मा और इन्द्र है । श्रवण से बुरे व्यक्ति भी मुख से प्रशंसा योग्य बन जाते हैं । श्रवण से योग-युक्ति, शरीर के रहस्य, शास्त्र, स्मृतियाँ, वेदों का ज्ञान, संतोष और ज्ञान की प्राप्ति, अठसठ तीर्थों का स्नान, मान एवं सहजावस्था का ध्यान लगता है । श्रवण से श्रेष्ठ गुणों की थाह मिलती है । श्रवण से इस लोक में शेख, पीर और बादशाह बन जाते हैं, अन्धे अपना मार्ग पा लेते हैं । गुरु नानक कहते हैं कि श्रवण से भक्तगण सदैव आनन्दित रहते हैं और दु:खों और पापों का नाश हो जाता है ।

कीर्तन : यह नवधा भक्ति का दूसरा लक्षण है । `कीर्तन ` शब्द का शाब्दिक अर्थ है कथन, यशवर्णन, गुणकथन, भगवान् के अवतार सम्बन्धी भजन और कथा आदि ।[44] भगवान् के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, चरित, तत्व और रहस्य का श्रद्धा-प्रेमपूर्वक उच्चारण करते करते शरीर में रोमांच, कण्ठावरोध, अश्रुपात, हृदय की प्रफुल्लता, मुग्धता आदि का होना कीर्तन-भक्ति का स्वरूप है ।[45] जयदयाल गोयन्दका ने कीर्तनों अथवा सत्संग को चार भागों में विभक्त किया है --- `सत` जो भगवान् हैं, उनके प्रति प्रेम और उनका मिलन ही वास्तविक एवं मुख्य सत्संग है । भगवत्प्राप्त भक्तों या जीवन्मुख ज्ञानी महात्माओं का संग दूसरी श्रेणी का सत्संग है । भगवत्प्रेमी उच्चकोटि के साधकों का संग तीसरी श्रेणी का सत्संग है । चौथी श्रेणी में सत शास्त्रों का अनुशीलन भी सत्संग है ।[46] गुरु नानक वाणी में कीर्तन सम्बन्धी उल्लेख पर्याप्त मात्रा में

44-- रामचन्द्र वर्मा (सं0), सं0 2028 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 206

45-- जयदयाल गोयन्दका, सं0 2038, पूर्वोक्त, पृ0 9

46-- जयदयाल गोयन्दका, भक्ति योग का तत्व, गोरखपुर: गीताप्रेस, सं0 2040 , पृ0 70

प्राप्त है । उदाहरणार्थ, कुछ प्रासंगिक पदों का उल्लेख तथा विचार आगे किया जा रहा है ।

कीर्तन भक्ति का महत्त्व स्वीकार करते हुए गुरु नानक इसकी चरम सीमा की विस्तृत अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं कि समस्त ब्रह्माण्ड प्रभु के कीर्तन में संलग्न है। इस ब्रह्माण्ड के कीर्तन में अनेक, असंख्य नाद अनन्त राग-रागिनियाँ तथा असंख्य गायक मौजूद हैं । पवन, पानी, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, अनेक देवी-देवते, सिद्ध, साधक, यती, सती, संतोषी, शूरवीर, योद्धे, पंडित एवं ~~ऋषि~~ ऋषिश्वर, वेदाचार्य, मनमोहिनी अप्सराएं, समस्त खण्ड-ब्रह्माण्ड, चार प्रकार की योनियां (अंडज, जेरज, उद्भिज, स्वेदज), प्रभु के उत्पन्न किए हुए रत्न पदार्थ, अठसठ तीर्थ तथा रसिक भक्तजन सब तुम्हारी कीर्तन भक्ति में संलग्न हैं। यथा --

बाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे ।।

-- -- -- --

सेई तुधनो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ।।[47]

गुरु नानक कीर्तन के महत्त्व को समझते थे, इसलिए उनकी अधिकांश वाणी उनके शिष्य मरदाना की रबाब की मधुर ध्वनि से गूंज उठी थी। उन्होंने बड़े-बड़े सिद्ध, साधक, योगी, जंगम, वीर तथा अन्य बड़े-बड़े पुरुषों के साथ कीर्तन करने में अर्थात् प्रभु की कीर्ति का गान करने में तनिक भी संकोच नहीं किया --

सिध साधिक अरु जोगी जंगम पीर पुरस बहुतेरे ।
~~अ~~ जे तिन मिला त कीरति आखा ता मनु सेव करे ।। 3 ।।[48]

47-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 92

48-- वही, पृ0 494

प्रभु का कीर्तन करने से मनुष्य के सारे भय नष्ट हो जाते हैं, अहं भाव भी नष्ट हो जाता है तथा ऊंचे पद की प्राप्ति होती है --

अमृत रसु पाए तृसना भउ जाए ।
अनभउ पदु पावै आपु गवाए ।।
उची पदवी ऊंचो ऊंचा निरमलु सबदु कमाइआ ।। 4 ।।[49]

कीर्तन के समय शब्द के चुनाव का विशेष ध्यान रखना चाहिए । खुशी के अवसर पर खुशी वाले शब्दों का गायन करना चाहिए । मृतक संस्कारों के अवसर पर मारु वडहंस आदि रागों से चुनकर वैराग्यमयी शब्द या अलाहणियां पढ़नी चाहिए । सिक्ख धर्म में सुख और दु:ख दोनों प्रकार की अवस्थाओं में कीर्तन करने की प्रथा है ।

<u>स्मरण</u> : 'स्मरण' शब्द का अर्थ है किसी देखी-सुनी या अनुभव में आई हुई बात का फिर से मन में आना, याद आना, नौ प्रकार की भक्तियों में से एक जिसमें उपासक अपने उपास्य देव को बराबर याद किया करता है ।[50] प्रभु के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, तत्व और रहस्य का प्रेम में मुग्ध होकर मनन करना और इस प्रकार मनन करते करते भगवान के स्वरूप में तल्लीन हो जाना स्मरण-भक्ति का स्वरूप है ।[51] इसके लिए चिन्तन, ध्यान आदि शब्दों का प्रयोग भी हुआ है । गुरु नानक अपने मन को प्रभु स्मरण की ओर प्रेरित करते हैं --

---

49-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 661
50-- रामचन्द्र वर्मा (सं0), 2028 वि0, <u>पूर्वोक्त</u>, पृ0 1223
51-- जयदयाल गोयन्दका, सं0 2038, <u>पूर्वोक्त</u>, पृ0 11-12

ऐसा गुरमति रमतु सरीरा ।
हरि भजु मेरे मन गहिर गंभीरा ।। १ ।। रहाउ ।।[52]

प्रभु स्मरण में देरी नहीं करनी चाहिए क्योंकि अन्त में जब प्राण निकल रहे हों, उस समय स्मरण नहीं किया जा सकता --

अंति न साहिबु सिमरिआ जाई ।। 3 ।।[53]

कबीर ने भी राम-नाम स्मरण पर बल दिया है ।[54]

गुरु नानक देव ने साधक के लिए पत्थर की मूर्तियों की पूजा तथा जंगलों में विचरण की अपेक्षा प्रभु नाम-स्मरण पर अधिक बल दिया है। वे मनुष्य को सन्देश देते हुए कहते हैं कि प्रभु का नित्य स्मरण करो --

नित नित रिदै समालि प्रीतमु आपणा ।
जे चलहि गुण नालि नाही दुखु संतापना ।। 5 ।।[55]

नित्य चलैन का धोखा बना रहता है, अत: प्रभु नाम-स्मरण उचित है --

साहिबु सिमरहु मेरे भाईहो सभणा एहु पइआणा ।
एथै धंधा कूड़ा चारि दिहा आगै सरपर जाणा ।। 2 ।।[56]

गुरु नानक जीवात्मा रूपी स्त्री को समझाते हुए कहते हैं कि परमात्मा से जो हमारा वियोग हुआ है, उसके लिए अवश्य रोना चाहिए और सच्चे प्रियतम का स्मरण भी करना चाहिए --

---

52-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 259

53-- वही, पृ० 443

54-- सीताराम चतुर्वेदी, 1971, पूर्वोक्त, पृ० 79

55-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 446

56-- वही, पृ० 375

आवहु मिलहु सहेलीहो सचड़ा नामु लएहां ।
रोवह बिरहा तन का आपणा साहिबु संम्हालेहां ।।[57]
साहिबु सम्हालिह पंथु निहालिह असा भि ओथै जाणा ।
जिस का कीआ तिन ही लीआ होआ तिसै का भाणा ।। 1 ।।

गुरुवर मनुष्य को मृत्यु से अवगत कराते हुए चेतावनी देते हैं कि प्रभु-स्मरण करो वरन् मौत का बुलावा घर-घर आ रहा है --

घरि घरि पाहुचा सदड़े नित पवंनि ।
सदण हारा सिमरीऐ नानक से दिह आंवनि ।। 4 ।। [58]

प्रभु स्मरण के विना मनुष्य को बार-बार गर्भयोनि में आना पड़ता है । इससे मुक्त होने के लिए गुरु नानक नाम-स्मरण करने की सलाह देते हैं --

हरिनाम चेति फिरि पवहि न जूनी ।। 20 ।।[59]

सूरदास ने भी यही कहा है कि प्रभु-स्मरण करने से पुन: संसार रूपी भव-जल में नहीं आना पड़ता ।[60] अगर परमात्मा को चित्त में स्मरण किया जाए तो वह परम प्रकाशक होता है --

साहिबु मेरा उजला जेको चिति करेइ ।
नानक सोई सेवीए सदा सदा जो देइ ।। 29 ।।[61]

किन्तु, गुरु की कृपा से यदि परमात्मा का स्मरण किया जाए तो कष्टों का निवारण हो जाता है --

---

57-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 376

58-- वही, पृ० 217, 358, 262

59-- वही, पृ० 519, 632, 332

60-- धीरेन्द्र वर्मा, सं० 2015, पूर्वोक्त, पृ० 20

61-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 571

गुर परसादी तिसु सम्हलाता तनि दूखु न होइ ।। 31 ।।[62]

राग आसा में 'पट्टी' के अन्तर्गत गुरु नानक 'ह' से अभिप्राय: हरिनाम स्मरण मानते हैं, उसका लाभ ग्रहण करना चाहिए --

हरिनाम धिआवहु हरिनाम समावहु
अनदिनु लाहा हरिनाम लीआ ।। 34 ।।[63]

सीमित ज्ञान वाले जीव को गुरु नानक समझाते हुए कहते हैं कि प्रभु-विस्मरण से गुण नष्ट हो जाते हैं, अत: प्रभु-स्मरण कर --

चित चेतसि की नहीं बावरिआ ।
हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ।। 2 ।। रहाउ ।।[64]

गुरु नानक ने इस संसार को महाजाल कहा है । गुरु-कृपा द्वारा नाम-स्मरण करके इस महाजाल से बचा जा सकता है --

बाबा जगु फाथा महाजलि ।
गुर परसादी उबरे सचा नामु समालि ।। 1 ।। रहाउ ।।[65]

पाद सेवन : नवधा भक्ति की परिकल्पना में पाद सेवन का बहुत महत्व है, परन्तु गुरु नानक वाणी में पाद सेवन के संकल्प से प्राय: अभाव है । इसका कारण गुरु नानक देव का मुख्यत: निर्गुण भक्त होना ही हो सकता है । जब भक्ति निराकार की हो तो पाद सेवन को समर्पण के प्रतीक रूप में तो ग्रहण किया जा सकता है, पर पादसेवन की सगुण

62-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 520, 600

63-- वही, पृ0 310

64-- वही, पृ0 575

65-- वही, पृ0 587

मूर्ति-रूपा परिकल्पना ऐसे चिन्तन में सम्भव नहीं हो सकती। गुरु नानक का पाद सेवन स्थूल न होकर सूक्ष्म है, निराकार के सूक्ष्म चरणों का पाद सेवन है जिसके द्वारा जन्म-मरण के चक्र समाप्त हो जाते हैं --

जमण मरणु तिन्हा का चूका जो हरि लागे पावै ।। 2 ।।[66]

स्थूल पाद सेवन का आधार मूर्तिपूजा का तो उन्होंने भरपूर खण्डन किया है -

देवी देवा पूजीऐ भाई किआ मागउ किआ देहि ।
पाहणु नीरि पखालीऐ भाई जल महि बूडहि तेहि ।। 6 ।।[67]

अर्थात् देवी-देवताओं को पूजकर उनसे क्या मांगूं और वे दे ही क्या सकते हैं ? पत्थर की मूर्तियों को यदि पानी में धोया जाए, तो वे डूब जाती हैं, तब वे औरों को कैसे तार सकती हैं ?

अर्चन : यह नवधा भक्ति का पांचवां अंग है । धातु से बनी हुई मूर्ति या चित्रपट के रूप में देखे हुए अथवा श्री भगवान् के भक्तों से सुने हुए भगवान् के स्वरूप का बाह्य सामग्रियों से तथा भगवान् की मानसिक मूर्ति का मानसिक सामग्रियों से एवं उनके साक्षात् विग्रह और चरणों का नानाविध उपचारों से श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सेवन-पूजन करना और उनके तत्त्व, रहस्य तथा प्रभाव को समझ-समझकर प्रेम में मुग्ध होना 'अर्चन-भक्ति'[68] है । गुरु नानक देव जी ने बाह्य एवं स्थूल अर्चन के साधनों का खण्डन करते हुए लोगों से कहा है कि तुम जिन पत्थरों की पूजा करते हो वह तो स्वयं पानी में डूब जाते हैं फिर तुम्हें कैसे तार सकते हैं --

पाथरु ले पूजहि मुगध गवार ।
ओहि जा आपि डुबे तुम कहा तरणहारु ।। 2 ।।[69]

66-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 320

67-- वही, पृ० 405

68-- जयदयाल गोयन्दका, सं० 2038, पूर्वोक्त, पृ० 24

69-- जयराम मिश्र, स० 2018, पृ० 366

गुरु नानक ने सूक्ष्म अर्चन पर जोर देते हुए कहा है कि मन को हुरसा (जिस पत्थर पर चंदन घिसा जाता है) और प्रभु के नाम को चन्दन की लकड़ी का टुकड़ा बनाओ। उसमें शुभ कर्म रूपी कुमकुम (केसर) को मिलाओ। इस प्रकार के संयोग से की गई पूजा ही वास्तविक पूजन और अर्चन है --

तेरा नामु करी चनणाठीआ जे मनु उरसा होइ ।
करणी कुंगू जे रलै घट अंतरि पूजा होइ ।। 1 ।।[70]

गुरु नानक के विचार के अनुसार प्रभु की हस्ती भले ही एक है परन्तु रूप अनेक हैं, अर्चन-पूजन अगर किया भी जाए तो किसका ? किसके आगे धूप आदि सामग्री निवेदित करूं ? यथा --

तेरी मूरति एका बहुतु रूप ।
किसु पूज चढ़ावउ देउ धूप ।।
तेरा अंतु न पाइआ कहा पाइ ।। 2 ।।[71]

समस्त प्रकृति ही प्रभु के अर्चन-पूजन में संलग्न है --

गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ।
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती ।। 1 ।।[72]

अर्थात् प्रभु की आरती के निमित्त आकाश रूपी थल में सूर्य और चन्द्रमा दीपक बने हुए हैं और तारामण्डल उस थाल में मोती के रूप में जड़े हैं। मलय चन्दन की सुगन्धि धूप है, वायु चंवर कर रहा है, बनों के खिले हुए सारे पुष्प प्रभु की आरती के लिए पुष्प बने हुए हैं। मनुष्य के लिए अर्चना ऐसे सम्भव है कि वह मन को हरी के निवास का स्थान या सिंहासन बनाकर, उसे सत्संग रूपी

70-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 356

71-- वही, पृ० 701

72-- वही, पृ० 416

नदी में स्नान कराकर श्रद्धा रूपी पत्थर और प्राणों तक को हरी के अर्पण कर दे । यही वास्तविक अर्चन है जिसके द्वारा प्रभु प्रसन्न हो सकता है। गुरु नानक के शब्दों में --

मन संपटु जितु सत सरि नावणु भावन पाती तृपति करे ।
पूजा प्राण सेवकु जे सेवे इन्ह बिधि साहिबु रवतु रहै ।। 3 ।।[73]

वंदन : श्री भगवान के शास्त्र वर्णित स्वरूप, भगवान् के नाम, भगवान धातु आदि की मूर्ति, चित्र अथवा मानसिक मूर्ति को स्वयं भगवान् के साक्षात् चरणों को शरीर अथवा मन से श्रद्धा सहित प्रणाम करना और ऐसा करते हुए भगवत्प्रेम में मुग्ध होना 'वंदन-भक्ति' है।[74] यह नवधा भक्ति का छठा अंग है । गुरु नानक का नमस्कार या वंदन किसी मूर्ति के प्रति न होकर प्रभु के निर्गुण स्वरूप के प्रति है । उनके अनुसार वास्तविक वंदनतो प्रभु के ऊपर विश्वास करना है --

सिदक करि सिजदा मनु करि मखसूद । 4 ।।[75]

अर्थात् परमात्मा में विश्वास रखने को ही सिजदा (परमात्मा के आगे झुकना) बनाओ और अपने मन को परमात्मा में जोड़ने को ही लक्ष्य बनाओ। प्रभु के हुक्म को मानना ही वास्तविक वंदन है । गुरु नानक के अनुसार --

'तुधनो निवण मनण तेरा नाउ ।'[76]

अर्थात् तुम्हारा नाम मानना तुझसे विनम्र होना है। दिखावे और लालच के वशीभूत वंदन करने की उन्होंने निन्दा की है --

---

73-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 435

74-- जयदयाल गोयन्दका, सं0 2038, पूर्वोक्त, पृ0 28

75-- जयराम मिश्र, सं0 2013, पृ0 169

76-- वही, पृ0 497

अपराधी दूणा निवै जो हंता मिरगाहि ।
सीसि निवाइऐ किआ थिऐ जा रिदै कुसुधे जाहि ।। 27 ।।[77]

यहां झुकना दो प्रकार का माना गया है-- एक हृदय की शुद्धता से दूसरा मलिनता से । मलिनता एवं कपट वाला झुकना हानिकारक होता है । अपराधी मृग का शिकार करते समय झुक कर दोहरा हो जाता है, परन्तु उसके झुकने में हिंसा की भावना है । इसलिए जब तक मन अशुद्ध है, तब तक नमस्कार या वंदन करने से कोई लाभ नहीं ।

दास्य-भक्ति : श्री भगवान के गुण तत्व, रहस्य और प्रभाव को समझते हुए श्रद्धा-प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करना और उनकी आज्ञा का पालन करना तथा प्रभु को स्वामी और अपने को सेवक समझना `दास्य भाव रूप` भक्ति है ।[78] दास्य भक्ति सम्बन्धी उक्तियां नानक वाणी में पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं जिनका उल्लेख किया जा रहा है ।

गुरु नानक प्रभु के छोटे दास हैं। वे प्रभु के जूठे बर्तन साफ करने वाले नौकर का जूठा साफ करने वाले नौकर हैं --

मैं ओल्हगीआ ओल्हगी हम छोरु थारे । 1 ।। रहाउ ।।[79]

प्रभु उत्तम और गुरु नानक उनका नीच सेवक है --

तू उतमु हउ नीचु सेवकु कांढीआ । 8 ।।[80]

गुरु नानक बार-बार स्वयं को प्रभु के दासों का दास मानते हुए विनयपूर्वक कहते हैं कि गुरु की बुद्धि द्वारा मैंने उस परमात्मा-तत्त्व को जान लिया है--

---

77-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 344

78-- ~~जस-वही,--पृ0~~ जयदयाल गोयन्दका, सं0 2038, पूर्वोक्त, पृ0 32

79-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 303

80-- वही, पृ0 306

प्रणवति नानकु दास निदासा गुरमति जानिआ सोई ।। 4 ।।[81]
गुरु नानक जीवात्मा रूपी सहेलियों को प्रबोध देते हुए कहते हैं कि हम सभी परमात्मा की दासियां हैं --

नानक कहै सहेलीहो सहु खरा पिआरा ।
हम सह केरीआ दासीआ साचा खसमु हमारा ।। 5 ।।[82]

नानक उस प्रभु का दास है जिसके ऊपर वह पल-पल कुरबान होता है --
नानकु ताका दासु है बिंद बिंद चुख चुख होइ ।। 4 ।।[83]
प्रभु का सेवक बनने के लिए गुरु नानक अपने मन से कहते हैं --
ऐसा गिआनु जपहु मन मेरे । होवहु चाकर साचे केरे ।। 1 ।।
रहाउ ।।[84]
जिनके हृदय में सच्चे प्रेम का निवास है, ऐसे भक्तों का सेवक बनना गुरु नानक को बहुत पसन्द है --
साचु रिदै प्रेम निवास । प्रणवति नानक हम ता के दास ।। 9 ।।[85]

सांसारिक दु:खों को विस्मृत करने वाले मनुष्य को गुरु नानक श्रेष्ठ समझते हैं । इस प्रकार के दास के मिलने से बहुत लाभ है --

ऐसो दासु मिलै सुखु होई ।
दुखु विसरै पावै सचु सोई ।। 1 ।।[86]

गुरु नानक ठाकुर (ईश्वर) के दास को गुरमुख कहते हैं । वह सेवक, दास और

81-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 391
82-- वही, पृ0 438
83-- वही, पृ0 408
84-- वही, पृ0 436
85-- वही, पृ0 227
86-- वही, पृ0 227

भक्त कहलाता है --

सेवकु दासु भगतु जनु सोई । ठाकुर का दासु गुरमुखि होइ ।। 1 ।।[87]

अगर कोई व्यक्ति गुरु का सेवक अथवा दास बन जाए, उसे मोक्ष मिलता है--

छूटसि प्राणी गुरमुखि दासा ।। 1 ।। रहाउ ।।[88]

अन्य साधनों की अपेक्षा प्रभु की दासता करना श्रेष्ठ है --

तेरा दास निदासा कहउ राइ ।
जगजीवन जुगति न मिलै काइ ।। 1 ।। रहाउ ।[89]

दासों के दास गुरु नानक प्रभु को जीवों का प्रतिपालक कहते हैं --

प्रणवति नानक दासनि दासा तू सरब जीआ प्रतिपाला ।। 1 ।।[90]

गुरु नानक मनुष्य को प्रभु का दास बनने की सलाह देते हैं । इसी बात को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करती है --

जिउ अगनि मरै जलि पाइऐ तिउ तृसना दास निदासा ।। 2 ।।[91]

अर्थात् जिस प्रकार जल डालने से अग्नि शान्त हो जाती है, उसी प्रकार दास बनने से तृष्णा शान्त होती है । उनकी राय है कि किसी कार्य की पूर्णता के लिए स्वयं को प्रभु का दास मान कर प्रार्थना करनी चाहिए । ऐसा करने से कृपालु प्रभु दास की लाज रख लेता है । इस विधि से अलख परमात्मा का दर्शन भी किया जा सकता है --

कीता लोडीऐ कंमु सु हरि पहि आखीऐ ।
कारजु देइ सवारि सतिगुर सचु साखीऐ ।।

87-- जयराम मिश्र, सं० 2013, पृ० 263

88-- वही, पृ० 279

89-- वही, पृ० 701

90-- वही, पृ० 686

91-- वही, पृ० 121

संता संगि निधानु अंमृतु चाखीऐ ।
मै भंजन मिहरवान दास की राखीऐ ।
नानक हरिगुण गाइ अलखु प्रभु लाखीऐ ।। 3 ।।[92]

प्रभु को सर्वोपरि बताते हुए गुरु नानक स्वयं को उसका बंदा (दास) मानते हैं -

तू दाना साहिबु सिरि मेरा ।
खिज मति करी जनु बंदा तेरा ।। 3 ।।[93]

गुरु नानक प्रभु के बड़े आभारी हैं क्योंकि प्रभु ने उन्हें अपने दासों का दास बना लिया --

हरि किरपाधारी दास निदासा ।। 4 ।।[94]

सख्य : इस भावना में न दास का दूरत्व है, न पुत्र का संकोच और न पत्नी का अधीन भाव है। ईश्वर का सखा जीव पराधीन है । मर्यादाओं से ऊपर है और उसका वरेण्य बंधु है । सख्य भाव की यह स्वाधीनता उसे भक्ति-क्षेत्र में ऊर्ध्व स्थान पर स्थित कर देती है ।[95] गुरु नानक को सिद्धान्त रूप से परमात्मा के साथ यह रिश्ता बनाना पसन्द नहीं था इसलिए इस प्रकार की भक्ति का नानकवाणी में अभाव है । यदि कहीं ऐसी भावना सूचक कोई उक्ति मिलती भी है, वह भी बाद में स्वामी अथवा पति रूपी परमात्मा में परिणत हो जाती है । यथा ---

---

92-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 171

93-- वही, पृ0 577

94-- वही, पृ0 476

95-- राम प्रसाद त्रिपाठी, हिन्दी विश्वकोश (भाग-8) वाराणसी : ना0 प्र0 स0, प्रथम संस्करण, सं0 2023 वि0, पृ0 423

साजन तेरे चरन की होइ रहा सदा धूरि ।
नानक सरणि तुहारी आ पेखउ सदा हजूरि ।। 1 ।।[96]

अर्थात् परमात्मा रूपी साजन को गुरु नानक सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे साजन् । मैं सदैव तेरे चरणों की धूलि हो रहा हूं । मैं सदैव तेरी शरण में रह कर तुझे अपने सामने देखना चाहता हूं । प्रभु के साथ युगों-युगों का सम्बन्ध स्थापित करते हुए उन्होंने कहा है कि हरि के समान मेरा अन्य कोई मित्र नहीं --

`हरि सा मीतु नाही मैं कोइ ।[97]

गुरु नानक के अनुसार सखा (प्रभु) की कृपा से ही गुरु मिलता है जो भक्ति को दृढ़ करता है --

ऐसा हमरा सखा सहाई । गुर हरि मिलिआ भगति दृढ़ाई । 4 ।।[98]

सख्य भक्ति से सत्य रूपी प्रभु की प्राप्ति होती है --

नानक सद्गुरु मीतु करि सचु पावहि दरगह जाई ।। 4 ।।[99]

<u>आत्म निवेदन : आत्म समर्पण</u> -- श्री भगवान के तत्व, रहस्य, प्रभाव और महिमा को जानकर ममता और अहंकार रहित होकर सब कुछ भगवान का ही समझते हुए तन-मन-धन जन-सहित अपने आपको तथा सम्पूर्ण कर्मों को श्रद्धा और परम प्रेमपूर्वक भगवान को समर्पण कर देना `आत्म-निवेदन-भाव रूप भक्ति है'।[100] गुरु नानक वाणी में आत्म निवेदन और आत्म-समर्पण के अनेकों

96-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 573

97-- वही, पृ० 625

98-- वही, पृ० 266

99-- वही, पृ० 120

100-- जयदयाल गोयन्दका, सं० 2038, पूर्वोक्त, पृ० 40

प्रमाण दृष्टिगोचर होते हैं । गुरु नानक कहते हैं कि परमात्मा अथवा सद्गुरु के समक्ष समर्पण करने से मोक्ष मिलता है --

नानक सिस दे छुटीऐ मनि तनि साचा सोइ ।। 4 ।।[101]

ऐसा करने से तन और मन सच्चे हो जाओगे । गुरु नानक ने अपना शरीर, सांसें और प्राण भी ईश्वर को समर्पित कर दिए हैं क्योंकि हरी उन्हें अत्यधिक प्रिय है --

सासु मासु सभु जीअ तुमारा तूं मै खरा पिआरा । 2 ।।[102]

तन मनु गुर पहिं वेचिआ मनु दीआ सिस नालि ।
त्रिभवणु खोजि ढंढोलिआ गुरमुखि खोजि निहालि ।।
सतगुरि मेल मिलाइआ नानक सो प्रभु नालि ।। 4 ।।[103]

इस प्रकार सद्गुरु के समक्ष बलिदान करने से मोक्ष मिलता है --

सतिगुर कउ बलि जाईऐ ।
जितु मिलिऐ परम गति पाईऐ ।। 4 ।।[104]

मन की भेंट चढ़ाकर यदि सद्गुरु से मिला जाए, फिर उसकी कीमत कोई नहीं पा सकता --

जे मन सतिगुर दे मिलै किनि कीमति पाइ ।। 7 ।।[105]

जीवात्मा रूपी स्त्री का पति विदेश चला गया है, उसके वियोग में वह बहुत दु:खी है । गुरु नानक कहते हैं यदि वह पूर्ण भव से गुरु के

101-- जयराम मिश्र, सं0 2013, पृ0 582

102-- वही, पृ0 409, 799

103-- वही, पृ0 117

104-- वही, पृ0 161

105-- वही, पृ0 301

सामने आत्म-समर्पण कर दे, तब प्रियतम से अवश्य मिल सकती है --

सतिगुर सबदी मिलै विछुनी तनु मनु आगै राखै ।। 3 ।।[106]

अपने तन, मन और शरीर को समर्पित करके ही हरी की स्तुति करनी चाहिए-

हरि सालाही सदा सदा तनु मनु सउपि सरीरु ।। 2 ।।[107]

राग राम कली में सिद्धगणों को समझाते हुए गुरु जी कहते हैं कि उस परमात्मा के आगे मस्तक काट कर रख देना चाहिए और तन-मन भी समर्पित कर देना चाहिए । यथा--

मसतकु कटि धरी तिसु आगै तनु मनु अगै देउ । 2 ।।[108]

तन और मन गुरु के पास बेच देना चाहिए । साथ ही गुरु के चरणों में मन के साथ सिर भी दे देना चाहिए क्योंकि गुरु नानक का ईश्वर से मिलाप रुद्र गुरु ने ही कराया है।--

सच्चा प्रेम करना आसान काम नहीं क्योंकि इसमें कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । आवश्यकता पड़े तो अपना बलिदान देने में भी संकोच नहीं करना चाहिए । गुरु नानक कहते हैं --

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ । सिरु धरि तली गली मेरी आउ ।।
इतु मारगि पैरु धरीजै । सिरु दीजै काणि न कीजै ।। 20 ।।[109]

गुरु नानक अपने साहिब के नाम पर कुरबान होना चाहते हैं --

हउ वारी वंञा खंनीऐ वंञा तउ साहिब के नावै ।। 1 ।। रहाउ।।[110]

106-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 685

107-- वही, पृ० 465

108-- वही, पृ० 538

109-- वही, पृ० 810

110-- वही, पृ० 367

लोगों को समझाते हुए वे कहते हैं कि जगत के रचयिता के ऊपर कुरबान हो जाना चाहिए --

जिनि जगतु उपाइआ धंधै लाइआ हउ तिसै विटहु कुरबाणु जीउ ।।2।।[111]

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि गुरु नानक देव जी की भक्ति-भावना में निर्गुण-निराकार तत्व की प्रमुखता है। उन्होंने भगवान की निर्गुण निराकार रूप की उपासना पद्धति सीखाई। उन्होंने भजन-पूजन आदि के विधि-विधानों की आवश्यकता स्वीकार न करके ईश्वर को अपने भीतर देखने पर बल दिया ।

6.1.2 गुरु नानक वाणी में भक्ति

गुरु नानक ने अन्य मार्गों की अपेक्षा भक्तिमार्ग पर विशेष बल दिया है । प्राणी को उपदेश देते हुए उन्होंने कहा है कि राम की भक्ति द्वारा अलौकिक सुख प्राप्त कर । जब गुरु के नाम द्वारा प्रभु का उच्चारण होने लगे, तब उस नाम में समा जा --

प्राणी राम भगति सुखु पाईऐ ।
गुरमुखि हरि हरि मीठा लागै हरि हरि नामि समाईऐ ।। 1 ।।[112]

ईश्वर सर्वत्र व्यापक तथा परिपूर्ण है । उसके पास भक्ति का भण्डार है जिस में कभी कमी नहीं पड़ती --

आखणि तोटि न भगति भंडारी भरिपुरि रहिआ सोई । 4 ।।[113]

प्रभु-भक्ति में अनुरक्त होने वाला व्यक्ति वैराग्यवान बन जाता है, उसकी सांसारिक मोह-माया की पिपासा शान्त हो जाती है तथा अहंकार

111-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 320

112-- वही, पृ० 504, 632

113-- वही, पृ० 421

भी नष्ट हो जाता है । पर ऐसे दास बिरले ही मिलते हैं --

हरि की भगति रते वैरागी चूके मोह पिआसा
नानक हउमै मारि पतीणे विरले दास-उदासा ।। 4 ।।[114]

जो मनुष्य दिन-रात प्रभु की भक्ति करता है एवं लज्जा त्याग देता है, ऐसा भक्त प्रभु को अत्यन्त प्रिय है --

सो हरि जनु हरि प्रभ भावै ।।
अहिनिसि भगति करे दिनु राती लाज छोडि हरि के गुण गावै ।।1।।[115]

मनुष्य सुख भोगने की कामना करता है किन्तु, अहंकार का त्याग नहीं करना चाहता। अहंकार-ग्रस्त होने के कारण जीव बंधन से बंधता रहता है । गुरु नानक इस बंधन से छूटने का उपाय बताते हुए कहते हैं --

हउमै बंधन बंधि भवावै । नानक राम भगति सुखु पावै ।। 8 ।।[116]

कबीर की तरह गुरु नानक ने भी शक्ति के उपासक माया के पुजारी के जीवन को धिक्कारा है । राम की भक्ति में अनुरक्त पुरुष ही संसार से निर्लेप रह सकता है --

अनत तरंग भगति हरि रंगा । अनदिनु सूचे हरि गुण संगा ।।
मिथिआ जनम साकत संसारा । राम भगति जनु रहै निरारा ।।2।।[117]

गुरु नानक ने उन गृहस्थी लोगों का उदाहरण दिया है जो नाम, दान और स्नान की रहनी को दृढ़ करके हरि की भक्ति में लग गए हैं --

---

114-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 319
115-- वही, पृ० 499
116-- वही, पृ० 233, 361
117-- वही, पृ० 259

इकि गिरही सेवक साधिका गुरमती लागे ।
नामु दानु इसनानु दृड़ हरि भगति सु जागे ।। 7 ।।[118]

राम की भक्ति करने से बहुत लाभ होते हैं । अहंकार और ममता का रोग नहीं लगता, यम का भय भी नहीं होता तथा निर्मल राम का नाम हृदय में सुशोभित हो जाता है --

हउमै ममता रोगु न लागै । राम भगति जम का भउ भागै ।।
जमु जंदारु न लागै मोहि । निरमल नामु रिदै हरि सोहि ।। 3 ।।[119]

गुरु नानक का कथन है कि गुरु के उपदेश के बिना भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती । सद्गुरु भक्ति प्रदाता है, उसके द्वारा भक्ति प्राप्त होने पर मनुष्य अपने आत्म-स्वरूपी घर में जा सकता है --

हीरु किते भगति न होवई बिनु सतगुरु के उपदेस ।।[120]

ईश्वर से प्रीति किए बिना मनुष्य मुक्त नहीं हो सकता। वही ईश्वर मुक्त करने वाला है । वह गुरमुखों के अन्तर्गत रमण करता है और उन्हें भक्ति का भण्डार प्रदान करता है । गुरु नानक कहते हैं, यदि मनुष्य मोक्ष चाहता है तो गुरमुखों से भक्ति का भण्डार प्राप्त कर सकता है --

मन रे किउ छूटहि बिनु पिआर ।
गुरमुखि अंतरि रवि रहिआ बखसे भगति भंडार ।। 1 ।। रहाउ ।।[121]

जिस गुरमुख के हृदय में प्रभु का निवास है उसे प्रभु-भक्ति अवश्य प्राप्त होती है।

118-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 297

119-- वही, पृ0 504

120-- वही, पृ0 122, 662, 629

121-- वही, पृ0 148

प्रभु-भक्ति मुक्ति और आनन्द प्रदायिनी है --

जा कै हिरदै वसिआ हरि सोइ ।
गुरमुखि भगति परापति होइ ।।
हरि की भगति मुकति आनंदु । गुरमति पाए परमानंदु ।।3।।[122]

भक्ति का मर्म समझना कोई आसान काम नहीं। गुरु नानक कहते हैं कि ब्रह्म, इन्द्र और महेश भी गुरु की सच्ची भक्ति का मर्म नहीं समझ सके। ऐसी परिस्थिति में सद्गुरु को पहचानना आवश्यक है --

गुर की भगति करहि किआ प्राणी ।
ब्रहमै इंद्रि महेसि न जाणी ।।
सतिगुरु अलखु कहहु किउ लखीऐ
जिसु बखसे तिसहिं पछाता है ।। 24 ।।[123]

जिस मनुष्य के अन्तर्गत ईश्वर-भक्ति नहीं, गुरु नानक ने उसका जीवन निष्फल माना है --

जनमै का फलु किआ गणी जां हरि भगति न भाउ । 11 ।।[124]

राग राम कली के अन्तर्गत गुरु नानक एक योगी की बात करते हैं। योगी नाना प्रकार की साधनाएं तथा प्रयत्न करके भी दु:खी रहता है। कोई विरला ही गुरु की बुद्धि द्वारा भक्ति ग्रहण कर सकता है --

दादन भोजनु मागतु भागै । खुधिआ दुसट जलै दुखु आगै ।।
गुरमति नहीं लीनी दुरमति पति खोइ ।
गुरमति भगति पावै जन कोई ।। 1 ।।[125]

122-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 209

123-- वही, पृ० 635

124-- वही, पृ० 807

125-- वही, पृ० 499

गुरु नानक अपने मन को भक्ति में प्रवृत्त होने को कह रहे हैं क्योंकि गुरु द्वारा भक्ति प्राप्त होने पर मनुष्य सहज भाव से अपने आत्म-स्वरूपी घर में जा सकता है --

मन रे राम भगति चितु लाइऐ ।
गुरमुखि राम नामु जपि हिरदै सहज सेती घरि जाइऐ ।।1।।रहाउ।।[126]

बिना भाग्य के कुछ भी नहीं मिलता । गुरु नानक कहते हैं कि भक्ति भी भाग्य से ही मिलती है । भक्ति से सद्गुरु मिलता है, यहाँ तक कि बिना भाग्य से सत्संग भी प्राप्त नहीं होता --

बिनु भगती नहीं सतिगुर पाइऐ बिनु भागा नहीं भगति हरी ।।
बिनु भागा सतसंगु न पाइऐ करमि मिलै हरिनामु हरी ।। 2 ।।[127]

6.1.3 भाव भक्ति

गुरु नानक ने अपनी भक्ति को 'भाउ भक्ति' का पारिभाषिक नाम दिया है। `भाउ` संस्कृत के `भाव` शब्द का तद्भव रूप है । इसके अन्तर्गत भक्ति के और भी कई विधि-विधानों का सहज रूप मिलता है, इसे सहज भक्ति भी कहते हैं। मुन्शीराम शर्मा का कथन है -- `भाव भक्ति हृदय प्रसूत होती है। पूजा के आडम्बर में मन लगाना आवश्यक नहीं है । विधि-विधान एक नियमित अभ्यास चाहते हैं । हृदय की भावभूति से उनका स्पर्श हो भी सकता है और नहीं भी। अधिकतर यही देखा गया है कि नियम सर्वप्रथम बुद्धि से अभिभूत होता है, तदुपरान्त वह बुद्धि से भी असंयुक्त हो जाता है और गतानुगतिकता का रूप धारण कर लेता है ।`[128] इस भक्ति में विधि-विधान अथवा वैधी भक्ति का कोई स्थान नहीं है। गुरु नानक के

126-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 696

127-- वही, पृ0 708

128-- मुन्शी राम शर्मा, पूर्वोक्त, पृ0 472

अनुसार ईश्वर स्वयं ही भाव-भक्ति है । --'आपे भगति भाउ तू' ।[129]

6.1.4 वैधी भक्ति का खण्डन

विधि के अनुसार की जाने वाली भक्ति 'वैधी भक्ति' कहलाती है । गुरु नानक वैधी भक्ति के विरोधी थे । वैधी भक्ति का विरोध करते हुए गुरु नानक ने लिखा है कि पंडित लोग धार्मिक पुस्तकें पढ़कर संध्या करते हैं और वाद-विवाद में लगे रहते हैं । ये लोग मूर्ति-पूजा करते हैं और बगुल समाधि लगाते हैं । ये मुंह से झूठ बोलकर लोहे को सोने का आभूषण बना कर लोगों को दिखाते हैं, तात्पर्य यह है कि झूठ केवल- के बल पर बुरी वस्तु को अच्छा बनाकर दिखाते हैं; ये गायत्री मन्त्र का प्रात:, दोपहर, और सन्ध्या में विचार करते हैं । इनके गले में माला तथा ललाट पर तिलक रहता है, धोती पहनते हैं तथा पूजा करते वक्त सिर पर वस्त्र रखते हैं । गुरु नानक कहते हैं कि यदि वह पंडित प्रभु का आचार जानता तो उपर्युक्त बाह्य कर्म व्यर्थ जान पड़ते । बिना सद्गुरु के उचित मार्ग नहीं जान पड़ता --

पड़ि पुस्तक संधिआ बादं । सिल पूजसि बगुल समाधं ।।
मुखि झूठु बिभूखन सारं । त्रै पाल तिहाल बिचारं ।।
गलि माला तिलकै लिलाटं । दोइ धोती बसत्र कपाटं ।।
जो जानसि ब्रहमं करमं । समकोकट निरुचै करमं ।।
कहु नानक निसचौ ध्यावै । बिनु सतिगुर बाट न पावै ।। 1 ।।[130]

उनके अनुसार सच्चे नाम के बिना तिलक, यज्ञोपवीत आदि सब व्यर्थ हैं --
नानकु सचे नाम बिनु किआ टिका किआ तगु ।। 14 ।।[131]

129-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 153

130-- वही, पृ0 802

131-- वही, पृ0 335

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरु नानक की भक्ति मनुष्य को सदाचरण तथा सहजशील द्वारा उसके व्यक्तित्व में विकास करके उसे लोक-संग्रहार्थ निष्काम कर्म करने की प्रेरणा देती है । यह भक्ति अत्यन्त लोकोपयोगी है । इस भक्ति में विधान, पूजा-पाठ, वेष, भूषा, आडम्बर एवं पाखण्ड के लिए कोई स्थान नहीं है । यह निर्गुण-भाव भक्ति है । किसी भी स्थान में, किसी समय, बिना किसी विशेष उपकरण के भक्त के भावों के अनुसार की जा सकती है । इसमें किसी के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं । सभी मनुष्य ऐसी भक्ति कर सकते हैं।

6.2 नाम माहात्म्य तथा नानक वाणी

'नाम' अकाल-पुरुष की शक्ति का सूचक है क्योंकि इस ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु में वह व्याप्त है । मानव ने अपने अवचेतन में अव्यक्त की सत्ता को स्वीकार किया हुआ है । वह उसके अन्यान्य रूपों तथा गुणों के माध्यम से इसे अनुभव करता है। इन्हीं गुणों तथा रूपों को जब वह शब्दों के माध्यम से मानवीय अभिव्यक्ति देने का यत्न करता है, तो वह 'अकाल-पुरुष' का नाम बन जाता है। इस अव्यक्त सत्ता से अपना सम्बन्ध जोड़ने के लिए सर्वप्रथम साधन 'नाम' ही है । कभी वह उसके आकार व रूप से सम्बन्धित 'नाम' के माध्यम से अपना सम्बन्ध बढ़ाता है, तो कभी उसके लाभदायक प्रभावोत्पादक गुणों के माध्यम से ।[132] गुरु नानक देव जी की धर्म-साधना अकाल-पुरुष के नाम के माध्यम से ही विकसित हुई है। गुरु नानक वाणी में नाम के महत्व को विशेष स्थान प्राप्त है । समस्त वाणी नाम-महिमा से भरी पड़ी है । गुरु नानक नाम को सच्चा साथी मानते हैं। तन-धन और स्त्री सब अभिमान है --

तनु धनु कलत लभु देखु अभिमाना ।
बिनु नावै किछु संगि न जाना ।। 1 ।।[133]

132-- शमीर सिंह, गुरु तेग बहादुर जी : जीवन काव्य व चिन्तन, अमृतसर : देवेन्द्र सिंह प्रेम नगर, 1976, पृ0 139

133-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 478, 258, 593, 684

नाम को मानना सच्ची प्रतिष्ठा और पूजा है --

मंनै नामु सची पति पूजा ।। 8 ।।[134]

गुरु नानक प्रभु के नाम को आभूषण कहते हैं । मोक्ष, प्रतिष्ठा सब प्रभु के नाम से मिलती है --

नाइ तरै तरणा नाइ पति पूज । नाउ तेरा गहणा मति मकसूद ।।
नाइ तरै नाउ मनै सभ कोइ । विणु नावै पति कबहु न होइ ।।1।।[135]

नाम का सौदा कोई विरला ही करता है --

वरवरु नामु देखण कोई जाइ । ना को चाखै ना को खाइ ।।2।।[136]

मन मुख स्त्री नाम विहीन होने के कारण ही ठगी गई --

विणु नावै भ्रमि भुलीआ ठगि मुठी कुड़िआरि जीउ ।।1।।[137]

ऐसी स्त्री सच्चे नाम के बिना पछताती रहती है --

नानक सचे नाम विहूणी भुलि भुलि पछोताणी । 1 । 4 ।।[138]

गुरु नानक प्रभु से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि मुझे तुम्हारा नाम कभी विस्मृत न हो, मेरे हृदय में सदैव बसा रहे --

मेरे प्रीतमा तू करता करि वेखु ।
हउ पापी पाखंडीआ भाइ मनि तनि नाम विसेखु ।।1।रहाउ ।।[139]

नाम के बिना अन्य कर्म व्यर्थ हैं --

134-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 477

135-- वही, पृ0 776, 732

136-- वही, पृ0 410

137-- वही, पृ0 444

138-- वही, पृ0 684

139-- वही, पृ0 405

ऐथै ओथै निबही नालि ।

विणु नावै होरि करम न भालि ।। 1 ।। [140]

बिना नाम के काल ने सबको बांध रखा है। अन्तिम समय में यही सहायता करता है --

नामु मिलै चलै मैं नालि । बिनु नावै बाधी सभ कालि ।। 1 ।। [141]

गुरु नानक नाम रूपी रत्न को खजाना कहते हैं जो उनके पास है --

ऐसा नामु रतनु निधि मेरै ।

गुर मति देहि लगउ पागि तेरै ।। 1 ।। रहाउ ।। [142]

ऐसा सौदा कोई विरला ही करता है --

वखरु नामु देखण कोई जाइ । ना को चाखै ना को खाइ ।।2।। [143]

इस पद में सारी 'सिध गोसटि' का सारांश दिया गया है । नाम के बिना योग नहीं होता । नाम से ही वास्तविक सुख, पूर्णज्ञान, योग की युक्ति एवं मोक्ष मिलता है। यह नाम गुरु द्वारा मिलता है --

सबदै का निबेड़ा सुणि तू अउधू बिना नावै जोगु न होई ।

नामे राते अनदिनु माते नामै ते सुखु होई ।।

नामै ही ते सभु परगटु होवै नामै सोझी पाई ।

बिनु नावै भेख करहि बहुतेरे सचै आपि खुआई ।।

सतिगुरु ते नामु पाईऐ अउधू जोग जुगति ता होई ।। 72 ।। [144]

गुरु नानक इस संसार को डरावना कहते हैं । मनुष्य हरिनाम का आधार लेकर ही संसार रूपी भय तथा यम के दूतों से मुक्त हो सकता है --

---

140-- जयराम मिश्र, स0 2018, पृ0 262, 794

141-- वही, पृ0 203

142-- वही, पृ0 783

143-- वही, पृ0 410

144-- वही, पृ0 546

भाई रे भवजल बिखमु डराउ ।

पूरा सतिगुरु रसि मिलै गुरु तारे हरिनाउ।1।रहाउ ।।[145]

गुरु नानक प्रभु के नाम को एकमात्र आश्रय मानते हैं --

मैं ता नामु तेरा आधारु ।1।। रहाउ।।[146]

प्रभु के नाम की कीमत नहीं आंकी जा सकती। उसके नाम को बड़ा दर्शाते हुए गुरुवर कहते हैं --

कोटि कोटी मेरी आरजा पवणु पीअणु अपिआउ ।

चंदु सूरजु दुइ गुफै न देखा सुपनै सउण न थाउ ।।

भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ।। 1 ।।[147]

अर्थात्, यदि मेरी आयु करोड़ों वर्षों हो जाए और खाना-पीना भी वायु हो, ऐसी कन्दरा के बीच बैठूं कि चांद और सूर्य भी न देख सकें, निरन्तर जागता रहूं, फिर भी प्रभु के नाम की कीमत नहीं आंकी जा सकती । गुरु नानक प्रभु से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि मैं किसी भुलावे या भ्रम में पड़कर तुम्हारा नाम भूल न जाऊं क्योंकि सांसारिक वस्तुएं मनुष्य को भ्रमित कर देती हैं --

मोती त मंदर ऊसरहि रतनी त होहि जड़ाउ ।

कसतूरि कुंगू अगरि चंदनि लीपि आवै चाउ ।

मतु देखि भूला बीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ।। 1 ।।[148]

अर्थात् मोती के घर बनाए गए हों, उनमें रत्न जड़े गए हों, कस्तूरी, केशर, अगर और चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों का लेप किया गया हो, तब भी प्रभु

145-- जयराम मिश्र, पृ0 158, 211, 147, 786

146-- वही, पृ0 260

147-- वही, पृ0 101

148-- वही,पृ0 100

का नाम विस्मृत न हो । प्रभु के नाम से बड़ाई मिलती है --

नानक नाम मिले वडिआई ।[149]

गुरु नानक ने नाम को अमूल्य माणिक्य कहा है। इससे प्रतिष्ठा मिलती है --

मनु माणकु निरमोल है रामनामि पति पाइ । 2 ।।[150]

सच्चा नाम मल का भी नाश कर देता है --

नानक साचि नामि मलु खोइ ।। 9 ।।[151]

गुरु नानक कहते हैं ईश्वर जो चाहे, करे परन्तु मुझे नाम न भूले --

नानक नामु न वीसरै जिव भावै तिवै रजाइ ।। 9 ।।[152]

इस संसार की रीति बड़ी अजीब है । यदि मनुष्य मौन रहता है, तब लोग उसे मूर्ख कहते हैं, यदि अधिक बोलता है तो उसे चुप करा दिया जाता है । बिना नाम के आधार से कोई लाभ नहीं --

मसटि करउ मूरखु जगि कहिआ । अधिक बकउ तेरी लिव रहीआ ।।
मूल चूक तेरै दरबारि । नाम बिना कैसे आचार ।। 2 ।।[153]

व्यर्थ के ढोंग करने की अपेक्षा गुरु नानक हरिनाम का अभ्यास करने की सलाह देते हैं --

है है करि कै ओहि करेनि । गला पिटनि सिरु खोहेनि ।।
नाउ लैनि अरु करनि समाइ । नानक तिन बलिहारै जाइ ।।6।।[154]

गुरु नानक स्वयं को नीच कह कर प्रभु से भक्ति का वरदान मांगते हैं ---

---

149-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 501

150-- वही, पृ0 122

151-- वही, पृ0 236

152-- वही, पृ0 153

153-- वही, पृ0 785

154-- वही, पृ0 805

नानक नीचु भिखिआ दरि जाचै मै दीजै नामु वडाई है ।।16।।[155]
गुरु नानक ने स्वयं को झूठा एवं भाग्यहीन कहा है। ऐसा भी कहा है कि मैंने नाम-स्मरण नहीं किया --

बाबा मैं करमहीण कूड़िआर ।
नामु न पाइआ तेरा अंधी भरमि भूला मनु मेरा ।।2।। रहाउ।।[156]

इतिहास साक्षी है कि गुरु नानक कितने पहुँचे हुए सन्त थे लेकिन फिर भी उन्होंने स्वयं को नीच, झूठा, भाग्यहीन एवं नाम-स्मरण न करने वाला कहा है । वे पुन: प्रभु से सबसे प्यारी वस्तु नाम मांगते हैं, क्योंकि नाम के बिना संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है --

मैं किआ मागउ किछु थिरु न रहाई हरि दीजै नामु पिआरी जीउ ।।
।।1।।[157]

कई लोग प्रभु के नाम का जप करते हैं, कुछ पुराण पढ़ते हैं परन्तु गुरु नानक नाम के बिना और कुछ नहीं जानते --

कोई नामु जपै जपमाली लागै तिसै धिआना ।
अब ही कब ही किछू न जाना तेरा एको नामु पछाना ।।1।।[158]

प्रभु के कई नाम हैं जिनका कोई अन्त नहीं --

किते नामा अंतु न जाणिआ तुम सरि नाही अवरु हरे । 3 ।।[159]

रविदास भी लिखते हैं, एक ईश्वर अल्लह, राम, केशव, कृष्ण, करीम, माधव,

---

155-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 607

156-- वही, पृ0 573

157-- वही, पृ0 394, 363

158-- वही, पृ0 491

159-- वही, पृ0 493

मुकुन्द इत्यादि कई नामों से जाना जाता है ।[160] प्रभु का नाम भुलाने वाले अवगुणों में नष्ट होकर रोते हैं --

जिनी नामु विसारिआ अवगण मुठी रोइ ।। 7 ।।[161]

गुरु नानक नाम-निधान को अपना वास्तविक घर कहते हैं । उन्हें अन्य कोई स्थान पसन्द नहीं --

भाई रे अवरु नाही मै थाउ ।
मै धनु नामु निधानु है गुरि दीआ बलि जाउ ।। 1 ।।[162]

गुरु नानक ज्ञान की बात बताते हुए आगे कहते हैं कि घर, महल, दरवाजे, सेज इत्यादि बिना नाम के सब व्यर्थ है । यथा--

दर घर महला सेज सुखाली ।
अहिनिसि फूल बिछावै माली ।।
बिनु हरिनाम सु देह दुखाली ।। 4 ।।[163]

कई लोग एक पल के लिए भी नाम विस्मृत नहीं करते । ऐसे लोग बहुत विरले होते हैं । गुरुवर बार-बार नाम-स्मरण करने की सलाह देते हुए कहते हैं --

मन रे अहिनिसि हरिगुण सारि ।
जिन खिनु पलु नामु न वीसरै ते जन विरले संसारि ।।1 । रहाउ ।।[164]

गुरु नानक ने नाम-विहीन लोगों को नीच कहा है । ऐसे लोगों का कोई ठिकाना नहीं होता --

खसमु विसारहि ते कमजाति । नानक नावै बाझु सनाति ।।4।।[165]

160-- पृथ्वी सिंह आज़ाद, पूर्वोक्त, पृ० 62

161-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 142

162-- वही, पृ० 143

163-- वही, पृ० 230

164-- वही, पृ० 120

165-- वही, पृ० 247, 156, 591

समस्त संसार विकास मात्र है । प्रभु का नाम ही इस संसार बन्धन से छूटने की दवा है --

इहु संसारु सगल विकारु ।
तेरा नामु दारु अवरु नासति करणहारु अपारु ।।1।। रहाउ।।[166]

गुरु नानक प्रभु के नाम को रत्न और बख्शिश कहते हैं --

तेरा नामु रतनु करमु चानणु सुरति तिथै लोइ । 2 ।।[167]

यहाँ गुरु नानक अहंकार ग्रस्त व्यक्ति की बात करते हैं। ऐसा व्यक्ति अपना विवेक खो देता है । अहंकार टूट जाने पर वह नाम का ध्यान एवं आराधना करने लगता है --

नानक गुरमुखि हउमै तुटि ता हरि हरि नामु धिआवै ।
नामु जपै नामो आरावै नामे सुखि समावै ।। 6 ।।[168]

स्पष्ट है नाम-स्मरण के लिए अहंकार का त्याग आवश्यक है । श्रेष्ठ नाम बादशाहों का भी बादशाह है । गुरु नानक कहते हैं यह मुझे कभी नहीं भूलता --

नानक तरीऐ सचि नामि सिरि साहा पातिसाहु ।
मै हरिनामु न वीसरै हरिनामु रतनु वेसाहु ।। 8 ।।[169]

अन्य भक्त कवियों की तरह गुरु नानक भी रामनाम को अपना सहारा समझते हैं --

---

166-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 777

167-- वही, पृ0 777

168-- वही, पृ0 176

169-- वही, पृ0 158

राम नाम बिनु कवनु हमारा ।

सुख दुख सम करि नामु न छोडउ आपे बरपसि मिलावणहारा ।।1।।[170]

बिना नाम के कोई रस नहीं --

बिनु नावै को रसु नही होरि चलहि विसु लादि ।। 1 ।।[171]

अन्यत्र नाम-विहीन व्यक्तियों को गुरु नानक ने राख से लदे हुए छकड़े कहा है । यथा --

जिनी नामु विसारिआ से कितु आए संसारि ।

आगै पाछै सुखु नही गाडे लादे छारु ।। 3 ।।[172]

नाम में अनुरक्त होने से कितने लाभ होते हैं, राग रामकली के अन्तर्गत गुरु नानक बताते हैं --

नामै राते हउमै जाइ । नामि रते सचि रहे समाइ ।

नामि रते जोग जुगति वीचारु । नामि रते पावहि मोख दुआरु ।।

नामि रते त्रिभवण सोफी होइ । नानक नामि रते सदा सुखु होइ ।। 32 ।।[173]

अर्थात् नाम में अनुरक्त होने से साधक सत्य ~~हरि~~ हरि में समा जाता है, योग की युक्ति प्राप्त होती है, मोक्ष द्वार मिलता है तथा तीनों भुवनों की समझ हो जाती है । मूर्ख तथा अज्ञानी जीव को समझाते हुए गुरु नानक देव कहते हैं --

मूढ़े काहे बिसारिओ तै राम नाम ।

अंत कालि तेरै आवै काम ।। 1 ।। रहाउ ।।[174]

170-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 290, 307

171-- वही, पृ० 591

172-- वही, पृ० 589

173-- वही, पृ० 542

174-- वही, पृ० 715

नाम से युक्त ऋतु ही सुहावनी है। बिना नाम के ऋतु किस काम की ?

नानक रुति सुहावे साई बिनु नावै रुति केही ।।4 ।।[175]

यहाँ यह बात स्पष्ट होती है कि गुरु नानक को हरिनाम से कितना प्यार है । काम, क्रोध की इस नगरी में शुभ गुणों के आचार नाम द्वारा ही मिल सकते हैं —

काम क्रोधु बिखु बजरु भारु ।
नाम बिना कैसे गुन चारु ।। 2 ।। रहाउ ।।[176]

गुरु नानक प्रभु के नाम को निरंजन कहते हैं । यह अलक्ष्य है । इस नाम की महिमा का गुणगान करते हुए वे कहते हैं —

नामु निरंजन अलखु है किउ लखिआ जाई ।
नामु निरंजन नालि है किउ पाईऐ भाई ।।
नामु निरंजन बरतदा रविआ सभ ठाई ।। 11 ।।[177]

नाम ही वास्तविक पूंजी है क्योंकि यह शाश्वत और अपार द्रव्य है —

पूंजी साचउ नामु तू अखुटउ दरबु अपारु ।
नानक बखरु निरमलउ धंनु साहु वापारु ।। 20 ।।[178]

सूरदास ने भी इसी बात का समर्थन किया है[179] अर्थात् नाम को ही वास्तविक पूंजी माना है । अन्यत्र गुरु नानक प्रभु के नाम को अदृष्ट, अगोचर, अपार, रसीला एवं मीठा कहते हैं —

अदृस्स अदृसट अगोचरु नामु अपारा ।
अति रसु मीठा नामु पिआरा ।। 5 ।।[180]

175-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 744
176-- वही, पृ० 709
177-- वही, पृ० 736
178-- वही, पृ० 669
179-- धरीन्द्र वर्मा, सं० 2015, पूर्वोक्त, पृ० 20
180-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 661

जिन व्यक्तियों के मुख से कभी नाम न निकला हो, ऐसे व्यक्ति रसमय पदार्थों को खाने की अपेक्षा थूक खाते हैं --

जितु मुखि नामु न ऊचरहि बिनु नावै रस खाहि ।
नानक एव जाणिऐ तितु मुखि थुका पाहि ।। 40 ।।[181]

ऐसे नाम विहीन मनुष्य का जीवन एवं कर्म धिक्कारने योग्य है --

नाम विहूणे आदमी ध्रगु जीवण करम करेहि ।।3।।[182]

नाम-तत्व को गुरु नानक ने शिरोमणि कहा है, इसके बिना कष्ट भोगना पड़ता है --

नाम ततु सभ ही सिरि जापै । बिनु नावै दुखु कालु संतापै ।।50।।[183]

गुरु नानक एक स्थान पर पंडित को नाम की महिमा समझाते हुए कहते हैं --

पांडे ऐसा ब्रहम वीचारु ।
नामे सुचि नामो पड़उ नामे चजु आचारु । 1।।रहाउ।।[184]

अन्यत्र गुरु नानक साधक को सच्चे नाम पर विचार करने को कहते हैं --

साचु नामु गुर सबदि बीचारि ।
गुरमुखि साचे साचै दरबारि ।। 1 ।। रहाउ ।।[185]

सच्चे नाम का खजाना मिल जाने पर सांसारिक मोह नष्ट हो जाता है --

सचु नामु जा नवनिधि पाई ।
रोवै पूतु न कलपै माई ।। 2 ।।[186]

181-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 352

182-- वही, पृ० 356

183-- वही, पृ० 544

184-- वही, पृ० 262

185-- वही, पृ० 263

186-- वही, पृ० 265

गुरु नानक नाम के रस को अत्यन्त मीठा कहते हैं --

नानक नामु महारसु मीठा गुरि पूरै सचु पाइआ ।।4।।[187]

उपर्युक्त से यह सिद्ध होता है कि गुरु नानक ने अपनी वाणी में नाम-महिमा की महानतम उपयोगिता का निरूपण किया है । उन्होंने सरल, सजीव और प्रेरणादायक शब्दों में नाम-माहात्म्य की महत्ता को भक्तजनों के सम्मुख रखा है और नाम को अलग-अलग दृष्टिकोण से समझाने का प्रयत्न किया है। नामस्मरण सर्वसुलभ और सर्वमैजनीय है। गुरु नानक ने इसे सर्वोपरि धन माना है । जब यह अनुपम धन मनुष्य को प्राप्त हो जाता है, तो उसका मन दौड़-धूप, परेशानियाँ एवं भटकन से छूट जाता है । वह शान्त-चित्त होकर प्रभु का गुण-गायन करने लगता है । युग-धर्म की दृष्टि से इस कलियुग में राम नाम का विशेष महत्व है । वास्तव में नाम की महिमा वही पुरुष जान सकता है, जिसका मन निरन्तर परमात्मा में संलग्न रहता है, नाम की मधुर और प्रिय स्मृति से जिसके शरीर में रोमांच और अश्रुपात होते हैं, जो जल के वियोग में मछली की सी व्याकुलता के समान क्षणभर के नाम वियोग से व्याकुल हो जाता है और निष्काम भाव से निरन्तर प्रेमपूर्वक जप करते करते उसमें तल्लीन हो जाता है ।

6.3 भक्ति : शृंगार भाव

मातृ-भावना में प्रेम बढ़ जाता है, पर दाम्पत्य भावना में श्रद्धा का स्थान ही प्रेम लेता है । प्रेम दूरी नहीं नैकट्य चाहता है और दाम्पत्य भावना में यह उसे प्राप्त हो जाता है । शृंगार, मधुर अथवा उज्ज्वल रस भक्ति के क्षेत्र में इसी कारण अधिक अपनाया भी गया है ।[188] सौन्दर्य वही जो मन

187-- जयराम मिश्र, सं0 2013, पृ0 243

188-- रामप्रसाद त्रिपाठी, सं0 2023 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 423

को भावे । सौन्दर्य या रूप को बढ़ाने वाली चेष्टाएं शृंगार कहलाती हैं ।[189] जीव पत्नी पूर्णत: समर्पणात्मक ढंग से परमेश्वर पति के चरणों में लोट जाती है । यही उसके लिए अनुकूल उपलब्धि है । पति प्रसन्न होकर उसे अपने संग आनन्द क्रीड़ा का अधिकार दे दे तो वास्तव में वह सुहागिन कहलाती है, परन्तु भक्तिशास्त्र की मर्यादा के अनुसार इसे शृंगार रस कहा जाना अनुचित है। यह भगवद्‌विषयक शृंगार है, इसलिए मधुर रस है, जिसकी उत्पत्ति भगवद्‌विषयक अनुराग अर्थात् शुद्ध प्रेम से होती है, जड़-विषयक अनुराग अर्थात् `काम` से नहीं । `काम` और `प्रेम` में स्वरूपगत भेद नहीं है, केवल विषय मात्र का भेद है ।[190] गुरु नानक देव कहते हैं कि प्रियतम (प्रभु) को सुहागिन स्त्रियां पसन्द हैं । वह उनके साथ रमण करता है और अपनी इच्छानुसार उन्हें संवार भी लेता है --

> हरि जीउ इउ पिरु रावै नारि ।
> तुधु भावनि सोहागणी अपणी किरपा लैहि सवारि ।।1।।रहाउ।।[191]

गुरु नानक ने जीवात्मा रूपी स्त्री को शृंगार का ढंग बताया है। वह हरि-हरि के नाम को कंठ कर हार बनाए, दामोदर के नाम का दन्त मंजन बनाए, हाथ के निमित्त कंगन `कर्ता` को बनाकर पहने, मधुसूदन को हाथ की मुंदरी बनाकर पहने, `परमेश्वर` के पट (रेशमी वस्त्र) को पहने, `धैर्य` को मांग की पट्टी बनाए, श्रीरंग के नाम का सुरमा नेत्रों में लगाए, मन-मंदिर में विवेक का दीपक जलाकर अपनी काया को प्रियतम के मिलने की सेज बनाए । जब ज्ञान के राजा परमात्मा उसकी सेज पर आएं, तभी वह प्रियतम

189-- माजदा असद, रसखान : काव्य तथा भक्ति भावना, देहरादून : साहित्य सदन, प्रथम संस्करण, 1968, पृ0 106

190-- हजारीप्रसाद द्विवेदी, सूर-साहित्य, बम्बई : हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, 1961, पृ0 32

191-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 133

के साथ रमण कर सकती है --

हरि हरि हारु कंठि ले पहिरे दामोदरु दंतु लेई ।
करि करि करता कंगन पहिरे इन विधि चितु धरेई ।।2।। 192

गुरु नानक देव ने शृंगार के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि दिखावे के कर्म चाहे कितने ही अच्छे हों, किन्तु परमात्मा की दृष्टि में बुरे ही हैं। पाखण्ड से प्रेम की प्राप्ति सम्भव नहीं। ऐसे लोगों के खोटे कर्म उन्हें नष्ट कर देते हैं --

सभे कंत सहेलीआ सग लीआ करहि सीगारु ।
पाखंडि प्रेमु न पाईऐ खोटा पाजु खुआरु ।। 1 ।। 193

अर्थात् सभी कंत की सहेलियाँ हैं और सभी शृंगार करती हैं, किन्तु सब का शृंगार पाखण्डपूर्ण है। गुरु के शब्द से अनुरक्त हुए बिना सब शृंगार निरर्थक हैं। गुरु नानक कहते हैं वही स्त्री धन्य है जिस का पति के साथ प्रेम है --

सभि रस भोगण वादि हहि सभि सीगार विकार ।
जब लगु सबदि न भेदीऐ किउ सोहै गुर दुआरि ।।
नानक धनु सुहागणी जिन सहि नालि पिआरु ।। 5 ।। 194

बिना हरिनाम के जितना भी शृंगार किया जाए सब व्यर्थ है। यदि शरीर में चोआ-चन्दन ~~मसला~~ मला जाए, रेशमी वस्त्र पहन कर दूसरों को दिखाए जाएं, कानों में कुण्डल तथा गले में मोतियों की माला पहनी जाए, लाल रजाई ओढ़ी जाए, लाल फूलों से शृंगार किया जाए, सोलह शृंगार करके स्त्री लुभावनी बनी हो, दरवाज़े, घर और महल हों, सुखदायिनी सेज हो, माली अहर्निश सेज पर फूल बिछाता हो, श्रेष्ठ घोड़े, हाथी, भाले तथा

192-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 273, 460

193-- वही, पृ० 133, 113

194-- वही, पृ० 113

विविध प्रकार के बाजे, सेना, नायब, शाही नौकर तथा अन्य दिखावे वाली वस्तुएं हों, चाहे कोई सिद्ध कहलाए, ऋषियों-सिद्धियों को बुला ले, सिर पर ताज की टोपी हो, छत्र धारण किया हो, चाहे कोई खान, बादशाह और राजा कहलाए, नौकरों पर हुक्म चलाए, किन्तु ये सभी दिखावे झूठे हैं और बिना हरिनाम के सब व्यर्थ है । यथा --

चोआ चंदनु अंकि चड़ावउ । पाट पटंबर पहिरि हटावउ ।।
बिना हरिनाम कहा सुख पावउ ।। 1 ।। [195]

गुरु नानक का कथन है कि जिस स्त्री के साथ प्रियतम रमण नहीं करता, उस का यौवन व्यर्थ है । ऐसी स्त्री का शरीर जल जाना चाहिए क्योंकि वह दुहागिन है --

अंकु जलउ तनु जालीअउ मनु धनु जलि बलि जाइ ।
जा धन कंति न रावीआ ता बिरथा जो बनु जाइ ।। 7 ।। [196]

दुहागिन स्त्री को यह भी मालूम नहीं कि प्रियतम उसकी सेज पर है --

सेजै कंत महेलड़ी सुती बूझ न पाइ ।
हउ सुती पिरु जागणा किरु कउ पूछउ जाइ ।।
सतिगुरि मेली मै बसी नानक प्रेमु सरवाइ ।। 8 ।। [197]

अर्थात् सेज पर कंत है किन्तु स्त्री सोई हुई है । वह जान नहीं पाती कि प्रियतम जाग रहा है । सद्गुरु के तो प्रियतम से मिला दिया है । ऐसी स्त्री भय में निवास करती है और प्रेम ही उसका सखा है । गुरु नानक झूठी स्त्री के शृंगार की आलोचना करते हुए कहते हैं --

मुंधे पिर बिनु किआ सीगारु ।
दरि घरि ढोई ना लहै दरगह झूठु खुआरु ।। 1 ।। रहाउ ।। [198]

195-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 229-30
196-- वही, पृ0 133, 145
197-- वही, पृ0 133
198-- वही, पृ0 112

अर्थात् प्रियतम के बिना शृंगार का कोई महत्व नहीं । ऐसी स्त्री परमात्मा के घर के दरवाज़े में प्रवेश नहीं कर सकती क्योंकि झूठा परमात्मा के दरवाज़े पर जाकर नतर ही जाता है। कुछ स्त्रियां पर-पति में आसक्त होती हैं, यहां गुरुनानक ने उन स्त्रियों के शृंगार का वर्णन किया है । ऐसी स्त्रियों की तुलना उन्होंने वेश्या के पुत्र से की है --

पिर बिनु किआ तिसु धन सीगारा । पर पिर राती खसमु विसारा ।।
जिउ बेसुआ पूत बापु को कहीऐ तिउ फोकटु कार विकारा है ।।5।।[199]

अर्थात् जिस प्रकार वेश्या के पुत्र का पिता कोई नहीं होता, उसी प्रकार हरि को न मानने वाले के सारे कर्म व्यर्थ और बेकार होते हैं । रामचरितमानस में लिखा है ---' जो स्त्रियां अपने पति को धोखा देकर दूसरे के पति से प्रेम करती हैं, वे सौ कल्प तक 'रौरव' नाम के नरक में पड़ती हैं। जो स्त्री पल भर के सुख के लिए सौ करोड़ जन्म के दु:खों का विचार नहीं करती उसके समान दुष्ट और कौन है ?' यथा --

पति चवंचक परपति रति करई । रौरव नरक कल्प शत परई ।।
क्षण सुख लगि जन्म शत कोटी । दुख न समुझतेहि सम को खोटी।।[200]

ज्यादा शृंगार करने से शरीर तप्त होता है, वस्त्र भी अंगों को नहीं सुहाते --

पिउ बिनु सीगारु करी तेता तनु तनु तापै कापरु अंगि न सुहाइ।।6।।[201]

ज्यादा शृंगार करने वाली स्त्री को गुरु नानक फूली हुई मिट्टी और विकार रूप भी कहते हैं --

कापड़ पहिरसि अधिकु सीगारु । माटी फूली रूपु विकारु ।।6।।[202]

199-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 629

200-- विनायक राव, रामचरितमानस (आरण्यकाण्ड), भोपाल : मध्यप्रदेश, 1919, पृ० 21

201-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 756

202-- वही, पृ० 709

गुरु नानक वाणी में लगभग सभी रसों का समावेश हुआ है, परन्तु प्रधान रूप से भक्ति-रस ही है। वाणी में शृंगार का जो रूप दिखाई देता है, उसका वर्णन केवल प्रतीकों के रूप में हुआ है। वैसे तो शृंगार-रस रसराज माना जाता है परन्तु गुरु नानक वाणी में भक्ति रस रसराज के रूप में प्रकट हुआ है अर्थात् वह भक्ति का ही एक अंग बन कर आया है। यही कारण है कि उनकी शृंगारिक-प्रवृत्तियों में वासना की दुर्गन्ध नहीं है। सत्य तो यही है कि गुरु नानक का परमात्मा के साथ अगाध प्रेम है, जिसे सूफी विचारधारा अनुसार `इश्क हकीकी` कहा जा सकता है। इसलिए गुरु नानक का भक्ति रस आध्यात्मिक शृंगार रस है।

6.4 भक्ति रस की परिकल्पना तथा गुरु नानक वाणी

भक्तिरस को रसत्व प्रदान करने का श्रेय सुप्रसिद्ध गौड़ीय आचार्य रूपगोस्वामी को है। उन्होंने `भक्ति रसामृत सिंधु` तथा `उज्ज्वल नील मणि` नामक ग्रन्थों का प्रणयन कर इसे शास्त्रीय रूप देकर भक्ति-भावना को इसका मूल रस माना।[203] संस्कृत काव्य शास्त्र में आचार्यों ने भक्ति को स्वतन्त्र रस का स्वरूप प्रदान न कर इसे `भाव` कहा है।[204] सर्वप्रथम भक्ति रस का संकेत दण्डी ने `प्रायोलंकार` के विवेचन के अन्तर्गत किया था। दण्डी शृंगार रस का स्थायी भाव रति को मानकर उसे प्रीति से भिन्न स्वीकार करते हैं।[205] भामह ने भी `प्रेयस` को प्रीति से सम्बद्ध मानकर `प्रेय; प्रियतराख्यानम्` के रूप में इसके मधुर स्वरूप का संकेत किया है।[206] सर्वप्रथम रुद्रट के `प्रेयान्`

203-- राजवंश सहाय हीरा, भारतीय साहित्य शास्त्रकोश, पटना : बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1973, पृ0 846

204-- वही, पृ0 847

205-- वही, पृ0 847

206-- वही, पृ0 847

नामक नवीन रस की कल्पना कर इसके स्थायी भाव के रूप में स्नेह को स्थान दिया तथा मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति रस को शास्त्रीय रूप प्रदान किया।[207] वैष्णव आचार्यों ने भक्ति या मधुर रस की स्थापना की और मधुसूदन सरस्वती ने पूर्णानन्दमय होने के कारण भक्ति रस को अन्य रसों की अपेक्षा वास्तविक रस माना ।[208]

अभिनवगुप्त तथा धनंजय ने भक्ति को भावों में परिगणित किया है । अभिनवगुप्त ने भक्ति को शांत रस के अन्तर्गत मानते हुए इसका अन्तर्भाव धृति, मति, स्मृति तथा उत्साह में किया है । धनंजय ने भक्ति को भाव मान कर इसे हर्ष, उत्साह आदि में समाविष्ट किया है।[209] पण्डितराज शान्त रस में भक्ति रस के अन्तर्भाव का विरोध करते हैं, क्योंकि दोनों के स्थायी भावों में भिन्नता के कारण एकत्व स्थापन सम्भव नहीं। भक्तिरस का स्थायी भाव अनुराग है और शान्त रस का वैराग्य था निर्वेद । पुन: इन्होंने देवतादि विषायक रति को भाव मानते हुए परम्परागत विचार का समर्थन कर भक्ति रस को 'भाव' कहा है ।[210] हरिरस के स्वाद का वर्णन करना असम्भव है । इसकी उपमा गुरु नानक ने गूंगे की मिठाई से इस प्रकार की है --

जिन चाखिआ सेई सादु जाणनि जिउ गुंगे मिटि आई । 6 ।।[211]

अर्थात् जिस प्रकार गूंगा मिठाई के स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता, उसी प्रकार भक्ति-रस के स्वाद का वर्णन करना भी कठिन है । गुरु नानक प्रभु नाम रूपी ज्ञान-पदार्थ को गुरु द्वारा प्राप्त करके स्वाद मानने की सलाह

207-- राजवंश सहाय हीरा, भारतीय साहित्य शास्त्रकोश, पूर्वोक्त, पृ0 847

208-- वही, पृ0 847

209-- वही, पृ0 848

210-- वही, पृ0 848

211-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 399

देते हैं --

ऐसा गिआनु पदारथु नामु ।
गुर मुखि पावसि रसि रसि मानु ।। 1 ।।[212]

परमात्म-रस के आस्वादन को ग्रहण न करने वालों को गुरु नानक ने सूने घर के मेहमान कहा है । सूने घर के मेहमान जैसे आते हैं, वैसे ही चले जाते हैं --

जिनी पाइआ प्रेम रसु कंत न पाइओ साउ ।
सुंञे घर का पाहुणा जिउ आइआ तिउ जाउ ।। 26 ।।[213]

हरि-रस का आस्वादन करने वाली की अन्य इच्छाएं समाप्त हो जाती हैं । गुरु नानक हरि रस के स्वाद का वर्णन करते हुए कहते हैं --

हरि रसु चखिआ तउ मनु भीजा ।
प्रणवति नानकु अवरु न दूजा ।।8 ।।[214]

अन्य चेष्टाओं की पूर्ति के लिए परमात्म-रस का होना अनिवार्य है । जिस प्रकार नमक के बिना भोजन का स्वाद नहीं आता, उसी प्रकार यदि बुद्धि में परमात्म-रस का स्वाद नहीं है तो उसकी सारी चेष्टाएं व्यर्थ हैं --

मति अलूणी फिका सादु ।। 3 ।।[215]

राग रामकली के अन्तर्गत गुरु नानक एक योगी को उपदेश देते हुए कहते हैं कि परमात्म-रस का स्वाद काम-भावनाओं के होते हुए कभी नहीं मिल सकता-

अंतरि पंच अगनि किउ धीरजु धीजै ।

212-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 477

213-- वही, पृ० 470

214-- वही, पृ० 797

215-- वही, पृ० 130

अंतरि चोरु किउ सादु लहीजै ।।
गुर मुखि होइ काइआ गड़ लीजै ।। 4 ।।[216]

अर्थात् योगी के अन्तर्गत पांच अग्नियां जल रही हैं। इनका उपाय यही है कि वह गुरु के द्वारा शिक्षित होकर काया रूपी गढ़ को जीत ले। त्यागी लोग स्वाद और सुख की परवाह नहीं करते। वे इन सभी वस्तुओं का त्याग करके वस्त्र भी मृगचर्म के पहनते हैं और हरिनाम में अनुरक्त हो जाते हैं ---

साद सहज सुख रस कस तजीअले कापड़ छोडे चमड़ लीए ।
दुखीए दरदवंद दरि तेरै नामि रते दरवेस भए ।। 3 ।।[217]

गुरु नानक ने परमात्म-रस के अतिरिक्त अन्य सब स्वादों को फीका कहा है --

बिनु गुण काम न आवई माइआ फीका सादु ।। 6 ।।[218]

अर्थात् माया के सभी स्वाद फीके हैं। गुरुवाणी का स्वाद अत्यधिक मीठा है। इसके स्वाद को चखने वाला तृप्त हो जाता है। जिन लोगों ने इसके रस को चखा है, उन्हें पूर्ण पद प्राप्त हो गया है --

गुर का सबदु महा रसु मीठा। ऐसा अमृतु अंतरि डीठा ।।
जिनि चाखिआ पूरा पदु होइ। नानक ध्रापिओ तनि सुखु होइ ।।5।।[219]

गुरु जी ने नाम रूपी अमृत को वृक्ष और भक्ति को उसका फल माना है। इसके रस का आस्वादन करना चाहिए --

नानक अमृत बिरखु महा रस फलिआ मिलि प्रीतम रसु चाखै ।।3।।[220]

216-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 507

217-- वही, पृ0 272

218-- वही, पृ0 153

219-- वही, पृ0 787

220-- वही, पृ0 685

हरि-रस का आस्वादन करने वाली की तृष्णा और क्षुधा नष्ट हो जाती है, उसके अन्य रस भी समाप्त हो जाते हैं। गुरु नानक ने स्पष्ट शब्दों में कहा --

हरि रसु जिनी चाखिआ अनरस ठाकि रहा इआ।
हरि रसु पी सदा तृपति भए फिरि तुसना भुख गवाइआ।।1।। 221

आप नर को चेतावनी देते हुए आगे कहते हैं कि सांसारिक स्वादों के चंगुल में फंसने से केवल दुःख प्रफुल्लित होते हैं। अर्थात् स्वादों के चक्कर में पड़ने से दुःखों की वृद्धि होती है। मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन में सुखों की अपेक्षा दुःख अधिक है --

स्वाद कीते दुखु पर कुड़े पूरबि लिखे माइ ।
सुख थोड़े दुख अगले दूखे दूखि विहाइ ।। 2 ।। 222

जीवात्मा रूपी स्त्री बारे गुरु नानक ने अपने विचार प्रकट किए हैं। उनका कहना है कि परमात्मा रूपी पति का स्वाद न जानकर उसे कर्म-बन्धन में भटकना पड़ता है --

जिन धन पिर का सादु न जानिआ सा बिलख बदन कुमलानी ।।1।। 223

वास्तव में सच्चा स्वाद नाम में है। नाम को भूलकर नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं --

नामि बिना किछु सादि न लागै हरि विसरिऐ दुखु पाइ है ।।6।। 224

राग मारू के अन्तर्गत गुरु नानक ने माया के झूठे स्वादों को त्यागने की सलाह दी है क्योंकि वास्तविक सुख झूठे स्वादों को त्यागने के

221-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 667

222-- वही, पृ० 573

223-- वही, पृ० 747

224-- वही, पृ० 617

पश्चात् ही मिल सकता है --

तजि साद सहज सुखु होइ । 2 ।।[225]

सांसारिक स्वाद व्यर्थ और रोग उत्पन्न करने वाले हैं । यदि मनुष्य सत्य बोले और परमात्मा से प्रेम करे तो सांसारिक शोक-वियोग से छूट सकता है --

गीत साद चाखे सुणे बाद साद तनि रोगु ।
सचु भावै साचउ चवै छूटै सोग विजोगु ।। 8 ।।[226]

हरि-रस का आस्वादन करने वाली जीवात्मा को प्रभु अपने में मिला लेता है ---

हरि रसु चाखि तृखा निवारी हरि मेलिलए वडभागी ।।2।।[227]

गुरु नानक को हरिनाम के स्वाद से ही तृप्ति मिलती है । प्रियतम (प्रभु) और गुरु के बिना जीवन व्यर्थ है --

नानक ध्रापे हरि नाम सुआदि ।
बिनु हरि गुर प्रीतम जनमु बादि ।। 8 ।।[228]

गुरु नानक अपनी मानसिक स्थिति का वर्णन करते हैं । उनका कहना है कि हरी के बिना मेरा एक पल भी रहना मुश्किल है और काल भी संताप देता है । हरी रूपी रस के बिना मेरी जिह्वा में स्वाद नहीं आता और वह फीकी रहती है --

हरि बिनु किउ रहीऐ दुखु विआपै ।
जिहवा सादु न फीकी रस बिनु बिनु प्रभ कालु संतापै ।।1।।रहाउ।।[229]

225-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 574

226-- वही, पृ0 589

227-- वही, पृ0 724

228-- वही, पृ0 717

229-- वही, पृ0 721

सांसारिक स्वादों में लिप्त रहकर मनुष्य ने भक्ति-रस का स्वाद नहीं चखा। वह जिस भांति आया उसी भांति चला भी गया और बनाया कुछ भी नहीं, अर्थात् राम नाम रूपी खजाना कुछ भी साथ लेकर नहीं गया --

माणू घलै उठी चलै ।
सादु नाही इवैही गलै ।। 24 ।।[230]

इससे यह सिद्ध होता है कि गुरु नानक ने सांसारिक स्वादों, सुखों एवं प्रलोभनों का त्याग करने और हरि-भक्ति रूपी स्वाद को ग्रहण करने पर बल दिया है । भक्ति-रस के अतिरिक्त इन के काव्य में शान्त और अद्भुत रस का वर्णन भी मिलता है । इनके वारकाव्य में वीर रस की झलक दिखाई देती है । भक्ति की दृष्टि से इनका इतना महत्व नहीं है अत: इनके विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है ।

6.5 मिलन की प्रबल आकांक्षा

जीवन के लक्ष्य की सिद्धि की कामना आस्तिक्य को दृढ़ करती है और वह लक्ष्य है आत्मा का परमात्मा से मिलन । परमास्तिक के लिए अथवा ऐसे आस्तिक के लिए जिसकी साधना रहस्यमयी है, वह मिलन या ऐक्य मानव चेतना की सर्वोच्च प्राप्ति है । युवा एवं वृद्ध, धनी एवं निर्धन--सब इसी ओर प्रेरित हैं ।[231] गुरु नानक वाणी में जीवात्मा का परमात्मा के प्रति समग्र समर्पण भावपूर्ण समग्रता व्यग्रता और कातरता के साथ उपस्थापित हुआ है । गुरु नानक देव ने भी अन्य भक्त कवियों की तरह ईश्वर को प्रियतम और स्वयं को उसकी प्रियतमा स्वीकार किया है । साजन (ईश्वर) अपनी प्यारी प्रेमिकाओं से मिलने को उत्सुक है, किन्तु देखना यह है कि मिलाप कैसे होगा--

---

230-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 811
231-- सरनाम सिंह शर्मा, पूर्वोक्त, पृ० 368

साजन चले पिआरिआ किउ मेला होइ ।।[232]

इसी प्रश्न का उत्तर गुरु नानक निम्नलिखित पंक्ति में इस प्रकार देते हैं --

जे गुण होवहिं गंठड़ीए मेलैगा सोइं ।। 2 ।।[233]

मनुष्य का ज्ञान अभी अधूरा है । जिस वस्तु की वह जगह-जगह तलाश करता है, वह तो उसके भीतर है । गुरु नानक जीव रूपी स्त्री से कहते हैं कि पति घर में है, फिर उसे विदेश में समझ कर दु:खी क्यों हो रही हो ? अगर पति से मिलाप करना है तो उसे अपनी नीयत साफ करनी पड़ेगी --

घर ही मुंधि विदेसि पिरु नित झूरे संम्हाले ।
मिलदिआ ढिल न होवई जे नीअति रासि करे ।।2।।[234]

प्रियतम प्रभु की प्रीति पाने के लिए उससे गहरा प्रेम करना पड़ता है, तभी दयालु प्रभु 'राम' अपनी प्रीति प्रदान करता है । प्रियतम से मेल होने पर सेज सुहावनी लगती है तथा सातों सरोवर (पांच ज्ञानेन्द्रियां, मन तथा बुद्धि) अमृत से भर जाते हैं --

धन पिरहि मेला होइ सु आमी आपि प्रभु किरपा करे ।
सेज सुहावी संगि पिर कै सात सर अमृत भरे ।। 2 ।।[235]

प्रभु-कृपा द्वारा ही सद्गुरु से मिलाप हो सकता है । गुरु नानक अपनी बात को स्पष्ट भाव से कहते हैं कि मुझ पर प्रभु ने कृपा की और सद्गुरु से मिलाप हो गया । शाश्वत मिलन की खुशी में महल सुहावने हो गए तथा बाजों की ध्वनि अनाहत गति से बजने लगी --

---

232-- जयराम मिश्र, सं० 2013, पृ० 438
233-- वही, पृ० 438
234-- वही, पृ० 385
235-- वही, पृ० 315

हम घरि साजन आए । साचै मेलि मिलाए ।।
सहजि मिलाए हरि मनि भाए पंच मिले सुखु पाइआ ।।
साई वसतु परापति होई जिसु सेती मनु लाइआ ।।
अनदिनु मेलु भइआ मनु मानिआ घर मंदर सोहाए ।। 1 ।।[236]

संसार में आवागमन का चक्र चला ही रहता है । जन्म-मरण का दुःख बड़ा भारी है फिर प्रभु से मिलन सभी व्यक्तियों के लिए कैसे सम्भव है --

आवण जाणा किउ रहै किउ मेला होई ।
जनम मरण का दुखु घणो नित सहसा दोइ ।। 2 ।।[237]

इसका एकमात्र उत्तर यही है कि जिस जीवात्मा रूपी स्त्री पर प्रभु अपनी कृपादृष्टि करता है, वह अपने गुणों सहित उसकी गोदी में समा जाती है। गुरु नानक कहते हैं कि ऐसा मिलन कभी समाप्त नहीं होता--

नदरि करे प्रभु आपणी गुण अंकि समावै ।
नानक मेलु न चूकई लाहा सचु पावै ।। 8 ।।[238]

प्रिय के प्रति मिलन की जो आकांक्षा होती है वैसे ही मिलन-आकांक्षा पिता के प्रति नहीं होती, यद्यपि मिलन दोनों में लक्षित है किन्तु एक में आलिंगन की आकांक्षा की तीव्रता और दूसरे में श्रद्धामूलक आत्मसमर्पण निहित होता है ।[239] मिलन की प्रबल आकांक्षा पर संक्षिप्त टिप्पणी करते हुए भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' लिखते हैं -- जिस प्रकार पत्नी के प्रगाढ़ परिरम्भन में पति अपनी बाह्य और आन्तरिक संज्ञा खो देता है उसी प्रकार

236-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 454

237-- वही, पृ० 307

238-- वही, पृ० 239

239-- सरनाम सिंह शर्मा, पूर्वोक्त, पृ० 385

परम प्रियतम परमात्मा के आलिंगन-रस को पाकर आत्मा अपने-आपको खो बैठती है ।[240] गुरु नानक की जीवात्मा भी प्रभु से बाँह पसार कर मिलना चाहती है --

उखारि पारि मेरा सहु वसै हउ मिलउगी बाँह पसारि ।।3।।[241]

गुरु नानक की तरह कबीर की इन पंक्तियों में भी बाँह पसार कर मिलन की तीव्रता दिखाई देती है --

वे दिन कब आवैंगे माइ ।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिवौ अंगि लगाइ ।।[242]

जीवात्मा रूपी स्त्री मन ही मन सोचती है कि मिलन की आकांक्षा लिए मैं सेज पर आऊंगी तो जाने प्रियतम को अच्छी भी लगूंगी या नहीं । गुरु नानक ने यहां स्पष्ट किया है कि अच्छा लगने के लिए स्त्री का गुणवती होना आवश्यक है --

आस पिआसी सेजै आवा । आगै सह भावा कि न भावा ।।
किआ जाना किआ होइगा री माई । हरि दरसनु बिनु रहनु न जाई ।। 2 ।।[243]

गुरु नानक की तरह मीरा भी नहीं जानती कि प्रभु मिलन कैसे होगा --

मैं जाण्यो नाहीं प्रभु कूं मिलण कैसे होय री ।[244]

मिलन की आकांक्षा बढ़ते-बढ़ते विवाह की सीमा तक पहुंच जाती है क्योंकि प्रेमी अपनी प्रेमिका से जुदा नहीं होना चाहता । वह तो उसकी रूपछटा का प्यासा होता है और उसका रसपान करते-करते कभी थकता भी

240-- भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव', पूर्वोक्त, पृ0 9..
241-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 216
242-- हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1960, पूर्वोक्त, पृ0 336
243-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 267
244-- ब्रजरत्न दास, पूर्वोक्त, पृ0 117

नहीं । विवाह के बाद जुदाई सहन नहीं करनी पड़ती । गुरु नानक कहते हैं कि प्रियतम परमात्मा ने मुझ पर कृपा की और विवाह कार्य रच दिया। इस खेल को देखकर मन बहुत प्रसन्न हुआ कि प्रियतम प्रभु मुझे व्याहने आया है --

करि किरपा अपनै घरि आइआ ।
ता मिलि सखीआ काजु रचाइआ ।।
खेलु देखि मनि अनदु भइआ सहु वीआहण आइआ ।।2।। [245]

गुरु नानक की तरह मीरां ने भी स्वप्न में ही प्रभु से विवाह कर लिया है --
माई म्हाणे सुपणा मां परण्यां दीणानाथ । 36 ।। [246]

परमात्मा से मिलाप होने पर अत्यन्त सुख का अनुभव होता है । उस सुख की कीमत नहीं आंकी जा सकती --
खसमि मिलिए सुखु पाइआ कीमति कहणु न जाई ।। 2 ।। [247]

मिलन के बाद जुदाई की घड़ियां आवश्य आती हैं । सावन का महिना जब आता है तो वर्षाऋतु आरम्भ हो जाती है । बादल बरस रहे होते हैं, बिजली चमकती है, ऐसे में विरहिणी का वियोग और भी बढ़ जाता है और प्रिय-मिलन की आकांक्षा तीव्र हो जाती है --

सावणि सरस मना घण वरसहि रुति आए ।
मैं तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए ।।
पिरु घरि नहीं आवै मरीऐ हावै दामनि चमकि डराए ।
सेज इकेली खरी दुहेली मरणु भइआ दुखु माए ।।
हरि बिनु नीद भूख कहु कैसी कापड़ु तनि न सुखावए ।
नानक सा सोहागणि कंती पिर कै अंकि समावए ।। 9 ।। [248]

245-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 253
246-- भगवान दास तिवारी, मीरां की प्रामाणिक पदावली, इलाहाबाद : साहित्य भवन, 1974, पृ० 131
247-- वही, पृ० 592
248-- जयराम मिश्र, स० 2018, पृ० 674

चैत्र मास में बसन्त कितना सुहावना लगता है । भंवरों की गुंजार मन को लुभा लेती है । ऐसे सुहावने अवसर पर प्रियतम का विरह सहा नहीं जाता। विरहिणी का शरीर प्रियतम के बिछोह में निरन्तर छीजता जा रहा है --

पिरु घरि नहीं आवै धन किउ सुखु पावै विरहि विरोध तनु छीजै ।
कोकिल अंबि सुहावी बोलै किउ दुखु अंकि सहीजै ।।
भवरु भंवता फूली डाली किउ जीवा मरु माए ।
नानक चेति सहजि सुखु पावै जे हरि वरु घन पाए ।। 5 ।। [249]

गुरु नानक ने जीवात्मा रूपी स्त्री के विरह का विषाद् चित्रण किया है । वह मिलन की आकांक्षा से व्याकुल है । वह प्रभु के बिना जीवित नहीं रह सकती --

हरि बिनु किउ जीवा मेरी माई ।
जै जगदीस तेरा जसु जाचउ मैं हरि बिनु रहनु न जाई ।। 1 ।। [250]
रहाउ ।।

गुरु नानक की तरह मीरां भी प्रभु के बिना जीवित नहीं रह सकती --

हरि विण क्यूं जिवोरी माय ।
श्याम बिणा बौरां भयां मण, काठ ज्यूं घुण खाय ।। 4 ।। [251]

प्रियतम का प्रेम सबको अच्छा लगता है । उसके बिना जगत में एक पल भी नहीं जिया जाता --

पिर भावै प्रेमु सखाई ।
तिसु बिनु घड़ी नहीं जगि जीवा ऐसी पिआस तिसाई ।। 1 ।। [252]

249-- जयराम मिश्र, सं० 2013, पृ० 674
250-- वही, पृ० 722
251-- भगवान दास तिवारी, पूर्वोक्त, पृ० 191
252-- जयराम मिश्र, सं० 2013, पृ० 752

गुरु नानक कहते हैं मैंने गुरु कृपा से अपने हृदय रूपी घर में प्रियतम (प्रभु) को प्राप्त कर लिया, इससे तपन बुझ गई --

गुर परसादि घर ही पिरु पाइआ तउ नानक तपति बुझाई ।।8।।[253]

अतएव जान पड़ता है कि प्रेम की पराकाष्ठा दाम्पत्य भाव में ही प्राप्त होती है । सर्वात्म-समर्पण की पूर्ण अभिव्यक्ति इसी सम्बन्ध में है । इस सम्बन्ध द्वारा पत्नी, पति की सहचरी, अनुचरी, दासी तथा परम प्रेम की रसास्वादिनी है । सम्मान, प्रेम, विरह, अति आदर इत्यादि के भाव इसी सम्बन्ध में परिलक्षित होते हैं । इसी प्रकार जब जीवात्मा अपने-आप को असमर्थ एवं निःसहाय अनुभव करती है, तब उसे किसी सहारे की आवश्यकता अनुभव होती है । इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु वह परमात्मा से कई प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करती है और अपना सर्वात्म समर्पण करने को उत्सुक रहती है । नानकवाणी में प्रियतम से मिलने की प्रबल आकांक्षा और उत्कण्ठा का व्यापक वर्णन हुआ है । गुरु नानक चाहते थे कि मानव किसी भी सम्बन्ध द्वारा ईश्वर की निकटता प्राप्त करें क्योंकि मानव जाति का ईश्वर के साथ साक्षात्कार कराना उनका परम धर्म था । इसलिए उन्होंने अपने उपदेशों में बार-बार कहा कि ईश्वर के बिना हमारा जीवन अधूरा, अपूर्ण, नीरस और अकारथ है । उन्होंने जो उपदेश मानव-जाति को दिए हैं, यदि उनका पालन किया जाए तो हरेक व्यक्ति अज्ञान रूपी निद्रा से जागकर अपने प्रियतम को नज़दीक से देख सकता है ।

6.6 समाहार

गुरु नानक ने साधना के अन्य मार्गों की अपेक्षा भक्तिमार्ग को अधिक महत्त्व दिया है और अपनी वाणी में भक्ति का सरलतम, व्यावहारिक और परम लोकोपयोगी रूप प्रस्तुत किया है । इसमें भक्ति सम्बन्धी उक्तियों

253-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 753

का भक्ति तत्व मूलक विवेचन प्रस्तुत किया गया है, जिससे गुरु नानक की भक्ति-भावना के उस सार्वजनिक स्वरूप का प्रकाशन स्वत: ही हो जाता है, जिसमें पाण्डित्य और शास्त्रीयता के स्थान पर सरलता, स्वाभाविकता, व्यावहारिकता और उपयोगिता विद्यमान है ।

शब्दकोषों में 'भक्ति' शब्द के अनेक अर्थ किए गए हैं --- सेवा-सुश्रूषा, अनुराग-विशेष, ईश्वर में अलौकिक अनुरक्ति, उपासना, पूजा-अर्चना, श्रद्धा, सम्मान, भजन, परमेश्वर के प्रति परम प्रेम आदि। 'भक्ति' शब्द के इन कोशगत अर्थों से भक्ति के कुछ तत्वों का परिचय तो मिल जाता है, परन्तु सम्यक् रूप में कोई लक्षण निर्धारित नहीं होता। अन्य अनेक विद्वानों ने भी भक्ति का लक्षण प्रस्तुत किया है । शंकराचार्य ने आत्म-स्वरूप को पहचानने सम्बन्धी प्रयास को भक्ति माना है । रामानुजाचार्य ने स्नेहपूर्वक किए गए ध्यान को भक्ति कहा है ।बल्लभाचार्य ने आराध्य की महत्ता का ज्ञान और उसके प्रति सुदृढ़ तथा सर्वाधिक प्रेम को भक्ति माना है । रूपगोस्वामी के अनुसार अभिलाषाओं से रहित कोरे ज्ञान और सांसारिक कर्मों से अनावृत श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम ही भक्ति है । रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम ही भक्ति है । परन्तु इन परिभाषाओं से भक्ति के स्वरूप का सम्यक् निर्धारण नहीं हो पाता । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में भक्ति सम्बन्धी इन सभी धारणाओं को समन्वित करके भक्ति के स्वरूप का लक्षण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । ईश्वर के प्रति श्रद्धा और प्रेम रखते हुए, मन को सांसारिक कर्मों से विमुख करके अनन्य भाव से ईश्वर की शरण में लगाकर, सदाचार और ईश्वरीय कर्मों का पालन करते हुए मन को शुद्ध करके, आत्मानुभूति तथा ज्ञान प्राप्त करके, सांसारिक बन्धनों से मुक्ति प्राप्त कर लेना ही भक्ति है, ऐसा इस विचार से लक्षित होता है ।

नवधा भक्ति के अधिकांश रूप नानकवाणी में मिल जाते हैं । यह ध्यान देने की बात है कि तुलसी आदि सगुण भक्तों से इनकी भक्ति इस बात

में भिन्न है कि वह बाह्याचार, पूजा, उपासना या कर्मकाण्डीय भक्ति न होकर 'भाव भगति' है। उसके लिए जल, फूल, चन्दन आदि बाह्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है केवल भाव की । इस रूप में गुरु नानक ने भक्ति या अपनी भक्ति को 'भाव भगति' ठीक ही कहा है। इस भक्ति का मूलाधार तत्व प्रेम है जो लौकिक या ऐहिक न होकर उदात्त और दीव्य है । इस परमात्मोन्मुखी प्रेम को कांताभाव, स्वामी सेवक भाव, वात्सल्य भाव तथा सख्यभाव में चित्रित किया गया है किन्तु गुरु नानक का विशेष झुकाव कान्ताभाव की ओर रहा है । उनका भक्ति के अन्य तत्वों में परमात्मा अथवा गुरु की कृपा, नाम साधना, कीर्तन, श्रवण, मनन, भय, सत्संगति, दीनता की भावना और रज़ा तथा हुक्म में विश्वास को भी परिगणित किया जा सकता है । साथ ही सांसारिक स्वादों एवं प्रलोभनों को त्यागने और प्रभु भक्ति रूपी स्वाद को ग्रहण करने का उपदेश दिया है ।

गुरु नानक की भक्ति साधना के स्वरूप और आयाम को समझने और उसके महत्व को आंकने के लिए उनके मानव विषयक विचार को जानना अत्यन्त आवश्यक है । मनुष्य भक्ति का अधिकारी है । भक्ति साधना का साधक मानव-योनि का प्राणी है । गुरु नानक की भक्ति हर दृष्टि से मानवकेन्द्रित साधना है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि गुरु नानक को स्थूल कर्मकाण्ड इसलिए अस्वीकार्य था कि वह मानव केन्द्रित नहीं है और मनुष्य को देवार्चन, मूर्तिपूजा, विधि-विधान आदि का अनुचर बना देता है। गुरु नानक के अनुसार भक्ति साधना का उद्देश्य है भक्त की प्रतिष्ठा और सिद्धि, मूर्तियों का प्रतिष्ठापन या विहित नियमों का पालन नहीं । उनकी वाणी में मानवमात्र की स्वाभाविक मर्यादा के संरक्षण का भाव सदैव देखने को मिलता है। तीर्थाटन, पूजन आदि मानव आत्मा को कुण्ठित कर देते हैं। प्रभु का वास इन स्थूल कार्य-कलापों से कहीं अधिक महत्त्व रखता है ।

गुरु नानक देव ने धार्मिक जीवन का प्रमुख अंग प्रार्थना और नाम-

स्मरण को माना है । उनके विचार में जिस प्रकार मैले कपड़े को साबुन से धोकर स्वच्छ कर लिया जाता है, उसी प्रकार प्रार्थना और नामस्मरण मन के समस्त कलुषों को धो देती है । उन्होंने नाम-स्मरण को ईश्वर प्राप्ति का प्रधान साधन माना है । उसी से मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है । गुरु नानकवाणी में मिलन की प्रबल आकांक्षा और उत्कण्ठा का व्यापक वर्णन हुआ है ।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि गुरु नानक वाणी भक्ति भावना का एक उपयोगी ग्रन्थ है, जिसमें गुरु नानक ने भक्ति का सरल, सजीव और प्रेरणादायक रूप प्रस्तुत किया है, जिसके कारण नानकवाणी जन-सामान्य के लिए परम उपयोगी बन गई है । नानकवाणी में संकलित पद भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, त्याग, दया, परोपकार और विनम्रता की प्रेरणा देते हैं । सामान्य रूप से यह कहना असंगत न होगा कि नानकवाणी में निरूपित भक्ति-भावना सम्बन्धी उक्तियाँ चुन चुन कर रखी गईं अमूल्य मणियाँ हैं ।

सप्तम् अध्याय

गुरु नानक वाणी में साधना के तत्व और सोपान

गुरु नानक वाणी में भक्ति के स्वरूप सम्बन्धी पिछले अध्याय में भक्ति की व्युत्पत्ति, परिभाषा, स्वरूप, नवधा भक्ति, नानकवाणी में भक्ति की चर्चा हुई है । नाम माहात्म्य, शृंगारिक भक्ति, भक्तिरस एवं मिलन की प्रबल आकांक्षा आदि का विवेचन भी हुआ है । प्रस्तुत अध्याय 'गुरु नानक वाणी में साधना के तत्व और सोपान' के परिप्रेक्ष्य में गुरु की अवधारणा एवं महत्त्व, शरीर, माया, मन, ध्यान, जाप, नाम-संग्रह, भय एवं भयमुक्ति के सन्दर्भों में विचार का प्रयास हुआ है । कर्म, अस्तेय, जगत् मोक्ष, योग का वास्तविक और बाह्यरूप, पवित्रता, संयम, मनन एवं आचरण आदि के सन्दर्भों में भी विवेचन विश्लेषण अपेक्षित है ।

भारतीय साधना की धारा अबाध रूप से बहती हुई अनवरत गति से चलती हुई वैदिक काल से आज तक हमारे सन्मुख बह रही है । इस साधना पथ की अन्तिम परिणति, चरम सीमा एवं प्रधान लक्ष्य आत्मतत्त्व की प्राप्ति तथा आनन्द की उपलब्धि है । जिस प्रकार वेदत्रयी ज्ञान, कर्म एवं उपासना का संगम भारतीय साधना की विशेषता है, उसी प्रकार प्रवृत्ति और निवृत्ति की समन्विति भी । यह ठीक है कि किसी समय प्रवृत्ति की प्रधानता रही है

और किसी समय निवृत्ति की, परन्तु भारतीय साधकों ने प्रवृत्ति में निवृत्ति[1] और निवृत्ति में प्रवृत्ति के सामंजस्य को सदैव आदर की दृष्टि से देखा है। साधना में साधक की दृष्टि प्रवृत्ति और निवृत्ति के समन्वय की ओर रहती है। वह अंगन्यास द्वारा अपनी इन्द्रियों को बलवती और यशस्विनी बनाने की प्रार्थना करता है और परिमार्जन द्वारा उन्हें पवित्र बनाने की भावना में लीन होता है। यही है प्रवृत्ति का निवृत्ति की ओर मोड़ना और निवृत्ति को प्रवृत्ति की ओर अग्रसर करना। साधना के क्षेत्र में जब प्रवृत्ति परायणता एवं निवृत्ति परायणता एक दूसरे में मग्न हो जाती है तो साधक उच्चतम अवस्था में पहुंच जाता है।

गुरु नानक वाणी का उद्देश्य प्रत्येक साधक की अवस्था के अनुसार उसे साधना में प्रवृत्त करना है। जो प्राणी जिस कोटि, श्रेणी या स्थिति में है, वह उसी स्थिति में रहता हुआ साधना कर सकता है। वृत्त का केन्द्र एक है, पर उसकी परिधि के बिन्दु अनेक हैं और वे सब एक-एक सीधी रेखा के द्वारा उससे संयुक्त हो जाते हैं। साधना की समूची संरचना के अलग-अलग पक्षों का वर्णन निम्नलिखित ढंग से किया जाता है।

7.1 गुरु की अवधारणा एवं महत्त्व

भारतीय परम्परा में साधन तथा सिद्धि के लिए गुरु का महत्त्व स्वीकार किया गया है। गुरु बिना ज्ञान की परिकल्पना भी भारतीय चिन्तन-परम्परा स्वीकार नहीं करती। गुरु को गोविन्द पर भी वर्चस्व देते हुए कबीर कहते हैं कि गुरु और गोविन्द यदि दोनों सामने आ जाएं तो पहले गुरु को ही प्रणाम करना अपेक्षित है क्योंकि यह गुरु की कृपा ही है

1-- मुन्शी राम शर्मा, भारतीय साधना और सूर साहित्य कानपुर : साधना प्रेस, प्रथम संस्करण, सं० 2010 वि०, पृ० 6

जिससे गोविन्द मिल सकता है। मध्यकालीन धर्मसाधनाओं में तो गुरु की महिमा अद्वितीय है। इसी परम्परा में गुरुनानक देव भी गुरु के महत्व का स्थान-स्थान पर प्रतिपादन करते हैं।

'हिन्दी राष्ट्र भाषा कोश' के अनुसार 'गुरु' शब्द का अर्थ है --- महान, बड़ा, भारी, वजनी, कठिनाई से पकने या पचने वाला, गरिष्ठ (खाद्य), महत्वपूर्ण, कठिन, आदरणीय, सर्वोत्तम, प्यारा, घमंडी वक्ता, अपने से बड़ा, आदर योग्य व्यक्ति तथा धर्म शिक्षक।[2] कान्ह सिंह के अनुसार यह शब्द ग्री (गु) धातु से बना है, इसके अर्थ हैं निगलना और समझाना, जो अज्ञान को खा जाता है तथा सिक्ख को तत्वज्ञान समझाता है, वह गुरु है।[3]

पूर्व ऐतिहासिक काल से हिन्दू धर्म की सभ्यता एवं संस्कृति में गुरु को सबसे ऊँचा स्थान दिया गया है। धर्म और समाज की नियामिका शक्ति उसी के हाथ में रही है, इसलिए श्रुतियों में गुरु को 'आचार्य देवोभव' कहा गया है। वैदिक युग में पुरोहित को गुरु का स्थान प्राप्त था परन्तु उपनिषद् काल में गुरु पद का स्थान पुरोहितों से हटकर अ जंगलों में तपस्या करते हुए ऋषियों तथा चिन्तकों को मिला।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में गुरु के विषय में इस प्रकार कहा गया है ---- 'यस्य देवे भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।'[4] अर्थात् जिस व्यक्ति की परमेश्वर में अत्यन्त भक्ति है और जैसी परमेश्वर में है वैसी ही गुरु में भी है, उस महात्मा के प्रति कहने पर ही इन तत्वों का प्रकाश होता है। भागवतकार

2-- विश्वेश्वर नारायण श्रीवास्तव (संकलनकर्ता), 1952, पूर्वोक्त, पृ० 452

3-- कान्ह सिंह, 1960, पूर्वोक्त, पृ० 311

4-- श्वेताश्वतर उपनिषद्, 6 । 23

महर्षि व्यास के अनुसार गुरु-सेवा से सब कुछ सहज ही सुलभ हो जाता है। उनके अनुसार गुरु साक्षात् भगवान् रूप हैं जो ज्ञान रूपी दीपक शिष्य को प्रदान करता है।

(i) गुरु शुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च ।
(ii) यस्य साक्षाद् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ ।[5]

घेरंड संहिता में गुरु को माता-पिता के समान, देवतास्वरूप कहा गया है। गुरु की मन, वचन तथा कर्म के द्वारा अनन्य श्रद्धा के साथ सेवा करने का भी उपदेश है।[6] सूत संहिता में कहा गया है --'वह वर्णाश्रम से परे है और समस्त गुरुओं का साक्षात् गुरु है, न उससे कोई बड़ा है और न बराबर।'[7]

बौद्ध धर्म में संघ की स्थापना एवं 'बुद्धं शरणं गच्छामि' के विश्वास के साथ गुरु के महत्त्व को बल मिला। बुद्ध के बाद महायान शाखा के साधना पक्ष में गुरु के महत्त्व की आवश्यकता पर अधिक बल दिया गया। बज्रयान तथा सहजयान प्रभृति शाखाओं में भी गुरु को ऊंचा स्थान दिया गया। तन्त्र साधना में गुरु को शिव के समान स्थान दिया गया। गुरु के चरणों की सेवा करने से संसार की दुर्लभ वस्तुओं की प्राप्ति सहज हो जाती है। वास्तव में तान्त्रिकों की साधना अत्यन्त कठिन है और गुरु की सहायता के बिना साधना मार्ग भय से मुक्त नहीं है। धर्मवीर भारती के अनुसार सभी मध्यकालीन धर्म-साधनाओं में गुरु का जो अधिक महत्त्व माना गया है, वह शायद तान्त्रिक युग का बचा हुआ प्रभाव था, क्योंकि जैन, बौद्ध, शैव, शाक्त, वैष्णव आदि

5-- श्रीमद्भागवत, 7।7, 6।15
6-- रामजी लाल 'सहायक', पूर्वोक्त, पृ0 273
7-- वही, पृ0 273

सभी सम्प्रदायों में जब जटिल साधनाएँ शामिल हो गईं, तब गुरु की स्थिति बहुत महत्त्वपूर्ण हो गई क्योंकि साधना का स्वरूप कठिन था और अज्ञानी साधक को गुरु का निर्देशन आवश्यक था।[8] हजारी प्रसाद द्विवेदी इस विषय में लिखते हैं कि नाथ पंथियों, योगियों, सहजयानियों, वज्रयानियों तथा तान्त्रिकों एवं परवर्ती सन्तों में इसीलिए सद्गुरु जी की महिमा इतनी अधिक गाई गई है। सद्गुरु के बिना जगत के चाहे और सभी व्यापार हो जाएं, परन्तु जटिल साधना-पद्धति नहीं हो सकती।[9] गोरखनाथ के अनुसार गहन साधना का रहस्य बिना गुरु-ज्ञान के प्राप्त नहीं किया जा सकता। गुरु के उपदेश ही के द्वारा अमृत रूप तत्त्व की उपलब्धि हो सकती है। सद्गुरु के प्रताप से सब साधना सफल हो सकती है और जो निगुरा है वह असफल ही रहता है।[10] सूफी साधना में 'गुरु' (मुरशिद) का बहुत अधिक महत्त्व है। जायसी आदि सूफी कवियों ने भी गुरु-सेवा की महत्ता को स्वीकार किया है। गुरु द्वारा ही प्रेममार्ग सूझता है, वही शिष्य के हृदय में विरह की चिनगारी उत्पन्न करता है।[11]

कबीर ने सद्गुरु को गोविन्द के समान माना है। सद्गुरु कठिनाई से मिलता है। अपना सर्वस्व गुरु के अर्पण कर देने पर ही उसके शुद्ध-स्वरूप के दर्शन पाए जा सकते हैं। सद्गुरु का मिलना भगवान के साक्षात्कार के समान है।[12]

8-- धीरेन्द्र वर्मा (सं), पूर्वोक्त, पृ0 274

9-- हजारी प्रसाद, 1950, पूर्वोक्त, पृ0 65

10-- रामजी लाल 'सहायक', पूर्वोक्त, पृ0 274

11-- रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली, काशी : ना0 प्र0 सभा, षष्टम् संस्करण, सं0 2093 वि0, पृ0 51, 301

12-- "गुरु गोविंद तौ एक है, दूजा यहु आकार ।
आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार ।।"
-- श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली, वाराणसी : ना0 प्र0 सभा, नवां संस्करण, सं0 2021 वि0, पृ0 2

मनमोहन सहगल 'गुरु' की परिभाषा देते हुए लिखते हैं --
" जिस तरह प्रकाश के बिना अन्धकार दूर नहीं होता, ज्ञानी के बिना ज्ञानोत्पत्ति केवल कल्पना है, नाविक बिना नैया का पार उतरना अपवाद तथा शिक्षक की अनुपस्थिति में शिक्षा कोरी प्रवंचना होगी, वैसे ही गुरु रूपी प्रकाश के बिना माया का अन्धकार दूर नहीं हो सकता, गुरु ज्ञान के बगैर रहस्य प्रश्न ही बने रह जायेंगे, जीवन-तरी भवसागर के विकट थपेड़ों में ही डगमगायेगी और शिक्षा का आडम्बर 'काला अक्षर भैंस बराबर पर तो भी रखते अभिमान' का संकेत चिन्ह होगा।"[13] गुरु नानक गुरु को देव, अलक्ष्य और अभेद कहते हैं। उसकी सेवा से त्रिभुवन की जानकारी प्राप्त होती है। दाता गुरु जब आप ही दान करता है, तभी अलख और अभेद परमात्मा पैदा होता है --

गुरु देवा गुर अलख अभेवा त्रिभवणा सोफी गुर की सेवा ।
आपे दाति करी गुरि दातै पाइआ अलख अभेवा ।। 2 ।।[14]

उसके अन्तर्गत हरी और उसका शब्द नाम समाया हुआ है। जिस व्यक्ति को सद्गुरु अपने साथ मिलाकर हरि से मिलता है, उसका यमराज का झगड़ा समाप्त हो जाता है --

जिस कउ सति गुरु मेलि मिलाए तिसु चूका जम भै भारा है ।।6।।[15]

यम से छुटकारा पाने के लिए गुरु-चरणों में चित्त लगाना आवश्यक है। गुरु नानक की तरह मीरां ने भी यम से छुटकारा पाने के लिए गुरु-चरणों में ध्यान लगाना आवश्यक समझा है --

मोहि लागी लगन गुरु चरनन की ।
चरन बिना कछुवै नहि भावै, जग माया सपनन की ।। 304 ।।[16]

13-- मनमोहन सहगल, संत काव्य का दार्शनिक विश्लेषण, चण्डीगढ़ : भारतेन्दु भवन, 1965, पृ० 54

14-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 692

15-- वही, पृ० 631

16-- ब्रजरत्नदास, मीरां माधुरी, वाराणसी : हिन्दी साहित्य कुटीर, सं० 2013, पृ० 109

गुरु सरोवर है और हम उसके प्रिय हंस हैं। गुरु रूपी सागर में बहुमूल्य गुण और हरी यश रूपी बहुत से लाल और रत्न विद्यमान हैं। हरी यश रूपी मोती, माणिक्य और हीरा का गुणगान करने से गुरु नानक के तन और मन भीग गए हैं अर्थात् प्रसन्न हो गए हैं --

गुरु सरवरु हम हंस पिआरे । सागर महि रतन लालु बहु सारे ।।
मोती माणक हीरा हरि जसु गावत मनु तनु भीना है ।। 2 ।।[17]

भाग्यवश यदि सद्गुरु मिल जाए तो वही शिष्य के मन को स्थिर करने वाला है । सद्गुरु की शरण में पड़ने से राम-नाम रूपी अमूल्य धन मिलता है--
सतिगुरु मिलै त मनुआ टेकै । राम नामु दे सरणि परेकै ।। 26 ।।[18]

गुरु की महिमा कोई नहीं जान सकता । अगर कोई जानता भी है तो उसका वर्णन नहीं कर सकता। गुरु नानक गुरु महिमा का गुणगान करते हुए 'जपुजी' साहिब में कहते हैं कि गुरु ईश्वर अर्थात् शिव है, विष्णु ब्रह्मा और पार्वती माता है । गुरु नानक को गुरु ने यह बात भलीभांति समझा दी है कि सभी प्राणियों का एक दाता है, उसे किसी भी तरह भूलना नहीं चाहिए --

गुरु ईसरु गुरु गोरखु बरमा गुरु पारबती माई ।
जे हउ जाणा आखा नाही कहणा कथनु न जाई ।
गुरा इक देहि बुझाई ।
सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई ।। 5 ।।[19]

गुरु नानक की तरह कबीर भी गुरु की महिमा को अनन्त बताते हैं । उनका अनुग्रह और ज्ञान अनन्त है और वह अनन्त भगवान का साक्षात्कार कराने में समर्थ है --

---

17-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 625

18-- वही, पृ० 629

19-- वही, पृ० 81

सतगुर की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार ।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार ।। 1 ।।[20]

गुरु के बिना भक्ति-भाव नहीं होता । प्रभु-सन्तों का साथ भी नहीं देता। बिना गुरु के मनुष्य अज्ञान में अन्धे रहते हैं और सांसारिक प्रवंचों में रोते रहते हैं। मन का मैल गुरु के शब्दों द्वारा ही दूर हो सकता है --

बिनु गुर भगति न भाउ होइ । बिनु गुर संत न संगु देइ ।।
बिनु गुर अंधुले धंधु रोइ । मनु गुरमुखि निरमलु मलु सबदि खोइ।।3।।[21]

गुरु के समान अन्य कोई तीर्थ नहीं । संतोष रूपी सरोवर भी गुरु है --

गुर समानि तीरथु नहीं कोइ ।
सरु संतोखु तासु गुरु होइ ।। 1 ।। रहाउ ।।[22]

गुरु रूपी पवित्र दरिया में स्नान करने से दुर्बुद्धि की मैल नष्ट हो जाती है। सद्गुरु की प्राप्ति से पूर्ण स्नान होता है --

गुर दरीआउ सदा जलु निरमलु मिलिआ दुरमति मैलु हरै ।
सतिगुर पाइऐ पूरा नावणू पसू परेतहु देव करै ।। 2 ।।[23]

इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए दादू ने लिखा है --

सत गुर पसु माणस करै, माणस थैं सिध सोइ ।
दादू सिद्ध तैं देवता, देव निरंजन होइ ।।[24]

20-- सीताराम चतुर्वेदी, 1971, पूर्वोक्त, पृ0 83

21-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 704

22-- वही, पृ0 780

23-- वही, पृ0 780

24-- परशुराम चतुर्वेदी, सं0 2023 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 2

अर्थात् सद्गुरु पशुओं, प्रेतों को भी देव बना देता है यानि तपोगुणी व्यक्ति भी सतोगुणी बन जाते हैं। संसार में जन्म लेते ही मनुष्य मोह-माया तथा अहंकार के फंफटों में फंस जाता है। इनसे मुक्ति दिलाने का काम सद्गुरु करता है। वह अहंकारयुक्त मन को अपने शब्दों द्वारा धोकर बुद्धि को निर्मल कर देता है। गुरु नानक के शब्दों में --

सतिगुर मिलिऐ मति उतम होइ। मनु निरमलु हउमै कढै धोइ।
सदा मुकतु बंधिन सकै कोइ। सदा नामु वखाणै अवरु न कोइ।।6।।[25]

सद्गुरु हमारी आत्मा को अनहद शब्द के साथ जोड़ता है। जो साधक गुरु के उपदेश के अनुसार नाम-स्मरण करते हैं, उनके सारे सांसारिक रोग नष्ट हो जाते हैं --

गुरमुखि साचा सबदि सलाहै मनि साचा तिसु रोगु गइआ।।9।।[26]

ईश्वर के बारे में ज्ञान देने का दावा तो बहुत लोग करते हैं, लेकिन सच्चा गुरु किसी भाग्यवान को ही मिलता है। गुरु नानक का मत है कि सच्चे गुरु द्वारा ही ईश्वर को समझा जा सकता है। बिना गुरु के संसार प्रतिष्ठा खोकर डूब जाता है --

गुर बिनु अलखु न लखीऐ भाई जगु बूडै पति खोइ।। 7 ।।[27]

यहां यह बात स्पष्ट है कि सत्य-आचरण पर चलने वाले देहधारी गुरु की वर्तमान युग में अत्यधिक आवश्यकता है क्योंकि वह भी एक साधारण व्यक्ति होता है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति की समस्या को भली-भांति समझ सकता है। यदि देहधारी गुरु के बिना ही प्राणी भक्ति-मार्ग पर चल सकते

25-- जयराम मिश्र, सं० 2013, पृ० 711

26-- वही, पृ० 698

27-- वही, पृ० 405

तो पुराने ऋषियों-महात्माओं को आज भी याद क्यों किया जाता है ? फिर तो किसी भी समय इनकी आवश्यकता ही नहीं थी । पुस्तकालयों में ढेरों पुस्तकें पड़ी हैं, किन्तु कोई भी व्यक्ति केवल पुस्तकें पढ़कर डाक्टर या इंजीनियर नहीं बना, इसके लिए प्रशिक्षण लेना पड़ता है, प्रयोग करने पड़ते हैं । रूहानियत का मामला भी कुछ ऐसा ही है, इसके लिए भी किसी आगू अथवा गुरु का सहारा लेना पड़ता है। ऐसे गुरु या महात्मा शरण आए हुए को केवल 'नाम' देकर बेफिक्र नहीं हो जाते बल्कि स्वर्गधाम तक पहुंचाने के जिम्मेवार होते हैं ।

उपर्युक्त से सिद्ध होता है कि गुरु नानक देव की धर्मसाधना में गुरु की अत्यधिक आवश्यकता स्वीकार की गई है । गुरु के बिना मनुष्य की कोई गति नहीं है । गुरु के उपदेश बड़े सहज और सरल होते हैं किन्तु उनका पालन करना बहुत कठिन होता है । आत्मा-परमात्मा का मिलन, सुख अथवा आनन्द की प्राप्ति सब गुरु द्वारा होती है । असत् गुरु से बचकर रहना चाहिए क्योंकि ऐसे लोग स्वयं तो डूबते हैं परन्तु अपने साथ वालों को भी डूबो देते हैं । अत: गुरु की महत्ता निर्विवाद है । निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि गुरु नानक वाणी में गुरु-महिमा का जो वर्णन हुआ है, वह 'गुरु भक्ति' भावना की दृढ़ता के लिए रीढ़ की हड्डी के समान है ।

7.2 शरीर सम्बन्धी दृष्टि

भारतीय चिन्तन परम्परा में शरीर को सब धर्मों का साधन तो स्वीकार किया गया है (शरीर मात्र खलु धर्म साधनम्), पर है यह साधनमात्र ही । जब कभी भी यह साधन साध्य बनने लगता है, अर्थात् जब मनुष्य केवल शरीर की रक्षा, इच्छा, आकांक्षा, वासना आदि का दास बनता है, और धर्म, नीति, आत्मा की अवहेलना करता है तो उस में आसुरी तथा

विकारपूर्ण प्रवृत्तियों का अभ्युदय होता है । इसलिए शरीर की शुचिता, शुद्धता, आत्मनियन्त्रण आदि गुण स्वीकार किए गए हैं, और शरीर को तप, त्याग, दान, सेवा भक्ति, स्नेह आदि के महत्वपूर्ण उपादान के रूप में पालन, रक्षण तथा नियोजन की भारतीय परम्परा में संस्तुति की गई है। गुरु नानक देव का मत भी इसी वृहत्तर भारतीय दृष्टि का सुन्दर प्रतिफलन है ।

'शरीर' शब्द से तात्पर्य है, कलेवर, गात्र, वपु, विग्रह, काया, सभी अंगों का समष्टिगत रूप, अंग समूह, देह, तनु, क्षेत्र, पंजर, पिंड, बदन, संहनन, विग्रह, इंद्रियायतन, मूर्तिकरण, संचर, बंध ।[28] वृहत् हिन्दी कोश के अनुसार इसका अर्थ है --- अस्थि, मांस, मज्जा आदि से निर्मित स्थलचर, जलचर, नभचर, जीवों के सम्पूर्ण अंगों का समुच्चय, यही स्थूल शरीर कहलाता है ।[29]

गुरु नानक मनुष्य योनि को सर्वश्रेष्ठ कहते हैं । इस शरीर का एक रथ और सारथी है जो बार-बार बदलते रहते हैं । कोई बिरला ज्ञानी ही इस रहस्य को जान सकता है --

> नानक मेरु सरीर का इकु रथु इकु रथवाहु ।
> जुग जुग फेरि वाटाईअहि गिआनी बुझहि ताहि ।।25।।[30]

जीवों के शरीर रूपी पात्र का रचयिता प्रभु स्वयं है । गुरु नानक कहते हैं कि कोई व्यक्ति सुखी है और कोई दु:खी क्योंकि जीवों के भाग्य में सुख-

---

28-- (सं0) गोविन्द चातक, आधुनिक हिन्दी शब्दकोश, दिल्ली : तक्षशिला, 1986, पृ0 556

29-- कालिका प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ0 1338

30-- जयराम मिश्र, सं0 2013, पृ0 343

दु:ख भी वही लिखता है । जिन लोगों पर उसकी कृपा होजाए वो निहाल हो जाते हैं --

आपे भाँडे साजिअनु आपे पूरणु देइ ।
इकन्ही दुध समाईऐ इकि चुल्है रहन्हि चड़े ।।
इकि निहाली पै सवन्हि इकि उपरि रहिन खड़े ।
तिना सवारे नानका जिन कउ नदरि करे ।। 44 ।।[31]

गुरु नानक देहरूपी नगरी को उत्तम स्थान कहते हैं क्योंकि इसमें सत्य, सन्तोष, क्षमा, दया और आर्जव इत्यादि पांच गुण प्रधान होकर बसते हैं। इसी बात को स्पष्ट करते हुए गुरु जी आगे कहते हैं कि इन सभी गुणों से ऊपर भी कोई सत्ता है और वह प्रभु है जो दशम् द्वार में शून्य-समाधि लगाकर बैठा हुआ है --

देही नगरी उतमु थाना । पंच लोक वसहि परधाना ।।
ऊपरि एकंकारु निरालम सुंनि समाधि लगाइआ ।।3।।[32]

इस देह रूपी नगरी में क्या-क्या है ? इस बात का उत्तर देते हुए गुरु नानक देव कहते हैं इस नगरी में नौ दरवाजे हैं । यथा-- दो आँखें, दो कान, दो नासिका छिद्र, एक मुख, एक मलद्वार और एक शिश्न-द्वार । दशम द्वार में निर्लेप हरी विराजमान है जो स्वयं को दिखाता रहता है --

देही नगरी नउ दरवाजे । सिरि सिरि करणैहारै साजे ।।
दसवै पुरखु अतीतु निराला आपे अलखु लखाइआ ।।4।।[33]

31-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 355

32-- वही, पृ0 656

33-- वही, पृ0 656, 202

इस काया रूपी कोट और गढ़ में मन रूपी राजा का निवास है, पाँच कर्मेन्द्रियाँ नायब हैं, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ खास सेवक हैं। अत: ऐसे आत्मस्वरूपी घर में मिथ्या, लोभ इत्यादि का निवास कभी नहीं होता --

काइआ कोटु गड़ै महि राजा । नेब खवास भला दरवाजा ।।
मिथिआ लोभु नाही घरि वासा लबि पापि पछुताइदा ।।15 ।।[34]

गुरु नानक मनुष्य की सुन्दर काया, कपड़े, अपार रूप तथा पति-पत्नी के सम्बन्ध को मिथ्या मानते हैं --

कूड़ु काइआ कूड़ु कपड़ु कूड़ु रूपु अपारु ।।
कूड़ु मीआ कूड़ु बीबी खपि होए खारु ।।
कूड़ि कूड़ै नेहु लगा विसरिआ करतारु ।।[35]

शरीर की क्षणभंगुरता का वर्णन करते हुए कबीर ने भी इस शरीर को मिथ्या माना है --

मन रे तन कागद का पुतला ।
लागै बूंद बिनसि जाइ दिन मैं, गरब करै क्या इतना ।।टेक।।1,3।।[36]

गुरु नानक काया को वास्तविक नगर कहते हैं। सच्चे प्रभु का निवास दशम् द्वार में है। यह स्थिर तथा निर्मल स्थान है यहाँ प्रभु स्वयं को टिकाता है --

काइआ नगरु नगर गड़ अंदरि । साचा वासा पुरि गगनंदरि ।।
असथिरु थानु सदा निरमाइलु आपे आपु उपाइदा ।।2।।[37]

34-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 649

35--वही, पृ0 338

36--सीताराम चतुर्वेदी, 1971, पूर्वोक्त, पृ0 65

37-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 640

इस शरीर रूपी गढ़ की देखभाल प्रभु स्वयं करता है इसमें वज्र-कपाट जड़े हैं। प्रभु इन कपाटों को स्वयं ही बन्द करता है और गुरु के शब्द द्वारा स्वयं ही खोलता है --

अंदरि कोट छजे हट नाले । आपे लैवै वसतु समाले ।
वजर कपाट जड़े जड़ि जाणै गुर सबदी खोलाइदा ।।2।। [38]

गुरु नानक दशम् द्वार रूपी गुफा को प्रभु का घर कहते हैं। प्रभु ने अपने हुक्म से नौ-गोलक अर्थात् दो नासिका के छिद्र, दो आँखें, दो कान, एक मुख, एक शिश्न-द्वार और एक मल द्वार की स्थापना की है --

भीतरि कोट गुफा घर जाई । नउ घर थापे हुकमि रजाई ।।
दसवै पुरखु अलेखु अपारी आपे अलखु लखाइदा ।। 3 ।। [39]

इन पांच तत्वों से निश्रित शरीर में परमात्मा का निवास है। जीवात्माएं स्वयं परमात्मा है और परमात्मा स्वयं जीवात्माओं में है --

पंच ततु मिलि काइआ कीनी । तिस महि राम रतनु लै चीनी ।।
आतम रामु रामु है आतम हरि पाईऐ सबदि वीचारा है ।। 7 ।। [40]

दादू ने भी परम तत्व को 'काया' में ही स्थित माना है --

काया माहै अमर स्थान । काया माहै आतम राम ।। [41]

गुरु नानक इस शरीर को प्रभु का घर कहते हैं। यह बड़ा सुहावना स्थान है क्योंकि इसी के द्वारा नाम-स्मरण किया जाता है। कुछ लोग शरीर के

38-- जयराम मिश्र, सं० 2013, पृ० 640

39-- वही, पृ० 640

~~40-- वही, पृ० 640~~

40-- वही, पृ० 632

41-- परशुराम चतुर्वेदी, सं० 2030 वि०, पूर्वोक्त, पृ० 502

महत्व को नहीं समझते, परिणामस्वरूप स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं --

हरि का मंदरु आखीऐ काइआ कोटु गड़ ।
अंदरि लाल जवेहरी गुरमुखि हरि नामु पड़ ।।
हरि का मंदरु सरीरु अति सोहणा हरि हरि नामु दिड़ु ।
मनमुख आपि खुआइअनु माइआ मोह नित कड़ु ।।
सभना साहिबु एकु है पूरै भागि पाइआ जाई ।। 1 ।।[42]

जितने भी शरीर दिखाई दे रहे हैं, सबमें प्रभु का निवास है --

(i) हरि का सभु सरीरु है हरि रवि रहिआ सभु आपै ।[43]
(ii) जैता रूपु काइआ तेरी ।[44]

गुरु नानक अज्ञानी मनुष्यों को समझाते हुए कहते हैं कि शरीर को तंदूर की तरह तपाने और हड्डियों को लकड़ियों की तरह जलाने से कुछ नहीं मिलेगा। अर्थात् शरीर को कष्ट देने से कुछ भी हासिल नहीं होता । प्रियतम (प्रभु) को हृदय के अन्दर देखना चाहिए --

तनु न तपाइ तनूर जिउ बालणु हड न बालि ।।
सिरि पैरी किआ फेडिआ अंदरि पिरी सम्हालि ।। 18 ।।[45]

शरीर रूपी पात्र को गुरु नानक कच्चा पात्र कहते हैं। पांच तत्वों से निर्मित यह शरीर मिथ्या है, इसे धोने का कोई फायदा नहीं। ऐसा करना केवल दिखावा मात्र ही है । गुरु चाहे तो इसे मजबूत बना सकता है --

---

42-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 563

43-- वही, पृ० 567

44-- वही, पृ० 249

45-- वही, पृ० 809

भाडा धोवै कउणु जि कचा साजिआ ।
धातू पंजि रलाइ कूड़ा पाजिआ ।।
भांडा आणगु रासि जां तिसु भावसी ।
परम जोति जागाइ वाजा वावसी ।।14।। [46]

शरीर और श्वास रूपी खंभ कहीं नहीं जाएंगे क्योंकि यह पांच तत्वों के संयोग से बने हैं। यदि गुरु-कृपा हो जाए, तभी नामस्मरण द्वारा सत्य प्रभु से मिला जा सकता है --

न इहु तनु जाइगा न जाहिगे खंभ ।
पउणै पाणी अगनी का सनबंध ।।
नानक करमु होवै जपीऐ करि गुरु पीरु ।
सचि समावै एहु सरीरु ।। 4 ।। [47]

गुरु नानक इस शरीर को भट्ठी कहते हैं। मन इस भट्ठी में डाला हुआ लोहा है, पांच कामादिक अग्नि का रूप हैं जो मन रूपी लोहे को जला रही है पाप रूपी कोयला पड़कर भट्ठी को और भी अधिक दग्ध कर रहा है तथा चिन्ता रूपी संसी से मन ऐसा जकड़ा हुआ है कि छूटना असम्भव है --

काइआ आरणु मनु विचि लोहा पंच अगनि तितु लागि रही ।
कोरले पाप पड़े तिसु ऊपरि मनु जलिआ संनी चिंत भई ।।3।। [48]

मनुष्य को उपदेश देते हुए गुरु नानक कहते हैं कि अगर इस काया को सुन्दर स्त्री की तरह बना दिया जाए तो भोगने वाला उसका भोग अवश्य करेगा। जो वस्तु नश्वर दिखाई दे, उससे स्नेह नहीं करना चाहिए --

---

46-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 808

47-- वही, पृ0 752

48-- वही, पृ0 575

काइआ कामणि जे करी भोगे भोगणहार ।
तिसु सिउ नेह न कीजई जो दीसै चलणहारु ।।3।।[49]

इस शरीर रूपी कोट की रचना किस ने की ? कईबार यह प्रश्न दिमाग को झकझोरता रहता है । गुरु नानक इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं --

काइआ कोटु रचाइआ हरि सचै आपे । 5 ।।[50]

गुरु नानक अपनी वाणी में मनुष्य को सतर्क करते हुए कहते हैं कि जिस शरीर ने नाम भुला दिया है, उसे जलाने में देर नहीं करनी चाहिए क्योंकि इस में पापों का ढेर बनता रहता है । यह ढेर केवल नाम के द्वारा ही साफ किया जा सकता है वरन् बाद में सामर्थ्य से बाहर हो जाता है --

नानक इहु तनु जालि जिनि जलिए नामु विसारिआ ।
पउदी जाइ परालि पिछै हथु न अंबड़ै तितु निवधै तालि ।।4।।[51]

शरीर को गुरु का उपदेश सुनकर ही सुख मिलता है और गुरु सेवा की कमाई होती है --

इहु तनि लागै बाणीआ । सुखु होवै सेव कमाणीआ ।।3।।[52]

अपनी काया को शिक्षा देते हुए गुरु नानक कहते हैं कि पराई निन्दा तथा झूठी चुगली मत कर क्योंकि जीवात्मा के जाने के पश्चात् इस प्रकार अकेली रह जाएगी जिस प्रकार कोई स्त्री पति द्वारा छोड़ी गई हो --

हउ तुधु आखा मेरी काइआ तूं सुणि सिख हमारी ।
निंदा चिंदा करहि पराई झूठी लाइतबारी ।।
वेलि पराई जोहहि जीअड़े करहि चोरी बुरिआरी ।।
हंसु चलिआ तू पिछै रही अहि छुटड़ि होईअहि नारी ।।2।।[53]

49-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 120
50-- वही, पृ० 467
51-- वही, पृ० 465
52-- वही, पृ० 130
53-- वही, पृ० 210

काया स्वयं को अमर मानती रहती है किन्तु इसे कभी भी सुखी नहीं देखा । यह निरन्तर लोभ लालच तथा झूठ कमाती रहती है --

अमृत काइआ रहै सुखाली बाजी इहु संसारो ।
लबु लोभु कूड़ु कमावहि बहुतु उठावहि भारो ।।
तू काइआ मैं रुलदी देखी जिउ धर उपरि छारो ।। 1 ।।[54]

शरीर को माया का स्वाद चीनी की तरह मीठा लगता है । इसलिए गुरु नानक मनुष्य को सचेत करते हुए कहते हैं कि इसका प्रभाव विनाशकारी है --

सकर खंडु माइआ तनि मीठी हम तउ पंड उचाई रे ।
राति अनेरी सूझसि नाही लजु टूकसि मूसा भाई रे ।।2।।[55]

गुरु नानक शरीर को पागल और जीव को अज्ञानी कहते हैं । यह अज्ञानतावश अपना अधिकार जमाने की चेष्टा में लगा रहता है । जीवात्मा के निकल जाने पर काया नंगी जला दी जाएगी, फिर पछताना पड़ेगा --

काइआ कमली हंसु इआणा मेरी मेरी करत विहाणीता ।
प्रणवति नानकु नागी दाझै फिरि पाछै पछुताणीता ।।4।।[56]

अर्थात् प्राण निकल जाने के बाद शरीर का महत्व खत्म हो जाता है और अन्त में इसकी धूल बन जाती है । नानक जैसी मिलती-जुलती बात कबीर भी कहते हैं --

जो जारे तन होय भसम धुरि, गाड़े क्रिमि-किट खाई ।
सीकर स्वान कागका भोजन, तन की इहै बड़ाई ।।

54-- जयराम मिश्र, सं० 2013, पृ० 210

55-- वही, पृ० 213

56-- वही, पृ० 212

चेति न देखु मुगुध नल बौरे, तोहिते काल न दूरी ।
कोटिक जतन करहु यह तनकी, अन्त अवस्था धूरी ।।[57]

अन्यत्र गुरु नानक देह रूपी गागर को कच्ची कच्ची कहते हैं क्योंकि इसे आवागमन के चक्र में कष्ट भोगना पड़ता है --

काची गागरि देह दुहेली उपजै बिनसै दुखु पाई । 1 ।।[58]

यह सच्चाई है कि शरीर एक दिन जीर्ण हो जाता है, ऐसी अवस्था में प्रभु-स्मरण करना मुश्किल हो जाता है । अत: जब तक जवानी है, प्रभु-स्मरण करते रहना चाहिए --

रंगु माणि लै पिआरिआ जा जोबनु न उहुला ।
दिन थोड़ड़े थके भइआ पुराणा चोला ।। 1 ।। रहाउ ।।[59]

जिस शरीर में नाम नहीं बसता वहाँ अहंकार का निवास होता है --

जितु तनि नामु न भावई तितु तनि हउमै वादु ।6।।[60]

नाम स्मरण के बिना शरीर दु:खी रहता है । जिस प्रकार लोने की दीवार ढह जाती है, उसी प्रकार यह छीज जाता है --

बिनु नावै दुखु देहुरी जिउ कलर की भीति ।
तब लगु महलु न पाइऐ जब लगु साचु न चीति ।।4।।[61]

शरीर देह मिट्टी आदि तत्वों का मेल है, इसमें सासें आ जा रही हैं। वह शरीर जो अहंकार और वाद-विवाद के सहारे स्थिर है, नष्ट हो जाता है । गुरु नानक ने निम्नलिखित पंक्तियों में यह स्पष्ट किया है कि यह शरीर

57-- कबीर, बीजक, टीकाकार विचारदास शास्त्री, इलाहाबाद : रामनारायण लाल, 1954, पृ० 195
58-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 264
59-- वही, पृ० 123-24
60-- वही, पृ० 153
61-- वही, पृ० 143

समाप्त हो जाता है परन्तु इसमें स्थित आत्मा अमर है --

देही माटी बोलै पउणु । बुझु रे गिआनी मुआ है कउणु ।।
मुई सुरति बादु अहंकारु । ओहु न मुआ जो देखणहारु ।।2।। [62]

गुरु नानक इस शरीर रूपी पात्र को ठीकरा कहते हैं। गुरु की शरण में जाने से ही प्रतिष्ठा मिल सकती है --

जा भजै ता ठीकरु होवै घाड़त घड़ी न जाइ ।
नानक गुर बिनु नाहि पति पति विणु पारि न पाइ ।।4।। [63]

शरीर अन्त में मिट्टी में मिल जाता है --

खेहू खेह रलाईऐ छोडि चलै घर बारु ।।5।। [64]

गुरु नानक जीव के महत्त्व को प्रतिष्ठापित करते हुए आगे कहते हैं कि जब शरीर से जीव निकल जाता है तो शरीर डरावना हो जाता है अर्थात् इसकी सत्ता नष्ट हो जाती है तथा पाँच सम्बन्धी माता, पिता, भाई, स्त्री एवं पुत्र द्वैतभाव में पड़कर विलाप करने लगते हैं --

सुंजी देह डरावणी जा जीउ विचहु जाइ ।
भाहि बलंदी विझवी धूउ न निकसिउ काइ ।।
पंचे रुंने दुखि भरे बिनसे दूजै भाइ ।। 4 ।। [65]

सच्चे नाम वाले शरीर को गुरु नानक पवित्र शरीर कहते हैं। ऐसे शरीर वाले व्यक्ति को परमात्मा का भय रहता है तथा प्रभु भी सच्ची कृपा-दृष्टि से देखता है --

---

62-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 202

63-- वही, पृ0 176

64-- वही, पृ0 158

65-- वही, पृ0 113

तनु सूचा सो आखीऐ जिसु महि साचा नाउ ।।
मै सचि राती देहुरी जिहवा सचु सुआउ ।।
सची नदरि नीहालीऐ बहुड़ि न पावै ताउ ।। 2 ।।[66]

गुरुवर मनुष्य को संदेश देते हुए कहते हैं कि जब तक यह शरीर है, इसका सदुपयोग करो अर्थात् प्रभु मिलन का प्रयत्न करो वरन् यह शरीर ढह-ढह कर खाक बन जाता है --

सुणि मन मित्र पिआरिआ मिलु बेला है एह ।
जब लगु जोबनि सासु है तब लगु इहु तनु देह ।।
बिनु गुण कामि न आवई ढहि ढेरी तनु खेह ।। 2 ।।[67]

गुरु नानक शारीरिक शुद्धता पर बल देते हुए आगे कहते हैं कि यदि शरीर में मल है तो मन परमात्मा में अनुरक्त नहीं होता । साथ ही अशुद्धता का उपाय बताते हुए कहते हैं कि सद्गुरु के शब्द द्वारा ही इसे शुद्ध किया जा सकता है --

तन महि मैलु नाही मनु राता ।
गुर बचनी सचु सबदि पछाता ।। 4 ।।[68]

7.3 माया की अवधारणा तथा नानक वाणी

माया सम्बन्धी भारतीय विचार परम्परा में बहुत ऊहापोह प्राप्त होता है । माया सांसारिक शक्ति है, जागतिक मोह-ममता तथा क्रियाशीलता का स्रोत है। माया, ब्रह्म तथा जगत की यथार्थता के बीच मानवीय भ्रम तथा आसक्ति का एक रूप भी मान्य है, जो महाठगिनी है, और जीव को सदा ब्रह्म से निकट करके मोह ममता आदि के चक्करों में उलझाए रखती है ।

66-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 115

67-- वही, पृ० 116

68-- वही, पृ० 207

मध्यकालीन सन्तों ने माया के सम्बन्ध में विस्तार से विचार किया है तथा गुरु नानक देव जी की वाणी में भी माया की शक्ति के सम्बन्ध में सुन्दर व्याख्या उपलब्ध होती है । वेदों से लेकर शंकराचार्य तक (माया) शब्द के विभिन्न अर्थ हुए हैं । इस शब्द के विकास का अपना इतिहास है । ऋग्वेद 6 । 47 । 18 । में उल्लेख है --- "इन्द्रो मायाभि:पुरुरुप ईयते "[69] अर्थात् इन्द्र अपनी शक्ति से अनेक प्रकार के रूप धारण कर लेता है । वेदों में रूप बदलने की क्रिया को माया कहा गया है । उपनिषदों में माया को भिन्न-भिन्न नामों से व्यवहृत किया गया है । उन नामों में अविद्या भी एक नाम है। श्वेताश्वतरोपनिषद् की माया तथा अन्य उपनिषदों एवं वेदान्त की माया में एक स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होता है । इस उपनिषद् में तो माया तथा मायावी में अनन्य सम्बन्ध ही स्थापित कर दिया गया है । इसी माया का ही एक दूसरा नाम देवात्म शक्ति है ।[70] गीता में माया को कृष्ण की शक्ति कहा गया है। गीता का कथन है ---" मेरी यह गुणमयी और दीव्य माया दुस्तर है । इस माया को वे ही पार कर पाते हैं, जो मेरी शरण में आते हैं ।"[71] और यह भी कहा है ---"माया ने जिनका ज्ञान नष्ट कर दिया है, ऐसे मूढ़ और दुष्कर्मी नराधम आसुरी बुद्धि में पड़कर मेरी शरण में नहीं आते।[72] बौद्ध दर्शन में स्पष्ट रूप से माया की कल्पना को स्थान नहीं मिला परन्तु उनका

69-- रामजी लाल 'सहायक', पूर्वोक्त, पृ० 186

70-- तुलसी राम शर्मा, श्वेताश्वतरोपनिषद्, दिल्ली : ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 1976, पृ० 20

71-- दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।। 14 ।।
-- सहजानन्द सरस्वती, पूर्वोक्त, पृ० 662

72-- न मां दुष्कृतिनो मूढा प्रपद्यन्ते नराधम: ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिता: ।। 15 ।।
-- वही, पृ० 662

स्वप्नवाद तथा क्षणभंगुरवाद मायावाद से प्रभावित है । न्याय, वैशेषिक आदि दर्शनों में माया का उल्लेख नहीं है । शंकराचार्य ने माया का विस्तार-सहित विश्लेषण किया है । उनका मत है कि यदि परमार्थिक सत्ता एक है तब संसार की सृष्टि वास्तव में सृष्टि नहीं है । परमात्मा अपनी माया शक्ति द्वारा संसार का इन्द्रजाल रचता है ।[73] अतः शंकराचार्य के मत के अनुसार अविद्या का ही दूसरा नाम माया है ।[74] विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैत, द्वैत और शुद्धाद्वैत आदि सभी सम्प्रदायों में माया के सिद्धान्त को माना गया है तथा इसे परमात्मा की शक्ति कहा गया है । नाथ सम्प्रदाय में इसे विषैली नागिन मानकर इसके विनाश के लिए बहुत बल दिया गया है, क्योंकि इसने साधारण प्राणी को तो क्या, त्रिवेदों को भी छल लिया है ।[75]

इस्लाम में माया के स्थान पर शैतान का वर्णन पाया जाता है । यह शैतान साधक को साधना-पथ से विचलित करके उसे दुःख में फंसा देता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मायावाद की परम्परा बहुत प्राचीन है। इसका प्रारम्भ वेदों से माना जाता है । भारतीय दर्शन की सभी प्रणालियों पर इसकी कुछ न कुछ छाप विद्यमान है । माया, अविद्या, भ्रम, अज्ञान, मिथ्याज्ञान, नामरूपात्मक जगत् आदि शब्दों का प्रयोग भी इसके अर्थ में हुआ है । यह सृष्टि की सबसे महत्वपूर्ण, प्रभावमयी और बलवती शक्ति है । इसका रूप असीम है । यह अनेक रूपात्मक है । यह नाना प्रकार के रूप धारण कर जगत को मोहित करती रहती है । पुत्र, सम्बन्धी, घर की स्त्री, धन, यौवन, लोभ, लालच आदि का स्वरूप धारण कर जगत् को ठगती रहती है --

---

73-- सतीशचन्द्र चटोपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ० 31

74-- तुलसी राम शर्मा, पूर्वोक्त, पृ० 20

75-- पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, गोरखबाणी, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 2003 वि०, पृ० 139

तृसना माइआ मोहणी सुत बंधव घर नारि ।
धन जोबनि जगु ठगिआ लबि लोभि अहंकारि ।। 1 ।।[76]

गुरु नानक ने माया के लिए 'कुदरत' शब्द का प्रयोग भी किया है और माया की अनन्तता को कुदरत की अनन्तता द्वारा प्रकट किया है --

कुदरति कवण कहा वीचारु ।
वारिया न जावा एक वार ।। 26 ।।[77]

अर्थात् हे प्रभु, मैं तेरी कुदरत, ताकत, शक्ति, प्रकृति अथवा माया का विचार करूं, क्या वर्णन करूं ? यह ऐसी आश्चर्यजनक है कि मेरा दिल करता है तेरे ऊपर, तेरी बड़ाई के ऊपर एक बार नहीं, अनेक बार बलि जाऊं । सिरी राग में गुरु नानक कहते हैं कि माया रूपी सर्पिणी के वशीभूत जीव, हृदय में होते भाव और अहंकार की भावना लिए इस प्रकार भटकता रहता है जिस प्रकार रात्रि में सोया हुआ जीव स्वप्न में भटकता रहता है --

जिउ सुपनै निसि भुलीऐ जब लगि निद्रा होइ ।
इउ सरपनि कै वसि जीअड़ा अंतरि हउमै दोइ ।। 7 ।।[78]

गुरु नानक ने माया को परमात्मा द्वारा भेजा हुआ नशे का गोला कहा है । जिसकी मादकता के फलस्वरूप प्राणियों ने मरणावस्था भुला दी है और चार दिन की खुशियां मना रहे हैं --

अमलु गलोला कूड़ का दिता देवणहारि ।
मती मरणु विसारिआ खुशी कीती दिन चारि ।। 2 ।।[79]

76-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 152

77-- वही, पृ० 85

78-- वही, पृ० 156

79-- वही, पृ० 104

माया की सारी रचना धोखे वाली है -- "बाबा माइआ रचना धोहु ।"[80]

बड़े-बड़े अहंकारी राजागण माया का संग्रह करते हैं किन्तु उनकी प्यारी माया उनके साथ नहीं जाती --

माइआ संचि राजे अहंकारी ।
माइआ साथ न चलै पिआरी ।।[81]

ऐसे लोग माया-माया करते मर जाते हैं, किन्तु माया किसी के साथ नहीं जाती --

माइआ माइआ करि मुए माइआ किसै न साथि । 42 ।।[82]

मायारूपी धन बिना पाप किए नहीं आता और मरने पर साथ भी नहीं जाता--

पापा बाझहु होवै नाही मुइआ साथि न जाई ।। 3 ।।[83]

राग गउड़ी में गुरु नानक ने माया को शक्कर की भाँति मीठा कहा है जिसकी मनुष्यों ने गठरी उठा रखी है । अविद्या रूपी अन्धेरी रात में कुछ भी सुझाई नहीं पड़ता, काल रूपी चूहा जीवन रूपी रस्सी को कतरता जा रहा है --

सकर खंडु माइआ तनि मीठी हम तउ पंड उचाई रे ।
राति अनेरी सूझसि नाही लजु टूकसि मूसा भाई रे ।। 2 ।।[84]

माया की ममता बहुरंगिनी है । बिना हरिनाम के कोई भी संगी साथी नहीं बनता --

माइआ ममता है बहुरंगी ।
बिनु नावै को साथि न संगी ।। 2 ।।[85]

80-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 102

81-- वही, पृ0 791

82-- वही, पृ0 522

83-- वही, पृ0 294

84-- वही, पृ0 213

85-- वही, पृ0 791

लोग माया के पीछे भागते हैं लेकिन उन्हें यह नहीं मालूम कि माया का मोह कैसा होता है । माया का यह स्वभाव है लोगों को प्रभु से तोड़कर संसार के नाशवान पदार्थों से जोड़ना । गुरु नानक लोगों को इसके स्वरूप से अवगत कराते हुए कहते हैं कि इसका मोह धिक्कारी हुई व्याभिचारिणी और जादू-टोने करने वाली स्त्री के सदृश है --

> माइआ मोहु धरकटी नारी । भूंडी कामणि कामणि आरि ।।
> राजु रुपु झूठा दिन चारि । नामु मिलै चानणु अंधियारि ।।2।।[86]

यह जीव को नाना भ्रमों में भुलाती हुई उसे ईश्वर-विमुख रखने का काम करती है । सुख और भोग-विलास के सपने दिखाकर नाना प्रकार की यातनाएं देती है। राग बिलावल में माया को 'वेश्या' कहकर सम्बोधित किया गया है जिसके पुत्र का कोई एक बाप नहीं होता । ऐसा पुत्र बेजाति कहलाता है अर्थात् उसकी कोई जाति-विशेष नहीं होती । अगर ऐसा पुत्र (व्यक्ति) जाति में आना चाहे तो उसका हल भी गुरु नानक ने बताया है । ऐसी स्थिति में उसे हरि का पुत्र बनना पड़ेगा तभी वह उसकी महिमा का उत्तराधिकारी बन सकता है । गुरु नानक कहते हैं मैंने ऐसी व्याभिचारिणी माया को चख कर छोड़ दिया है --

> चखि छोडी सहसा नहीं कोइ । बापु दिसै वेजाति न होइ ।।
> एकै कउ नाही भउ कोइ । करता करै करावै सोइ ।। 3 ।।[87]

7.3.1 माया की प्रबलता और व्यापकता

माया का प्रसार सारे जगत् में हुआ है । जब जीव पर भ्रम का पर्दा पड़ जाता है, तब यह दूसरी होकर प्रतीत होने लगती है । इसने सर्वत्र जग के चित में वास किया हुआ है । यह कई प्रकार के भेष धारण कर रही है, जो

86-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 475

87-- वही, पृ० 475

विनाश के कारण है --

दूजी माइआ जगत चितु वासु । काम क्रोध अहंकार बिनासु ।।21।। [88]

अब प्रश्न उठता है कि मनुष्य माया के वश में होता क्यों है ? वह सत्य को जानने की चेष्टा क्यों नहीं करता ? गुरु नानक देव कहते हैं मनुष्य स्वभाव के अनुसार माया की तरफ ही झुकता है । उसे माया की तरफ ले जाने वाले कांचन, कामिनी, मन तथा इन्द्रियां हैं । जो राम एकमात्र अपना सहायक है, उसे लोग पराया समझते हैं और नश्वर वस्तुओं की ओर आकर्षित होते रहते हैं --

माइआ मोहि सगल जगु छाइआ । कामणि देखि कामि लोभाइआ ।।
सुत कंचन सिउ हेतु बधाइआ । सभु किछु अपना इकु रामु पराइआ।।1।। [89]

मनुष्य की बात ही क्या त्रिदेव, ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी माया के वशीभूत है । इनकी उत्पत्ति भी माया से ही हुई है --

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ।
इकु संसारी इकु भंडारी, इकु लाए दीबाणु ।। 30 ।। [90]

इस प्रकार माया का प्रभुत्व जीवों से लेकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश तक समान रूप से व्याप्त है । गुरु नानक मनुष्य को सचेत करते हुए कहते हैं कि माया के प्रभाव से बचो । यह मनुष्य को बिना घर का कर देती है अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप से पृथक् कर देती है --

माइआ मोहणी नीघरीआ जीउ कूड़ि मुठी कूड़ि आरे । 3 ।। [91]

88-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 223

89-- वही, पृ0 792

90-- वही, पृ0 94

91-- वही, पृ0 243

7.3.2 रूपात्मक शैली द्वारा माया का चित्रण

गुरु नानक ने स्थान-स्थान पर रूपकों द्वारा माया को सास, जाल, दीवार, सर्पिणी इत्यादि नामों से चित्रित किया है। यह ऐसी बुरी सास है जो जीव रूपी वधु को अपने ही घर में रहने नहीं देती और न ही परमात्मा रूपी प्रियतम से मिलने देती है --

सासु बुरी घरि वासु न देवै पिर सिउ मिलण न देइ बुरी ।2।।[92]

राग तिलंग में गुरु नानक ने माया को शरीर रंगने के लिए याह[93] और लोभ को मजीठी रंग कहा है, जिसमें रंगा हुआ शरीर रूपी चोला परमात्मा रूपी पति को अच्छा नहीं लगता --

इहु तनु माइआ पाहिआ पिआरे लीतड़ा लबि रंगाए ।
मेरै कंत न भावै चोलड़ा पिआरे किउ धन सेजै जाए ।। 1 ।।[94]

गुरु नानक राग बिलावल में कहते हैं कि माया ने मन को संसार रूपी तालाब के जाल में बांध रखा है । प्रत्येक प्राणी के हृदय में माया का जाल व्याप्त है । उस जाल में माया का विष भी साथ है --

मनु माइआ बंधिओ सर जालि ।
घटि घटि बिआपि रहिओ बिखु नालि ।। 4 ।।[95]

जब तक मन रूपी सरोवर के अन्दर भ्रम की दीवार है, तब तक तृष्णा के प्यासे की प्यास भला कैसे बुझ सकती है --

तिखा तिहाइआ किउ लहै जा सर भीतरि पालि ।। 3 ।।[96]

92-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 264

93-- मजीठ आदि लाल रंग चढ़ाने से पहले कपड़े को पीले रंग से रंगते हैं, इसे `याह` कहते हैं। बिना `याह दिए` कपड़े में रंग नहीं चढ़ता ।

94-- वही, पृ0 429

95-- वही, पृ0 477

96-- वही, पृ0 367

माया का मोह गन्ने की तरह होता है । गन्ने को काटकर, छील कर, रस्सी में डाल कर बांधा जाता है, फिर उसे बेलन में डालकर पीड़ते हैं । सारे रस को कड़ाहे में डालकर गर्म करते हैं । गर्म आंच से वह बिलखता है । गन्ने की यह दशा मिठास के कारण होती है । इसी प्रकार माया के मोह की मिठास के कारण जीव की भी दुर्दशा होती है और वह दु:खी होता है -

वेखु जिमिठा कटिआ कटि कुटि बघा पाइ ।
खुंडा अंदरि रखि कै देनि सु मल सजाइ ।।
रसु कसु टटरि पाईऐ तपै तै बिललाइ । ~~भी-सो-फ-ोगु~~
भी सो फोगु समालीऐ दीबै अगि जालाइ ।।
नानक मिठै पतरीऐ वेखहु लोका आइ ।। 22 ।।[97]

7.3.3 माया-निवृत्ति

यह स्पष्ट हो चुका है कि माया का प्रभाव विनाश की ओर ले जाने वाला है । इसका मोह भी झूठा है, अन्तत: झूठा ही साबित होता है, नश्वर है --

माइआ मोहु सभु कूड़ु है कूड़ो होइ गइआ ।[98]

गुरु नानक की तरह दादू ने भी माया को झूठा कहा है --

दादू झूठी काया, झूठा घर, झूठा यहु परिवार ।
झूठी माया दोषि करि, फूल्यो कहा गंवार ।।[99]

इतना समझाने के बाद भी मन वश में नहीं रहता । गुरु नानक प्रभु से कहते हैं कि तू ही मेरे इस दु:ख का निवारण कर । मेरे मन का माया के साथ अत्यधिक स्नेह है । केवल संतजन ही परमात्म तत्त्व समझकर इस माया की निवृत्ति कर सकता है --

---

97-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 184

98-- वही, पृ0 468

99-- परशुराम चतुर्वेदी, सं0 2023 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 132

इसु मन माइआ कउ नेहु घनेरा ।
कोई बूझहु गिआनी करहु निबेरा ।। 25 ।।[100]

सांसारिक मनुष्यों से माया और ममता छोड़ी नहीं जाती ।[101] ऐसे मनुष्य महामोह के अंधकूप में पड़कर, माया के पर्दे के कारण सत्य परमात्मा को विस्मृत कर देते हैं । गुरु नानक ने माया और मोह को नष्ट करने का उपाय भी बताया है । इसके लिए गुरु के शब्द का होना आवश्यक है --

'माइआ मोहु गुरसबदि जलाए'[102]

इससे स्पष्ट है कि माया-निवृत्ति में गुरु शब्द का विशेष हाथ है --

से छूटे सचु कार कमाई ।। 2 ।।[103]

इस सन्दर्भ में गुरु नानक ने संसार के प्रपंच में रहकर माया के आवरण से दूर रह कर सात्विक भाव से परमात्मा का चिन्तन ही जीवन का प्रधान लक्ष्य स्वीकार किया है और यह उपदेश दिया है कि मनुष्य को स्वार्थ छोड़कर परमार्थ साधना में लीन रहना चाहिए । इसके लिए गुरु का सहारा आवश्यक है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुरु नानक की दृष्टि में जगत् और जगत् के सम्पूर्ण सम्बन्ध माया का पसारा है । इस माया के कई रूप हैं । यह नागिन की तरह विषैली, सास की तरह विघ्न-कारिणी, शक्कर की तरह मीठी, स्वभाव से व्याभिचारिणी, धिक्कारी हुई स्त्री के सदृश, जादू-टोने करने वाली स्त्री के सदृश और जाल की तरह बंधन है । यह संसार माया का साकार रूप है, यह उसमें व्यापक है । त्रिदेव तक इसके जाल में फंस चुके हैं । इस प्रकार साधक के साधना मार्ग में यह बाधा है । अत: गुरु नानक की माया

100-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 652

101-- वही, पृ० 615

102-- वही, पृ० 279

103-- वही, पृ० 615

सम्बन्धी अवधारणा परम्परागत माया सिद्धान्त में अपना स्थान पूरा करती हुई अपनी विशिष्ट मौलिकता रखती है ।

7.4 मन की परिकल्पना

शरीर प्रकृति का एक यन्त्र मात्र है जो विशेष नियमों द्वारा संचालित होता है । आत्मा ईश्वरीय अंश और ईश्वरीय तत्त्व है जो मानव को ईश्वरीय सन्तान तथा उसकी कामना करने वाला बनाती है । पर यह मन ही है जो वस्तुत: मानव को देवताओं से भी महान या पशुओं से भी हीन बना सकता है। मन बहुत चंचल है । इसे वश में करना दुर्गम है । इसी की शक्ति व सामर्थ्य के कारण व्यक्ति मनस्वी तथा महान् बनता है, और इसी की लोलुपता व नीचता के कारण वह नीच बनता है । यह ही प्रकृति के इस दिव्य यन्त्र शरीर को महान साधना व त्याग में संलग्न करता है, तो यही उसे सारे नीच कर्मों में भी प्रवृत्त करता है । अर्जुन ने भी कुरुक्षेत्र के युद्ध स्थल में श्रीकृष्ण से एक ही प्रश्न किया कि "हे यादवराज, यह मन बहुत चंचल है, इसे वश में करने का उपाय बताओ ।" और गीता का सारा उपदेश मन को वश में करने का ही उपक्रम है । भारतीय धर्म-साधना में मन के सबल व दुर्बल, उच्च और हीन दोनों पक्षों के महत्त्व को स्वीकार किया गया है, और मन के वशीकृत करने की साधना का प्रथम सोपान माना गया है। गुरु नानक देव भी वाणी के इस सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाशित करते हैं ।

'मन्यते अनेन इति मन:' अर्थात् जिसके द्वारा मानने का कार्य सम्पादन हो अथवा जो मानने का कारण या साधन बने, वही मन है । मन प्राणियों की वह शक्ति है जिसके द्वारा उन्हें वेदना, संकल्प, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, बोध तथा विचार आदि का अनुभव होता है ।[104] संक्षिप्त हिन्दी

104-- द्वारका प्रसाद शर्मा, 1957, पूर्वोक्त, पृ0 862

शब्द सागर में भी इसी तरह की मिलती-जुलती परिभाषा दी गई है।[105] वैशेषिक दर्शन के अन्तर्गत मन को संकल्प-विकल्प रूपी शक्ति कहा गया है। मन आत्मा के भिन्न और शरीर से पृथक है जिस के आठ गुण है -- संख्या, परिणाम, पृथकत्व, संयोग, परत्व, अपरत्व, व्यापकता एवं संस्कार। सांख्य-दर्शन के अनुसार मन 11वीं इन्द्री है। यह ज्ञान इन्द्री भी है और कर्म इन्द्री भी, क्योंकि यह दोनों प्रकार की इन्द्रियों को अपने-अपने कार्य में लगाता है।[106] योगशास्त्र में मन को चित्त की उपाधि प्रदान की गई है। जैन तथा बौद्ध धर्मों में मन को षष्टम इन्द्रिय कहा गया है। गीता में लिखा है कि यह मन बड़ा चंचल, दृढ़ और बलवान है, इसे वश में करना बहुत मुश्किल है।[107] वेदान्त में यह अन्त:करण-चतुष्टय मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार का एक अंग माना गया है।[108] योग वशिष्ठ में दृश्य से युक्त या स्पर्शित चित्त को मन कहा गया है तथा बुद्धि, अहंकार, चित्त आदि मन के नाम रूप है।[109] भक्तिकाल के अधिकांश कवियों ने मन को डांटने-फटकारने की चेष्टा की है। कबीर के अनुसार मन जल से भी अधिक चंचल, धुएं से भी अधिक झीना और वायु के प्रबल वेग से भी अधिक द्रुतगामी है। यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व से निर्मित है।[110] गुरु नानक देव ने अपनी वाणी में मन सम्बन्धी अनेक उक्तियां लिखी हैं तथा इन्हें उदाहरण देकर स्पष्ट भी किया है।--

संसार के समस्त पदार्थों से प्यार तथा मोह करने वाला मन ही तो

105-- रामचन्द्र वर्मा (सं0), सं0 2028 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 914

106-- बलदेव उपाध्याय, भारतीय-दर्शन, वाराणसी : शारदा मन्दिर, पृ0 270

107-- सहजानन्द सरस्वती, पूर्वोक्त, पृ0 639

108-- रामजी लाल 'सहायक', पूर्वोक्त, पृ0 281

109-- भीखन लाल आत्रेय, योगवसिष्ठ और उसके सिद्धान्त, बनारस : 1959 ई0, पृ0 223-25

110-- श्याम सुन्दर दास, सं0 2021 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 29

है । आत्मा और परमात्मा के बीच अगर कोई रुकावट या पर्दा है, वह केवल मन ही है । गुरु नानक के शब्दों में -- 'मनि जीतै जगु जीतु'[111] यह मन इतना प्रबल है कि इसका जीतना सारे संसार और उसके बनाने वाले को वश में करना है । संसार में अगर कोई दुश्मन है तो केवल मन है । यह किसी को अपना और किसी को बेगाना समझता है । अच्छी तरह विचार करके देखा जाए तो मालूम होता है कि यह मन ही है जिसके पीछे लगकर धर्म, मज़हब, जातियां, देश और भाई-भाई एक दूसरे को तबाह कर रहे हैं । इस लिए जब तक मन वश में नहीं होगा, तब तक मनुष्य परमात्मा से मिलने के काबिल नहीं बन सकता । जिस प्रकार आत्मा, परमात्मा का अंश है, उसी प्रकार मन भी ब्रह्म का ही अंश है । यह कोई छोटी चीज़ नहीं है । मगर जब मन माया में भ्रमित हो जाता है तो उसके लिए कहना और सुनना वायु की ध्वनि की तरह व्यर्थ है । इस स्थिति में मन पर कोई उपदेश नहीं चलता --

आंखणु सुनणा पउण की बाणी इहु मनु रता माइआ ।। 2 ।।[112]

मन जूठा होने से शरीर भी जूठा हो जाता है, ऐसा गुरु नानक का मत है -- 'मनि जूठै तनि जूठि है जिहवा जूठी होइ ।[113]

मन कामादिक, दूतों, खोटी बुद्धि तथा द्वैतभाव के वशीभूत है । इसलिए न तो यह मरता है और न ही परमात्मा की प्राप्ति का कार्य पूरा होता है । गुरु नानक का कथन है कि इसे गुरु द्वारा मनवाया जाए तभी परमात्मा के स्वरूप से एक होता है --

ना मनु मरै न कारजु होइ । मनु वसि दूता दुरमति दोइ ।।
मनु मानै गुर ते इकु होइ ।।1।।[114]

111-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 93

112-- वही, पृ० 126

113-- वही, पृ० 138

114-- वही, पृ० 220

मन बड़ा चंचल है । अनेक विषय-विकारों की ओर देखकर यह भटक जाता है और इसके भटकने से सिर पर पाप का बोझ लद जाता है । गुरु नानक देव कहते हैं कि प्रभु के सान्निध्य में आने से ही यह मन मानता है --

मनु भूलो बहु चितै विकारु । मनु भूलो सिरि आवै भारु ।।[115]
मनु मानै हरि एकंकारु ।।2।।

सभी रूप-रंग मन के ही अन्तर्गत हैं --

सगल रूप वरन मन माही ।[116]

जो व्यक्ति चंचल मन को विषय-विकारों से रोक कर रखता है, वही सद्गुरु की सेवा करके अमृत शब्द का उच्चारण कर सकता है --

चलतउ मनु राखै अमृतु चाखै ।
सतिगुर सेवि अमृत सबदु भाखै ।।[117]

यहां गुरु नानक उस व्यक्ति की बात करते हैं जो मन से जूझकर अहंभाव से मरता है । ऐसा व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त करता है और उसकी समस्त इच्छाएं उसके मन में ही समाहित हो जाती हैं --

मन सिउ जूझि मरै प्रभु पाए मनसा मनहि समाए ।।4।।[118]

यदि मन प्रभु में अनुरक्त हो जाए तो सदैव अनाहत घुंघरू बजता रहता है । ऐसी स्थिति में यम की ज़रा भी नहीं चलती। अर्थात् रागात्मक भक्ति के समक्ष यम कुछ नहीं कर सकता --

घुंघरु बाजै जै मनु लागै ।
तउ जमु कहा करे मो सिउ आगै ।। 1 ।। रहाउ ।।[119]

115-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 220

116-- वही, पृ0 223

117-- वही, पृ0 256

118-- वही, पृ0 258

119-- वही, पृ0 266

यहाँ गुरु नानक मूढ़ मन को परमात्मा का चिन्तन करने को कहते हैं। मन को यह विदित नहीं कि परमात्मा के विस्मरण से सद्गुणों का नाश हो जाता है --

मन एकु न चेतसि मूड़ मना। हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ।।
1 ।। रहाउ ।।[120]

अन्यत्र, मूर्ख मन को समझाते हुए गुरु नानक उसे प्रभु के रंग में रंगने की शिक्षा देते हैं --

मूरख मन समझाइ आखउ केतड़ा ।
गुरमुखि हरि गुण गाइ रंगि रंगेतड़ा ।।4।।[121]

गुरु नानक की तरह तुलसी भी मूर्ख मन को समझाते हुए इस प्रकार कहते हैं--

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो ।
गरि पद विमुखलाइयो न काहु सुख, सठ। यह समुझ सवेरो ।।[122]

प्रभु-भक्ति में मन लगाना बड़ा मुश्किल है। इसे कितना ही समझाओ, लेकिन यह फिर भी स्थिर नहीं रहता। मन लोभी, कपटी, पापी और पाखण्डी है, इसका झुकाव सदैव माया की ओर रहता है --

मनु मेरा दइआल सेती थिर न रहै ।
लोभी कपटी पापी पाखंडी माइआ अधिक लगै। 2 ।। रहाउ ।।[123]

तुलसीदास भी गुरु नानक जैसी मिलती-जुलती बात कहते हैं --

यों मन कबहूं न लाग्यो ।
ज्यों छल छांडि सुभाव निरंतर रहत विषय अनुराग्यो ।।[124]

120-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 269

121-- वही, पृ० 446

122-- ~~बह~~ चुन्नीलाल, पूर्वोक्त, पृ० 53

123-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 272

124-- चुन्नी लाल, पूर्वोक्त, पृ० 50

गुरु नानक ने इस मन की तुलना लोभी राजा से की है । लोभी राजा लोभ में ललचाता रहता है। इस लोभ का निवारण गुरु की शिक्षा द्वारा ही हो सकता है --

इहु मनु राजा लोभीआ लुभतउ लोभाइ ।
गुरमुखि लोभु निवारीऐ हरि सिउ बणि आइ ।।3।।[125]

जिसके मन में सच्चा साहब अर्थात् प्रभु निवास करता है, उसका मन प्रभु-स्वरूप हो जाता है --

सचा साहिबु मनि वसै वसिआ मनि सोइ । 3 ।।[126]

गुरु नानक मनुष्य को समझाते हुए कहते हैं कि अपने मन के साथ-साथ सिर भी गुरु को सौंप देना चाहिए --

आपनड़ा मनु वेचीऐ सिरु दीजै नाले । 5 ।।[127]

गुरु नानक मन को स्थिर होने के लिए कहते हैं । इधर-उधर भटकने से कुछ भी हासिल नहीं होता क्योंकि घर ही में घट के भीतर अमृत बसा है --

मन रे थिरु रहु मतु कत जाही जीउ ।
बाहरि ढूंढत बहुतु दुखु पावहि घरि अंमृतु घटमाही जीउ ।।रहाउ।।[128]

जिस मन के उचित मार्ग का अनुसरण करने से मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करता है, उसे अंधकारमयी अवस्था के समय गुरु नानक बड़ी विनम्रता से समझाते हुए कहते हैं कि हे मन ! समझकर, किस बुद्धि में लगा हुआ है ? प्रभु नाम छोड़ कर अन्य रसों में लुब्ध है, अरे अभागे चेत जा, नहीं तो फिर

125-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 298

126-- वही, पृ० 301

127-- वही, पृ० 301

128-- वही, पृ० 394

पछताना पड़ेगा --

मन रे समझु कवन मति लागा ।
नामु विसारि अनरस लोभाने फिरि पछुताहि अभागा ।।रहाउ।।[129]

नानक वाणी में बार-बार मन को राम जपने की सलाह दी गई है --

मन रे राम जपहु सुखु होई ।[130]

गुरु नानक अपने मन से कहते हैं कि गुरु के बचनों द्वारा मुझे सभी सुखों का भण्डार प्राप्त हो गया --

मन मेरे गुरबचनी निधि पाई ।[131]

अन्यत्र गुरु नानक अपनी माँ से कहते हैं कि हरिनाम शब्द ने मेरा मन बेंध दिया है । अत: यह मन वैराग्य भावना में रंग कर वैरागी हो गया है --

मनु बैरागि रतउ बैरागी सबदि मनु बेधिआ मेरी माई ।[132]

यहाँ यह बात स्पष्ट है कि वैराग से प्यार पैदा नहीं होता, प्यार से वैराग पैदा होता है । गुरु नानक देव के मन को प्रभु के अतिरिक्त और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उनका मन प्रभु में अनुरक्त है और उसी के गुणों का उच्चारण करता है --

मेरा मनु राता गुण रवै मनि भावै सोई ।[133]

मनुष्य की इच्छा मन के कथनानुसार ही पूरी होती है । इस प्रकार यह मन निरन्तर पाप-पुण्य को भक्षण करता रहता है --

मन का कहिआ मनसा करै । इहु मनु पुंनु पापु उचरै ।।[134]

<u>स्वरूप</u> : ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु नानक ने मन के स्वरूप

129-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 395
130-- <u>वही</u>, पृ० 396
131-- <u>वही</u>, पृ० 397
132-- <u>वही</u>, पृ० 398
133-- <u>वही</u>, पृ० 459
134-- <u>वही</u>, पृ० 478

को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है । `सिध गोसटि` में सिद्धों ने गुरु नानक को निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्न किए --

(1) यह अहंकार में मतवाला मन रूपी हाथी कहाँ बसता है?
इहु मनु मैगलु कहा बसीअले कहा वसै इहु पवना ।[135]

(2) मन का चक्कर लगाना अथवा उसकी चंचलता कैसे समाप्त होती है?
कहा बसै सु सबदु अउधू ता कउ चूकै मन का भवना ।।[136]

(3) जब हृदय और शरीर नहीं था, तब मन किस जगह पर रहता था?
जा इहु हिरदा देह न होती तउ मनु कैठै रहता ।[137]

गुरु नानक ने इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा है --

(1) जब परमात्मा की कृपा होती है, तब यह मन अपने आत्म-स्वरूपी घर में निवास करता है --
नदरि करे ता सतिगुरु मेले ता निज घरि वासा इहु मनु पाए।[138]

(2) आत्मस्वरूप का हृदय में बसने से यह मन निश्चल हो जाता है --
इहु मन निहचलु हिरदै वसीअले गुरमुखि मूलु पछाणि रहै ।[139]

(3) जब हृदय और शरीर नहीं थे, तब यह मन शून्य (निर्गुण ब्रह्म) में स्थित था --
हिरदा देह न होती अ उधू तउ मनु सुंनि रहै बैरागी ।[140]

135-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 545

136-- वही, पृ० 545

137-- वही, पृ० 545

138-- वही, पृ० 545

139-- वही, पृ० 545

140-- वही, पृ० 546

गुरु नानक अपने मन से प्रश्न करते हैं कि तू क्या लेकर आया है और यहां से क्या लेकर जाएगा ? अर्थात् हरि रूपी धन का संग्रह कर, तभी सांसारिक बन्धनों से छूटेगा --

ए मन मेरिआ तू किया लै आइआ किआ लै जाइसी राम ।
ए मन मेरिआ ता छुटसी जा भरमु चुकाइसी राम ।[141]

स्पष्ट है कि गुरु नानक ने मनुष्य को समझाने के लिए अपने मन को बुरा-भला कहा है । स्वयं वह ईश्वर के बिना पल भर भी नहीं रहते थे । भला हरि के बिना उन का मन किस प्रकार धैर्य धारण करता --

हरि बिनु किउ धीरै मनु मेरा ।[142]

प्रभु ने तो उनका मन मोह लिया था ---

मोहनि मोहि लीआ मनु मोरा ।[143]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि गुरु नानक ने अपनी वाणी में मन-सम्बन्धी बहुत चर्चा की है, इसे समझाया है । इसकी प्रवृत्तियों को प्रभु भक्ति के अनुकूल करने का प्रयत्न किया है । मनुष्य के जीवन में मन के योगदान का महत्त्व बतलाया है । गुरु नानक ने कई प्रसंगों में मन को समझाने के लिए प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग किया है । उनका कहना था कि जब तक मन विषय-वासनाओं के अधीन है, तब तक मनुष्य का आध्यात्मिक विकास संभव नहीं । मन-मारना तथा मन को मारने के उपाय भी नानक वाणी में दिए गए हैं । मन को मारने से अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है । गुरु नानक ने मन को समझाने के लिए अपनी वाणी में अनेक स्थानों पर उपदेश दिए हैं। यह उपदेश मन द्वारा अच्छे काम करने, बुरे कर्म त्यागने, अपने वास्तविक स्वरूप और स्थान प्राप्त करने के लिए दिए गए हैं ।

141-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 688

142-- वही, पृ0 724

143-- वही, पृ0 724

7.5 ध्यान

ध्यान मन तथा आत्मा की साधना का एक व्यवहारगत पक्ष है । ध्यान द्वारा अपने इष्ट, अपने काम्य के प्रति निर्व्याज तथा निर्बाध भाव से एकीकृत अथवा समीकृत अनुभव करने की चेष्टा की जाती है । ध्यान ही धारणा का आधार है, और यह धारणा ही आत्मा की सिद्धि का महत्व-पूर्ण सोपान है। गुरु नानक देव ध्यान को बहुत महत्व देते हैं । साकार और निराकार दोनों प्रकार की उपासना पद्धति में `ध्यान` को आवश्यक एवं महत्वपूर्ण साधन स्वीकार किया गया है। भागवद्गीता में ध्यान की महिमा का गुणगान हुआ है । योगशास्त्र में `ध्यान` को ऊंचा स्थान दिया गया है । गुरु नानक वाणी में भी `ध्यान` के महत्व को प्रतिपादित किया गया है । जो लोग एकाग्रचित होकर प्रभु का ध्यान करते हैं, उन्हें किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। ऐसे लोग बड़े सुखी रहते हैं । ऐसे मनुष्यों के निकट यमराज नहीं जाते । ये गुरु शब्द की कमाई करते हैं । ऐसे मनुष्यों का जन्म-मरण समाप्त हो जाता है और गुरु द्वारा प्रभु-नाम हृदय में बस जाता है । गुरु नानक देव कहते हैं ऐसे लोग संसार में विरले हैं --

> जिन्ह इक मनि धिआइआ तिन्ह सुखु पाइआ ते विरले संसारि जीउ ।
> तिन जमु नेड़ि न आवै गुर सबदु कमावै कबहु न आवहि हारि जीउ।। [144]

गुरु नानक ने इस संसार को `मायका` की संज्ञा दी है । मायके में स्त्री चार दिन रहती है । उसका वास्तविक घर तो प्रियतम का घर होता है किन्तु सांसारिक प्रलोभनों में फंस कर जीवात्मा रूपी स्त्री ने वह आत्मस्वरूपी घर नष्ट कर दिया है । अब अपना वास्तविक घर बसाने के लिए स्त्री को गुरु के

144-- जयराम मिश्र, सं0 2013, पृ0 320

भावों के अनुसार ध्यान लगाना पड़ेगा --

बूड़ी घरु घालिउ गुर कै भाइ चलो ।
साचा नामु धिआइ पावहि सुखि महलो ।।
हरिनामु धिआइरता सुखु पाए पेईअड़ै दिन चारे ।
निज घटि जाइ बहै सचु पाए अनदिनु नालि पिआरे ।।[145]

ध्यान लगाने को तो सभी कहते हैं, पर यह ध्यान कैसे लगाया जाए ? क्योंकि मन बड़ा चंचल है, यह इधर-उधर भटकने लगता है । गुरु नानक इसका उपाय भी बताते हैं कि ऐसी परिस्थिति में गुरु के शब्द की ध्वनि का सहारा लेना पड़ता है । यह ऐसी अकथनीय कहानी है कि शब्द की ध्वनि उठते ही ध्यान लग जाता है और ध्यान लगते ही परमात्मा का ज्ञान हो जाता है --[146]

धुनि महि धिआनु धिआन महि जानिआ गुरमुखि अकथ कहानी।।3।।

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि गुरु नानक ने सद्गुरु को प्रेरक माना है । इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए जयदयाल गोयन्द लिखते हैं -- "जब तक अपने शरीर और संसार का ज्ञान रहे, तब तक ध्यान के साथ नाम-जप का अभ्यास अवश्य करता रहे । अगर नाम-जप का सहारा न लिया जाए तो निद्रा, आलस्य और अन्यान्य सांसारिक स्फुरणाएं विघ्न रूप से मन को घेर लेती है ।"[147] गुरु नानक मनुष्य को प्रेरणा देते हैं कि उस अमर (प्रभु) का ध्यान करके स्वयं को उस पर कुरबान कर दो --

तिसहि धिआवहु जि अमरु होआ ।
तिसहि धिआवहु सचि समावहु ओसु विटहु कुरबाणु कीआ ।।33।।[148]

145-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 424

146-- वही, पृ0 498

147-- जयदयाल गोयन्दका, सच्चा सुख, गोरखपुर : गीता प्रैस, सं0 2038, पृ0 17

148-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 310

गुरु शिष्य को ध्यान द्वारा प्रत्येक बात समझा सकता है । गुरु नानक रूपी शिष्य को गुरु ने नाम रूपी लाल और रत्न को ध्यान द्वारा समझा दिया है --

लालु रतनु हरि नामु गुरि सुरति बुझाइऐ ।7।।[149]

गुरु नानक का मन प्रभु के ध्यान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता --

नानक गुर मुखि सबद पछाणै अहिनिसि नामु धिआइऐ ।।1।।[150]

गुरु नानक की तरह मीरां भी प्रति दिन प्रभु का ध्यान करती है --

जोगिआरी सूरत मन में बसी ।
नित प्रति ध्यान करत हूं दिल में, निस दिन होत कुसी ।।276।।[151]

सभी लोग अपने आपको ज्ञानी समझते हैं । गुरु नानक वास्तविक ज्ञानी उसे समझते हैं जिसने नाम-शब्द में एकनिष्ठ ध्यान लगाया है --

सो गिआनी जिनि सबदि लिव लाई ।[152]

हरि से एकनिष्ठ ध्यान तभी लगता है, जब वह चाहता है --

जो तू देहि त हरि रसु गाई मनु तपतै हरि लिव लागा ।।4।।[153]

गुरु नानक कहते हैं कि सच्चे साहिब से मेरा एकनिष्ठ ध्यान लग गया है --

अंतरि जोति निरंतरि बाणी साचे साहिब सिउ लिव लाई ।।
1।। रहाउ ।।[154]

जो मनुष्य प्रभु का एकाग्र चित होकर ध्यान करते हैं तथा प्रतिदिन स्तुति करते हैं, वे पूरे शाह हैं। गुरु नानक के शब्दों में --

सबाही सालाह जिनी धिआइआ इक मनि ।
सेई पूरे साह बखतै ऊपरि लड़ि मुए ।।36।।[155]

149-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 448

150-- वही, पृ0 318

151-- ब्रजरत्न दास, सं0 2013 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 99

152-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 477

153-- वही, पृ0 395

154-- वही, पृ0 398 155-- वही, पृ0 191

लोग अन्य देवी-देवताओं की उपासना में अपना कीमती समय बर्बाद करते हैं। गुरु नानक कहते हैं केवल एक हरि का ध्यान करना श्रेष्ठ है --

`हरि इकु धिआइऐ` ।[156]

अगर हरी के निर्मल नाम का ध्यान किया जाए तो मलिन मन पवित्र हो जाता है --

मनु मैला इव सुधु है हरि नामु धिआए । 9 ।।[157]

सदैव एकनिष्ठ होकर परमात्मा का ध्यान करने से दुर्बुद्धि का नाश हो जाता है और मनुष्य अन्त:करण में ही जीवनमुक्ति अवस्था को प्राप्त कर लेता है --

अनदिनु जागि रहै लिव लाइ ।
जीवन मुकति गति अंतरि पाइ ।। 4 ।।[158]

सदैव ऐसा करने से मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है । गुरु नानक कहते हैं, मैंने ऐसा ही किया है --

मैं मनि तनि प्रभू धिआइआ ।
जीइ इछिअड़ा फलु पाइआ । 29 ।।[159]

अन्यत्र गुरु नानक संतों को आदेश देते हैं कि उस हरी का ध्यान करो जो सारे विकारों से मुक्ति दिलाता है --

हरि तिसै धिआवहु संत जनहु जो लए छड़ाइ ।। 1।।[160]

मनुष्य को मौके की तलाश में रहना चाहिए । सद्गुरु जैसे ही दयालु हो, नाम का ध्यान करना चाहिए । गुरु की प्राप्ति होने पर प्रभु-भक्ति की जाए तो लाभदायक होती है --

सतिगुरु होइ दइआलु त नामु धिआइऐ ।
लाहा भगति सु सारु गुरमुखि पाइऐ ।। 11।।[161]

156-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 385
157-- वही, पृ0 471.
158-- वही, पृ0 504
159-- वही, पृ0 162
160-- वही, पृ0 168
161-- वही, पृ0 190

इस प्रकार सद्गुरु का ध्यान करने से मन भक्ति से द्रवित हो जाता है और आनन्द रस की प्राप्ति होती है --

(1) गुर मुखि नामु धिआईऐ मन मंदरु भीजै ।।2।।रहाउ।।[162]

(2) हरि नामु धिआईऐ सबदि रसु पाईऐ वड भागि जपीऐ हरि जपो ।।4।।[163]

यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रभु का ध्यान करने के लिए अहं खोना आवश्यक है । यह गुरु की मति द्वारा हो सकता है --

गुरमती आपु गवाइ नामु धिआईऐ ।।20।।[164]

गुरु नानक नाम में ध्यान लगाने तथा उसे दृढ़ करने का उपदेश देते हैं । जिन्हें सद्गुरु ने नाम का आसरा दे दिया है, उन्हें अब नाम में एकनिष्ठ ध्यान लगाना चाहिए --

रे जीउ नामु दिड़हु नामे लिव लावहु सतिगुर टेक टिकाई।5।।[165]

यहां गुरु नानक ध्यानी साधकों की बात करते हैं । गुरु के शब्द में अनुरक्त ये साधक वैरागी हो गए हैं । उन्होंने प्रभु से भिक्षा में भी प्रेम ही मांगा है, जिसके कारण उनकी प्रभु से लिव लगी हुई है --

सबदि रते पूरे वैरागी ।
अउहठि हसत महि भीखिआ जाची एक भाइ लिव लागी ।।2।।[166]
रहाउ।।

यदि इस प्रकार मन हरी के ध्यान में अनुरक्त रहे तो समस्त त्रिभुवन में ब्रह्म दिखलाई देता है --

---

162-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 298

163-- वही, पृ0 688

164-- वही, पृ0 189

165-- वही, पृ0 361

166-- वही, पृ0 789

देखि अदिसटु रहहु लिव लागी समु त्रिभवणि ब्रहमु सबाइआ।।3।।[167]

गुरु नानक जानते थे कि दु:खों का नाश प्रभु भक्ति से ही हो सकता है । वे चाहते थे कि संसार में अधिक से अधिक लोगों का भला हो, इसलिए वह बड़ी विनम्रता से अपने उपदेश दूसरों पर लागू करना चाहते थे । ऐसा करने के लिए उन्हें स्वयं को `नीच` कहना पड़ा। यथा --

नानकु नीचु कहै वेनती दरि देखहु लिव लाइ हे ।।[168]

अर्थात् प्रभु से एक निष्ठ ध्यान लगाकर उसके रुदन को देखो जिससे सारे दु:ख नष्ट हो जाते हैं और अपार शान्ति का अनुभव होता है । जिन मनुष्यों ने प्रभु के नाम का ध्यान किया है उन्हें `प्रभु` बुलाकर मिलता है --

जिनी तेरा नामु धिआइआ तिन कउ सदि मिले ।।2।।[169]

ऐसे लोगों को प्रभु के सदन में सच्ची प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती है ---

नानक नामु धिआइऐ सची वडिआई ।।7।।[170]

ऐसे निरन्तर प्रभु का ध्यान करने वालों पर गुरु नानक न्योछावर जाते हैं --

नानक तिन विटहु वारिआ जिन अनदिनु हिरदै हरि नामु
धिआइऐ ।।2।।[171]

अतएव जो मनुष्य अपने जीवन में प्रभु का ध्यान करते हैं, उसकी याद को हमेशा मन में टिकाए रखते हैं तथा नाममार्ग पर चलकर सात्विक जीवन व्यतीत करते हैं, वे यहां से अपना जीवन सफल करके जाते हैं । ऐसे मनुष्य प्रभु की दृष्टि में स्वीकार्य होते हैं । अपने साथ ये अन्य प्राणियों को भी मुक्त कर देते हैं --

---

167-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 661

168-- वही, पृ0 609

169-- वही, पृ0 573

170-- वही, पृ0 572

171-- वही, पृ0 385, 175, 498

जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि ।
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि ।।1।।[172]

7.6 जाप

'जाप' शब्द से तात्पर्य है मन्त्र की विधिपूर्वक आवृत्ति, नाम आदि जपने की क्रिया ।[173] जाप वाणी द्वारा अपने इष्ट का प्रकट या अप्रकट उच्चारण या उल्लेख है । वाणी से मन और मन से आत्मा को सूत्रबद्ध करने का यह महत्वपूर्ण उपक्रम है । परन्तु यह जाप सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ संयोजित रूप में ही सार्थक है । केवल जीभ मुंह में राम-राम करती रही और मन चारों दिशाओं में भ्रमित रहे तो जाप न कहकर आत्मवंचना ही कहा जाएगा। कबीर ने ऐसा ही मत जाप के सम्बन्ध में व्यक्त किया था। जाप का सर्वोत्तम वर्ग तो अजपा-जाप है, जब साधक अनायास हर सांस के साथ अनकहे हरिनाम का जाप करता है, वह चाहे जागृत अवस्था हो या सुप्तावस्था। अजपा-जाप करने वाले साधक का सर्वोत्तम आदर्श महावीर हनुमान को माना जाता है, वह पूर्णतया राममय हो गए थे । गुरु नानक देव भी वाणी में जाप के महत्व का रेखांकन करते हैं । गुरु द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलने के लिए गुरु नानक वाणी में एक विशेष अभ्यास पर बल दिया गया है, जिसे 'जप' की संज्ञा दी गई है । जयराम मिश्र ने इस जप को तीन भागों में विभाजित किया है -- साधारण जप, अजपा जप, लिव जप ।[174] इनका वर्णन आगे किया जा रहा है ।

(1) साधारण जप

यह जिह्वा से होता है और मुख से ध्वनि निकलते निकालते हैं। पहले नाम अभ्यास साधना में इसी जप का सहारा लेना पड़ता है। गुरु नानक ने

172-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 99

173-- विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव, (सं०), पूर्वोक्त, पृ० 589

174-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 75

इस प्रकार का जप करने की अत्यधिक प्रेरणा दी है --

नानक सोहं हंसा जपु जापहु त्रिभवण तिसै समाहि।।17।।[175]

राग सूही में गुरु नानक कहते हैं कि जिह्वा से नाम जपना ही दही मथना है, इस विधि से मक्खन रूपी अमृत प्राप्त होता है --

रसना नामु जपहु तब मथीऐ इन बिधि अंमृतु पावहु ।।2।।[176]

यहाँ गुरु नानक अपने मन को जीभ से हरि का जप करने को कहते हैं --

'हरि रसना जपि मन रे ।'[177]

इस जप की प्राथमिक आवश्यकता को अनुभव करते हुए गुरु नानक ने अपनी मूल रचना का नाम ही 'जपु' रखा है । इस रचना की 32वीं पउड़ी में जीभ द्वारा नाम जपने की महिमा का गुणगान हुआ है ।[178]

अजपा-जप

अजपा-जप में जिह्वा का काम समाप्त हो जाता है और श्वास-प्रश्वास की संचालन गति के आधार पर जप प्रारम्भ हो जाता है । इसमें बाह्य साधन जीभ, माला, अंगुलियाँ इत्यादि का आधार खत्म हो जाता है । इसे 'सहज जप' भी कहते हैं । इस प्रकार के जप बौद्ध साधकों में प्रचलित रहे हैं । नाथपंथ और संतों ने इस जप को मान्यता दी है क्योंकि इस जप द्वारा मन, बुद्धि, चित और अहंकार प्रज्वलित नहीं होते । गुरु नानक देव ने इस जप पर बहुत अधिक बल दिया है --

अजपा जापु जपै मुखि नाम ।।[179]

इस जप को करते समय साधक आदि और युगयुगान्तरों में स्थित परमात्मा में समाहित हो जाता है और इसे कभी भूलता नहीं है --

---

175-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 671
176-- वही, पृ0 435
177-- वही, पृ0 391
178-- वही, पृ0 95
179-- वही, पृ0 481

अजपा जापु न वीसरै आदि जुगादि समाइ ।[180]

राग मलार में गुरु नानक कहते हैं जो बिना जीभ के सहारे ऐसा जप करता है, ऐसा कोई विरला ही जान सकता है कि नाम किस प्रकार का है --

बिनु जिह्वा जो जपै हिआइ ।
कोइ जाणै कैसा नाउ ।।2।।[181]

गुरु नानक की तरह रविदास ने भी अजपा-जप करने की सलाह दी है --

'रविदास' अराधहु देवकू, इक मन हुइ धरि ध्यान ।
अजपा जाप जपत रहहु, सतनाम सतनाम ।।19।।[182]

लिव जप

लिव-जप, जप-साधना की अन्तिम कड़ी है । लिव-जप में वृत्ति द्वारा जप होने लगता है । इस जप में शरीर, जिह्वा और मन एक हो जाते हैं । यह जप अनुभव मात्र है । इसे गुरुकृपा द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है --

गुरमुखि जागि रहे दिन राती ।
साचेकी लिव गुरमति जाती ।। 4 ।।[183]

इस प्रकार का जप करने वाले साधक निर्मल रहते हैं, उन्हें पापों की मैल नहीं लगती। वे हरि भक्ति में लिव लगाए रहते हैं --

कलिमल मैलु नाही ते निरमल ओइ रहहि भगति लिव लाई है।।4।।[184]

यह जप परम दुर्लभ है और करोड़ों में किसी एक को प्राप्त होता है। जिसे होता

180-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 773

181-- वही, पृ0 749

182-- पृथ्वी सिंह आजाद, पूर्वोक्त, पृ0 41

183-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 617

184-- वही, पृ0 620

है, गुरु नानक ने उसे ज्ञानी कहा है --

सो गिआनी जिनी सबदि लिव लाई।[185]

ऐसा जप करने से पापों की मैल धुल जाती है। ऐसा गुरु कृपा से ही हो सकता है --

लागी मैलु मिटै सच नाइ। गुर परसादि रहै लिव लाइ।।1।।[186]

उपरोक्त तीनों प्रकार के जपों का गुरु नानक वाणी में विवेचन हुआ है। नाम-जप तथा स्मरण से प्रभु की निकटता प्राप्त होती है। इसलिए एक स्थान पर गुरु नानक बड़ी विनम्रता के साथ प्रभु से निवेदन करते हैं, हे स्वामी! यदि तू जल पीना चाहता है तो जल ले आऊं, यदि खाना चाहता है तो तेरे निमित्त आटा पीसने जाऊं, यदि तेरी आज्ञा हो तो पंखा करूं, पैर दबाऊं, तात्पर्य यह कि जो कुछ भी तुझे मंजूर हो, वही करूं, मगर तेरा जप करना न भूलूं। वह अवश्य करता रहूं --

पीअहि त पाणी आणी मीरा खाहि त पीसण जाउ।
पखा फेरी पैर मलोवा जपत रहा तेरा नाउ ।।3।।[187]

गुरु नानक जप करने के लिए मन की पवित्रता पर बल देते हैं क्योंकि जब तक मन विषय वासनाओं से भरा है, तब तक जप-तप करना सब व्यर्थ है --

विखै बिकार दुसट किरखा करे इन तजि आतमै होइ धिआई।
जपु तपु संजमु होइ जब राखे कमलु बिगसै मधु आस्रमाई।।2।।[188]

प्रभु का जप करने से निर्भय प्रभु मन में बस जाता है --

हरि जपि लाहा अगला निरभउ हरि मन माह ।।4।।[189]

185-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 477

186-- वही, पृ0 256

187-- वही, पृ0 578

188-- वही, पृ0 125

189-- वही, पृ0 123

अन्यत्र मूढ़प्राणी को गुरु नानक ने जीवन की नश्वरता की ओर संकेत करते हुए जप करने की शिक्षा दी है ---

प्राणी हरि जपि जनमु गइओ ।।1।।रहाउ।।[190]

यहाँ भी गुरु नानक भक्तजनों को चेतावनी देते हैं कि यह यौवन, श्वास और देह सब नश्वर है, इसलिए प्रभु का जप करो --

बुझहु हरिजन सतिगुर बाणी । एहु जोबनु सासु है देह पुराणी ।।
आजु कालि मरि जाईऐ प्राणी हरि जपु जपि रिदै धिआई हे।।5।।[191]

जिस राम-नाम का विस्मरण होने से यमराज के दूत दु:ख देने के लिए प्रतीक्षा करने लगते हैं, ऐसे पवित्र नाम को मनुष्य न जाने क्यों भूल जाता है ? ऐसे लोगों को ज्ञान की बात बताते हुए गुरु नानक कहते हैं कि गुरु द्वारा राम-नाम का जाप करो, यही परम तत्व और महान् विचार है --

राम नामु जपि गुरमुखि जी अहे एहु परम ततु वीचारा हे।।2।।[192]

अपने भावों को प्रकट करते हुए गुरु नानक कहते हैं कि नाम जप के बिना यह जीवन जल जाना चाहिए --

जलि जाउ जीवनु नाम बिना ।
हरि जपि जापु जपउ जपमाली गुरमुखि आवै सादु मना।।1।।रहाउ।।[193]

गुरु नानक ने हरि-जप से ही जीव की मुक्ति मानी है --

हरि जपि जीअरे छुटीऐ गुरमुखि चीनै आपु ।।3।।[194]

190-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 692

191-- वही, पृ० 620

192-- वही, पृ० 631

193-- वही, पृ० 790

194-- वही, पृ० 117

इस प्रकार मानव-जीवन को सकार्थ करने के लिए प्रभु के नाम का जाप करना, उसकी स्तुति करना, गुण गायन करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। प्रभु के नाम का जाप करने वाले व्यक्ति की स्थिति इतनी ऊंची हो जाती है कि उसका वर्णन करना कठिन हो जाता है । वह विकारों की चोटों तथा आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है । अतएव इस अनित्य, क्षणभंगुर, नाशवान् संसार के समस्त मिथ्या भोगों को त्यागकर उस सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, परम दयालु, सच्चे प्रियतम परमात्मा के पावन नाम का निष्काम प्रेम भाव से ध्यान सहित सदैव जप करना हितकर है । ईश्वर-साक्षात्कार का नाम जप ही सर्वोपरि युक्तियुक्त साधन है ।

7.7 नाम-संग्रह

'संग्रह' शब्द से तात्पर्य एकत्र करना, जमा करना, संचय, वह ग्रन्थ जिसमें अनेक विषयों की बातें एकत्र की गई हों, रक्षा, हिफाजत, पाणि-ग्रहण, विवाह, ग्रहण करने के क्रिया।[195] नानक वाणी में 'संग्रह' शब्द का अर्थ हरिनाम संग्रह से है । गुरु नानक देव ने धन-दौलत के संग्रह के अतिरिक्त हरिनाम संग्रह पर अत्यधिक बल दिया है क्योंकि अन्त में यही काम आने वाले वस्तु है। चौधरी, राजा जितना भी धन संचय कर ले, किसी का भी यहां मुकाम नहीं है --

चउधरी राजे नही किसै मुकामु ।
साह मरहि संचहि माइआ दाम ।। 14 ।।[196]

सम्पत्ति संग्रह करने से अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं जो दु:ख का कारण बनते हैं । वास्तविक सुख तो इन्हें छोड़ कर प्रभु-स्मरण में ही है --

---

195-- राम चन्द्र वर्मा (सं0), सं0 2028 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 958
196-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 234

संपउ संची भए विकार । हरख सोग उभे दरबारि ।।
सुखु सहजे जपि रिदै मुरारि ।। 5 ।।[197]

धन संचय के विषय में गुरु नानक की तरह रविदास ने भी मिलती जुलती ब ात कही है --

धन संचय दुख देत है, धन त्यागे सुख होय ।
`रविदास` सीख गुरुदेव की, धन मति जोरे कोय ।।2।।[198]

गुरु नानक गुणों के संग्रह के लिए प्रभु कृपा और गुरु कृपा को आवश्यक मानते हैं। इनकी कृपा से ही शिष्य गुणों का संग्रह करके अवगुणों को जला सकता है --

नदरि करे ता मेलि मिलाए ।
गुण संग्रहि अउगण सबदि जलाए ।।
गुरमुखि नामु पदारथु पाए ।। 6 ।।[199]

गुरु नानक धन-दौलत के संग्रह का विरोध करते हैं क्योंकि अन्त में मृत्यु के मार्ग पर तो चलना ही है, उसे समय यह काम नहीं आएगा --

नानकु आखै राहि पै चलणा मालु धनु कितकु संजि आही।।4।।[200]

मनुष्य संसार से चलते हुए जो परमार्थिक सम्पत्ति लेकर चलता है, उसी का संग्रह करना गुरु नानक ने श्रेष्ठ बताया है --

जे चलदा लै चालिआ किछु संपै नाले ।
ता धनु संचहु देखि कै बूझहु बीचारे ।।6।।[201]

अन्यत्र गुरु नानक कहते हैं कि सच्चे सौदे का संग्रह पूर्ण भाग्य से ही होता है --

---

197-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 221

198-- पृथ्वी सिंह `आजाद`, पूर्वोक्त, पृ0 166

199-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 221

200-- वही, पृ0 126

201-- वही, पृ0 296

साचो बखरु संचीऐ पूरै करमि अपारु ।।3।।[202]

सांसारिक वस्तुएं सोना-चान्दी इत्यादि का संग्रह किया जाए तो जगत् में बड़ी प्रसिद्धि होती है, किन्तु इन वस्तुओं का संग्रह व्यर्थ है । शरीरपात होने पर सारा खेल यहीं समाप्त हो जाएगा। गुरु नानक के कहने का तात्पर्य यह है कि सांसारिक वस्तुओं के संग्रह की अपेक्षा हरिनाम संग्रह का कोष बढ़ाना चाहिए, जो अन्तिम समय में भी सहायक होगा और मृत्योपरान्त भी । उस समय दुष्कर्मियों का बहुत-बुरा हाल होगा क्योंकि उनके पास राम-नाम का खजाना नहीं होगा --

सुइना रुपा सचीऐ मालु जालु जंजालु ।
सभ जग महि दोही फेरीऐ बिनु नावै सिरि कालु ।।
पिंडु पड़ै जीउ खेलसी बदफैली किआ हालु ।।4।।[203]

गुरु नानक की तरह दुष्कर्मियों के हरिनाम संचय न करने के सम्बन्ध में मिलती-जुलती बात कबीर ने भी कही है --

मेरी मेरी करतां जनम गयौ ।
जनम गयौ परि हरि न कह्यो ।।टेक।।[204]

अन्यत्र सांसारिक विषय विकारों के वशीभूत हुए मानव को सचेत करते हुए गुरु नानक इस तथ्य पर बल देते हैं कि इस संसार में तुम जिस माया रूपी धन-सम्पत्ति पर अपना अधिकार स्थापित किए बैठे हो, उस में से तुम्हारे साथ कुछ नहीं जाएगा। बड़े-बड़े राजागण माया का संग्रह करके उसे यहीं छोड़ गए --

---

202-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 147

203-- वही, पृ0 158

204-- राजनाथ शर्मा, माया अग्रवाल, कबीर-वाणी-सार, दिल्ली : अनीता प्रकाशन, 1989, पृ0 23

माइआ संचि राजे अहंकारी । माइआ साथि न चलै पिआरी ।।2।। 205

गुरु नानक ने सोना-चांदी इत्यादि को कच्चा धन कहा है । यह विष के समान है और खाक हो जाने वाला है ।ऐसे धन को एकत्रित करने वाले लोग साहूकार कहलाते हैं लेकिन द्वैतभाव में नष्ट हो जाते हैं । प्रभु का सच्चा धन ही अमूल्य है --

सुइना रुपा संचीऐ धनु काचा बिखु छारु ।
साहु सदाए संचि धनु दुबिधा होइ खुआरु ।।
सचिआरी सचु संचिआ ऊजलो पति साची सचु बोलु ।।48।। 206

सीमित ज्ञान वाले जीव को गुरु नानक प्रबोध देते हुए कहते हैं कि यदि इस जगत् में वास्तविक धन का संचय करना है तो वह हरिधन है । सद्‌गुरु की शरण में रहकर इसे एकत्रित किया जा सकता है । यह ऐसा धन है जिसे कामादिक चोर भी नहीं ग्रस सकते --

हरि धनु संचहु रेजन भाई । सतिगुर सेवि रहहु सरणाई ।।
तसकरु चोरु न लागै ता कउ धुनि उपजै सबदि जगाइआ।।2।। 207

सांसारिक वस्तुओं के संग्रह से दूर हटना इतना आसान नहीं है । इन पर मनुष्य तभी विजय प्राप्त कर सकता है, यदि वह नित्य नाम का संग्रह करे और यह प्रार्थना करे कि वाहिगुरु उसको माया से लड़ने का बल प्रदान करे, सामर्थ्य प्रदान करे । प्रभु अथाह शक्ति वाला है इससे शक्ति प्राप्त करके ही मनुष्य सांसारिक वस्तुओं के आक्रमणों को पछाड़ सकता है ।

205-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 791

206-- वही, पृ० 524

207-- वही, पृ० 656

7.8 भय एवं भयमुक्ति

भय सहज पशु-धर्म है । मानव को यह अपनी पशुता की दाय के रूप में मिला है । पर मानव बनने की शर्त ही निर्भय होना है । श्रेष्ठ मानव वह है जो न भयभीत होता है, न किसी को भय देता है । नानकवाणी में 'भय' शब्द का अर्थ परमात्मा का भय है । संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर के अनुसार 'भय' शब्द का अर्थ है ---'एक दु:खद मनोविकार जो किसी आने वाली आपत्ति या बुराई की आशंका से उत्पन्न होता है । इसे डर या खौफ भी कहते हैं ।[208] आधुनिक हिन्दी शब्दकोश में निर्भय, निडर, निर्भीक तथा भयहीन आदि शब्द दिए गए हैं ।[209] परमात्मा का भय सभी प्राणियों के ऊपर है । गुरु से मिलकर ही परमात्मा का भय मन में बसता है । भय द्वारा अहंभाव का मरना ही सच्चा लेख है --

गुर मिलिऐ भउ मनि वसै भाइ मै मरणा सचु लेखु ।।7।।[210]

जो मनुष्य परमात्मा से डरकर मिलता है, परमात्मा उसे अपने में मिला लेता है--

खोजत खोजत पाइआ डरु करि मिलै मिलाइ ।।8।।[211]

जिस व्यक्ति को परमात्मा का डर है, वह निडर होता है। उसे अन्य डर नहीं लगता--

'निडरे कउ कैसा डरु कवनु ।'[212]

इसके विपरीत जिन लोगों ने परमात्मा का भय नहीं माना उन्हें अन्य डर लगते हैं । ऐसे लोगों का अन्त बहुत बुरा होता है । ये लोग अहंकार के वशीभूत जगत् में बैताल अर्थात् भूत के समान घूमते रहते हैं । ऐसे लोगों के

208-- रामचन्द्र वर्मा (सं0) 1958, पूर्वोक्त, पृ0 762

209-- गोविन्द चातक, 1986, पूर्वोक्त, पृ0 36

210-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 401

211-- वही, पृ0 142

212-- वही, पृ0 219

बारे में गुरु नानक ने कहा है --

निहरिआ डरु लगि गरबि सि गालिआ ।
नावहु भुला जगु फिरै बेतालिआ ।।14।।[213]

जो व्यक्ति गुरु के शब्दों पर ध्यान देकर परमात्मा से भय खाता है, उसे सुरति प्राप्त होती है तथा परमात्मा के घर प्रतिष्ठा मिलती है --

सुरति होवै पति ऊगवै गुरबचनी भउ खाइ ।
नानक सचा पातिसाहु आपे लए मिलाइ ।।4।।[214]

गुरु नानक मानव मात्र को समझाते हुए कहते हैं कि जब सत्य-परमात्मा मिल जाए तब अन्य भय चले जाते हैं। अगर मन में भय ही न हो, तब निर्भय पद कैसे प्राप्त होगा ? कहने का तात्पर्य यह है कि निर्भय पद की प्राप्ति के लिए गुरु अथवा परमात्मा का भय आवश्यक है --

मन रे सचु मिलै भउ जाइ ।
भै बिनु निरभउ किउ थीऐ गुरमुखि सबदि समाइ ।।1।। रहाउ।।[215]

यदि परमात्मा के भय के अतिरिक्त अन्य डर है, तो डरना चाहिए, किसी और डर के डर से डरना मन का शोर है --

डरीऐ जे डरु होवै होरु ।
डरि डरि डरणा मन का सोरु ।।2।।रहाउ।।[216]

परमात्मा का भय बहुत भारी और बड़े तोल वाला है। इस भय से गम्भीरता

213-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 196

214-- वही, पृ० 110

215-- वही, पृ० 110

216-- वही, पृ० 201

और बड़ाई मिलती है। अगर मनुष्य बलवान होकर इस भय का भार सहन कर ले तो कृपालु परमात्मा गुरु का विचार प्रदान करता है --

भउ मुचु भारा वडा तोलु । मनमति हउली बोले बोलु ।।
सिरि धरि चलीऐ सहीऐ भारु । नदरी करमी गुर विचारु।।1।। [217]

भय से और भय पैदा होता है । भय में रहकर उस भय को गुरु के शब्द द्वारा संवारना चाहिए । भय को बिना जो कुछ गढ़ना होता है, वह कच्चा होता है। गुरु नानक उदाहरण देकर समझाते हैं कि जो सांचा अन्धा होता है, उस पर मुद्रित सिक्का भी अन्धा होता है --

भै तनि अगनि भै नालि । भै भउ घड़ीऐ सबदि सवारि ।।
भै बिनु घाड़त कचुनिकच । अंधा सचा अंधी सट ।। 2 ।। [218]

परमात्मा के भय के बिना कोई भी व्यक्ति इस संसार सागर के पार नहीं कर सकता। गुरुमुख परमात्मा के भय में रहते हैं और इस भय को संवार कर अपने पास रखते हैं --

भै बिनु कोइ न लंघसि पारि ।
भै भउ रखिआ भाइ सवारि ।।1।।रहाउ।। [219]

परमात्मा के डर से वास्तविक घर की प्राप्ति होती है । हृदय रूपी घर में ऐसे डर का निवास हो जाता है कि अन्य डर चले जाते हैं --

डरि घरु घरि डरु डरि डरु जाइ ।
सो डरु केहा जितु डरि डरु पाइ ।। 1 ।। [220]

217-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 200

218-- वही, पृ० 200

219-- वही, पृ० 200

220-- वही, पृ० 201

संसार के लोगों को किसी न किसी का भय अवश्य है । वह परमात्मा ही एक निर्भय है --

निरभउ आदि निरंतरि जोति ।4।।[221]

गुरु नानक भय को नष्ट करने के लिए ज्ञान का अंजन नेत्रों में लगाने की सलाह देते हैं। वही अंजन नेत्रों में लगाकर परमात्मा को देखो --

गिआन अंजनु मै भंजना देखु निरंजन भाइ ।।3।।[222]

अगर ईश्वर की कृपादृष्टि हो जाए तो यह पंचभूत निर्मित शरीर सत्य स्वरूप परमात्मा के भय में रत हो जाता है और मन में सत्य की ज्योति का निवास होता है --

इहु मनु साचि संतोखिआ नदरि करे तिसु माहि ।
पंचभूत सचि मै रते जोति सची मन माहि ।।4।।[223]

इस पद में गुरु नानक ने जीवन की नश्वरता की ओर संकेत किया है। सुल्तान और खान, बड़े-बड़े नाम वाले भी राख के ढेर हो गए । गुरु नानक कहते हैं कि प्रभु के भय से मुझे बहुत भय लग रहा है --

मै तेरे डरु अगला खपि खपि छिजै देह ।
नाव जिना सुलतान खान होदे डिठे खेह ।।4।।[224]

किन्तु, गुरु नानक को तो सद्गुरु का सहारा प्राप्त है । उन्हें डरने वाली कोई बात नहीं क्योंकि अन्य सांसारिक डर परमात्मा के डर में लीन हो गए हैं--

किआ डरीऐ डरु डरहि समाना ।
पूरे गुर के सबदि पछाना ।।1।।रहाउ।।[225]

221-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 232

222-- वही, पृ0 141

223-- वही, पृ0 115

224-- वही, पृ0 105

225-- वही, पृ0 208

गुरु ग्रन्थ साहिब में सम्मिलित 'कबीर वाणी' के अनुसार, यदि परमात्मा का भय मनुष्य के हृदय में पैदा हो जाए तो दुनिया वाला भय दूर हो जाता है और उसका लौकिक डर समाप्त हो जाता है, लेकिन यदि मनुष्य, परमात्मा का भय मन में न बसाए, तो दुनिया वाला भय दोबारा आ जाता है। प्रभु का भय मन में बसाकर जो मनुष्य निर्भय हो गया तो उसके मन का जो भी भय है, वह सब नष्ट हो जाता है --

हहा डर उपजै डरु जाइ। ता डर महि डरु रहिआ समाइ।।
जउ डर डरै त फिरि डरु लागै। निडरु हूआ डरु उर होइ
भागै।। 29 ।।[226]

मनुष्य की बात छोड़िए। प्राकृतिक वस्तुएं भी परमात्मा के भय से वंचित नहीं। वायु, नदियां, अग्नि तथा समस्त पृथ्वी परमात्मा के भय के कारण अपने-अपने कार्य में लगे हुए हैं। इन्द्रु, धर्मराज, सूर्य, चन्द्रमा, सिद्ध, बुद्ध, देवतागण, नाथ, महाबली योद्धागण और शूरवीर थे सभी परमात्मा के भय में हैं। यथा--

भै विचि पवणु वहै सद वाउ। भै विचि चालहि लख दरीआउ।।
भै विचि अगनि कढै वेगारि। भै विचि धरती दबी भारि।।
भै विचि राजा धरम दुआरु। भै विचि सूरजु भै विचि चंदु।।
कोह करोड़ी चलत न अंतु। भै विचि सिध बुध सुरनाथ।
भै विचि आडाणे आकास।। भै विचि जोध महाबल सूर।
भै विचि आवहिं जावहि पूर।। सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेखु।
नानक निरभउ निरंकारु सचु एकु।।[227]

अन्तिम पंक्ति से पुन: सिद्ध हो गया कि एक परमात्मा ही निर्भय है। सांसारिक प्रपंचों में पड़े हुए लोगों का ईश्वर से प्रेम नहीं होता। उन्हें

226-- मनमोहन सहगल (अनु0) श्रीगुरु ग्रन्थ साहिब, लखनऊ : भुवन वाणी ट्रस्ट, 1978, पृ0 951-52

227-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 328-29

तो सांसारिक मोह-माया के बन्धन अच्छे लगते हैं। गुरु नानक प्राणिमात्र को समझाते हैं कि ईश्वरीय प्रेम उन्हीं के मन में है जिनके मन में ईश्वर का भय है --

नानक जिन्ह मनि भउ तिन्हा मनि भाउ ।।20।। [228]

अब प्रश्न उठता है कि वह निर्भय परमात्मा रहता कहां है ? उसका कोई घर है या नहीं ? गुरु नानक इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि निर्भय परमात्मा सच्चे महल में सच्चे सिंहासन पर ध्यान लगाकर बैठा है --

सचै तखति रुच महली बैठे निरभउ ताड़ी लाई ।।8।। [229]

जब मनुष्य को ईश्वर की वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है, तब उसके भय का निवारण स्वयं ही हो जाता है --

तुझ ही किआ जमणा मरणा । गुर ते समझ पड़ी किआ डरणा।।5।। [230]

वास्तविक दीवाना तो वही है जो प्रभु के भय में अनुरक्त हो और अन्य किसी को न जाने --

तउ देवाना जाणीऐ जा भै देवाना होइ ।
एकी साहिब बाहरा दूजा अवरु न जाणै कोइ ।।2।। [231]

मनुष्य को कितनी भी कठिन परिस्थिति का सामना क्यों न करना पड़े, उसे घबराना नहीं चाहिए। गुरु नानक मानव को सतर्क करते हुए कहते हैं कि उस समय यदि सच्चे मन से सद्गुरु को याद करोगे, तब किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा। यथा --

फड़ फखड़ ओहाड़ लहरी वहनि लखेसरी ।
सतिगुर सिउ आलाइ बेड़े डुबणि नाहि भउ ।।4।। [232]

228-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 331

229-- वही, पृ० 513

230-- वही, पृ० 611

231-- वही, पृ० 579

232-- वही, पृ० 805

अर्थात् बादलों का अन्धकार हो, बाढ़ों की लाखों तरंगें हों, यानि लोभ-मोह का अज्ञान हो तथा कामादिक की प्रचण्डता हो, ऐसी परिस्थिति में सद्गुरु ही सहायता कर सकता है और भय का निवारण हो सकता है ।

7.9 कर्म की अवधारणा और गुरु नानक वाणी का सन्दर्भ

कर्म जीव मात्र के अस्तित्व का अनिवार्य आधार है, पर मानवीय सन्दर्भ में कर्म का व्यवहार ही नहीं, कर्म सम्बन्धी अवधारणा तथा कर्तव्य-बोध विशेष महत्व प्राप्त करता है । मानव ही एकमात्र ऐसा प्राणी है जो अपने कर्म के वर्तमान तथा मूल के आधार पर अपने भविष्य के निर्माण अथवा विनाश के सम्बन्ध में सजग और सचेत है ।

'कर्म' शब्द का अर्थ है -- वह जो किया जाए, क्रिया, कार्य, काम, करनी ।[233] कर्मवाद का उल्लेख वेदों में पाया जाता है । 'शुभस्पति' (अच्छे कर्मों के रक्षक), 'विचर्षणि' तथा 'विश्वचर्षणि' (शुभाशुभ कर्मों के द्रष्टा), 'विश्वस्य कर्मणो धर्ता' (सभी कर्मों के आधार) आदि पदों का वेद में देवता लोगों के विशेषण रूप में प्रयोग हुआ है ।[234] उपनिषद्-काल में उपासना, यज्ञ आदि के अतिरिक्त ज्ञान, योग तथा तपस्वी जीवन बिताने को महत्व प्रदान किया गया ।[235] गीता का मत है कि कर्म किए बिना हम एक क्षण भी नहीं रह सकते। कर्म करना सबके लिए अनिवार्य है । उसके परिणाम के शुभाशुभ होने पर ही हमें क्रमश: सुख-दु:ख का अनुभव हुआ करता है । यदि

233-- रामचन्द्र वर्मा, सं0 2028 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 178

234-- उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन, लखनऊ : हिन्दी समिति सूचना, सूचना विभाग, द्वितीय संस्करण, 1964, पृ0 39

235-- रामजी लाल 'सहायक', पूर्वोक्त, पृ0 340

हम उसे यज्ञार्थ या विहित कर्तव्य मान ले तथा फल की आशा को ईश्वर के अर्पण कर शुद्ध भाव के साथ अनासक्त होकर कर्म को सम्पन्न करें, तो कर्मफल भोग से छूट जाए ।[236]

जैन एवं बौद्ध दर्शन में संयम तथा सदाचार को कर्म की संज्ञा दी गई है । 'क्रोध, मान, माया तथा लोभ' इन चारों 'कषायों' से जो जीव का अनादि सम्पर्क है, वह भी कर्म के ही कारण है । जैन मत में पुद्गल अनेक प्रकार के होते हैं और उन्हीं में कर्मों से सम्पर्क रखने वाले पुदगल 'कर्म पुद्गल' कहे जाते हैं ।[237] न्याय दर्शन में विरक्त साधकों के तत्वज्ञान को कर्म की संज्ञा दी गई है । योगदर्शन में योगाभ्यास द्वारा चित्त-शुद्धि को कर्म कहा गया है । मीमांसक सन्ध्या उपासना आदि न करने से पाप तथा पूजा-पाठ, यज्ञादि को शुभ कर्म कहते हैं । सांख्य ने विवेक बुद्धि द्वारा किया गया कर्म बन्धन-रहित बताया है। अद्वैत वेदान्ती ज्ञान एवं वैराग्य द्वारा किए गए कर्म को बन्धन-रहित कहते हैं । पुराणों में पूजा की विधियों तथा कर्मकाण्ड का विस्तार सहित प्रतिपादन हुआ है। इस युग में तन्त्रों के उपचार का जोर रहा । मांस-मदिरा का प्रचलन हुआ तथा उपासना की आड़ में अनाचार भी होने लगे । नाथ-परम्परा के अन्तर्गत हठयोग साधना द्वारा चित्त-शुद्धि पर बहुत अधिक बल दिया गया। आडम्बरपूर्ण तथा पाखण्डी साधना की निन्दा की गई । मध्य युग के सन्तों ने कर्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया तथा उसके बारे में अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट किए। कबीर ने भी, यज्ञादि, मूर्तिपूजा, बाह्याडम्बर को

236-- यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धन: ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंग: समाचर ।। 9 ।।
-- सहजानन्द सरस्वती, पूर्वोक्त, पृ0 526

237--उमेश मिश्र, पूर्वोक्त, पृ0 129

कर्म नहीं, वरना भ्रम कहा ।[238]

गुरु नानक देव कर्म के सिद्धान्त में पूर्णत: विश्वास रखते हैं। उनका मत है कि पूर्वजन्मों के कर्म संचित हों, तभी गुरु का ज्ञान मिलता है --

गुरमुखि गिआनु धुरि करमि लिखि आसु ।।7।।[239]

आध्यात्मिक कर्म करने वाला व्यक्ति सच्चा कहलाता है --

अधिआतम करम करे ता साचा ।।2।।[240]

माया के वशीभूत किए गए कर्म विकार उत्पन्न करते हैं । ये कर्म मनुष्य को दु:खी करते रहते हैं । गुरु नानक राग सोरठि में एक पंडित को समझाते हुए कहते हैं कि वास्तविक सुख जिस कर्म से मिलता है, वह है आत्मतत्त्व का विचारना --

सुणि पंडित करमाकारी ।
जितु करमि सुखु उपजै भाई सु आतम ततु बीचारी ।।1 ।।रहाउ।।[241]

गुरमुखानन्द लिखते हैं --- "भगवान तो एक प्रोफेसर की तरह परचे देखते हैं । जिस विद्यार्थी ने, परीक्षार्थी ने मेहनत की है, इम्तिहान में सवाल ठीक हल किए हैं, उसे अवश्य ही पूरे नम्बर मिलेंगे। वहां सिफारिश की कोई ज़रूरत नहीं ।"[242] गुरु नानक का भी यही मत है -- मनुष्य जैसे कर्म करता है, वैसा ही कहलाता है --

तैसो जैसा काढीऐ जैसी कार कमाइ ।
जो दमु चिति न आवई सो दमु बिरथा जाइ ।।3।।[243]

238-- श्यामसुन्दर दास, सं0 2021 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 236

239-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 221

240-- वही, पृ0 224 241-- वही, पृ0 401

142-- गुरुमुखानन्द, रामसंदेश, देहरादून : स्वामी रामतीर्थ मिशन प्रकाशन, दिसम्बर 1987, अंक, पृ0 4

143-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 440

जीव अपने कर्मों के अनुसार दु:ख-सुख सहते हैं। उनके माथे पर प्रभु की इच्छा का लेख है। कर्म और भक्ति को प्रभु ही दृढ़ करता है। इसी विषय में गुरु नानक कहते हैं --

मसतकि लेखु जीआ जगि जोनी सिरि सिरि लेखु सहाम ।।
करम सुकरम कराए आपे आपे भगति दृढाम ।।5।।[244]

सज्जन ठग के नाम के वास्तविक अर्थ की ओर संकेत करते हुए गुरु नानक कहते हैं कि सज्जन लोगों से जब भी उनके अच्छे-बुरे कर्मों का हिसाब मांगा जाए, तुरन्त दे देते हैं, तनिक भी संकोच नहीं करते --

सजण सेई नालि मै चलदिआ नालि चलन्हि ।
जिथै लेखा मंगीऐ तिथै खड़े दिसन ।।1।।रहाउ।।245

मनुष्य किसी भी जाति या धर्म से सम्बन्धित हो उसे अपने कर्मों का हिसाब देना ही पड़ेगा।[246] गुरु नानक ईश्वर को कर्मों से निर्लिप्त मानते हैं। जीवों के ही भाग्य में कर्मानुसार लेख लिखे होते हैं जिन्हें भोगना पड़ता है --

सरब जीआ सिरि लेखु धुराहू बिनु लेखै नही कोइ जीउ ।
आपि अलेखु कुदरति करि देखै हुकमि चलाए सोई जीउ ।।2।।[247]

इच्छाओं का निपटारा कर्मों पर ही निर्भर है ---

आपण लीआ जे मिलै ता सभु को भागठु होइ ।
करमा उपरि निबड़ै जे लोचै सभु कोई ।।3।।[248]

244-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 399

245-- वही, पृ० 436

246-- वही, पृ० 105, 309, 562

247-- वही, पृ० 396

248-- वही, पृ० 215

बिना शुभ कर्म किए नाम रूपी फल नहीं लगता। गुरु नानक कहते हैं ----

अखर बिरख बाग भुइ चोखी सिंचित भाउ करेही ।
सभना फलु लागै नामु एको बिनु करमा कैसे लेही ।।3।। [249]

जब शुभ कर्मों की बेल का विस्तार होता है, तब उसमें राम-नाम रूपी फल लगता है --

करम करतूती बेलि बिसथारी रामनामु फलु हूआ ।
तिसु रूपु न रेख अनाहदु वाजै सबदु निरंजनि कीआ ।।1।। [250]

शुभ और अशुभ कर्मों में अन्तर बताते हुए गुरु नानक कहते हैं --

जह करणी तह पूरी मति । करणी बाझहु घटे घटि ।।3।। [251]

भटकी हुई मानव-जाति को उपदेश देने के लिए गुरुनानक अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। सिरी राग के अन्तर्गत अपने विविध कर्मों का उल्लेख करते हुए गुरु नानक कहते हैं --

लबु कुता कूडु चूहड़ा ठगि खाधा मुरदारु ।।
पर निंदा पर मलु मुख सुधी अगनि क्रोधु चंडालु ।।
रस कस आपु सलाहणा ए करम मेरे करतार ।।1।। [552]

अच्छे और बुरे कर्मों का परिणाम बताते हुए गुरु नानक कहते हैं कि उत्तम कर्म करने वालों को परमात्मा के दरवाज़े पर प्रतिष्ठा मिलती है और बुरे कर्म करने वालों को रोना पड़ता है --

उतम से दरि उतम कही अहि नीच करम बहि रोइ ।।1।।रहाउ।। [253]

249-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 261

250-- वही, पृ० 252

251-- वही, पृ० 128

252-- वही, पृ० 103

253-- वही, पृ० 103

जितने भी कर्म किए जाएं पर सद्गुरु के बिना सभी कार्य व्यर्थ हैं --

सतिगुरु बाझु न पाइओ सभय की करनि कमाइ जीउ ।।23।। 254

गुरु नानक दुहागिनों की अपेक्षा सुहागिनों के कर्मों को अच्छा मानते हैं क्योंकि उनका प्रियतम (पति) से मिलाप होता है --

सोहागणी किआ करमु कमाइआ । पूरबि लिखिआ फलु पाइआ ।।
255
नदरि करे कै आपणी आपे लए मिलाइ जीउ ।।8।।

अच्छे कर्म करने वालों का परमात्मा के घर में आदर होता है --
256
जिनकी लेखै पति पवै चंगे सेई केइ ।।22।।

अन्यत्र गुरु नानक कहते हैं कि चाहे मनुष्य कितना भी पढ़ा-लिखा क्यों न हो, तीर्थों में भ्रमण करके अपने शरीर को कितना भी कष्ट दे, उपवास रखे, वस्त्र धारण न करे, भले ही नंगे पांव चले, उसे अपने किए कर्मों को सहन करना ही पड़ेगा --

लिखि लिखि पड़िआ तेता कड़िआ ।

-- -- -- --

पंग उपेताणा अपणा कीआ कमाणा ।। 257

गुरु नानक सन्तों की जयजयकार करते हुए गुरु की शिक्षा के अनुसार कर्मों के सम्पादन करने का सन्देश देते हैं --

संत सभा जैकारु करि गुरमुखि करम कमाउ । 10 ।। 258

254-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 161

255-- वही, पृ० 161

256-- वही, पृ० 340

257-- वही, पृ० 336-37

258-- वही, पृ० 807

गुरु नानक के 'कर्म का संबोध' की विशेष और मौलिक देन पाँच खण्डों की कल्पना है । ये पाँच खण्ड हैं -- धर्मखण्ड, ज्ञानखण्ड, सरमखण्ड, कर्मखण्ड और सचखण्ड । पहले तीन खण्ड धर्म, ज्ञान और सरम (साधना) की भूमिकाएं हैं और अन्तिम खण्ड में प्रभु का निवास स्थान माना गया है, जहां मनुष्य पहुंच कर मनुष्य प्रभु का रूप हो जाता है। कर्मखण्ड पहले तीन खण्डों और अन्तिम खण्ड के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। यह कृपा या बख्शीश का खण्ड है। प्रभु की कृपा की प्राप्ति के लिए स्वयं को उसके अनुकूल बनाना जरूरी है । इसलिए पहले तीन खण्डों में गुजरना आवश्यक है । ये क्रमवार धर्म, ज्ञान और साधना के खण्ड हैं। गुरु नानक ने अपनी कृति 'जपु' में कर्मखण्ड' का वर्णन करते हुए कर्म की महिमा का गुणगान किया है --

करम खण्ड की बाणी जोरु । तिथै होरु न कोई होरु ।।
तिथै जोध महाबल सूर । तिन महि रामु रहिआ भरपूर ।।
तिथै सीतो सीता महिमा माहि। ताके रूप न कथने जाहि ।।
ना ओहि मरहि न ठागे जाहि । जिनकै रामु वसै मन माहि ।। 259
तिथै भगत वसहि के लोअ । करहि अनंदु सचा मनि सोइ ।।

'कर्म खण्ड' में परमात्मा की शक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं है। उस खण्ड में महाबली शूरवीर निवास करते हैं । उन सब में राम ही समाया हुआ है। उसकी महिमा में सीता ही सीता है । उसके स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता ।

इस विश्लेषण से सिद्ध है कि गुरु नानक का कर्म सिद्धान्त वैदिक कर्मकाण्ड से नहीं मिलता और न ही बौद्ध मत के कर्म सिद्धान्त का अनुसरण करता है, क्योंकि बौद्धमत में कर्म सिद्धान्त पुनर्जन्म का हेतु माना गया है,

---

259-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 97

ये कर्मों का फल प्रदान करने वाली शक्ति परमात्मा में विश्वास नहीं रखते। इनके अनुसार कर्म विधान में ईश्वर अथवा परमात्मा का कोई हस्तक्षेप नहीं है । भागवत धर्म की वैधी भक्ति को भी गुरु नानक अस्वीकार करते हैं । उपनिषद्, गीता और अद्वैत वेदान्त के कर्म-सम्बन्धी सिद्धान्तों के साथ गुरु नानक का कर्म-सिद्धान्त किसी न किसी रूप में अवश्य मिलता है ।

7.10 अस्तेय की अवधारणा और गुरु नानक वाणी

`अस्तेय` शब्द का अर्थ है चोरी का त्याग अथवा चोरी न करना। यह मनु के द्वारा गिनाए हुए धर्म के दस लक्षणों में से एक है ।[260] उपनिषद् में `मा गृध:कस्य स्विद् धनम्`[261] अर्थात् `धन किसी का भी नहीं, अत: इसका लालच करना या उसमें आसक्त होना व्यर्थ है` -- कहा गया है। कबीर का मत है कि सभी पदार्थ विश्व-नियंता के द्वारा सभी प्राणियों की आवश्यकता के अनुसार उनके अलग-अलग भाग के अनुपात से निर्धारित किए गए हैं । सबको अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार उनका उपभोग करना चाहिए। जिसके लिए जितना निर्धारित है, उसे उसी के अनुपात से मिलता है ।[262]

गरीबों का धन ऐंठना, चोरी करना, तथा रिश्वत खाना, ये सभी बातें गुरु नानक जैसे सन्त को कहां पसन्द हो सकती थीं ? उन्होंने इन सभी बातों का कड़ा विरोध किया। राग धनासरी में गुरु नानक चोरी की व्याख्या करते हुए कहते हैं --

चोर सलाहे चितु न भीजै । जे बदी करे ता तसू न छीजै ।।
चोर की हामा भरे न कोइ । चोरु कीआ चंगा किउ होइ ।।1।।[263]

260-- रामचन्द्र वर्मा, सं0 2028 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 75

261-- रामजी लाल `सहायक,` पूर्वोक्त, पृ0 334

262-- श्याम सुन्दरदास, सं0 2021 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 58

263--जयराम मिश्र, सं0 20 पृ0 413

अर्थात् चोर किसी की श्लाघा भी करे, तो उससे उसका चित्त प्रसन्न नहीं होता। चोर की हामी कोई भी नहीं करता। उसके द्वारा किए गए काम की सभी निन्दा करते हैं।

पराया हक छीनना अस्तेय के अन्तर्गत ही गिना जाता है। गुरु नानक मनुष्य को प्रबोध देते हुए कहते हैं कि पराया हक हिन्दू के लिए गाय और मुसलमान के लिए सुअर के बराबर है। पराया हक खाने से स्वर्ग नहीं मिलता--

हकु पराइआ नानका उसु सूअर उस गाइ ।
गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदार न खाइ ।
गली भिसती न पाईऐ छुटै सचु कमाइ ।
मारण पाहि हराम महि होइ हलालु न जाइ ।।
नानक गली कूड़ीई कूड़ो पलै पाइ ।।12।।[264]

अर्थात् गुरु अथवा पैगम्बर भी तभी सिफारिश करता है, यदि मनुष्य पराया हक न खाए। इसकी प्राप्ति के लिए सत्य को वास्तविक जीवन में लाना पड़ता है। झूठी बातें करने से तो झूठ ही पल्ले पड़ता है। कुछ लोग झूठ बोलकर दूसरों का हक खाते हैं और लोगों को ऐसा न करने का उपदेश देते हैं, ऐसे उपदेशकर्ता की जब अन्त में कलई खुलती है तो वह स्वयं ठगा ही जाता है, अपने साथ वालों को भी बरबाद कर देता है --

कूड़ बोलि मुरदारु खाइ । अवरी नो समझावणि जाइ ।।
मुठा आपि मुहाए साथै । नानक ऐसा आगू जापै ।।7।।[265]

कलियुग में धर्म सम्बन्धी विचार समाप्त हो चुके हैं। लोग बेईमानी करते हैं तथा रिश्वतखोर हैं। ऐसे लोग झूठ बोलकर कुत्तों की तरह भौंकते रहते हैं।

264-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 179

265-- वही, पृ० 177

इनकी प्रतिष्ठा जीवित रहते हुए नहीं है तो मरने पर कहाँ होगी --

कलि होई कुते मुही खाजु होआ मुरदारु ।
कूडु बोलि बोलि भउकणा चूका धरमु बीचारु ।
जिन जीवदिआ पति नही मुइआ मंदी सोइ ।
लिखिआ होवै नानक करता करे सुहोइ ।।11।। [266]

कुछ लोग पराया हक छीनकर पितरों के अर्पित करते हैं । उन्हें यह नहीं मालूम कि पराया हक छीनकर उससे ऐंठा गया धन यदि पितरों के अर्पित कर दिया जाए तो वह व्यर्थ है, क्योंकि परलोक में ये वस्तुएं पहचान ली जाएंगी और पितर लोक चोर प्रमाणित हो जाएंगे। परमात्मा वहाँ न्याय करेगा और श्राद्ध करने वाले ब्राह्मण का हाथ काट लेगा --

जे मोहाका घरु मुहै घरु मुहि पितरी देइ ।
अगै वसतु सिञाणीऐ पितरी चोर करेइ ।।
वढी अहि हथ दलाल के मुसफी एह करेइ ।
नानक अगै सो मिलै जि खटे घाले देइ ।। 35 ।। [267]

गरीब लोगों का शोषण करना किसी चोरी से क्या कम है ? गुरु नानक के समय में राजा तथा चौधरी बिना किसी भय के गरीबों का शोषण करते थे । गरीबों का खून पीकर धन ऐंठना इनका रोज़ का काम था। गुरु नानक ने इनके विषय में लिखा है --

राजे सीह मुकदम कुते ।
जाइ जगाइन बैठे सुते ।।
चाकर नहदा पाइन्हि घाउ ।
रतु पितु कुतिहो चटि जाहु ।।

266-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 736
267-- वही, पृ० 350

जिथे जीआं होसी सार ।
नकीं वढीं लाइतबार ।। 13 ।। 268

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि बेईमानी करके दूसरों का हक छीनना, गरीबों का खून पीना, चोरी करना, रिश्वत खाना, ये सभी बातें अस्तेय भावना के अन्तर्गत आती हैं। गुरु नानक ने इन सब बातों का विरोध किया और सीमित ज्ञान वाली जनता को अपनी वाणी में लिखे शब्दों से अवगत कराया ।

7.11 जगत्

जगत के स्वरूप के सम्बन्ध में गुरु नानक वाणी में दो प्रकार की विचारधाराएं हैं -- जगत असत्य है, जगत सत्य है । इन दोनों प्रकार की विचारधाराओं में पहले प्रकार की उक्तियां अधिक हैं । जगत की सत्यता बारे केवल दो-चार स्थानों पर ही उल्लेख हुआ है । आधुनिक विद्वानों ने इन दो-चार उक्तियों के आधार पर जगत् के स्वरूप को सत्य मान लिया है और इस पर विचार-विमर्श करने का प्रयत्न नहीं किया । यही कारण है कि कुछ भ्रान्तियां पैदा हो गई है, इसलिए आवश्यकता है इस सम्बन्धी विचार विमर्श करने की ।

जगत् की असत्यता बारे गुरु नानक वाणी में दो प्रकार की विधियों को अपनाया गया है। ये हैं साधारण विधि और उपमान दृष्टान्त विधि । साधारण विधि से भाव जगत के वर्णन बारे वो उक्तियां हैं, जिनमें गुरु नानक ने सीधे-सादे ढंग से अपने विचार प्रकट किए हैं । इस शैली में भी

268-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 767

दो धारणाएं प्रचलित हैं -- नश्वर जगत, मिथ्या जगत् ।

नश्वर जगत

गुरु नानक की धारणा है कि दुनिया अथवा संसार नाशवान है -- 'दुनीआ मुकामे फानी'[269] मलार की वार में इसी बात को दोहराते हुए उन्होंने कहा कि दुनिया की चमक-दमक बेशक बहुत अधिक है, परन्तु यह बिल्कुल नाशवान है --- चिलमिल बिसीआर दुनीआ फानी ।[270] यह केवल चार दिनों का खेल है --

नानक दुनीआ चारि दिहाड़े सुखि कीते दुखु होइ ।[271]

सिरी राग में गुरु नानक ने मनुष्य को उसके 'स्थायी निवास' से परिचित करवाया है । इस संसार को नित्य चलने का धोखा बना रहता है, इसे वास्तविक मुकाम नहीं कहा जा सकता-- 'दुनिया कैसि मुकामे ।'[272] आकाश, धरती, दिन, दिनकर, रात्रि चन्द्रमा, लाखों तारागण लोप हो जाएंगे, ~~एक~~ सदा रहने वाला केवल एक ईश्वर है --

आसमान धरती चलसी मुकामु ओही एकु ।।7।।

दिन रवि चलै निसि ससि चलै तारिका लख पलोइ ।
मुकामु ओही एकु है नानका सचु बुगोइ ।।8।।27।।[273]

वास्तव में गुरु नानक ने अच्छी तरह सोच समझ लिया है कि जगत् धुएं का महल है -- डंडौलिमु ढूडिमु डिठु मैं नानक जगु धूए का धवल हरु।।3।।[274] इसके अतिरिक्त सारा जगत् चला जाने वाला अर्थात् नश्वर है --

---

269-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 427

270-- वही, पृ० 773

271-- वही, पृ० 762

272-- वही, पृ० 159

273-- वही, पृ० 160

274-- वही, पृ० 174

सभु जगु चलणा हारु ।।[275]

सांसारिक राज, धन, माल, यौवन आदि सब छाया के समान हैं --

राजु मालु जोबनु सभु छांव ।[276]

ये जुआड़ी के धन की तरह क्षणभंगुर हैं --

राजं रंगं रूपं मालं जोबनु ते जुआरी ।[277]

वास्तविकता यह है कि राज्य, माल, सौन्दर्य, जाति और यौवन-- ये पांच ठग हैं । इन पांच ठगों ने जगत् को ठगा है, किसी की भी लज्जा नहीं रखी --

राजु मालु रूपु जाति जोबनु पंजे ठग ।
एनी ठगीं जगु ठगिआ किनै न रखी लज ।। 15 ।।[278]

जो भी प्राणी इस संसार में आया है, वह निश्चय ही अपनी बारी के अनुसार चला जाएगा--

`जो आइआ सो चलसी`[279]

माझ की वार में गुरु नानक ने इस तथ्य का उद्घाटन बड़े विस्तार सहित किया है कि पीर, शेख, राजा, बादशाह सब नष्ट हो जाते हैं । देवतागण, दानव, मनुष्य, सिद्ध, साधक कोई भी इस धरती पर नहीं रहता। न न्याय करने वाले व्यक्ति रहने वाले हैं, न पृथ्वी के नीचे सात पाताल। सूर्य, चन्द्रमा, तारा-मण्डल, सप्तदीप, जल, अन्न, पवन कुछ भी स्थिर रहने वाला नहीं है। इस संसार में सदैव कायम रहने वाला केवल एक परमात्मा है --

---

275-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 338

276-- वही, पृ0 751

277-- वही, पृ0 605

278-- वही, पृ0 768

279-- वही, पृ0 354

हम जेर जिमी दुनीआ पीरा मसाइका राइआ ।

-- -- -- -- --

अनं पउणा थिरु न कुई । एक तुई एक तुई ।।27।।[280]

इस संसार में किसी भी वस्तु ने स्थायी रूप से यहां नहीं रहना है। सुल्तान, खान, मलूक, अमीर लोग आदि सब नष्ट हो जाएंगे--

सुलतान खान मलूक उमरे गए करि करि कूचु ।[281]

मिथ्या जगत

गुरु नानक ने स्थान-स्थान पर जगत् को मिथ्या अथवा झूठा कहा है । राग आसा में उन्होंने कहा है कि राजा, प्रजा, संसार, मण्डप, मड़ियां, मड़ियों में बैठने वाले, सोना, चांदी, इन्हें पहनने वाले, काया, कपड़े, रूप, मियां, बीबी आदि सब झूठ हैं, मिथ्या है और खप-खप कर खाक हो रहे हैं । मिथ्या में फंसे जीव का मिथ्या से ही प्यार हो गया है और उसने परमात्मा को भुला दिया है । वास्तव में सारा संसार ही चलायमान है फिर, दोस्ती भी किससे की जाए । यद्यपि समस्त मायिक पदार्थ मिथ्या और भ्रम रूप है, तब भी यह छल और भ्रम शहद की भांति मीठा लगता है । एक परमात्मा के बिना शेष सब मिथ्या है --

कूड़ु राजा कूड़ु परजा कूड़ु सभु संसारु ।
कूड़ु मंडप कूड़ु माड़ी कूड़ु बैसणहारु ।।
कूड़ु सुइना कूड़ु रुपा कूड़ु पैन्हणहारु ।
कूड़ु काइआ कूड़ु कपड़ु कूड़ु रुपु अपारु ।।

280-- जयराम मिश्र, सं० 2013, पृ० 187

281-- वही, पृ० 160

कूड़ु मीआ कूड़ु बीबी खपि होए खारु ।
कूड़ि कूड़ै नेहु लगा विसरिआ करतारु ।।
किसु नालि कीचै दोसती सभु जगु चलणहारु ।
कूड़ु मिठा कूड़ु माखिउ कूड़ु डोबे पूरु ।।
नानकु वखाणै बेनती तुधु बाझु कूड़ो कूड़ु ।। 28 ।। [282]

इस बात का पुष्टिकरण माफ राग में भी हुआ है कि सत्यस्वरूप परमात्मा के बिना सभी सांसारिक काम-धंधे, खाना-पीना, पहनना, भोग-विलास इत्यादि झूठ ही झूठ हैं अर्थात् मिथ्या है --

किआ खाधै किआ पैधै होइ ।
जा मनि नाही सचा सोइ ।। [283]

इस जगत् के हित की चतुराई भी झूठी है जिसे नष्ट होने में देर नहीं लगती --

झूठी जग हित की चतुराई । बिलम न लागै आवै जाई ।। [284]

उपमान दृष्टान्त विधि

गुरु नानक देव ने जगत् का रूपकात्मक शैली में चित्रण करने के लिए इसे बाजीगर की बाजी, चौपट का खेल आदि नश्वरता सूचक उपमान प्रयोग किए हैं। आसा राग में गुरु नानक ने संसार को मदारी का खेल कहा है -- 'नटूए सांगु बणाइआ बाजी संसारा ।' [285] झूठ और अहंभाव में पड़कर यह अहंकार की चौपड़ खेलता है -- हउमै चउपड़ि खेलणा झूठे अहंकारा । [286]

282-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 338

283-- वही, पृ० 183

284-- वही, पृ० 659

285-- वही, पृ० 307

286-- वही, पृ० 307

'पट्टी' रचना में संसार के चार युगों की प्रक्रिया को चौपड़ का खेल माना गया है। सारे जीव-जन्तु इस खेल के मोहरे हैं जिन्हें परमात्मा आप अपनी इच्छानुसार चलाता है --

> बखै बाजी खेलण लागा चउपड़ि कीते चारि जुगा ।
> जीअजंत सभ सारी कीते पासा ढालणि आपि लगा ।।26।। [287]

गुरु नानक ने संसार के स्वरूप का चित्रण करने के लिए सूत के धागे का उपमान अधिक प्रयोग किया है जिसे दसों दिशाओं से माया ने बांध रखा है । यह जगत सूत के धागे की तरह कच्चा है । इसके अज्ञान की गांठें गुरु के बिना नहीं खुल सकती; चाहे कितने ही कर्म कर लिए जाएं --

> इहु जगु तागो सूत को भाई दहदिसि बाधो माइ ।
> बिनु गुर गाठि न छूटई भाई थाके करम कमाइ ।।6।। [288]

इसके साथ-साथ गुरु नानक ने इस जगत् को कच्चा कहा है --

> गुरमुखि देखै साचु समाले बिनु साचे जगु काचा ।2।। [289]

यह जगत् कागज़ का किला है, इसका रंग और चिन्ह सांसारिक चतुराई है । पानी की नन्हीं सी बूंद अथवा पवन के थोड़ा-सा चलने से उस कागज़ के किले की सारी शोभा नष्ट हो जाती है, क्षण भर में प्राणी जन्म कर फिर मर जाता है --

> कागद कोटु इहु जगु है बपुरो रंगनि चिहन चतुराई ।
> नान्ही सी बूंद पवनु पति खोवै जनमि मरै खिनु ताई ।।4।। [290]

287-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 310

288-- वही, पृ० 401

289-- वही, पृ० 577

290-- वही, पृ० 754

सारा संसार विकार मात्र है -- 'इहु संसारु सगल विकारु ।'[291] साथ ही यह जगत् विषवत है -- 'इहु संसारु बिखुवत' ।[292]

गुरु नानक ने इस जगत को काजल की कोठड़ी कहा है । यह तन, मन और सारा जीवन राख के समान है -- समुन्दु काजल कोठड़ी तनु मनु देह सुआहि ।।7।।[293] सत्य तो यह है कि दुनिया भस्म के रंग वाली है । दुनिया की सारी वस्तुएं भस्म और खाक हो जाने वाली हैं । सांसारिक कमाई भी भस्म है । मनुष्य की देह भी भस्म से भरी है, यदि जीव और प्राण शरीर से निकाल दिए जाएं तो शरीर में भस्म ही भस्म रह जाती है। आगे परमात्मा के यहां कर्मों का हिसाब मांगने से जीव अपने पाप कर्मों के कारण दसगुनी भस्म और पाता है --

> नानक दुनीआ भसु रंगु भसू हू भसु खेह ।
> भसो भसु कमावणी भी भसु भरीऐ देह ।।
> जा जीउ विचहु कढीऐ भसू भरि आ जाइ ।
> अगै लेखै मंगिऐ होर दसूणी पाइ ।।20।।[294]

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि गुरु नानक की जगत् सम्बन्धी सारी प्रतीक-योजना संसार की नश्वरता की सूचक है । उनके अनुसार जिस प्रकार चारागाह में ग्वाला थोड़े समय के लिए होता है और वह मालिक नहीं होता, इसी प्रकार यह संसार है ।यहां घर बार बनाना व्यर्थ और झूठी कमाई की तरह है --

---

291-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 771
292-- वही, पृ० 257
293-- वही, पृ० 158
294-- वही, पृ० 730

जैसे गोइलि गोइली तैसे संसारा ।
कुडु कमावहि आदमी बांधहि घरबारा ।। 1 ।।[295]

यह जगत् कौए की तरह है, जिस के चित में नाम-निवास नहीं करता और नाम को भूलकर विषय रूपी अखाद्य पदार्थों पर गिरता रहता है --

जगु कऊआ नामु नही चीति ।
नामु विसारि गिरै देखु भीति ।।2।।[296]

सत्य जगत

गुरु नानक ने अपनी वाणी में कई स्थानों पर जगत् को सत्य भी माना है और कहा है कि परमात्मा के बनाए सब खंड और ब्रह्माण्ड सच्चे हैं, लोक, आकार, काम, समस्त विचार, हकूमत, दरबार, हुक्म, फरमान, कृपा, कृपा प्राप्ति के प्रमाण सब सच्चे हैं। सच्चे परमात्मा की कुदरत भी सच्ची है।[297] सारे संसार में आत्म-स्वरूप परमात्मा व्याप्त है। अत: यह सारी सृष्टि उसका खेल है --

आतम रामु संसारा । साचा खेलु तुम्हारा ।।[298]

इन उक्तियों के आधार पर आधुनिक काल के विद्वानों ने जगत को सचमुच ही सच मान लिया है। जयराम मिश्र ने उपरोक्त श्लोक पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि परमात्मा के बनाए हुए खण्ड, लोक, आकार, जीव-जन्तु आदि का क्रम भ्रम रूप नहीं है, बल्कि सत्य परमात्मा की सत्य रचना है। मोटे रूप से सृष्टि का यह क्रम अनादि और शाश्वत नियम है। हां, इसमें जो

295-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 295

296-- वही, पृ० 709

297-- वही, पृ० 325-26

298-- वही, पृ० 455

पृथक्-पृथक् पदार्थ, जीव-जन्तु और शरीरादिक दिखाई पड़ते हैं, वे नश्वर हैं।[299] वास्तव में गुरु नानक वाणी में कुछ-एक उक्तियों के आधार पर यह निर्णय ले लेना कि जगत् सत्य है, ठीक नहीं। किसी भी सिद्धान्त के विवेचन के लिए उस कृति के समूचे रूप को ग्रहण किया जाता है। अगर सचमुच ही जगत् सत्य होता तो गुरु नानक वाणी में गुरु नानक द्वारा इतने विस्तार से उपमान-दृष्टान्त सहित इसका वर्णन न किया जाता। गुरु नानक ने जगत् को माया का साकार रूप माना है । नाम-रूप जगत् अथवा सृष्टि परिवतन-शील है, इसलिए उसे सच नहीं कहा जा सकता। फिर प्रश्न उठता है कि गुरु नानक देव ने जगत् को सत्य क्यों माना ? यदि जगत् के उपादान कारण को सत्य माना जाए, तब उसके कार्य जगत् को भी सत्य मानना पड़ता है --

नानक सचे की सची कार ।[300]

संसार का उपादान कारण असत्य नहीं हो सकता, फिर उसकी उत्पन्न की हुई प्रत्येक वस्तु सत्य है --

जा तूं सचा ता सभु को सचा कूड़ा कोइ न कोई ।।[301]

जयराम मिश्र ने सृष्टि की सत्यता पर टिप्पणी करते लिखा है कि परमात्मा ने जो रचा है, वह भी सत्य है । सामान्य दृष्टि से यही देखा भी जाता है कि कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है । कारण के मूल में जो द्रव्य विराजमान रहता है, वही कार्य में भी परिलक्षित होता है । दूध से दही बनता है, पानी से नहीं, तिल से तेल निकलता है, बालू से नहीं । अतएव सत्य परमात्मा से सत्य सृष्टि की उत्पत्ति होती है ।[302] महत्वपूर्ण बात यह है कि कार्य जगत् वैसा सत्य नहीं, जैसा उपादान कारण सत्य है। वास्तव

299-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 326

300-- वही, पृ० 95

301-- वही, पृ० 190

302-- जयराम मिश्र, 1960, पूर्वोक्त, पृ० 116

में परमात्मा पारमार्थिक सत्य है और जगत् व्यवहारिक सत्य । गुरु नानक का मार्ग निवृत्ति का मार्ग नहीं था, बल्कि वह कर्म के सिद्धान्त में विश्वास रखते थे । बौद्ध एवं शंकर की तरह वह गृहस्थ जीवन को त्यागने में विश्वास नहीं रखते थे । वैसे तो कबीर भी गृहस्थ थे परन्तु गृहस्थ जीवन में उन्हें अधिक विश्वास नहीं था। गुरु नानक ने गृहस्थ जीवन पर बल दिया है --

अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जुग जुगति तउ पाइऐ ।।4।।[303]

साथ ही मोह माया से निर्लिप्त रहने का आदेश भी दिया है । वह जल में कमल की तरह या नदी में मुर्गाबी की तरह निर्लिप्त रहने का उपदेश देते हैं--

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नैसाणे ।[304]

उनका जगत् को व्यावहारिक सत्य मानने का कारण शुद्ध और सात्विक जीवन व्यतीत करना था। सात्विक जीवन से उनका तात्पर्य यह था कि मन रूपी घर को आत्म-स्वरूपी घर में ले जाया जाए। पारमार्थिक दृष्टि से जगत् मिथ्या और भ्रम रूप है। ऐसी भावना मन में आने से जीव का आध्यात्मिकता की ओर झुकाव होता है। गुरु नानक देव कोई दार्शनिक नहीं थे, उनका उद्देश्य मानवता को सीधे रास्ते पर लाना था। इसलिए उन का जगत् व्यावहारिक दृष्टि से सत्य है ।

वास्तव में नामरूपकात्मक जगत् का आधार ब्रह्म है। ब्रह्म सर्वव्यापक है । सत्य स्वरूप परमात्मा के बिना जगत् का कोई अस्तित्व नहीं है । इसलिए पारमार्थिक दृष्टि से जगत् मिथ्या है । हाँ, व्यावहारिक दृष्टि से जगत की वास्तविक सत्ता अवश्य है ।

303-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 441

304-- वही, पृ0 539

7.12 मोक्ष एवं गुरु नानक वाणी

हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश के अनुसार 'मोक्ष' शब्द का अर्थ बन्धन से छूट जाना, छुटकारा, जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाना, मुक्ति, मृत्यु एवं मौत है।[305] आधुनिक हिन्दी शब्दकोश में 'मोक्ष' का अर्थ बन्धन से मुक्त होना, आवागमन से होने वाली मुक्ति, कैवल्य, निर्माण, उत्सर्ग, अपवर्ग दिया गया है।[306] श्वेताश्वतरोपनिषद् में परमात्मा (रुद्र-शिव) को जानने पर विशेष बल दिया गया है और यह कहा गया है कि उसके जानने से ही संसार से मुक्ति मिल सकती है।[307] गीता में पूर्ण आत्मज्ञान को मोक्ष कहा गया है। गीता का कथन है ---'जिसने इन्द्रिय, मन और बुद्धि का संयम कर लिया है, तथा जिस के भय, इच्छा और क्रोध छूट गए हैं, वह मोक्ष परायण मुनि सदा-सर्वदा मुक्त ही है।'[308] न्यायदर्शन में मोक्ष दु:ख के पूर्ण निरोध की अवस्था है, वे इसे 'अपवर्ग' कहते हैं। 'अपवर्ग' से तात्पर्य शरीर और इन्द्रियों के बन्धनों से आत्मा का मुक्त होना है। जब तक आत्मा शरीर स्थित रहता है, तब तक इसके लिए दु:खों का पूर्ण विनाश संभव नहीं है।[609] शरीर, मन सहित छ: इन्द्रियां तथा उन इन्द्रियों

305-- विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव, 1952, पूर्वोक्त, पृ0 1200

306-- गोविन्द चातक, पूर्वोक्त, पृ0 438

307-- तुलसीराम शर्मा, पूर्वोक्त, पृ0 22

308-- यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायण:...॥28॥
सहजानन्द सरस्वती, पूर्वोक्त, पृ0 618

309-- सतीश चन्द्र चटोपाध्याय, धीरेन्द्र मोहन, भारतीय दर्शन, पटना : पुस्तक भण्डार, 1961, पृ0 135

के छः रूप, रस आदि विषय एवं उनके रूप ज्ञान आदि छः ज्ञान तथा सुख एवं दुःख, इन इक्कीसों से दुःख उत्पन्न होता है।[310] उमेश मिश्र ने `पुरुष` और `प्रकृति` के कल्पित तथा आरोपित सम्बन्ध को `बन्धन` कहा है। इसी `बन्धन` को दूर करना, `पुरुष` का अपने-आप को यह जानना, प्रकृति को अपने-स्वरूप का ज्ञान हो जाना ही `विवेक बुद्धि` है। यही `मुक्ति` है ।[311] सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष और प्रकृति का कल्पित एवं आरोपित सम्बन्ध बन्धन है। इस बन्धन को ज्ञान के द्वारा दूर करना, पुरुष का अपने आप को पहचानना, प्रकृति को भी अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाना विवेक बुद्धि है, जो मुक्ति ही है ।[312] सांख्यकारिका के अनुसार मोक्ष का अर्थ है पुरुष को निजस्वरूप का ज्ञान होना, अथवा आत्मा-देश-काल से परे, शरीर और मन से भिन्न और स्वभावतः नित्य, अमर, अविनाशी है -- इसका पूर्ण ज्ञान हो जाना मोक्ष है । जीव को जब यह अनुभूति हो जाती है, तब उसका शरीर या मन के विकारों से प्रभावित होना बन्द हो जाता है और वह केवल उनका साक्षी रूप होकर रहता है ।[313] योग दर्शन के अनुसार चित्त में विकार होते रहते हैं और इस विकारी चित्त पर आत्मा का प्रकाश पड़ता रहता है तथा विवेक-ज्ञान के अभाव में आत्मा उन्हीं में अपने को देखने लगता है। फलस्वरूप वह सांसारिक विषयों से सुख-दुःख का अनुभव करने लगता है और उनमें राग-द्वेष के भाव रखने लगता है। यही आत्मा का बन्धन है।[314] इस बन्धन से छुटकारा पाकर आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करना

310-- उमेश मिश्र, पूर्वोक्त, पृ० 187

311-- वही, पृ० 310

312-- रामजी लाल सहायक, पूर्वोक्त, पृ० 236

213-- वही, पृ० 236

214-- सतीश चन्द्र चटोपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ० 189

योग का प्रमुख उद्देश्य है ।

मीमांसकों के अनुसार जगत् के साथ आत्मा के सम्बन्ध के विनाश का नाम मोक्ष है। (प्रपंचसम्बन्धविलयो मोक्ष:)। मोक्ष की दशा में आत्मा को आनन्द का अनुभव नहीं होता। मीमांसा के मत में चैतन्य आत्मा का स्वाभाविक गुण नहीं है, बल्कि शरीर आदि के सम्पर्क में आने से उसे सुख-दु:ख का अनुभव होता है। मोक्ष दशा में आत्मा शरीर आदि से अलग हो जाती है।[315] वेदान्त दर्शन के अनुकूल जीवात्मा और ब्रह्म में तात्त्विक भेद नहीं है । भ्रम के कारण जीव और ब्रह्म की पृथक्-पृथक् सत्ता समझ ली जाती है । तत्वज्ञान होने पर भ्रम का उच्छेद हो जाता है और जीव-ब्रह्म का ऐक्य सिद्ध हो जाता है, और यही मुक्ति है ।[316] बौद्धमत वाले मोक्ष के लिए 'निर्वाण' शब्द का प्रयोग करते हैं । जैनमत के अनुसार जीव और पुद्गल का संयोग बन्धन है और जीव का पुद्गल से अलग होना मोक्ष है । पुद्गल से वियोग तभी हो सकता है यदि नए पुद्गल का प्रवेश रुक जाए और शरीर में पहले से ही प्रविष्टि पुद्गल जीर्ण हो जाए ।[317]

गुरु नानक ने मुक्ति के स्वरूप के सम्बन्ध में कोई अधिक चर्चा नहीं की । कुछ उपलब्ध उक्तियों के आधार पर कहा जा सकता है कि वे सांसारिक बन्धनों से छुटकारा पाने को मुक्ति मानते हैं --

मुकति भई बांधन गुरि खोल्हेसबदि सुरति पति पाई ।
नानक राम नामु रिद अंतरि गुरमुखि मेलि मिलाई ।।5।।[318]

315-- बल्देव उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ0 334

316-- रामजी लाल हायक, पूर्वोक्त, पृ0 237

317-- सतीश चन्द्र चटोपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ0 67

318-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 747

इन सांसारिक प्रपंचों से ऊंचा उठकर जिज्ञासु का गुरु के साथ मेल करके परमात्मा को पहचानना, अर्थात् आत्मज्ञान प्राप्त करना ही मोक्ष द्वार है --

गुरि मिलिए खसमु पछाणीऐ कहुनानक मोख दुआरु ।।8।।[319]

इस प्रकरण में एक बात ध्यान रखने योग्य है कि गुरु नानक के मत अनुसार मुक्ति साधक का परम लक्ष्य नहीं है। साधक का परम लक्ष्य है परमात्मा का दर्शन, उसका साक्षात्कार । इसकी प्राप्ति हो जाने पर फिर मुक्ति अथवा बैकुण्ठ की आवश्यकता ही नहीं रहती --

गुर की साखी अंमृत वाणी पीवत ही परवाणु भइआ ।
दर दरसन का प्रीतमु होवै मुकति बैकुंठै करै किआ ।।3।।[320]

मुक्ति	:	साचै सबदि मुकति गति पाए ।[321]
मोक्ष	:	मनै पावहि मोख दुआरु ।[322]
परमपद	:	हउमै जाइ परम पदु पाईऐ ।।1।।रहाउ।।[323]
चौथी अवस्था	:	तीनी समावै चउथै वासा ।[324]
अमरपद	:	निज घरि वासु अमरपदु पावै ।[325]
निर्वाणपद	:	सबदि नपै घरु पाईऐ निरबाणी पदु नीति।।4।।[326]
तुरीयावस्था	:	तुरीआवसथा गुरमुखि पाईऐ संत सभा की ओट लही।।4।।[327]

319-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 587

320-- वही, पृ0 276

321-- वही, पृ0 256

322-- वही, पृ0 84

323-- वही, पृ0 233

324-- वही, पृ0 480

325-- वही, पृ0 791

326-- वही, पृ0 143

327-- वही, पृ0 264

महा सुख : मुकति महा सुख गुर सबदु वी चारि ।[328]

बंधन मोक्ष : बंदि खलासी भाणै होइ ।[329]

7.12.1 मुक्ति प्राप्ति के साधन

गुरु नानक ने मुक्ति के स्वरूप के अतिरिक्त उसकी प्राप्ति के साधनों की व्याख्या अधिक की है । वे सच्चे साधक थे, इसलिए उन्हें कई प्रकार के अनुभव थे। इन अनुभवों को बताने हेतु उन्होंने मुक्ति की प्राप्ति के साधनों का अधिक विश्लेषण किया है । गुरु नानक का दृढ़ मत है कि मुक्ति विद्या और विज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं हो सकती --

मुकति नहीं विदिआ बिगिआनि ।।[330]

वास्तव में आत्मा तो मुक्त है, उसे किसी प्रकार के मोक्ष की आवश्यकता नहीं है । पर माया या अविद्या के कारण जीवात्मा परमात्मा को भूल जाती है, तब उसे सुख-दु:ख की प्रतीति होने लगती है । इस प्रतीति अथवा सांसारिक प्रपंचों से मुक्त होने के लिए जीवात्मा प्रयत्न करती है, पर ये यत्न बाह्यमुखी नहीं होने चाहिए, क्योंकि मुक्ति तो गले में पहने हुए हार के समान अपने पास ही है । इसलिए विद्या, विज्ञान आदि मुक्ति-प्राप्ति में उपयोगी सिद्ध नहीं होते । परमार्थिक दृष्टि से मुक्ति न उत्पन्न होती है और न ही पहले अप्राप्त होती है । वास्तव में यह प्राप्त की ही प्राप्ति है, जो सदा विद्यमान है । आत्मज्ञान द्वारा माया के पर्दे के हट जाने से उसकी प्राप्ति ही मुक्ति है । फलस्वरूप ब्रह्म की अनुभूति ही मोक्ष है । यह सिद्धान्त अद्वैतवाद के अनुकूल है । गुरु नानक की मुक्ति का यही स्वरूप है और इसकी प्राप्ति के लिए सबसे पहली आवश्यकता परमात्मा के हुक्म या रज़ा की बताई

328-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 543

329-- वही, पृ० 90

330-- वही, पृ० 502

गई है क्योंकि इसके बिना मुक्ति की प्राप्ति असम्भव है --

(1) किव सचिआरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पालि ।
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि ।।1।।[331]

(2) बंदिखलासी भाणै होइ । होरु आखि सकै न कोइ ।।[332]

मोक्ष प्राप्ति की दूसरी आवश्यकता प्रभु की कृपा है जिसका सविस्तार वर्णन पंचम अध्याय में किया गया है । इस सम्बन्धी तीसरी आवश्यकता गुरु या पथ-प्रदर्शक की है । गुरु नानक के साधना मार्ग में गुरु का विशेष महत्व है क्योंकि गुरु द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करने से मुक्ति संभव है --

गुर सबदी दरु जोईऐ मुकते भंडारा ।8।।[333]

लोग आवागमन के चक्र में फंसे रहते हैं, मगर मुक्त नहीं होते । बिना सतगुरु के मोक्ष नहीं मिलता, ऐसी गुरु नानक की धारणा है --

(1) बिनु सतिगुर मुकति किनै न पाई ।
आवहि जाहि मरहि मरि जाई ।।4।।[334]

(2) गुर बिनु मोख मुकति किउ पाईऐ ।
बिनु गुर राम नाम किउ धिआईऐ ।।
गुरमति लेहु तरहु भव दुतरु मुकति भए सुखु पाइआ ।।1।।[335]

331-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 80

332-- वही, पृ0 90

333-- वही, पृ0 586

334-- वही, पृ0 794

335-- वही, पृ0 659

गुरु सभी प्राणियों को मोक्ष नहीं देता। मुक्ति केवल उन्हीं को मिलती है, जो आनन्दपूर्वक सद्गुरु की सेवा करते हैं। ऐसे लोगों को गुरु नानक ने बड़ा भाग्यशाली कहा है --

गुर पहि मुकति दानु दे भाणै। जिनि पाइआ सोई बिधि जाणै।।
जिन पाइआ तिन पूछहु भाई सुखु सतिगुर सेव कमाई हे ।।20।।[336]

प्रभु तक पहुंचने के लिए गुरु का सहारा लेना आवश्यक है क्योंकि सद्गुरु मुक्त कराने वाला है --

सतिगुर दाता मुकति कराए । सभिरोग गवाए अमृतु रसु पाए ।।
जमु जागति नाही करु लागै जिसु अगनि बुझी ठरु सीना है।।5।।[337]

7.12.2 जीवन मुक्त

मुक्ति प्राप्त करने वाले साधक को मुक्त कहा जाता है । यह साधारणतया तीन प्रकार के होते हैं -- जीवन मुक्त, विदेह मुक्त और नितमुक्त । शरीर धारण करते हुए भी जो हरि-भक्ति अथवा आत्मज्ञान द्वारा बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं, वो जीवन मुक्त कहलाते हैं । जो जीव देह से नष्ट हैं और मुक्ति प्राप्त करते हैं, वो विदेह-मुक्त हैं । जो जीव कर्मवश होकर जन्म-मरण को प्राप्त नहीं होते और अवतार रूप होकर स्वेच्छा से या ईश्वर की इच्छा से अलग-अलग लोकों में विचरण करते हैं, वो नित्य-मुक्त हैं । इन तीनों में गुरु नानक जीवनमुक्त व्यक्ति के प्रति आकर्षित होते हैं, क्योंकि गुरु नानक मुक्ति को मृत्यु उपरान्त प्राप्त होने वाला पदार्थ नहीं मानते । उनका गुरमुख व्यक्ति जीवित अवस्था में ही मुक्त है ।

336-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 620

337-- वही, पृ० 626

वह संसार में रहता हुआ लोक-कल्याण में लीन रहता है और जगत् से पलायन नहीं करता । ऐसे व्यक्ति को जीवित अवस्था में ही मुक्ति मिल चुकी होती है । उसका अहंभाव मिट जाता है, ऐसे व्यक्ति को ही गुरु नानक ने जीवन-मुक्त कहा है --

(1) जीवन मुकतु सो आखीऐ जिसु विचहु हउमै जाइ ।।6।।[338]

(2) जीवन मुकतु जा सबदु सुणाए ।
सची रहत सचा सुखु पाए ।।7।।[339]

(3) जीवन मुकति मनि नामु वसाए ।[340]

उपरोक्त से स्पष्ट है कि गुरु नानक की मुक्ति मृत्यु के बाद मिलने वाला कोई अलौकिक पदार्थ नहीं । हुक्म, गुरु, गुरु-शब्द, प्रभु-कृपा आदि का मुक्ति-प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान है । अहंकार-त्याग तथा सत्पुरुषों की संगति मुक्ति की बुनियादी आवश्यकताएं हैं । साधक जब अपना हृदय निर्मल कर लेता है और मन को जीत कर जब वह निर्वैर, निर्भय, निष्काम हो जाता है, तभी वह गुरमुख कहला सकता है । ऐसा व्यक्ति जीवित अवस्था में ही मुक्त है ।वह जगत् से कभी पलायन नहीं करता, बल्कि संसार में रहते हुए लोक-कल्याण में व्यक्त रहता है । ऐसे व्यक्ति को गुरु नानक ने जीवन-मुक्त कहा है। गुरु नानक की ऐसी धारणा मुक्ति परम्परा के लिए एक मौलिक देन है । वर्तमान युग में त्रस्त और दु:खी मानवता को सुख एवं दिलासा देने के लिए जीवन-मुक्त व्यक्ति की बड़ी आवश्यकता है ।

7.13 योग--वास्तविक और बाह्यरूपी

योग का महत्त्व ऋग्वेद में इस प्रकार मिलता है -- जिसके बिना विदिप्त लोगों का यज्ञ सिद्ध नहीं होता है, वह (चित् वृत्तियों का निरोध)

339--जयराम मिश्र, सं0 2013, पृ0 792

340-- वही, पृ0 281

बुद्धिमान पुरुषों का योग होता है ।[341] कठोपनिषद् में योग की परिभाषा इस प्रकार दी गई है --

' यदा पंचवतिष्ठन्त ज्ञानानि मनसा सह
बुद्धिश्च न विचेष्टाति तमाहु: परमांगतिम्
ता योगमिति मन्यते स्थिर मिन्द्रिय धारणाम्
अप्रतस्तदा भवति योगोहि प्रभवाप्ययौ ।'[342]

अर्थात् जब पांच ज्ञानेन्द्रियां मन सहित स्थिर होकर बैठती हैं ; बुद्धि भी कोई चेष्टा नहीं करती, तब उस अवस्था को परमगति कहते हैं, उसी को योग कहते हैं । तब स्थिर इन्द्रिय धारणा प्रमाद रहित होती है, उसी से योग उत्पन्न होता है । गीता में योग एवं योगाभ्यास का वर्णन है। 'योगानुष्ठान से निरुद्ध चित्त जिस स्थान में रम जाता है और जहां स्वयं आत्मा को देखकर आत्मा से ही सन्तुष्ट रहता है, वही योगस्थ स्थिति है।'[343] गीता में कहा गया है, 'योग में ही कायम रह के, आसक्ति या करने का हठ छोड़ के तथा वे खामखा पूरे हो यह पर्वा छोड़ने के र्मो को करो। इसी समता या लापरवाही-बेफिक्री और मस्तागी-- को ही योग कहते हैं ।'[344] बौद्ध दर्शन में योगाभ्यास पर बल दिया गया है । बौद्ध धर्म साधना में 'अट्ठंगिकम मग्गम्' अर्थात् अष्टांग मार्ग का महत्वपूर्ण स्थान है। साधना के ये आठ मार्ग निम्नलिखित हैं -- 'सम्यक् दृष्टि' अर्थात् आर्य सत्यों का ज्ञान । 'सम्यक

341-- कृपाशंकर अवस्थी, योगसूत्र, हरदोई (उ.प्र.): पुनीत प्रकाशन, 1978, पृ0 16

342-- वही, पृ0 15

343-- 'यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ।।20।।
-- सहजानन्द सरस्वती, पूर्वोक्त, पृ0 635

344-- वही, पृ0 469, 2 । 48

संकल्प) अर्थात् राग-द्वेष, हिंसा आदि सांसारिक विषयों का त्याग करने के लिए दृढ़ निश्चय। 'सम्यक वाच' अर्थात् मिथ्या, अशुचि तथा दुर्वचनों का परित्याग एवं सत्यवचन की रक्षा। 'सम्यक् कर्मान्त' अर्थात् परद्रव्य का अपहरण, वासना-पूर्ति की इच्छा का परित्याग कर शुभ कर्मों का आचरण। 'सम्यक् आजीव' अर्थात् न्यायपूर्ण जीविका अर्जन। 'सम्यक् व्यायाम' अर्थात् बुराइयों का नाश कर अच्छे कर्मों के लिए उद्यत रहना। 'सम्यक् स्मृति' अर्थात् लोभ आदि का परित्याग कर चित्तशुद्धि करना। 'सम्यक् समाधि' अर्थात् चित्त की एकाग्रता का पालन करना। इनका पालन करने से अन्त:करण की शुद्धि होती है और ज्ञान का उदय होता है। भगवान बुद्ध ने इन्हीं आचरणों का पालन करते हुए कठोर तपस्या की थी।[345] बौद्ध धर्म में ध्यान योग को भी विशेष स्थान मिला है। समाधि पाद में मुख्य रूप से चित्त की वृत्तियों के निरोध पर बल दिया गया है।[346] साधनपाद में योग के आठ अंगों का निरूपण इस प्रकार किया गया है -- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।[347] शिवसूत्र में कहते हैं कि 'विस्मयो योग भूमिका'।[348] विस्मय ही योग की पहली सीढ़ी है। कैवल्यपाद में यह बताया गया है कि अज्ञान, अहंभाव तथा आसक्ति का अन्तिम रूप से निराकरण ध्यान द्वारा साधक इस प्रकार करे कि अपने शरीर सहित समस्त वस्तुतत्वों को एक वस्तुतत्व में लय करे। अपने मन को बुद्धि-सहित, तथा समस्त मन बुद्धियों को एक अनन्त प्रज्ञा में लीन करे तथा अपनी चेतना और एक चेतना जैसे लगते चेतना के सभी शरीर धारी स्फुलिंगों को एक अनन्त आत्म-चैतन्य में (स्व में) लय

345-- उमेश मिश्र, पूर्वोक्त, पृ० 139

346-- कृपाशंकर अवस्थी, पूर्वोक्त, पृ० 13

347-- वही, पृ० 13

248-- वही, पृ० 14

करे और इस प्रकार कैवल्य अथवा मोक्ष प्राप्त करे ।[349] प्राय: यह प्रश्न उठता है कि योग क्या है ? शाब्दिक अर्थ में जुड़ने को योग तथा बिछुड़ने (विजुड़ने) को वियोग कहते हैं । महर्षि पतंजलि कहते हैं -- `योग: चित वृति निरोध:`[350] चित की वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं । सांख्य दर्शन, अद्वैत वेदान्त, द्वैताद्वैत एवं विशिष्टाद्वैत आदि दर्शनों में योग-साधना को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है । नाथपंथ के प्रवर्तक गोरखनाथ ने हठयोग की पुनर्स्थापना करके योगमार्ग के महत्त्व को बढ़ावा दिया।

भारतीय साधना में `योग` को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । सभी साधकों ने योगाभ्यास पर विशेष बल दिया है ।योग का सामान्य अर्थ `सम्बन्ध` है। दर्शन में योग प्राय: जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को कहते हैं । इस सम्बन्ध को प्राप्त करने के उपाय को भी योग कहा जाता है।[351] गुरु मुखानन्द का मत है -- `ससीम आत्मा का असीम आत्मा के साथ मिलना। जीव की एकदेशीय चेतना का परमात्मा में विलयन ही योग है ।`[352]

7.13.1 प्रमुख योगमार्ग

योगमार्गों में अष्टांगयोग, हठयोग, लययोग, मंत्रयोग, राजयोग आदि प्रतिष्ठित हैं । इनमें अष्टांगयोग को सभी साधकों ने सबसे अधिक अपनाया है ।

349-- कृपाशंकर अवस्थी, पूर्वोक्त, पृ0 14

350-- व्यास देव, पातंजल योगदर्शनम्, अजमेर : श्रीमदन लाल लक्ष्मी निवास, सं0 2018, पृ0 14

351-- धीरेन्द्र वर्मा, सं0 2020, पूर्वोक्त, पृ0 665

352-- गुरमुखानन्द, पूर्वोक्त, पृ0 19 (अप्रैल 1987 अंक)

(क) अष्टांग योग : आठ अंगों की साधना वाला योग अष्टांग योग कहलाता है। पातंजली ने अपने 'योग सूत्र' में विवेक की सिद्धि के लिए योग के आठ अंग माने हैं --- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि।[353] इनमें पहले पांच अंग योग के बाह्य साधन माने जाते हैं और अन्तिम तीन योग के आन्तरिक साधन माने गए हैं क्योंकि विवेक की उत्पत्ति के लिए आन्तरिक तीनों का अधिक योगदान है और समाधि की अवस्था के साथ इनका सीधा सम्बन्ध है।

(ख) यम : 'यम' का अर्थ संयम होता है। इसके पांच प्रभेद हैं -- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह।[354]

(ग) नियम : जिनके द्वारा शरीर की शुद्धि और सदाचार का पालन होता हो, उन्हें नियम कहते हैं। ये पांच हैं -- शौच (शारीरिक और मानसिक शुद्धि) संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्राणिधान।[355] इन यम-नियम तथा इनके प्रभेदों का पालन करने से साधक का मन तथा शरीर परिशुद्ध होते हैं, शरीर परिपुष्ट होता है तथा मन केन्द्रीभूत हो जाता है। हठयोग प्रदीपिका $\frac{1}{17}$ में यम-नियम की संख्या दस-दस दी गई है। यहां यम है-- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, दया, अर्जव, मिताहार, शौच।[356] हठयोग प्रदीपिका $\frac{1}{18}$ में ये दस नियम हैं -- तप, सन्तोष, अस्तिकता, दान, ईश्वर-पूजा, सिद्धान्त, गुरु वाक्य, श्रवण, ज्ञान, क्लिष्ट तपस्या।[357]

353-- यम नियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि। पातंजल योग सूत्र, 2 । 29

354-- वही, 2 । 30

355-- पातंजल, योगसूत्र, 2 । 32

356-- रामजी लाल सहायक, पूर्वोक्त, पृ0 300

357-- वही, पृ0 300

(घ) आसन : यम नियमादि की साधना द्वारा शरीर एवं मन की शुद्धि के उपरान्त साधक को आसनों की प्रतिष्ठा करनी होती है। निश्चल एवं सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है।[358] आसन साधना के अभ्यास में शरीर की ऐसी स्थिति होनी चाहिए जिससे साधक हृदय को ईश्वर चिन्तन में लगने के लिए उत्साहित कर सके। आसन के सिद्ध हो जाने पर साधक का शरीर तो परिपुष्ट होता ही है, योगी शीत एवं ताप आदि के प्रभाव से प्रभावित नहीं होता।[359] शिव संहिता, तृतीय पटल 84 में चौरासी आसनों का व्यौरा तथा उनकी सिद्धि का वर्णन है।[360] हठयोग के ग्रन्थों में आसनों का विषद वर्णन हुआ है।

(ङ) प्राणायाम : आसन सिद्ध हो जाने के उपरान्त योगी श्वास-प्रश्वास द्वारा प्राणायाम करता है। इस क्रिया द्वारा मन का निरोध किया जाता है। प्राणायाम की क्रिया के अभ्यास से प्रकाश का आवरण नष्ट हो जाता है तथा मन में संयुजित एवं एकाग्र होने की योग्यता आ जाती है।[361]

(च) प्रत्याहार : जब भिन्न-भिन्न इन्द्रियां अपने बाह्य विषयों से हट कर चित्त के साथ संयुजित हो जाती है, तब इसे प्रत्याहार कहा जाता है।[362] वैसे इन्द्रियां मन को अपनी इच्छा अनुसार दौड़ाती रहती हैं, परन्तु प्रत्याहार के अभ्यास द्वारा ये पूरी तरह मन के अधीन हो जाती है। इसलिए अत्यन्त दृढ़-संकल्प तथा इन्द्रिय-निग्रह की साधना की आवश्यकता है।

358-- 'स्थिर सुखमासनम्' पा० यो० 2। 46

359-- 'ततो द्वन्द्वानभिघातः'।। पा० यो० 2। 48

360-- रामजी लाल सहायक, पूर्वोक्त, पृ० 30

361-- 'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् धारणा सु च योग्यता मनसः' पा०यो० 2। 53

362-- बल्देव उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ० 303

(छ) धारणा : मन का किसी स्थान अथवा वस्तु विशेष में केन्द्रीभूत हो जाना 'धारणा' कहलाता है।[363] इसके अभ्यास से चित्त-वृत्तियां स्थिर हो जाती हैं।

(ज) ध्यान : जहां चित्त को लगाया जाए, उसी में वृत्ति का एकतार चलते रहना 'ध्यान' कहलाता है।[364] ध्यान द्वारा मन चंचल तथा चलायमान नहीं होता। मन की गति योगी के वश में हो जाती है।

(झ) समाधि : यह योग का अन्तिम अंग है। 'घेरंड संहिता', सप्तमोपदेश श्लोक 3 में लिखा है जब साधक का मन शरीर से अलग होकर एक अनन्त प्रकाश में लीन हो जाता है, उसे किसी अन्य जानकारी का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता और वह एक ही के रूप में लीन हो जाता है तो इसे समाधि कहते हैं।[365]

7.14 योग एवं गुरु नानक वाणी

गुरु नानक वाणी में उपरोक्त आठ अंगों का कहीं भी शास्त्रीय रीति के अनुसार चित्रण नहीं हुआ है और न ही इनके प्रति गुरु नानक देव की कोई आस्था प्रकट हुई है। इसका कारण यह है कि गुरु नानक देव सदाचार पर बल देते थे इसलिए सदाचारिक प्रवृत्तियां उन्हें पसन्द थीं। यम-नियम की व्याख्या उन्होंने नहीं की किन्तु उनके अनुसार इनकी स्थापना मनुष्य के चारित्रिक गुणों में विद्यमान है। अन्य अंगों को गुरु नानक के साधना मार्ग में कोई स्थान नहीं मिला है। यह सारे अंग 'हठयोग' का ही अंग है इसलिए इनसे सम्बन्धित गुरु नानक का दृष्टिकोण उसी प्रकरण में प्रस्तुत करना उचित है।

363-- 'देश बन्धश्चित्तस्य धारणा ।।' पा० यो० 3 । 2

364-- 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।।' पा० यो० 3 । 2

365-- रामजी लाल 'सहायक', पूर्वोक्त, पृ० 302

7.14.1 नानक वाणी में हठयोग का खण्डन

गुरु नानक वाणी में कबीर की वाणी की अपेक्षा हठयोग का कम चित्रण हुआ है । कबीर का सम्बन्ध योगी परिवार से था इसलिए उन की वाणी में हठयोग का अधिक वर्णन होना स्वाभाविक है । इसके विपरीत गुरु नानक देव का दृष्टिकोण उनसे अलग था लेकिन साधना के क्षेत्र में अधिक आगे बढ़ जाने पर कबीर का हठयोग में विश्वास कम लगता है । गुरु नानक देव को इस पद्धति का साधनात्मक अनुभव नहीं था। उनकी समूची वाणी 'सिध गोसटि' से स्पष्ट होता है कि हठयोग साधना पद्धति से उनका सीधा विरोध है । इसका कारण यह है कि गुरु नानक के युग में ~~अनेक~~ योगी और विशेषतया हठयोगी अपनी जड़ें पूरी तरह से जमा चुके थे । गुरु नानक को इन योगियों तथा हठयोगियों का सामना करना पड़ा । इन योगियों ने अपने चमत्कारपूर्ण कार्यों से पूरे भारतवासियों को अपने पीछे लगा लिया था। ये योगी घर-बार त्याग कर जंगलों और पहाड़ों में निवास करते थे । वास्तविक जीवन में संघर्ष करने के बजाय पलायन कर जाते थे और लोगों को भी ऐसा करने की प्रेरणा देते थे । ये योगी मानवता के वास्तविक कल्याण में बाधा थे । यही कारण है कि गुरु नानक हठयोग के कठोर विरोधी रहे हैं । उन का मत है कि हठयोग द्वारा चित-वृत्तियों के विरोध करने से काया कमज़ोर होती है । व्रत एवं तप करने से मन परमात्मा के प्रेम में नहीं भीजता—

हठु निग्रहु करि काइआ छीजै ।
वरतु तपनु करि मनु नहि भीजै ।।२।।[366]

न ही प्राणायाम द्वारा वायु को दशम् द्वार में चढ़ाने और नेवली आदि षाटकर्मों को करने से मन पिघल सकता है । वास्तव में राम-नाम के बिना सांस लेना व्यर्थ है —

366-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 507

चाहसि पवनु सिंघसनु भीजे । निउली करम खटु करम करीजे ।।
राम नाम बिनु बिरथा साधु लीजे ।।3।।[367]

अगर हठयोग करता हुआ व्यक्ति अपने प्राणों का अन्त करता है, उसकी परमात्मा के सदन में कोई गिनती नहीं होती । वह चाहे अनेक प्रकार के वेश धारण करे, शरीर पर भस्म लगा ले, किन्तु नाम को भुलाकर पुन: पछताता है --

हठुकरि मरै न लेखै पावै । वेस करै बहु भसम लगावै ।।
नामु बिसारि बहुरि पछुतावै ।।2।।[368]

क्योंकि हठ निग्रह करने वाले कितने ही सिद्ध, साधक, मुनि तथा देवतागण न तृप्त हुए हैं और न ही वास्तविक रहस्य को पहचान सके हैं । हां, यदि वह गुरु के शब्द को विचार कर, गुरु सेवा ग्रहण कर ले, तब तन-मन से निर्मल होकर अभिमान-विहीन हो सकते हैं --

सिध साधिक केते मुनि देवा । हठि निग्रह न तृपतावहि भेवा ।।
सबदु वीचारि गहहि गुर सेवा । मनि तनि निरमल अभिमान अभेवा ।।6।।[369]

हठयोगियों के नेवली कर्म, कुण्डलिनी का उत्थान एवं दशम् द्वार रूपी भट्ठी की प्राप्ति, रेचक, कुंभक एवं पूरक आदि प्राणायाम तथा मन को हठपूर्वक निग्रह करने की अन्य क्रियाएं, इन सबको गुरु नानक ने पाखण्डपूर्ण कर्म अथवा बाह्य क्रियाएं कहा है । महारस अथवा परमात्म रस की प्राप्ति गुरु-शब्द से ही सम्भव है --

---

367-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 507

368-- वही, पृ0 232

369-- वही, पृ0 509

> निउली करम भुइअंगम भाठी । रेचक कुंभक पूरक मन हाठी ।।
> पाखंड धरमु प्रीति नही हरि सिउ गुर सबद महारस पाइआ ।।24।। [370]

राग परभाती में गुरु नानक ने इसी बात को दोहराते हुए कहा है योगी निवली कर्म करते हैं तथा सर्पाकार कुण्डलिनी को भाठी बनाते हैं। रेचक, पूरक, कुंभक आदि क्रियाएं करते हैं, किन्तु बिना सद्गुरु के कुछ समझ नहीं आती और भ्रम में भटक कर डूब मरते हैं। हरिनाम के बिना सब कर्म व्यर्थ और बाजीगर के तमाशे की तरह भ्रामक हैं --

> निवली करम भुअंगम भाठी रेचक पूरक कुंभ करै ।
> बिनु सतिगुर किछु सोझी नाही भरमे भूला बूडि मरै ।।
> अंधा भरिआ भरि भरि धोवै अन्तर की मलु कदे न लहै ।
> नाम बिना फोकट सभि करमा जिउ बाजीगरु भरमि भुलै ।।2।। [371]

योगी विभूति बनाकर उसे शरीर पर लगाते हैं, किन्तु उनके अन्तर्गत क्रोध रूपी चाण्डाल और अहंकार छिपे हैं। ऐसे पाखण्ड करने से वास्तविक योग की प्राप्ति नहीं होती और न ही बिना सद्गुरु के अलक्ष्य परमात्मा मिल सकता है --

> करहि बिभूति लगावहि भसमै । अंतरि क्रोधु चंडालु सु हउमै ।।
> पाखंड कीने जोगु न पाईऐ बिनु सतिगुर अलखु न पाइआ ।।12।। [372]

गुरु नानक ने शरीर स्थित चक्रों के प्रति अनास्था प्रकट की है। जब कभी उनका प्रसंग आया है, उसे व्यर्थ का पाखण्ड कहा है। गुरु नानक का आसन इत्यादि में भी कोई विश्वास नहीं था। धनासरी राग में कलियुगी संसार को

370-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 664

371-- वही, पृ० 793-94

372-- वही, पृ० 664

स्थान भ्रष्ट बताते हुए गुरु नानक ने आसनों को ठगने का साधन माना है --

> कल महि राम नामु सारु ।
> अखी त मीतहि नाक पकड़हि ठगण कउ संसारु ।।1।।रहाउ।।[373]

पद्मासन द्वारा समाधि में स्थित योगी का चित्रण करते हुए गुरु नानक कहते हैं कि अंगूठे और पास की दो अंगुलियों की सहायता से नाक पकड़ता है और यह दम्भ करता है कि प्राणायाम द्वारा समाधि में स्थित होकर मुझे तीनों लोकों का ज्ञान है । किन्तु पीछे की वस्तु उन्हें नहीं सूझती, यह कैसा अनोखा पद्मासन है --

> आंट सेती नाकु पकड़हि सूझते तिनि लोअ ।
> मगर पाछै कछु न सूझै एहु पदमु अलोअ ।।2।।[374]

गुरु नानक ने अनहद नाद, दशम द्वार, अमृत रस, अजपा-जप इत्यादि यौगिक शब्दों का अपनी वाणी में बड़ा भावनात्मक शैली में चित्रण किया है। गुरु नानक का अनहद नाद यौगिक अनहद नाद से भिन्न है । यौगिक अनहद् नाद हठ साधना द्वारा सुना जाता है, परन्तु गुरु नानक का अनहद नाद शब्द-सुरति अथवा नाम साधना द्वारा सुना जाता है । यौगिक अनहद नाद कुंडलिनी के जागरण के साथ दशम द्वार से पहले ही सुनना शुरू हो जाता है, परन्तु गुरु नानक द्वारा प्रतिपादित अनहद नाद सीधा दशम् द्वार का विषय है । 'सिधि गोसटि' में गुरु नानक ने स्पष्ट कहा कि कोरी बातों से योग की प्राप्ति नहीं होती। न ही कंथा पहनने में, न डंडा लेने में, न शरीर पर भस्म लगाने में, न कानों में मुद्रा पहनने में, न मुंड मुंडवाने में, न शृंगी बजाने में, न कब्रों, श्मशानों, न बाह्य ध्यान लगाने में, न देश

373-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 415

374-- वही, पृ0 415

देशान्तरों के भ्रमण करने में, न तीर्थ आदि में स्नान करने से योग की प्राप्ति होती है, यह तो तभी संभव है जब माया के बीच में रहते हुए निरंजन (प्रभु) से युक्त रहा जाय --

जोगु न खिंथा जोगु न डंडै जोगु न भसम चढ़ाइऐ ।
जोगु न मुंदी मुंहि मुंडाइऐ जोगु न सिंङी वाइऐ ।
जोगु न बाहरि मड़ी मसाणी जोगु न ताड़ी लाइऐ ।
जोगु न देसि दिसंतरि भविऐ जोगु न तीरथि नाइऐ ।।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाइऐ ।।
गली जोगु न होई ।[375]

राग रामकली के अन्तर्गत गुरु नानक ने पाखण्डी योगी का सुन्दर चित्रण किया है कि वह ममता, मोह और स्त्री का प्रेमी है । न उसे त्यागी कहा जा सकता है न संसारी । उसे घर-घर मांगते लज्जा भी नहीं आती। वह अलख निरंजन के गीत गाता है, किन्तु अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचानता। भस्म की विभूति लगाकर पाखण्ड करता है, माया-मोह में पड़कर यमराज के डंडे सहता है, वीर्य की रक्षा नहीं करता फिर भी यती कहलाता है । नाना प्रकार के वेश बनाता है और बहुत से कंथे सजाता है, मदारी की भांति अनेक प्रकार के झूठे खेल खेलता है, चिन्ता की अग्नि उसके हृदय में प्रज्वलित होती है, कानों में स्फटिक मुद्राएं पहनता है तथा जीभ और अन्य इन्द्रियों के स्वाद में लुब्ध है --

जुग पर बोधहि मड़ी बधावहि । आसणु तिआगि काहे सचु पावहि।।
-- -- -- -- -- --
जिहवा इंद्री सादि लोभाना। पसू भए नही मिटै नीसाना।।6।।[376]

375-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 441

376-- वही, पृ0 502

ऐसे योगी गृहस्थ होते हैं और जटा रखते हैं। उनके मरने पर आगे-पीछे उनके पुत्र रोते हैं। इस प्रकार ये व्यर्थ ही अपने सिर में राख डालते रहते हैं --

जोगी गिरही जटा बिभूत। आगै पाछै रोवहि पूत ।।
जोग न पाइआ जुगति गवाइ। कितु कारणि सिरि छाई पाई।।[377]

इन योगियों को गुरु नानक ने 'भस्म के अंधे' कहा है। भस्म लगाने के अहंकार में इन्होंने वास्तविकता की सुध-बुध खो दी है और अहंभाव में अंधे हो गए हैं। इन्हें समझाते हुए गुरु नानक कहते हैं कि इस प्रकार की विधि में योग नहीं है --

मतु भसम अंधूले गरबि जाहि। इनि बिधि नागे जोगु नाहि।।1।।[378]

इन व्यर्थ की क्रियाओं को छोड़कर गुरु नानक इन योगियों को गुरु के शब्द पर विचार करने की ओर प्रेरित करते हैं जिससे आपापन नष्ट हो सके और वास्तविक योग मन में आ बसे --

गुर सबदु बिचारहि आपु जाइ। साच जोगु मनि वसै आइ।।8।।[379]

7.14.2 लय योग

लययोग ध्यान योग का अवान्तर रूप है। विषय-वासनाओं की विस्मृति को लय कहते हैं। (लयो विषय विस्मृति)।[380] मन और चित्त को किसी विशेष लक्ष्य में केन्द्रित करने से विषय-वासनाएं लीन हो जाती हैं, यही लययोग है। इस योग में 'ध्यान' का बड़ा महत्त्व है क्योंकि ध्यान का सम्बन्ध मन और चित्त से होता है। मन और चित्त का लय करना लययोग कहलाता है। इसमें 'ध्यान' को प्रधानता मिली है, इसी कारण इसे

377-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 562
378-- वही, पृ० 715
379-- वही, पृ० 715
380-- ब्रह्मानन्द, हठयोग प्रदीपिका, बम्बई : श्री ब्रह्मानन्द कल्याण, 1981 वि०, 4 । 34

ध्यानयोग भी कहते हैं। गुरु नानक वाणी में 'शब्द-सुरति योग' में इसका रूपान्तर हुआ है, जिसका उल्लेख आगे किया जा रहा है --

7.14.3 मन्त्र योग

जब किसी मन्त्र के सहारे चित्तवृत्ति का निरोध किया जाता है तब उसे मन्त्रयोग कहते हैं। जपसाधना मंत्रयोग की प्रमुख विशेषता है। पातंजल योगदर्शन में 'उस ईश्वर का वाचक नाम ओंकार है'[381] यह लिखकर मन्त्रयोग की ओर संकेत किया है। गुरु नानक ने भी शब्द और ओंकार को परमात्मा का वाचक माना है तथा शब्द अथवा नाम को सर्वोत्तम साधना कहा है। इस सम्बन्ध में इसी अध्याय के 'जाप' शीर्षक में आवश्यक चर्चा कर ली है। नाम का माहात्म्य वेदों तक में प्रसिद्ध है। गीता में भी जपयज्ञ को सब यज्ञों में श्रेष्ठ कहा गया है। ऐसा लिखा है -- 'मैं यज्ञों में सबसे श्रेष्ठ जप-यज्ञ ही हूं।'[382] स्पष्ट है कि मन्त्रयोग में जपसाधना का बड़ा महत्त्व है। गुरु नानक वाणी में लययोग की तरह मन्त्रयोग का समावेश भी गुरु नानक के 'शब्द-सुरति योग' में देखा जा सकता है। इसका वर्णन आगे किया जा रहा है।

7.14.4 राजयोग

राजयोग सभी योगों में सर्वश्रेष्ठ योग है। उपर्युक्त सभी योग राजयोग की पृष्ठभूमि है। गीता में इसे युक्त पुरुष कहा गया है -- 'जब संयत मन आत्मा में ही स्थिर हो जाता है और किसी भी उपभोग की

381-- 'तस्य वाचकः प्रणवः ।।' पा० यो० 1। 27

382-- 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि ।।' 25 सहजानन्द सरस्वती, पूर्वोक्त, पृ० 735

इच्छा शेष नहीं रह जाती तब वह योगयुक्त हो जाता है ।[383] राजयोग साधना की पराकाष्ठा है । यह वह स्थिति है जहां मन और प्राण का भेद मिट जाता है और ये एकीभूत हो जाते हैं । मन का उत्पात समाप्त हो जाता है, माया के आवरण का उच्छेद् हो जाता है तथा मन चरम ध्येय में केन्द्रीभूत हो जाता है । इस अवस्था को उन्मनी भी कहते हैं ।[384] उन्मनी अवस्था को प्राप्त योगी का 'हठयोग प्रदीपिका' में चित्रण किया गया है।[385] गुरु नानक द्वारा राजयोग मानने की पुष्टि गुरु अर्जुन देव के दरबार में आए 'कल' नामक कवि द्वारा हो चुकी है।[386] इस बात को प्रामाणिकता भी मिल चुकी है । परन्तु प्रश्न उठता है कि गुरु नानक द्वारा प्रतिपादित राजयोग की यौगिक राजयोग से समानता है ? इस सम्बन्ध में संक्षेप में चर्चा कर लेना उचित होगा।

यौगिक राजयोग मन के वशीकरण उपरान्त उन्मनी अथवा समाधि की अवस्था प्राप्त करता है। गुरु नानक वाणी में भी मन के जीतने पर बहुत बल दिया गया है। 'मनि जीतै जगु जीतु' में विश्वास रखने वाले गुरु नानक की वाणी में अन्धकारमयी मन को प्रकाशमयी मन के साथ मारने तथा अन्य उपायों द्वारा अधिक चर्चा हुई है। इस सम्बन्ध में इसी अध्याय में 'मन की परिकल्पना' में इसका विस्तृत विश्लेषण किया गया है । दोनों

383-- 'यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते, निःस्पृह सर्वकामेभ्यां युक्त इत्युच्यते तदा ।' 18 । सहजानन्द सरस्वती, पूर्वोक्त, पृ0 634

384-- रामजी लाल 'सहायक', पूर्वोक्त, पृ0 306

385-- ब्रह्मानन्द, पूर्वोक्त, 4 । 41

386-- कवि कल सजसु गावउ गुरु नानक राजु जोगु जिनि माणिउ ।
आदि ग्रन्थ, पृ0 1390

में अन्तर यह है कि यौगिक राजयोग में मन को वश करने के लिए अष्टांग साधना आवश्यक है , परन्तु गुरु नानक के राजयोग में नाम-साधना द्वारा मन को प्रभु में लीन करना होता है । इस प्रकार साधक स्थूल बुद्धि से उठकर ब्रह्म की सत्ता का अनुभव करने में समर्थ हो जाता है । इस अवस्था का वर्णन 'हठयोग प्रदीपिका' में इस प्रकार हुआ है --'उसके भीतर भी शून्य होता है और बाहर भी शून्य होता है, उसी प्रकार जिस प्रकार आकाश में कोई खाली घड़ा रखा गया हो जो भीतर भी, बाहर भी, नीचे भी और ऊपर भी, सर्वत्र आकाश से परिपूर्ण होता है । योगी भीतर से भी परिपूर्ण होता है, बाहर से भी पूर्ण होता है जैसे समुद्र में कोई घड़ा डुबा कर रखा गया हो जिसके सभी ओर पानी ही पानी रहता है ।'[387] गुरु नानक ने शून्य को आस्तिकता का जामा पहनाकर बाहर और तीनों लोकों में उसकी व्याप्ति मानी है । जो व्यक्ति चतुर्थ पद अथवा सहजावस्था द्वारा उस शून्य को पहचान लेता है उसे पाप-पुण्य का लेप नहीं लगता । अर्थात् इस क्रिया से युक्त हो जाता है । जो व्यक्ति सारे घंटों के बीच निर्गुण और व्यापक हरि का भेद जानता है, वह आदि पुरुष और निरंजन देव का ही स्वरूप है --

अंतरि सुंनं बाहरि सुंनं त्रिभवण सुनमसुंनं ।
चउथे सुंने जो नरु जाणै भेद । ता कउ पापु न पुंनं ।।
घटि घटि सुंन का जाणै भेद । आदि पुरखु निरंजन देउ ।।51।।[388]

इससे स्पष्ट है कि गुरु नानक का राजयोग योगमत के राजयोग से अधिक व्यापक है । यह शून्य को केवल साधक के अन्दर और बाहर ही नहीं मानता बल्कि समस्त त्रिभुवन में इसकी व्याप्ति बताई गई है । इस

387-- अन्त:शून्यो बहि:शून्य:कुंभ इवांबरे । अन्त: पूर्णो बहि पूर्ण:पूर्ण: कुंभ इवार्णवे । ब्रह्मानंद,पूर्वोक्त, 4 । 56

388-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 544

साधना में यौगिक अंगों अथवा उपकरणों के लिए स्थान नहीं है। वास्तव में गुरु नानक द्वारा रचित राजयोग को 'सहजयोग' का नाम देना उचित है ।

7.15 नानक वाणी एवं वास्तविक योग

सहज जीवन यापन की प्रक्रिया में गुरु नानक ने संयम, समभाव, समदृष्टि, प्रभु-भक्ति, शुभ-व्यवहार, विचारों की शुद्धता आदि को विचारणीय स्वीकार किया। उन्होंने तत्कालीन नागे, अवधूत, कनफटे कुमार्गगामी योगियों को आध्यात्मिक रूपकों द्वारा वास्तविक योग की पद्धति से अवगत कराया। उनका कहना था कि आन्तरिक साधना के लिए बाह्य भेश, मुंद्राएं आदि की आवश्यकता नहीं होती बल्कि आध्यात्मिक कर्मों के सम्पादन से आन्तरिक योगी बनना चाहिए। भेश तथा मुंद्राओं आदि के स्थान पर सन्तोष और श्रम की मुंद्राएं, प्रतिष्ठा की झोली, परमात्मा के ध्यान की विभूति, नाशवान शरीर की कंथा, युक्ति और विश्वास का डंडा, ब्रह्मज्ञान की भक्ति, दया का भण्डारी बनाओ और घट-घट में जो अनाहद् नाद हो रहा है, उसी को सुनो अर्थात् शृंगी आदि का नाद मत सुनो।[389] योग की आन्तरिक विधि बताते हुए उपरोक्त बात को गुरु नानक इस प्रकार कहते हैं कि अन्त:करण में निरन्तर शब्द---नाम को बसाना ही योगी की मुंद्रा है। परमात्मा का सर्वत्र भरपूर रहने का भाव कंथा है। उस परमात्मा में पूर्ण रूप से निवास करना यही झोली की पूर्णता है --

अंतरि सबदु निरंतरि मुंद्रा हउमै ममता दूरि करी ।
खिंथ झोली भरिदूरि रहिआ नानक तारै एकु हरी ।।[390]

389-- जयराम मिश्र, सं० 2013, पृ० 94

390-- वही, पृ० 539

इसी तथ्य को निरूपित करते हुए गुरु नानक आगे कहते हैं कि सांसारिक विषायों से उलटी हुई चित्तवृत्ति खप्पर है, पांच तत्वों से दैवी गुण[391] ग्रहण करना टोपी है, काया कुशासन है, मन लंगोटी है, सत्य सन्तोष, संयम साथी अथवा शिष्य है। यह गुरु द्वारा स्मरण होता है --

ऊंधउ खपरु पंच भू टोपी कांइआ कड़ा सणु मनु जागोटी ।
सतु संतोखु संजमु है नालि । नानक गुरमुखि नामु समालि।।11।।[392]

गउड़ी राग में एक योगी को समझाते हुए वास्तविक योग का उपदेश गुरु नानक ने इस प्रकार दिया है कि बाह्य मुंद्रा के स्थान पर आन्तरिक मुंद्रा शरीर के भीतर धारण करो (मन्द वासनाओं को बेंधना आन्तरिक मुंद्रा है), शरीर को कंथा बनाओ । पंच कामादिकों को अथवा पंच ज्ञानेन्द्रियों को वशीभूत करो, विश्वास युक्त मन को ही डंडा बनाओ । योग-मुक्ति इसी तरह प्राप्त होगी । एक शब्द ब्रह्म है, दूसरा और कुछ नहीं है -- इस भावना के बीच मन स्थापित करना ही कंद-मूल का सेवन करना है । गुरु को गंगा बनाकर, पास बैठकर पापों का मुंडन करवाओ । इसके साथ-साथ निरंजन का जप करो, जप करने से उस में मन रच जाएगा --

~~निरंजन-का-जप-करो,-जप-क.~~
मुंद्रा ते घट भीतरि मुंद्रा कांइआ कीजै खिंथाता ।
पंच चेले वस कीजहि रावल इहु मनु डंडाता ।। 1 ।।
जोग जुगति इव पावसिता

391-- ये दैवी गुण इस प्रकार हैं -- आकाश से निर्लिप्तता, वायु से समदृष्टि भाव, अग्नि से मैल जलाना, पानी से आन्तरिक अशुद्धियों को धोना तथा पृथ्वी से धैर्य और क्षमाभाव ग्रहण करना ।

302-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 540

एकु सबदु दूजा होरु नासति कंद मूलि मनु लावसिता ।।1।।रहाउ।।
मूंहि मुंडाइऐ जे गुरु पाईऐ हम गुरु कीनी गंगाता ।
त्रिभवण तारणहार सुआमी एकु न चेतसि अंधाता ।।2।।
जपसि निरंजन रचसि मना ।[393]

राग सूही में गुरु नानक ने वास्तविक योगी के स्वरूप और लक्षणों को भी चित्रित किया है। वास्तविक योगी वही है जो सबको एक दृष्टि द्वारा समान भाव से देखता है --

एक द्रसटि करि समसरि जाणै जोगी कहीऐ सोई ।।2।।रहाउ।।[394]

वह सद्गुरु की सेवा करता है, परमात्मा के भय में अनुरक्त रहकर निर्भय होता है--

सतिगुरु सेवे सो जोगी होइ । भै रचि रहै सु निरभउ होइ।।4।।[395]

वह पंच कामादिकों को मारता है और अपने हृदय में सत्य धारण करता है --

पंच मारि साचु उरिधारे ।।रहाउ।।[396]

वह गुरु के शब्द की भिक्षा मांगता है और एक परमात्मा में लीन है,[397] सुख-दु:ख शोक और वियोग को एक समान समझता है, जिसका भोजन नाम है और जो स्थिर शरीर से निरंकारी परमात्मा का जप करता है,[398] हाट और बाट में जिसे अज्ञान की नींद नहीं आती और जिसका चित्त पर-स्त्री तथा पर-धन को देखकर चलायमान नहीं होता,[399] ऐसा साधक ही

393-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 212
394-- वही, पृ० 441
395-- वही, पृ० 225
396-- वही, पृ० 224
397-- वही, पृ० 500
398-- वही, पृ० 500
399-- वही, पृ० 539

वास्तविक योगी कहलाता है । राग रामकली में ही एक स्थान पर गुरु नानक मत्स्येन्द्रनाथ को वास्तविक योगी बनने की शिक्षा देते हुए कहते हैं कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार इन पाँचों को वश में करें और अपने आसन से तनिक भी विचलित न हो । इस प्रकार की युक्ति से योग कमाए क्योंकि वास्तविक योगी की भिक्षा भक्ति-भाव और परमात्मा का भय है, अमूल्य सन्तोष उसकी तृप्ति है, प्रभु का ध्यान रूप हो जाना उसका आसन है, सत्य नाम में चित्त लगाना उसकी ताड़ी अथवा ध्यान है, वह आशा में निराश रहकर अपना जीवन व्यतीत करता है । इस प्रकार का योगी परमात्मा को प्राप्त कर लेता है --

> सुणि माछिंद्रा नानकु बोलै । वसगति पंच करे नह डोलै ।।
>
> -- -- -- -- --
>
> आसा माहि निरासु वलाए । निहचउ नानक करते पाए ।।3।।[400]

7.15 1 शब्द-सुरति योग

वह योग जिसके द्वारा सुरति और शब्द का संयोग सिद्ध होता है और काल, दिशा तथा कार्य-कारण की सीमाएं शब्द में फिर से लीन हो जाती है, शब्द-योग अथवा सुरति योग कहलाता है । वह शब्द सबसे पहले भगवान के नाम के रूप में मुंह से निकलता है और अन्त में खुद शब्द-रूप ब्रह्म हो जाता है । इसे 'सहजयोग' भी कहा जाता है ।[401] विद्वानों ने 'सुरति' शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ किए हैं ।[402] जयराम मिश्र ने इस शब्द को चार रूपों

400--जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 495

401-- पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल(अनु), हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, लखनऊ : अवध पब्लिशिंग हाऊस, प्रथम संस्करण,पृ० 275

402-- वही, पृ० 533-34

में माना है -- प्रेम पूर्ण स्मरण, ज्ञान अथवा समझ, चित्तवृत्ति और श्रुति।[403] परन्तु साधनात्मक दृष्टि से भाई कान्ह सिंह ने गुरु के शब्द में जुड़ी हुई वृत्ति को 'शब्द-सुरत' कहा है।[404] प्रस्तुत प्रकरण में यही अर्थ उचित है। परमपद की प्राप्ति के लिए गुरु नानक ने इसी साधना मार्ग को प्रधानता दी है। इसके बिना मनुष्य संसार में आता-जाता रहता है और अपनी प्रतिष्ठा भी खो देता है --

साकत नरि सबद सुरति किउ पाइऐ ।
सबद सुरति बिनु आइऐ जाइऐ ।।10।।[405]

इसी बात पर गुरुजी ने पुन: इस प्रकार कहा --

सबद सुरति बिनु आवै जावै पति खोई आवत जाता है।8।।[406]

गुरु के शब्द की सुरति से ही वास्तविक सुख उत्पन्न होता है --

सबद सुरति सुखु ऊपजै प्रभ रातउ सुख सारु ।।1।।[407]

भवसागर पार करने का यही एकमात्र उपाय है। यह शब्द-सुरति ही नाम साधनाहै --

सुरति सबदि भवसागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे ।[408]

शब्द-सुरति योग के लिए कोई प्राणायाम नहीं करना पड़ता और न ही हठयोग की पुस्तकों का अध्ययन करना पड़ता है, यह सहज स्वाभाविक

403-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 834-35

404-- कान्ह सिंह, 1960, पूर्वोक्त, पृ0 117

405-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 662

406-- वही, पृ0 634

407-- वही, पृ0 154

408-- वही, पृ0 439

ही सुरति नाम अथवा शब्द में टिक जाती है । गुरु नानक द्वारा रचित योग की नाम-साधना के बिना कल्पना भी नहीं की जा सकती --

नानक बिनु नावै जोगु कदे न होवै देखहु रिदै बीचारे ।।68।।[409]

इस नाम अथवा शब्द की प्राप्ति गुरु द्वारा हो सकती है तभी योग-युक्ति का ज्ञान हो सकता है --

सतिगुर ते नामु पाईऐ अउधू जोग जुगति ता होई ।
करि बीचारु मनि देखहु नानक बिनु नावै मुकति न होई ।।72।।[410]

सारांश यह है कि गुरु नानक द्वारा प्रतिपादित योग में गुरु का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि नाम या शब्द की प्राप्ति गुरु द्वारा होती है। इसलिए जब तक गुरु की प्राप्ति नहीं होती, तब तक नाम नहीं मिलता और नाम के बिना योग प्राप्त नहीं होता --

बिनु सतिगुर सेवे जोगु न होई ।[411]

शब्द में सुरति टिकाना अथवा शब्द का मनन करना गुरु नानक के आदर्श व्यक्ति अर्थात् गुरमुख का योग है --

गुरमुखि जोग सबदि आतमु चीनै हिरदै एकु मुरारी ।।17।।[412]

ऐसा योगी मोह-माया से भरे हुए संसार सागर से आपही नहीं तरता बल्कि अपने कुल को भी तार देता है --

माइआ मोहु भवजलु है अवधू सबदि तरै कुल तारी ।।22।।[413]

409-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 546

410-- वही, पृ० 546

411-- वही, पृ० 546

412-- वही, पृ० 514

413-- वही, पृ० 515

जो प्राणी गुरु के शब्द में मरता है वह अहंकार आदि से ऐसा मरता है कि उसे फिर दूसरी बार नहीं मरना पड़ता । शब्द से ही परमात्मा की प्राप्ति होती है और हरिनाम प्यारा लगता है । बिना शब्द के यह जगत भटकता फिर रहा है और बारबार जन्म-मर रहा है --

सबदि मरै सो मरि रहै फिरि मरै न दूजी बार ।
सबदै ही ते पाइऐ हरिनामै लगै पिआरु ।।
बिनु सबदै जगु भूला फिरै जनमै वारोवार ।।7।। [414]

इस प्रकार के मरने के बिना अन्य कोई उपाय नहीं है । इससे भाग कर भला और कहां जाया जा सकता है --

सबदि मरै ता मारि मरु भागो किसु पहि जाउ । [415]

7.15.2 <u>सहजा-भक्ति और गुरुनानक वाणी</u>

'सहज' शब्द की व्याख्या मध्ययुग के सन्तों द्वारा हुई है। ये सन्त उस साधना के विरुद्ध थे जिसमें व्यर्थ के कर्मकाण्ड अथवा हठपूर्ण साधनों को अपनाया गया हो। इन्होंने सदा मध्यमार्ग को अपनाया । मध्यमार्ग को अपनाने की प्रक्रिया महात्मा बुद्ध से शुद्ध हो गई थी । सिद्धों और नाथों में भी मध्यमार्गी सहज साधना का प्रचलन रहा है । इस साधना का आरम्भ मन को वश करने से होता है । धर्म और समाज के क्षेत्र में सहज की भावना विशेष सन्तुलन पैदा करती है । गुरु नानक भी सहजयोग की ओर उन्मुख हुए । शब्द-सुरति योग अथवा वास्तविक योग ही गुरु नानक का सहजयोग है। राग आसा में गुरु नानक ने भरथरि योगी को अपने सहजयोग का परिचय देते हुए कहा है कि गुरु के शब्द को मन में बसाना ही मेरी मुंद्रा है,

---

414-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 144

415-- वही, पृ0 589

क्षमा को मैं कंथा के रूप में वरतदा हूं। मैं आत्मस्वरूपी शिव नगरी में आसन लगाकर बैठता हूं और सारी कल्पनाओं तथा वाद-विवादों को मैंने त्याग दिया है। गुरु का शब्द मेरे लिए शृंगी की शाश्वत ध्वनि है, यह सुहावना और पूर्णनाद अहनिशि होता रहता है । विचार ही मेरा खप्पर है, ज्ञान की बुद्धि मेरा डंडा है, परमात्मा को सर्वत्र विद्यमान समझना यही मेरी विभूति है । प्रभु की कीर्ति का ज्ञान हमारी मर्यादा है तथा माया से दूर रहना गुरुमुखों का पंथ है । परमात्मा की सर्वत्र अनेक वर्णों तथा रूपों में व्याप्त ज्योति मेरी अधारी है । परमात्मा जो कुछ करता है, उसे भला करके मानना ही मेरा सहज योग है और इसी योग के द्वारा अलौकिक निधि प्राप्त करता हूं ।--

गुर का सबदु मनै महि मुंद्रा खिंथा खिमा हढावउ ।

-- -- -- --

हरि कीरति रहरासि हमारी गुरमुखि पंथु अतीतं ।।3।।[416]

एक स्थान पर गुरु नानक ने योगी को सहजावस्था का लंगोटा पहनने की सलाह दी है --

सहज जगोटा बंधन ते छूटा ।4।।[417]

गुरु नानक वाणी में सहजा-भक्ति से सम्बन्धित अनेक उदाहरण मिलते हैं। उनका कहना है कि सहजावस्था की स्थिति प्राप्त होने पर परमात्मा के दरबार में प्रतिष्ठा मिलती है --

सहजे सहजु मिले सुखु पाइऐ दरगह पैधा जाए ।।4।।[418]

जिसके पास हरिनाम रूपी धन है उसका प्रतिदिन सहजावस्था में बीतता है --

इसु धन की देखहु वडिआई । सहजे माते अनदिनु जाई ।।3।।[419]

416-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 275

417-- वही, पृ0 500

418-- वही, पृ0 800

419-- वही, पृ0 580

परमात्मा से सहज-भाव से मिलने पर अज्ञान-निद्रा समाप्त हो जाती है --

सहज भाइ मिलीऐ सुखु होवै ।
गुरमुखि जागै नीद न सोवै ।।53।।[420]

सहजावस्था की स्थिति आ जाने पर सत्य प्रिय लगने लगता है --

सुखि सहजि आवै साचि भावै साच की मति किउ टलै ।।1।।[421]

इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए अन्यत्र गुरु नानक कहते हैं कि जिस स्त्री का हरि पति है और उसका मन गुरु की वाणी द्वारा मान गया है, उसने सहज सुख अर्थात् पूर्ण आनन्द प्राप्त कर लिया है --

सहजि सुखी वर कामणि पिआरी जिसु गुरबचनी मनु मानिआ।2।।[422]

ऐसी सोहागिन स्त्री सहज भाव से ससुराल में अपने पति को पहचान लेती है--

साहु रहै धन साचु पछाणिआ ।
सहजि सुभाइ अपणा पिरु जाणिआ ।।2।।[423]

गुरु नानक प्राणीमात्र से कहते हैं कि गुरु के बिना सहजावस्था नहीं मिलती--

बिनु गुर सेवे सहजु न होवै ।।7।।[424]

गुरु द्वारा सहजावस्था मिल जाए तो अत्यन्त सुख मिलता है और यम का तीर भी नहीं लगता--

सहजे ते सुखु अगलो न लागै जम तीरु ।।1।।[425]

ऐसा व्यक्ति सहज ही सत्य में समा जाता है --

सहजे ही सचि समाइआ ।9।।[426]

सहजावस्था का रसास्वादन सभी के वश की बात नहीं। मनमुख तो इससे दूर

420-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 544
421-- वही, पृ० 459
422-- वही, पृ० 745
423-- वही, पृ० ~~745~~ 268
424-- वही, पृ० 284, 143
425-- वही, पृ० 141
426-- वही, पृ० 341, 322

भागते हैं। ऐसे लोगों के विषय में गुरु नानक ने कहा है --

साध सभा महि सहज न चाखिआ जिहवा रसु नहीं राई ।
मनु तनु धनु अपना करि जानिआ दर की खबरि न पाई ।।
अखी मीटि चलिआ अंधिआरा घरु दरु दिसै न भाई ।
जम दरि बाधा ठउर न पावै अपुना कीआ कमाइ ।।3।।[427]

गुरु नानक कहते हैं कि मुझे सद्गुरु ने सहजावस्था से मिला दिया है और पूर्ण सुख की उपलब्धि हो गई है --

हम घरि साजन आए । साचै मेलि मिलाए ।।
सहजि मिलाए हरि मनि भाए पंच मिले सुखु पाइआ ।।1।।[428]

उपर्युक्त से प्रतीत होता है कि गुरु नानक का सहजयोग अथवा सहजा-भक्ति परम्परिक ~~सहस्र~~ सहजयोग से मुक्त था। यह युग की परिस्थिति के अनुसार ऐसा योग है जो देश-काल की सीमाओं से मुक्त, चिर-नवीन तथा सब द्वारा ग्रहण करने योग्य है ।

7.16 पवित्रता एवं नानक वाणी

कोई भी व्यक्ति पूजा-पाठ, जप-तप, कीर्तन आदि साधन करता रहे, लेकिन यदि व्यवहार शुद्ध नहीं है तो अन्त:करण शुद्ध कैसे होगा ? बल्कि पूजा-पाठ, जप, तप, व्रत आदि का प्रथम फल यही होता है कि मन, बुद्धि, चित और अहंकार शुद्ध सात्त्विक हो जाएं, जिससे शुद्ध, ज्ञान, प्रेम तथा सत्य के बोध की उपलब्धि होती है । गुरु नानक मनुष्य की आन्तरिक पवित्रता पर बहुत बल देते थे। उनके विचारों के अनुसार मानव जन्म पूजनीय है, इसलिए

427-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 389

428-- वही, पृ0 454, 135

व्यक्तिगत, सामाजिक, सभी क्षेत्रों में मनुष्य को नैतिक कर्तव्य का पालन करना चाहिए । उनका कहना था कि वहीलोग पवित्र कहे जा सकते हैं जिनके अन्तर्गत प्रभु का निवास है । ऐसे लोग पवित्र नहीं कहलाते जो केवल शरीर को धोते हैं । यथा--

सूचे एहि न आखीअहि बहनि पिंडा धोइ ।
सूचे सेई नानका जिन मनि वसिआ सोइ ।।36।।[429]

गुरु नानक सत्य और ज्ञान-रत्न से भरे हुए मन को भी पवित्र मानते हैं --[430]
सो मनु निरमलु जितु साचु अंतरि गिआन रतनु सारे ।।5।।

उनकी दृष्टि में प्रभु का पद पवित्र है। प्रभु के अतिरिक्त अन्य सब अपवित्र हैं--
'नानक निरमलु अमर पदु'[431] ।

कुछ लोग तीर्थयात्रा करते समय अनावश्यक दूसरों की निन्दा करते हैं, जोश में आकर अपनी प्रशंसा करते हैं, चाहे श्रोतागण सुनना चाहे या नहीं, इसका ध्यान न रखकर बोलते रहते हैं । ऐसे लोगों की तीर्थयात्रा सफल नहीं मानी जाती बल्कि ये लक्षण अहंकार की प्रबलता में होते हैं । गुरु नानक ऐसे लोगों से कहते हैं यदि तुम्हारा मन पवित्र नहीं है तो तीर्थयात्रा अथवा स्नानादि पवित्रता सब व्यर्थ है --

अंतरि मैलु तीरथ भरमीजै ।
मनु नहीं सूचा किआ सोच करीजै ।।[432]

सारांश यह है कि जिसका हृदय शुद्ध एवं सरल है, जिसकी बुद्धि सात्त्विक है, जो प्रभु-प्रेम की पावन गंगा की धारा में प्रतिदिन स्नान करता है, ऐसा व्यक्ति गुरु नानक की दृष्टि में पवित्र है। पवित्र हृदय ही सदा शुद्ध निर्दोष दृष्टि से सबको देखता है ।

429-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 350
430-- वही, पृ0 364
431-- वही, पृ0 806, 404
432-- वही, पृ0 507

7.17 संयम की अवधारणा एवं नानक वाणी

'संयम' शब्द का अर्थ है -- रोक, दाब, इन्द्रिय-निग्रह, चित्तवृत्ति का निरोध, आत्म-निग्रह, हानिकारक या बुरी वस्तुओं से बचने की क्रिया, परहेज़, बांधना, बंधन, बंद करना, मूंदना, योग में ध्यान, धारणा और समाधि तीनों का वाचक शब्द, मनोनिग्रह[433ए]। पांच तत्वों से निर्मित मनुष्य के शरीर में पांच विकार भी विद्यमान हैं। ये हैं --- काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार। इन पांचों पर यदि नियन्त्रण न रखा जाए तो ये विकार का रूप धारण कर लेते हैं। पवित्र तथा सात्त्विक जीवन जीने के लिए इन पर नियन्त्रण आवश्यक है। इन्हें पांच विकार इसलिए कहा गया है क्योंकि ये बड़े प्रबल हैं और इनका असर विष के समान तीखा है। इनमें काम सबसे उत्तेजक तथा रसदायक जज़्बा है। काम की रुचि मनुष्य को बुरे आचरण वाला बना देती है। अहंकार की वृत्ति क्रोध को जन्म देती है। लोभी व्यक्ति पराई वस्तुओं तथा पराई स्त्री पर अपनी दृष्टि रखता है। मोह की भावना मनुष्य में स्त्री, संतान, सांसारिक पदार्थों के लिए अनावश्यक प्यार पैदा करती है।

गुरु नानक देव इन पांच विकारों की मार का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ये पांच हैं और व्यक्ति अकेला ही होता है अर्थात् पांच विकारों के शिकंजे में आया हुआ व्यक्ति दु:ख भोगता है। ये पांचों मिलकर नित्यप्रति मनुष्य को लूटते रहते हैं --

> अवरि पंच हम एक जना किउ राखउ घरबारु मना ।
> मारहि लूटहि नीत नीत किसु आगै करी पुकार जना ।।1।।[433]

433-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 211

433ए-- रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश (पांचवां खण्ड), प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1966, पृ0 230

संयम पर बल देते हुए गुरु नानक ने योगियों को काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार -- इन पांचों को वश में करने की राय दी है --

सुणि माछिंद्रा नानकु बोलै । वसगति पंच करे नह डोलै ।।1।। [434]

इस प्रकार मंद वासनाओं को मार कर जीवित ही इस प्रकार मरना चाहिए कि अन्त में पछताना न पड़े --

जीवदिआ मरु मारि न पछोताईऐ । [435]

वास्तव में इन्द्रियों को वश में किए बिना मनुष्य के हृदय में ईश्वर के प्रति झुकाव पैदा नहीं हो सकता । किन्तु, इन्द्रियों पर नियन्त्रण करना सबके वश में नहीं है । यह तो कोई विरला ही होता है जिसे सद्गुरु की दीक्षा मिली हो --

बाघु मरै मनु मारीऐ जिसु सतिगुर दीखिआ होइ ।।

अर्थात् मन के मारने से सांसारिक भय रूपी बाघ मर जाता है । गुरु नानक कहते हैं 'मैंने अपने मन पर नियन्त्रण रख कर देख लिया है कि ईश्वर के सिवा अन्य कोई मित्र नहीं --

आपु बीचारि मारि मनु देखिआ तुम सा मीतु न अवरु कोइ ।3।। [436]

इन पांच विकारों की तृष्णा रूपी अग्नि मनुष्य के मन में प्रज्वलित होती रहती है । गुरु नानक इसे बुझाने का उपाय भी जानते हैं । यथा--

अगनि मरै जलु लोड़ि लहु विणु गुर निधि जलु नाहि । [437]

अर्थात् तृष्णा रूपी अग्नि को मारने के लिए नाम-रूपी जल आवश्यक है किन्तु यह गुरु निधि के बिना प्राप्त नहीं होता।

434-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 495

435-- वही, पृ० 193

436-- वही, पृ० 264

437-- वही, पृ० 806

सिरी राग में भी गुरु नानक ने आन्तरिक अग्नि का निवारण करने की बात की है किन्तु इसके लिए गुरु की शरण लेनी आवश्यक है --

> मन रे गुरमुखि अगिनि निवारि ।
> गुर का कहिआ मनि वसै हउमै तृसना मारि ।।1।।रहाउ।। [438]

मनोकामनाओं को नियन्त्रण में रखना, जीवन, आचरण स्वस्थ्य तथा स्वाभिमान के लिए आवश्यक है । विषय विकारों में ग्रस्त व्यक्ति अपना जीवन नष्ट कर देता है । काम, क्रोध आदि दोष भक्ति के विरोधी हैं । ये विकार मन को सांसारिक बंधनों में डालकर उसे दूषित कर मनुष्य को भक्ति से विमुख करते हैं । अत: साधक के लिए इनका परित्याग आवश्यक है। इनका निवारण होना ही चाहिए। गुरु नानक देव ने इन सभी दोषों से दूर रहने की शिक्षा दी है किन्तु इन विकारों की मार से बचना इतना आसान नहीं है । माया के आक्रमणकारी विकारों से बचने के लिए गुरु नानक ने गुरु-शरण में जाने का मार्ग बताया है । गुरु अथाह शक्ति का मालिक है । मनुष्य उससे शक्ति प्राप्त करके ही माया के आक्रमणों को पछाड़ सकता है।

7.18 मनन

गोपालानन्द शास्त्री लिखते हैं ---"श्रवण किए हुए अर्थ को युक्ति संगतता का मन में बैठाना मनन है ।" [439] यह श्रवण से आगे की स्थिति है। ब्रह्म का एकाग्रचित्त होकर ध्यान करना मनन कहलाता है । जिस मनुष्य ने श्रवण करके भलीभांति मनन कर लिया, उसकी अवस्था का वर्णन करना असम्भव है । अगर कोई वर्णन करना भी चाहेगा, तो उसे बाद में पछताना ही पड़ेगा। मनन की अवस्था को अभिव्यक्त करने के लिए न पर्याप्त कागज़

438-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 122

439-- गुरमुखानन्द, पूर्वोक्त, अक्तूबर 1987,अंक, पृ० 29

है, न कलम और न ही सुयोग्य लेखक । वास्तविक मनन तो परमात्मा ही जानता है --

मंनै की गति कही न जाइ । जे को कहै पिछै पछुताइ ।।
कागदि कलम न लिखणहारु । मंनै का बहि करनि वीचारु ।।12।।[440]

मनन के बहुत लाभ होते हैं । यथा--- मन और बुद्धि के सुरति उत्पन्न होना, सारे भुवनों--लोकों का ज्ञान होना, आवागमन के चक्रों से मुक्ति तथा यम के साथ न जाना इत्यादि। गुरु नानक के शब्दों में --

मंनै सुरति होवै मनि बुधि । मंनै सगल भवन की सुधि ।।
मंनै मुहि चोटा ना खाइ । मंनै जम कै साथि न जाइ ।।[441]

नाम के मनन से मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट का सामना नहीं करना पड़ता। मनुष्य प्रतिष्ठा के साथ प्रभु के दरवाज़े पर जाता है अर्थात् स्वाभिमान से आलौकिक आनन्द लेता है । साधक अपनी मंजिल या लक्ष्य तक सहजभाव से पहुंच जाता है और उसका सम्बन्ध धर्म से जुड़ने लगता है --

मंनै मारगि ठाक न पाइ । मंनै पति सिउ परगटु जाइ ।।
मंनै मगु न चलै पंथु । मंनै धरम सेती सन बंधु ।।14।।[442]

नाम-मनन की महिमा का गुणगान करते हुए गुरु नानक आगे कहते हैं कि नाम के मनन से मोक्ष-द्वार की प्राप्ति होती है । मननशील व्यक्ति परिवार अथवा कुटुम्ब को भी आधारयुक्त बना लेता है । वह स्वयं तो तरता ही है, साथ ही अपने शिष्यों का भी उद्धार कर देता है। ऐसे मननशील साधक को

440-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 84

441-- वही, पृ0 84

442-- वही, पृ0 84

भिक्षा के निमित्त दर-दर की ठोकरें नहीं खानी पड़ती --

मंनै पावहि मोख दुआरु । मंनै परवारै साधारु ।।
मंनै तरै तारे गुरु सिख । मंनै नानक भवहि न भिख ।।25।। 443

राग सारंग में गुरु नानक कहते हैं कि मनन से अहं भावना नष्ट होती है जिससे अन्य रोग भी नष्ट हो जाते हैं, मन में शान्ति उत्पन्न होती है और प्रभु मनमें निवास करता है --

नाउ मंनिए गई सभि रोग गवाइआ ।
नाइ मंनिऐ सांति उपजै हरि मनि वसाइआ ।।9।। 444

मनन से सारे भ्रम कट जाते हैं फिर दुःख नहीं होता। गुरु नानक उपदेश देते हैं कि पूर्ण गुरु से ही नाम के ऊपर मनन किया जाता है --

नाइ मंनिऐ भ्रमु कटीऐ फिरि दुखु न होइ ।
नानक पूरे गुर ते नाउ मंनीए जिन देवै सोइ ।।20।। 445

मननशील प्राणियों पर गुरु नानक कुर्बान होना पसन्द करते हैं --

नानक जिनी सुणि कै मंनिआ हउ तिना विटहु कुरबाणु।। 11।। 446

अतएव यह सिद्ध होता है कि मनन की अवस्था अवर्णनीय है। इस स्थिति को मानने वाले अपने मन में ही इसको समझ सकते हैं । गुरु नानक ने मनन के बहुत लाभ बताए हैं, किन्तु खेद तो यह है कि ऐसे मानने वाले बहुत कम हैं। परमात्मा के परम दया और प्रेममय स्वभाव को समझकर उसका नित्य-

---

443-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 84

444-- वही, पृ0 734

445-- वही, पृ0 735

446-- वही, पृ0 468

निरन्तर मनन करते हुए उसके प्रेम में मुग्ध रहना चाहिए, यही गुरु नानक का उपदेश है ।

7.19 आचरण

जिस पुरुष के प्रेम और प्रभाव की अमृतमयी वाणी का श्रवण, पठन और मनन ही परम कल्याण करने वाला है, उस पुरुष के स्वरूप को लक्ष्य में रखकर, उसके गुण और चरित्रों को सर्वथा आदर्श मानकर और उसके वचनों को परमधर्म समझकर जो मनुष्य तदनुसार आचरण करता है उसकी तो बात ही क्या है । उन्नति एवं विकास के लिए मानव जीवन में धर्ममय आचरण विशेष महत्त्व रखता है । गुरु नानक जीवन का पुरुषार्थ है, उनके व्यक्तिगत जीवन-मूल्य समाज के आयाम हैं, क्योंकि उनका आचरण धर्म-मर्यादा-सम्मत है।

'आचरण' शब्द का अर्थ है -- करना, बरतना, अनुसरण, शुद्धि, लक्षण, चरित्र, चाल-चलन, आगमन, नियम, रथ, गाड़ी इत्यादि ।[447] गुरु नानक सत्य और पवित्र आचरण पर बल देते हैं । सच्चे और पवित्र आचरण वालों ने सत्य को अपना मार्ग बनाया हुआ है --

सच सूचे सचु राहा है ।।4।।[448]

बुरे आचरण वाली स्त्री की परिभाषा देते हुए गुरु नानक कहते हैं कि वह मन की काली और अपवित्र होती है --

महल कुचज्जी मड़वड़ी काली मनहु कसुध ।[449]

ऐसी स्त्री अवगुणों से भरपूर होती है और उससे प्रियतम रमण नहीं करता। इसके विपरीत जो स्त्री सच्चे आचरण वाली, सच्ची रहनी वाली और परिवार

447-- कालिका प्रसाद (सं०), पूर्वोक्त, पृ० 137

448-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 637

449-- वही, पृ० 666

में पूरा उतरने वाली है, वह भली है। ऐसी स्त्री प्रियतम से अहनिश प्यार करती है --

साचु सील सचु संजमी सा पूरी परवारि ।
नानक अहिनिसि सदा भली पिर कै हेति पिआरि ।।4।। [450]

गुरु नानक उन व्यक्तियों को पवित्र आचरण वाला मानते हैं जो गुरु के शब्द से मिल चुके हैं। ऐसे लोगों का दरगाह में मान होता है --

सबदि मिले से सूचाचारी साची दरगह माने ।....3।। [451]

इन्होंने युगीन यथार्थ को लेकर अपनी वाणी के माध्यम से समाज को आचरण सम्बन्धी लोकव्यापी दृष्टि प्रदान की है। यथार्थ के बिना तो आचरण भी व्यर्थ है। इसलिए गुरु नानक ने कर्तव्य को छोड़कर माला फेरने का कहीं भी आग्रह नहीं किया। उन्होंने मानव-जीवन को अमृतमयी वाणी द्वारा नीति एवं आचरण की व्यवस्था प्रदान की है। वास्तविक यथार्थ है -- धर्म और आचरण, और, धर्म का पालन आचरण के द्वारा ही किया जा सकता है। इसलिए उन्होंने सदैव सत्य से भी ऊपर सत्य आचरण को माना है --

सचहु ओरै सभु को उपरि सचु आचारु ।।5।। [452]

7.20 उपसंहार

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत जो विवेचन किया गया उससे इस बात की पुष्टि हुई है कि गुरु के बिना ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है। संसार में साधारण

450-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 666

451-- वही, पृ0 789

452-- वही, पृ0 155

से साधारण काम सीखने के लिए गुरु की शरण लेनी पड़ती है । ठीक इसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में कुतूहल शान्ति के लिए किसी परम पुरुष की अपेक्षा अविवाद है। गुरु नानक ज्ञानाश्रयी शाखा के भक्त कवि थे। अत: भगवान की प्राप्ति के लिए उसका ज्ञान होना अनिवार्य है । भगवान साध्य होता है और भक्त साधक और गुरु साधक को साध्य का ज्ञान कराता है और साथ ही उसकी प्राप्ति का साधन भी । अत: गुरु का होना अनिवार्य है । नानक वाणी में गुरु के स्वरूप, सामर्थ्य और महत्व का जो प्रतिपादन हुआ है, वह वस्तुत: भारतीय गुरु-परम्परा में अद्वितीय है । गुरु के सम्बन्ध में लगभग सभी प्राचीन स्थापनाओं को किसी न किसी रूप में ग्रहण कर लिया गया है। गुरु का जितना विस्तृत प्रतिपादन नानक वाणी में हुआ है, उतना अन्य किसी एक साधक की वाणी में नहीं हुआ । वास्तव में गुरु नानक की साधना-पद्धति में गुरु का स्थान मेरुदण्ड की भांति है। इसके बिना भक्ति-साधना सम्पन्न नहीं हो सकती, साधना की पूर्णता की कल्पना करना भी असम्भव है । गुरु नानक की साधना नाम की साधना है कोई दुरूह साधना नहीं, फिर भी दुरूह साधना वाले तान्त्रिकों और नाथ-योगियों के गुरु सम्बोध से गुरु नानक की गुरु संकल्पना विशेष भिन्न नहीं है। इस सन्दर्भ में आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस साधक की वाणी में गुरु के स्वरूप और महत्व का इतना अधिक विश्लेषण हुआ है, उसका अपना कोई गुरु नहीं था। परमात्मा को ही गुरु नानक ने गुरु माना था। गुरु नानक ने गुरु और गोविन्द दोनों के पर्याय स्वीकार किया है। वस्तुत: वे जब गुरु के सूक्ष्म रूप को प्रकट करना चाहते हैं, तब गुरु का स्वरूप प्रभु के स्वरूप से अपना सामंजस्य स्थापित करता है और जब वे प्रभु के स्थूल रूप को चित्रण करते हैं तो सम्पूर्ण व्यक्तित्व गुरु का रूप धारण कर लेता है । गुरु और गुरु शब्द में किसी प्रकार का अन्तर नहीं माना गया। वास्तव में गुरु का वास्तविक स्वरूप तो शब्द है, शरीर तो इसने केवल जीवों को ज्ञान देने के लिए धारण किया है । इस शरीर को गुरु और शिष्य दोनों को छोड़ना

है । अत: शिष्य का वास्तविक स्वरूप सुरति अथवा ध्यान है जो अन्त में जाकर उस शब्द में समा जाएगा। शब्द-ज्ञान की प्राप्ति के लिए घर त्यागने की आवश्यकता नहीं है, सद्गुरु संसार में रहते हुए संसार की बुराइयों से अलिप्त रहने की युक्ति बताता है । वह युक्ति यही है कि नाम अथवा शब्द से अपनी सुरति को लगाए रखना ।

गुरु नानक ने देह को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है । देह ग्रहण किए जाने पर ही आत्मतत्व के लिए मनुष्य रूप में परम साधना, तपस्या तथा भक्ति का अवसर मिलने की सी भावना बन सकती है । ईश्वर हमें मनुष्य शरीर प्रदान कर जन्म मरण और पुनर्जन्म से छुटकारा पाने का अवसर देता है। गुरु नानक की यह आकांक्षा थी कि लोग ईश्वर से ऐक्य स्थापित कर सकें और उसे बनाए रखें जैसे स्त्री अपने सौन्दर्य, नेकी, सतीत्व, श्रद्धा, प्रेम तथा भक्ति से गुण मण्डित होकर अपने पति का सायुज्य प्राप्ति किए रहती है ।

गुरु नानक के अनुसार यह दुनिया और दुनिया के सम्बन्ध झूठे हैं । यह दुनिया सत्य प्रतीत होती है, लेकिन सत्य होती नहीं। सत्य तो ईश्वर है, जो निराकार और रहस्यमय है । इसीलिए यह दुनिया माया के कारण सत्य प्रतीत होती है । माया का आवरण हट जाने के बाद ही सत्य का अहसास हो सकता है । आधुनिक लोगों के अनुसार यह दुनिया और उसके सम्बन्ध सत्य हैं । अगर सचमुच ऐसा होता तो आज मध्ययुगिन सन्तों-भक्तों की रचनाओं की प्रासंगिकता नहीं होती। नानक वाणी में `माया` का बड़ा विषद वर्णन किया गया है। गुरु नानक की दृष्टि में जीव और ब्रह्म के बीच अन्तर डालने वाली विश्वासघातिनी का नाम ही माया है । नानक वाणी में शांकर मायावाद के प्रभाव भी स्पष्ट लक्षित होते हैं । इस में माया को विधात्री रूप को `कुदरत` कहा गया है ।

मन मनुष्य के शरीर में स्थित अत्यन्त महान शक्ति है, जिसके द्वारा इन्द्रियों के संचालन का कार्य होता है । यह बड़ा चंचल और बलवान है, इसे वश में करना बड़ा कठिन है। इसलिए नानक वाणी में मन सम्बन्धी बहुत चर्चा हुई है, इसे समझाने का अनथक प्रयत्न किया गया है। इसकी प्रवृत्तियों को प्रभु-भक्ति के अनुकूल करने का प्रयास किया है, इसे मारने के लिए यही उपाय बेहतर है ।

माया के प्रपंचों से मुक्ति पाने के लिए प्रभु का `ध्यान` करना आवश्यक है । गुरु नानक प्रभु का ध्यान करना आवश्यक मानते हैं । वास्तव में नाम के साथ नामी की स्मृति होना अनिवार्य है। ध्यान करते समय मनुष्य के मन में जैसी भावना होती है, उसी के अनुरूप फल मिलता है । अतएव साधक को भगवान् के प्रेम में विह्वल होकर निष्काम भाव से नित्य-निरन्तर दिन-रात कर्तव्य कर्मों को करते हुए भी प्रभु का ही ध्यान करना चाहिए अन्य बातों का नहीं । ध्यान के साथ-साथ नाम का जप बहुत आवश्यक है और सभी जपों में लिव-जप श्रेष्ठ है और अधिक कल्याणकारी है । कुछ लोगों का कहना है कि उन्होंने भगवान के नाम का बहुत जप किया परन्तु उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ, तो इसका उत्तर यह हो सकता है कि या तो विधिसहित जप का अभ्यास नहीं किया होगा या अपने जपरूप में परमधन को छोड़कर तुच्छ सांसारिक भोगों को खरीद लिया होगा या फिर ध्यान भगवान का न करके अन्य वस्तुओं की ओर लगाया होगा। अत: नामजप के साथ-साथ ध्यान अतिआवश्यक है ।

जितने भी संसार के पदार्थ हैं, सभी नाशवान और क्षणभंगुर हैं । धन, मकान, ऐश्वर्य आदि जो भी वस्तुएं हैं, इनमें से कोई भी वस्तुत: हमारी नहीं है । जिस शरीर के भोग के लिए मनुष्य वस्तुओं का संग्रह करते हैं, वह भी उनका नहीं है। देखते-देखते यह जल कर भस्म हो जाता है या कब्र में मिट्टी

बन जाता है । जब शरीर ही अपना नहीं है, तो अन्य वस्तुएं अपनी कैसे हो सकती हैं ? इसलिए अन्य वस्तुओं के संग्रह की अपेक्षा नानकवाणी में हरिनाम संग्रह पर बल दिया गया है। यही सर्वश्रेष्ठ धन है । गुरुनानक ने मनुष्य को प्रभु के भय में रहने का उपदेश भी दिया है क्योंकि जिस व्यक्ति को परमात्मा का भय है, उसे अन्य भय नहीं लगते । वह भययुक्त हो जाता है ।

गुरु नानक देव कर्म-सिद्धान्त में पूरी तरह से विश्वास करते हैं । उनका कथन है कि कर्मों का फल मनुष्य को भोगना ही पड़ता है। ईश्वर सत्य है इसलिए वह प्रत्येक प्राणी का कर्म के अनुसार ही न्याय करता है । गुरु नानक का विचार है कि नेक कर्म करने से ही मनुष्य का परमात्मा से मेल हो सकता है । दूसरों के अधिकार को छीनना मनुष्य के जीवन के उद्देश्य की प्रमुख प्रवृत्ति बन जाने से सामाजिक व्यवस्था असन्तुलित हो जाती है । जो वस्तु अपनी नहीं है, जिस पर दूसरों का अधिकार है और बिना उसकी अनुमति के उसका लेना चोरी कहलाता है । गुरु नानक ऐसी भावना त्यागने और अस्तेय पर बल देते हैं क्योंकि अस्तेय का पालन करने से साधक में विरक्ति का भाव पैदा होता है ।

नानक वाणी में नाना रूपात्मक जगत् को मिथ्या, स्वप्नवत्, क्षणभंगुर, भयानक, दुस्तर एवं सेमर के फूल के समान बताया गया है। सृष्टि के चार युगों की प्रक्रिया को गुरु नानक ने चौपड़ का खेल कहा है, इस जगत् के समस्त प्राणी इसके मोहरे हैं, जिनको परमात्मा स्वेच्छा से फेंकता है। उन्होंने इसे कागज़ का दुर्ग कहा है जो पानी की एक छोटी-सी बूंद से भी नष्ट हो सकता है ।

गुरु नानक ने मुक्ति को परमात्मा में एकात्मकता अथवा लीनता की भावना माना है। जब अज्ञान का पर्दा हट जाता है तो पहले से प्राप्त हुई

वस्तु प्राप्त हो जाती है। गुरु नानक वैकुण्ठ गमन वाली मुक्ति में विश्वास नहीं रखते थे क्योंकि उनकी सर्वप्रमुख अभिलाषा मुक्ति नहीं बल्कि प्रभु का दर्शन अथवा साक्षात्कार है; इसके सामने अन्य सब व्यर्थ है। वास्तव में अद्वैतावस्था ही गुरु नानक की भाषा में मुक्ति है । यहां अद्वैतवादियों और कबीर की मुक्ति सम्बन्धी धारणाओं से गुरु नानक की भावना की दूर तक समानता है । उन्होंने मुक्ति की प्राप्ति बाह्य कर्मकाण्डों द्वारा संभव नहीं मानी, उसके लिए परमात्मा का हुक्म परम आवश्यक है और वह प्रभु की कृपादृष्टि द्वारा प्राप्त होता है । गुरु, गुरु-शब्द, गुरु-सेवा, भाव-भक्ति का मुक्ति प्राप्ति में महत्त्वपूर्ण स्थान है । अहंकार-त्याग और साधु-संगति की प्राप्ति मुक्ति की आधारभूत आवश्यकताएं हैं । मुक्ति मरणोपरान्त प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं, जीवित अवस्था में भी इसकी प्राप्ति हो सकती है । जीवन मुक्त, विदेहमुक्त और नितमुक्त व्यक्तियों में गुरु नानक केवल जीवनमुक्त व्यक्ति प्रति आकर्षित हुए हैं । गुरु नानक का जीवन मुक्त व्यक्ति मानवता के कल्याण के लिए बहुत उपयोगी है। ऐसी धारणा मुक्ति परम्परा को गुरु नानक की मौलिक देन है । आधुनिक युग में भी मानवता को सुखी बनाने के लिए जीवन-मुक्त व्यक्ति बहुत योगदान दे सकता है ।

योग सम्बन्धी विश्लेषण से यह भलीभांति स्पष्ट होता है कि गुरु नानक सिद्धान्त रूप से वास्तविक योग के विरोधी नहीं थे । वह योगमार्ग की हठपूर्वक क्रियाओं और व्यर्थ के आडम्बरों के विरोधी थे क्योंकि इनके फलस्वरूप सारा जन-जीवन नैतिक स्तर से गिर चुका था। नानक वाणी में स्थान-स्थान पर हठयोग की क्रियाओं और उपकरणों का विरोध हुआ है और पाखण्डी योगी को योग की वास्तविक युक्ति से परिचित कराया है । गुरु नानक ने शब्द-सुरति योग की स्थापना की और उसके वास्तविक महत्त्व से लोगों को अवगत कराया। उनका शब्द-सुरति योग ही सहजयोग है ।

गुरु नानक का सहजयोग परम्परित सहजयोग से मुक्त, चिर नवीन और सब मनुष्यों द्वारा ग्रहणीया योग है क्योंकि यह सम्पूर्ण मानवजाति का कल्याण करने वाला है ।

धर्म के स्वरूप एवं विविध तत्वों को केवल जान लेना ही पर्याप्त नहीं है प्रत्युत उन्हें अपने जीवन में आत्मसात् कर लेने की आवश्यकता है। इसलिए भारतीय संस्कृति में `आचार : परमो धर्मः ` कहा जाता रहा है । आचार-शास्त्र ही मनुष्य को जीवन-यापन की उत्तम पद्धति सिखाता है। गुरु नानक वाणी में सत्याचार को बहुत महत्त्व प्रदान किया गया है । सत्याचार को सर्वोत्तम मानते हुए सभी धर्म-कर्मों को इससे नीचे माना गया है। इसके अतिरिक्त धर्म आचरण, दया, परोपकार, क्षमा, धैर्य, पाप न करना, निर्वैरता तथा ज्ञान आदि गुणों को आचार में लाने पर बल दिया गया है। उत्तम गुण और उत्तम आचरण शीघ्र ही परमात्मा की प्राप्ति के लिए सहायक सिद्ध होते हैं । अतः मनुष्य को उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिए ईश्वर की शरण ग्रहण करके निष्काम प्रेमभाव से ईश्वर का अनन्य चिन्तन करना चाहिए ।

नाम को मानने वाले की दशा कही नहीं जा सकती। यदि कोई वर्णन करने का प्रयत्न भी करे तो उसे लज्जित होना पड़ेगा क्योंकि कहने में त्रुटि रह ही जाती है । कागज़ पर लिखने वाली ऐसी कोई कलम नहीं है जिससे नाम को मानने वाले का विचार व्यक्त हो सके । उस माया रहित का ऐसा नाम है जो कोई जानता है उसी का मन मानता है ।

नानक वाणी में माया के पांच वाणों से बचने के लिए गुरु शरण में जाने का मार्ग बताया गया है और इन दोषों से दूर रहने की शिक्षा दी गई है । इन्द्रिय संयम और मनोविरोध से ही मनुष्य आदर्श मानव की

परिकल्पना कर सकता है, जिन्हें इसका महत्व विदित नहीं है उनकी दृष्टि में विषय-भोग तथा धन ही सब कुछ है। गुरु शरण में जाने से मनुष्य इन विकारों पर विजय पा सकता है ।

अष्टम् अध्याय

गुरु नानक वाणी में धर्म साधना के बाह्य उपक्रम

गुरु नानक वाणी में साधना के तत्व और सोपानगत अध्याय का सन्दर्भ-बिन्दु रहा है जिनमें गुरु की अवधारणा एवं महत्व, शरीर सम्बन्धी दृष्टि, माया, मन, ध्यान, जाप, नाम-संग्रह, भय एवं भयमुक्ति, कर्म, अस्तेय, मोक्ष, योग वास्तविक और बाह्यरूपी, जगत्, पवित्रता, संयम, मनन एवं आचरण समाविष्ट हैं। प्रस्तुत अध्याय 'गुरु नानक वाणी में धर्म साधना के बाह्य ~~उपक्रम~~ उपक्रम' के परिप्रेक्ष्य में जिनके अन्तर्गत तीर्थ, तीर्थस्नान, सेवा, दया, दान, मानव मात्र के प्रति समभाव, कामनाओं का संस्कार, अहंकार का परित्याग, भौतिक-आध्यात्मिक रोग मुक्ति, पाखण्ड-खण्डन, धर्म की बाह्यरूपिता, स्वार्थहीनता एवं परिवार सम्बन्ध अथवा मानवीय अन्तर्सम्बन्ध आदि समाविष्ट हैं, विवेचन-विश्लेषण अपेक्षित है।

गुरु नानक के अनुसार बिना भाग्य के भक्ति नहीं मिलती। इस की प्राप्ति के लिए मनुष्य को भांति भांति के प्रयत्न करने पड़ते हैं क्योंकि इसकी स्थिति दुष्प्राप्य है। यद्यपि भक्ति अतत: एक ~~अर्न~~ आन्तरिक मानसिक स्थिति है, तथापि उसकी प्राप्ति के निमित्त की जाने वाली साधनाओं में कुछ बाह्य उपक्रम भी है जिनका वर्णन करना अभीष्ठ होगा।

8.1 तीर्थ की अवधारणा

भारत के लोगों की वर्षों से तीर्थों के प्रति अगाध श्रद्धा बनी रही है । कई लोग अपनी कामनाओं की पूर्ति हेतु प्रतिवर्ष तीर्थयात्रा पर जाते हैं और वहां नदी या सरोवर इत्यादि के जल में स्नान करते हैं। लोगों का विश्वास है कि तीर्थ-स्नान करने से पाप दूर हो जाते हैं तथा सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति के साथ-साथ मोक्ष भी प्राप्त हो जाता है । लोगों की ऐसी भी धारणा है कि यदि जीवनकाल में व्यक्ति तीर्थयात्रा नहीं कर सका तो मृत्यु के पश्चात् उसकी अस्थियां तीर्थों के जल में प्रवाहित करने से उसको स्वर्ग की प्राप्ति होती है। परन्तु तीर्थ-स्नान मात्र करने से पाप दूर नहीं होते । `तीर्थ` शब्द का अर्थ करते हुए बलदेव नैष्ठिक लिखते हैं ---- `तरन्ति जना दु:खेभ्यो यैस्तानि तीर्थानि` अर्थात् जिनके द्वारा लोग दु:खों से तैर जाते हैं, वे तीर्थ हैं । जो डुबो कर मारने वाले हैं, उनका नाम तीर्थ नहीं है ।[1] `तीर्थ` शब्द का आधुनिक ढंग से निर्वचन किया जाए तो `ती` शब्द से `तीन` और `र्थ` से `अर्थ` --- प्रयोजन लेना चाहिए । इस प्रकार जिससे तीन अर्थों की सिद्धि अर्थात् तीन पदार्थों की प्राप्ति हो, उसे `तीर्थ` कहते हैं ।[2] पदार्थ का तात्पर्य है प्रयोजन और अर्थ । संसार में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पदार्थ हैं । इन चारों में अर्थ (धन) तो तीर्थ-यात्रा करने में खर्च ही होता है, अत: उसकी सिद्धि वहां सम्भव नहीं। धर्म, काम और मोक्ष इन तीनों की सिद्धि तीर्थ-यात्रा से होती है । ऋग्वेद में `तीर्थ` शब्द `तट` अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।[3] इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में यज्ञ के लिए

1-- बल्देव नैष्ठिक, तीर्थ-सन्देश, मुजफ्फर नगर : वैदिक योगाश्रम, 1971, पृ0 3

2-- कल्याण (तीर्थांक), वर्ष 31, संख्या 1, पृ0 602

3-- ऋग्वेद, 1.46.8; 1.168.6; 8.72.7; 10.40.13

'तीर्थ' शब्द का प्रयोग हुआ है ।[4] ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में ऐसा मन्त्र आया है जिसे ज्ञात होता है कि ऋग्वैदिक काल में भी लोग तीर्थों पर जाया करते थे। मन्त्र में बताया गया है कि उसी प्रकार यज्ञ परायण व्यक्ति यज्ञ द्वारा इन्द्र की वृद्धि करता है और कुटिलगति व्यक्ति मन ही मन सदा चिन्ता-परायण रहता है जिस प्रकार तीर्थ मार्ग में सम्मुख स्थित जल तुरन्त लोगों को प्रसन्न करता है और दीर्घ पथ का जल तृषार्त व्यक्ति को निराश करता है।[5]

पद्मपुराण में शिष्यों के लिए गुरु को ही परम तीर्थ माना गया है।[6] पुत्रों के इस लोक और परलोक के कल्याण के लिए माता-पिता के समान कोई तीर्थ नहीं है, उसे वेदों से भी कोई प्रयोजन नहीं, उसके लिए माता-पिता का पूजन ही धर्म, तीर्थ एवं मोक्ष है।[7] जो स्त्री अपने पति के दाहिने चरण को प्रयाग और बायें चरण को पुष्कर समझ कर पति के चरणोदक से स्नान करती है, उसे उन तीर्थों के स्नान का पुण्य होता है। ऐसा स्नान प्रयाग तथा पुष्कर में स्नान करने के सदृश है ।[8] जिसके घर में सत्यपरायणा पवित्र हृदया सती रहती है, उस घर में गंगा आदि पवित्र नदियां, समुद्र, यज्ञ, गौएं, ऋषिगण तथा सम्पूर्ण विविध पवित्र तीर्थ रहते हैं ।[9] श्रीमद्भागवत में युधिष्ठिर जी ने भक्त श्रेष्ठ विदुर को तीर्थ रूप कहा है।[10] जब ध्रुव भक्त

4-- उत न एना पवया पवस्वाऽधिश्रुत श्रवाय्यस्य तीर्थे। ऋ० 9.97.53

5-- यज्ञो हिष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धंजुहुराणश्चिन्मनसा परियन् ।
तीर्थेनाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा।।ऋ० 1.173.11

6-- पद्मपुराण (भूमिखण्ड) 85 । 12-14

7-- वही, 63 । 14, 19, 21

8-- पद्मपुराण 41 । 12-14

9-- पद्मपुराण (भूमिखण्ड), 59 । 11-15, 24

10-- श्रीमद्भागवत्, 1 । 13 । 10

माता सुनीति के वचनों से अपना लक्ष्य स्थिर कर बाहर चले गए, तब श्री नारद जी ने उन्हें मथुरा तीर्थ की ओर भेजा जहां श्रीहरि का नित्य-निवास है।[11] श्री महाभारत (वन. 85 । 93) में गंगा को पवित्र तीर्थ माना गया है।[12] श्री अत्रि ऋषि की तपस्या और अनसूया के पातिव्रत्य के प्रभाव से 'अनसूया' नामक तीर्थ हुआ । श्रीशरभंग ऋषि की तपस्या के प्रभाव से शरभंग' नामक प्रसिद्ध तीर्थ हुआ । श्री सुतीक्ष्णमुनि की भक्ति और तप के प्रभाव से 'सुतीक्ष्ण तीर्थ' प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'अगस्त्याश्रम तीर्थ' अगस्त्यमुनि के तप के प्रभाव से हुआ ।[13]

गुरु नानक देव के समय भारत में बहुत से तीर्थ स्थान थे और लोग विशेष पर्वों पर स्नान आदि के लिए जाया करते थे । इनकी संख्या गुरु नानक देव 68 मानते हैं -- गावनि रतनि उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले।।27।।[14] हरी का नाम, शब्द (नाम) का विचार करना तथा मन में हरी का ज्ञान होना वास्तविक तीर्थ है। गुरु का दिया हुआ सच्चा ज्ञान वास्तविक तीर्थ स्थान है। गुरु नानक ने इन्हें दस पर्व कहा है और यही दस पापों को हरने वाला शाश्वत 'दशहरा' पर्व है।[15] जयराम मिश्र ने ये दस पर्व बताए हैं जिनमें स्नान करना पवित्र माना है -- 'अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, संक्रान्ति, पूर्णमासी, उत्तरायण तथा दक्षिणायन (लगने पर), व्यतीपात, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण।

11-- श्रीमद्भागवत, 4 । 8 । 42

12-- कल्याण (तीर्थांक), वर्ष 31, संख्या 1, पृ० 602

13-- वही, पृ० 603

14-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 92

15-- तीरथ नावणु जाउ तीरथ नामु है । तीरथु सबद बीचारु अंतरि गिआनु है।
गुर गिआनु साचा थानु तीरथु दस पुरब सदा दसाहरा ।
-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 420

'दशहरा' ज्येष्ठ सुदी दशमी, यह गंगा की जन्म तिथि है, जो दस प्रकार के पापों को हरने वाली है।[16] हरिनाम को गुरु नानक ने अठसठ तीर्थों के बराबर माना है --

अठसठि तीरथ हरिनामु है किलविख काटणहारा ।।2।।[17]

पर गुरु के समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं अर्थात् गुरु सबसे बड़ा तीर्थ है। गुरु नानक के शब्दों में --

नानक गुर समानि तीरथु नहीं कोई साचे गुर गोपाला ।...3 ।।[18]

गुरु नानक प्रश्न करते हैं कि लोग तीर्थों में क्या लेने जाते हैं ? जिस साक्षी चेतन आत्मा की प्राप्ति हेतु मनुष्य तीर्थों में जाते हैं, वह आत्मा रूपी रत्न पदार्थ शरीर में ही स्थित है। पंडित लोग व्यर्थ में ही तर्क-वितर्क करते हैं, किन्तु भीतर होती हुई (आत्म) वस्तु को वे लोग नहीं पहचानते --

जै कारणि तटि तीरथ जाही ।
रतन पदारथु घर ही माही ।।
पड़ि पड़ि पंडितु वादु वखाणै ।
भीतरि होदी वसतु न जाणै ।।3।।[19]

कबीर का विचार गुरु नानक से साम्य रखता है कि एक ईश्वर के जान लेने पर हज या तीर्थयात्रा का कोई महत्त्व नहीं।[20] यदि काम, क्रोध, लोभ, मोह,

---

16-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 421

17-- वही, पृ० 585

18-- वही, पृ० 317, 780

19-- वही, पृ० 202

20-- सीताराम चतुर्वेदी, 1971, पूर्वोक्त, पृ० 76

तृष्णा, ईर्ष्या, अक्षमा, अशान्ति, द्वेष -- ये पाप देह से न निकले तो कैसी शुद्धि, कैसी तीर्थ यात्रा ? ऐसी यात्रा को गुरु नानक निष्फल मानते हैं। एक बात और ध्यान रखने योग्य है -- जितने भी तीर्थ हैं, उनमें से प्राय: सभी धन। साध्य हैं। निर्धन स्त्री-पुरुष वहां पहुंच ही नहीं सकते अगर पहुंचते भी हैं तो बड़ी कठिनता से । किन्तु गुरु नानक द्वारा बताए गए सभी तीर्थ सर्वदा, सर्वत्र और सभी अवस्थाओं में सुलभ हैं। इनके लिए श्रम करने अथवा घर त्यागने की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

8.1.1 तीर्थ-स्नान का वास्तविक और अवास्तविक स्वरूप

मानव दिन भर की थकान, रात्रि की नींद एवं आलस्य को दूर करने के लिए स्नान करता है । आयुर्वेद के ग्रन्थों में भी स्नान की उपयोगिता को दर्शाया गया है ---'शरीर कण्डु, शरीर के मल, थकान, पसीने की बदबू, आलस्य, प्यास, जलन, गंदापन, (अशुद्ध) विचार स्नान से नष्ट हो जाते हैं और मन को शान्ति मिलती है ।[21] 'स्नान' शब्द का अर्थ है शरीर को स्वच्छ करने के लिए उसे जल से धोना, अवगाहन, नहाना, शरीर के अंगों को धूप या वायु के सामने इस प्रकार करना कि उनके ऊपर इसका पूरा प्रभाव पड़े --- जैसे वायु स्नान ।[22] गुरु नानक तीर्थ और तीर्थ-स्नान के महत्व में इन्कार नहीं करते, पर उनके अनुसार गुरु का दर्शन अनेक बार तीर्थस्नान करने से भी अधिक सुफल का दायक है। यह अठसठ तीर्थों के स्नान के बराबर है--

अठसठि तीरथ मजना गुर दरसु परापति होइ ।।2।।[23]

इसी तरह की बात गुरु नानक और करते हैं । इसमें गुरु को

21-- वाग्भट, पूर्वोक्त, पृ0 33

22-- रामचन्द्र वर्मा, सं0 2028 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 1221

23-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 393

समुद्र और उसकी सारी शिखा नदी मानी गई है । इसमें स्नान करने से बड़ाई मिलती है । गुरु नानक जैनी लोगों के बारे में कहते हैं कि ये लोग ऐसा स्नान करके प्रसन्न नहीं होते, अत: इनके सिर में सात बूक राख डाली जाए --

गुरु समुंद नदी सभि सिखि नातै जितु वडिआई ।
नानक जे सिर खुथे नावनि नाही ता सत चटे सिरि छाई ।।45।।[24]

गुरु रूपी नदी के पवित्र तीर्थ का स्नान निर्मल है --

निरमल नावणु नानका गुरु तीरथु दरीआउ ।।10।।[25]

किस प्रकार के जल में स्नान करना चाहिए, किसे स्नान करना है और स्नान कराने वाला कौन है ? इन प्रश्नों का उत्तर गुरु नानक इस प्रकार देते हैं --

हरि जलु निरमलु मनु इसनानी मजनु सतिगुरु भाई ।7।।[26]

अर्थात् प्रभु का नाम निर्मल जल, मन उसमें स्नान करने वाला और सद्गुरु स्नान कराने वाला है । कबीर ने भी गुरु नानक की तरह इस प्रकार का स्नान करने की सलाह दी है --

सुमिरन ध्यान के साबुन करि ले सतनाम दरियाई ।
दुविधा के भेद खोल बहुरिया मन के मैल धोवाई ।।[27]

सत्य बोलना किसी तीर्थ-स्नान से कम महत्त्व नहीं रखता। गुरु नानक मनुष्य

24-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 193

25-- वही, पृ0 807

26-- वही, पृ0 363

27-- हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1960, पूर्वोक्त, पृ0 325

को सत्य रूपी तीर्थ में स्नान करने की राय देते हैं --

सचु तीरथि नावहु हरि गुण गावहु ।5।।[28]

अन्यत्र गुरु नानक हरि रूपी मित्र की संगति के मिलाप को पूर्ण स्नान कहते हैं --

संगति मीत मिलापु पूरा नावणो ।। 3।।[29]

लोग प्राय: शारीरिक शुचिता के लिए ही तीर्थ-स्नान करते हैं चाहे उनके मन में कितनी ही मैल क्यों न हो । ऐसे लोगों को गुरु नानक ने मन के खोटे और शरीर के चोर कहा है। ये लोग मानसिक गन्दगी धोने के बजाय शारीरिक गन्दगी धोते हैं --

नावण चले तीरथी मनि खोटै तनि चोर ।
इकु भाउ लथी नातिआ दुइ भा चड़ी असु होर ।।
बाहरि धोती तूमड़ी अंदरि विसु निकोर ।
साध भले अणनातिआ चोर सि चोरा चोर ।।7।।[30]

ऐसे लोग शरीर की बाहरी गन्दगी तो अवश्य धो लेते हैं, किन्तु मानसिक गन्दगी---- अहंकार और पाखण्ड और भी बढ़ जाते हैं । लेकिन साधु लोग बिना नहाए भी भले हैं पर जो चोर हैं, वे नहाकर भी चोर ही रहते हैं । गुरु नानक कहते हैं ऐसे लोग नहा-धोकर पवित्र अवश्य बन जाते हैं, पर दिल के काले होते हैं --

नावहि धोवहि पूजहि सैला । बिनु हरि राते मैलो मैला ।।3।।[31]

गुरु नानक झूठी प्रतिष्ठा पसन्द नहीं करते । यदि मनुष्य मन से झूठे हैं

28-- जयराम मिश्र, पूर्वोक्त, पृ० 631

29-- वही, पृ० 420

30-- वही, पृ० 466

31-- वही, पृ० 506

और बाहर से झूठी प्रतिष्ठा बनाकर बैठे हैं, अर्थात् दिखावा करते हैं वे चाहे अठसठ तीर्थों में जाकर स्नान करें, उनके दिल मैले ही रहते हैं --

अंदरहु झूठे पैज बाहरि दुनीआ अंदरि फैलु ।
अठसठि तीरथ जे नावहि उतरै नाही मैलु ।।43।।[32]

कुछ प्राणी शुद्धि प्राप्त करने के लिए अपने शरीर को धोते हैं, कुछ गन्दगी से बचने के लिए अपने वस्त्रों को विशेषत: साफ रखते हैं। किन्तु क्या पानी बाहरी शरीर पर लगी मैल को नहीं धोता? क्या साबुन वस्त्रों की मैल नहीं निकालता ? अफसोस ! कि भीतर का मन पापों से मलीन है। पापों से भरी हुई गन्दगी को पानी से कैसे धोया जा सकता है या साबुन से कैसे साफ किया जा सकता है ? गुरु नानक इसका ही उपाय बताते हैं--

भाई रे मैलु नाही निरमल जलि नाइ ।
निरमलु साचा एकु तू होरु मैलु भरी सभ जाइ ।।1।।रहाउ।।[33]

~~कुछ-प्रयत्न~~ जीवन के सत्य से अलग संघर्षहीन जीवन व्यतीत करके कुछ प्राणी सुख शान्ति प्राप्त करना चाहते हैं, ये स्वयं को तो धोखा देते ही हैं, वरन् अन्य व्यक्तियों को भी धोखे में रखते हैं। गुरु नानक ऐसे मनुष्यों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि सत्य की कमाई करो। झूठ बोलकर तीर्थ-स्नान करना व्यर्थ है --

काइआ कूड़ि विगाड़ि काहे नाईऐ ।
नाता सो परवाणु सचु कमाईऐ ।। 2 ।।[34]

32-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 354

33-- वही, पृ0 141

34-- वही, पृ0 370

गुरु नानक शारीरिक शुचिता के स्थान पर आन्तरिक स्नान करने को कहते हैं क्योंकि आन्तरिक स्नान के बिना मनुष्य सत्य (परमात्मा) को नहीं पहचान सकता--

अंतरि नावणु साचु मछाणै । ... 3 ।।[35]

लोग तीर्थ स्नान करने के लिए दूर-दूर यात्राओं पर जाते हैं किन्तु आन्तरिक स्नान तब भी नहीं कर पाते । गुरु नानक कहते हैं आठों पहर प्रभु मन में बसा रहे तभी आन्तरिक अर्थात् सच्चा स्नान होता है --

नानक साहिबु मनि वसै सचा नावणु होइ ।। 36।।[36]

माघ महीने में लोग घर से दूर नदियों में स्नान करने जाते हैं। घर से जितने कदम दूर स्नान किया जाए उतना अधिक माहात्म्य होता है, ऐसी लोगों की धारणा है । गुरु नानक इन भटके हुए लोगों को प्रबोध देते हुए कहते हैं कि माघ महीने में जप करना अठसठ तीर्थों के स्नान के बराबर है --

नानक माघि महारसु हरि जपि अठसठि तीरथ नाता ।। 25।।[37]

गुरु नानक ने इन्द्रिय निग्रह, सत्य आचरण, तीर्थ आदि का स्नान प्रभु नाम में माना है --

जतु सतु तीरथु मजनु नामि । ...।।3।।[38]

ऐसे व्यक्ति जो पवित्र स्नान नहीं करते , उनकी तुलना गुरु नानक उस कौए से करते हैं जो गन्दे पानी में मलमल कर स्नान करता है और गन्दे का गन्दा ही रहता है --

कलर केरी छपड़ी कऊआ मलि मलि नाइ ।
मनु तनु मैला अवगुणी चिंजु भरी गंधी आइ ।। 20।।[39]

35-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 286

36-- वही, पृ० 191

37-- वही, पृ० 676

38-- वही, पृ० 206

39-- वही, पृ० 307

जो लोग गुणवान हैं और निष्कपट भाव से तीर्थ-स्नान करते हैं, उन्हीं का स्नान उत्तम है। ऐसे लोगों को परमात्मा पसन्द करता है। गुरु नानक अपना उदाहरण देते हुए कहते हैं कि यदि मैं उसे अच्छा लगता हूं तभी मेरा तीर्थ-स्नान उत्तम है, वरन् कोई फायदा नहीं --

तीरथि नावा जे तिसु भावा विणु भाणे कि नाइ करी ।...6।।[40]

यह सच है कि प्रभु का नाम स्मरण, प्रभु रूपी मित्र की संगति, सत्य बोलना, गुरु-शब्द पर विचार करना तीर्थ स्नान से बढ़कर है क्योंकि उसका परिपक्व फल तुरन्त प्राप्त होता है और वह कठिनाइयों से दूर होने वाले पापों का भी नाश कर देता है । सद्गुरु का दर्शन, सद्गुरु की प्राप्ति हजारों किरणों से प्रकाशमान सूर्योदय की भांति अद्भुत प्रभावशाली है, क्योंकि वह अन्त:करण में व्याप्त अज्ञान रूपी अन्धकार का अत्यन्त नाश करने वाला है।

8.2 सेवा की अवधारणा

धन-सम्पत्ति, शारीरिक सुख और मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा आदि को न चाहते हुए ममता, आसक्ति और अहंकार से रहित होकर मन, वाणी, शरीर और धन के द्वारा सम्पूर्ण प्राणियों के हित में रत होकर उन्हें निष्काम भाव से सुख पहुंचाने की चेष्टा करना `सेवा साधन` कहलाता है।[41] `सेवा` शब्द का अर्थ खिदमत, टहल, दूसरे को आराम पहुंचाने के क्रिया, परिचर्या, नौकरी है ।[42] हलायुध कोश में इसके अर्थ वरिवस्या, परिचर्या, शुश्रूषा, उपासना, परीष्टि, भक्ति, उपास्ति, प्रसादना, आराधना, उपचार, सेवन, श्ववृत्ति इत्यादि दिए गए हैं ।[43] सिक्ख धर्म में `सेवा` तथा `सुमिरन` को दो बड़े

40-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 82

41-- जयदयाल गोयन्दका, कर्मयोग का तत्व, गोरखपुर : गीता प्रेस, सं0 2040, पृ0 171-72

42-- विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव (सं0), 1952, पूर्वोक्त, पृ0 1489

आधार स्तम्भ माना गया है, जिनका परस्पर गहरा सम्बन्ध है। गुरु नानक प्रभु सेवा अथवा गुरु सेवा को बड़ा महत्व देते हैं। आवागमन के चक्र से मुक्त होने के लिए वह गुरु-सेवा का रास्ता दिखाते हैं; क्योंकि बिना गुरु की सेवा किए प्रभु की दृष्टि में मनुष्य की कोई कीमत नहीं पड़ती --

ताकी कीमति ना पवै बिनु गुर की सेवै ।।6।।[44]

गुरु की सेवा करने से नाम निरंजन की प्राप्ति होती है --

सेवी सतिगुर माइ नामु निरंजना ।।3।।[45]

अगर निष्काम भाव से गुरु की सेवा की जाए तो परमपद प्राप्त होता है। गुरु नानक ने भी निष्काम भाव से गुरु-सेवा में चित लगाकर परम पद प्राप्त किया है --

परम पदु पाइआ सेवा गुर चरणी ।।6।।[46]

निष्काम भाव से की गई गुरु-सेवा से स्वयं को पहचानने की शक्ति पैदा होती है --

गुर सेवा ते आपु पछाता ।...6।।[47]

और मान अभिमान गुरु के शब्द द्वारा स्वयं ही समाप्त हो जाता है --

गुर की सेवा सबदु वीचारु । हउमै मारे करणी सारु।।7।।[48]

जो प्राणी अहं भावना में ग्रस्त हो जाता है, वह खाली रह जाता है, किन्तु जो लोग एक ईश्वर अथवा गुरु-सेवा में निरन्तर संलग्न रहते हैं, वे पूर्ण बुद्धि के मालिक बन जाते हैं --

जिनी एको सेविआ पूरी मति पाई ।।2।।[49]

43-- जयशंकर जोशी, 1957, पूर्वोक्त, पृ0 1379

44-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 302

45-- वही, पृ0 449, 703

46-- वही, पृ0 236

47-- वही, पृ0 287

48-- वही, पृ0 224, 256

49-- वही, पृ0 302

इस प्रकार के व्यक्ति को गुरु नानक प्रामाणिक कहते हैं --- 'सतिगुरु सेवहि से परवाणु'[50] जिसने भी गुरु की सेवा की है उसे हमेशा मान मिला है। गुरु नानक सम्पूर्ण मानव जाति को उपदेश देते हैं कि अगर अपना हित चाहते हो तो गुरु के गुणों की प्रशंसा करते रहना चाहिए --

जिन सेविआ तिनि पाइआ मानु। नानक गावीऐ गुणी निधानु ।।5।।[51]

गुरु-सेवा से दु:खों का नाश तो होता ही है, बल्कि हरिनाम मित्र की भाँति प्रिय लगने लगता है --

सगले दूख मिटहि गुर सेवा नानक नामु सखाई।....6।।[52]

सच्चा सुख गुरु-सेवा से ही मिल सकता है, यही गुरु नानक की धारणा है -

'गुर सेवा सुखु पाईऐ।'[53]

संसार में कुछ लोगऐसे भी हैं जिन्हें गुरु सेवा और प्रभु भक्ति अच्छी नहीं लगती। ऐसे लोगों को कुछ भी हासिल नहीं होता--

सतिगुरु साधु न सेविआ हरि भगति न भाई ।।1।।[54]

पर यह बात कदापि नहीं कि परमात्मा अपने सेवकों का ध्यान नहीं रखता, बल्कि परमात्मा को गुरु के सेवक अत्यन्त प्रिय होते हैं --

'गुर के सेवक सतिगुर पिआरे'[55]

ऐसे सेवकों को यम का भय भी नहीं होता --

सतिगुर सेवि टूटै जमकालु .... 6 ।।[56]

50-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 765

51-- वही, पृ0 81

52-- वही, पृ0 695

53-- वही, पृ0 145

54-- वही, पृ0 307

55-- वही, पृ0 621

56-- वही, पृ0 759

गुरु नानक ईश्वर के बन्दों की सेवा में लगे रहते थे । इसलिए उन्होंने ईश्वर की दरगाह में सम्मानजनक स्थान प्राप्त करने पर, मुक्त होने का उपाय ही, संसार में किसी भेद-भाव के दीन-दुखियों की सेवा करना बताया है --

विचि दुनिया सेव कमाइऐ । ता दरगह बैसणु पाईऐ ।।[57]

गुरु नानक की तरह रविदास भी दीन-दुखियों की सेवा में लगे रहते हैं। यथा--

दीन दुखी करि सेव महि, लागि रह्यो रविदास ।
निसि बासर की सेव सौं, प्रभु मिलन की आस ।।2।।[58]

संसार में जितने भी जीव हैं, सेवा के बिना किसी को भी फल प्राप्त नहीं हुआ --

तेरे जीअ तेते सभि तेरे विणु सेवा फलु किसै नाही ।4।।[59]

मनुष्य की तो बात ही क्या, शिव, ब्रह्मा, देवी, देवता, इन्द्र, तपस्वी तथा मुनि तक उस ईश्वर की सेवा में लगे रहते हैं --

ईसरु ब्रहमा देवी देवा। इंद्र तपे मुनि तेरी सेवा ।।3।।[60]

प्रभु के सेवकों की कमी नहीं है । नारद, देवी सरस्वती तथा त्रिभुवन में जो बड़े-बड़े लोग हैं, वे प्रभु के सेवक हैं --

नारद सारद सेवक तेरे । त्रिभवणि सेवकु वड्हु वडेरे ।।25।।[61]

सेवा ही सर्वश्रेष्ठ करनी है । सेवा के बिना फल प्राप्त नहीं होता। गुरु

57-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 130

58-- पृथ्वी सिंह आज़ाद, पूर्वोक्त, पृ0 176

59-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 261

60-- वही, पृ0 643

61-- वही, पृ0 626

नानक देव कहते हैं बड़े-बड़े योद्धा, यती, संन्यासी तथा जंगम (योगियों का विशेष सम्प्रदाय) भी बिना सेवा के फल प्राप्त नहीं कर सके --

जंगम जोध जती संनिआसी गुरि पूरै वीचारी ।
बिनु सेवा फलु कबहु न पावसि सेवा करणी सारी ।।2।।[62]

प्रभु सेवा अथवा गुरु सेवा का रास्ता बड़ा कठिन है । ऐसी कठिन सेवा करने वाले सौभाग्यशाली गुरु नानक देव यह प्रण करते हैं कि गुरु-चरणों में लगकर गुरु की सेवा करूंगा --

गुर सेवी गुर लागउ पाइ । ...6।।[63]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'सेवा' को सिक्ख धर्म की आधार-शिला माना गया है । गुरु नानक देव ने स्वयं को प्रभु का सेवक कहा है । यह उनके समस्त व्यक्तित्व का सार था। सेवा और साधना उनके प्राणों की सांस थी । गुरु नानक ने न केवल सिक्ख जनता को ही विश्व का सेवक बनाया बल्कि स्वयं भी ऊंचे स्तर पर एक आदर्श सेवक की भूमिका प्रस्तुत की तथा सिक्खों से सही मार्गदर्शन के लिए पदचिन्ह स्थापित किए हैं । आज भी गुरुद्वारों में सिक्खों द्वारा की जाने वाली सेवा जगत-प्रसिद्ध है किन्तु ऐसा सौभाग्य प्रत्येक व्यक्ति के मन में उत्पन्न नहीं होता, इसकी प्राप्ति किसी ऊंचे आचरण वाले को ही मिल सकती है । इस बारे लोग अपनी मजबूरियां बताते रहते हैं । निर्धन कहता है मेरे पास धन आएगा तब सेवा करूंगा। निर्बल कहता है जब शरीर से सबल हो जाऊंगा, तब सेवा करूंगा । परिस्थितियों में ग्रस्त व्यक्ति कहता है जब परिस्थिति अनुकूल होगी, तब सेवा करूंगा। तात्पर्य यह है कि न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी'। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि सेवा की भावना मनुष्य को स्वार्थरहित बना सकती है । जब तक व्यक्ति अपनापन तथा स्वार्थ की भावना का त्याग नहीं करता, तब तक वह सेवा करने का सौभाग्य

62-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 581
63-- वही, पृ0 218

प्राप्त नहीं कर सकता ।

8.3 श्रम की अवधारणा

गुरु नानक स्वयं परिश्रमी थे इसलिए दूसरों को भी परिश्रम करने के लिए कहते थे। परिश्रम से की हुई कमाई कभी निष्फल नहीं जाती। उनका उपदेश है कि काम-क्रोध को खुरपा बनाकर धरती की गुड़ाई करो। इस प्रकार का परिश्रम करने से सुख और लाभ होता है --

कामु क्रोधु दुइ करहु बसोले गोडहु धरती भाई ।
जिउ गोडहु तिउ तुम्ह सुख पावहु किरतु न मेटिआ जाई।।3।।[64]

निर्वाण पद प्राप्त करना बड़ा कठिन है। इसके लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है । गुरु नानक इस प्रकार का श्रम करने को कहते हैं --

इहु तनु धरती बीजु करमा करो सलिल आपाउ सारिंगपाणी ।
मनु किरसाणु हरि रिदै जंमाइ लै इउ पावसि पदु निरबाणी।।2।।[65]

अर्थात् इस शरीर को धरती तथा शुभ कर्मों को बीज बनाओ, सारंगपाणि (परमात्मा) को सींचने के लिए जल बनाओ । मन को किसान समझकर प्रभु को अपने मन में बसा लो। इस प्रकार निर्वाण पद (फल) की प्राप्ति हो सकती है ।

वे श्रम के गौरव में विश्वास रखते थे तथा स्वयं पूर्ण ईमानदारी से काम करते थे। दूसरों का अधिकार हड़पने का उन्होंने कड़ा विरोध किया। वह भोली-भाली जनता का उद्धार चाहते थे, इसीलिए उन्होंने अपने सिद्धान्तों की शिक्षा उन्हीं की भाषा में दी ।

64-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 706

65-- वही, पृ0 125

8.4 दया

ईश्वर की दया सर्वत्र है । सर्वत्र दया भरी दृष्टि है, अपार दया की छटा छाई हुई है । कोई भी स्थान दया से खाली नहीं। उसकी दया अनन्त है, अपार है । अणु अणु में, ज़र्रे-ज़र्रे में व्याप्त हो रही है । सच्चा भक्त प्रभु के प्रत्येक विधान में दया का दर्शन करता है, प्रभु दया और न्याय के समुद्र हैं। जो मनुष्य प्रभु के समीप है, वह सर्वत्र प्रभु की दया ही दया का दर्शन करता है । किसी सन्त या महात्मा की जब दया हो जाती है तो आनन्द ही आनन्द होता है, फिर ईश्वर की दया हो जाए तो बात ही क्या है । सहज में ही परिस्थिति बदल सकती है क्योंकि ईश्वर की दया अपार है। 'दया' से तात्पर्य है -- "मन का वह दुःख पूर्ण वेग जो किसी को दूसरे का कष्ट दूर करने की प्रेरणा करता है, दया कहलाता है। इसे करुणा, रहम इत्यादि भी कहते हैं ।[66] गुरु नानक प्रभु के प्रेम और दया के तत्व को समझते हैं इसलिए वह प्रभु को दयालु कहते हैं --

आपि दइआलि दइआ प्रभि धारी ।।23।।[67]

जिस व्यक्ति पर उसकी दया हो जाए वह अच्छे काम करता है --

साहिबु होइ दइआलु किरपा करे ता साई कार कराइसी ।।23।।[68]

प्रभु चाहे तो अपनी दया करके बगुले को हंस बना दे । अर्थात् तमोगुणी व्यक्ति सतोगुणी और नीर-क्षीर विवेकी साधु हो जाता है। गुरु नानक प्रभु से दया के लिए विनय करते हैं --

बगुले ते फुनि हंसुला होवै जे तू करहिं दइआला ।
प्रणवति नानक दास निदासा दइआ करहु दइआला ।।4।।[69]

66--(सं0) रामचन्द्र वर्मा, सं0 2028 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 464
67-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 657
68-- वही, पृ0 347
69-- वही, पृ0 706

वह प्रभु को दया का स्वामी भी कहते हैं। उसकी दया के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती --

आदि जुगादि दइआपति दाता तुधु विणु मुकति न पाई।।4।।[70]

इस संसार में कई दु:खी और दरिद्र लोग हैं। अगर प्रभु दया करे तो ये दु:ख, दरिद्र सब नष्ट हो जाते हैं --

तू दइआलु दइआ करि देखहि दुखु सरीरहु जाई है ।।5।।[71]

गुरु नानक मनुष्य के अवगुणों की तुलना महासागर के जल से करते हैं। प्रभु दया करे तभी मनुष्य का इस संसार-सागर से छुटकारा होता है --

जेता समुंद सागरु नीरि भरिआ तेते अउगण हमारे ।
दइआ करहु किछु मिहर उपावहु डुबदे पथर तारे ।।5।।[72]

'दया' की बात करते हुए सुग्रीव, रामचन्द्र से कहते हैं कि आपकी माया जो बड़ी बलवती है, तभी छुटकारा होता है जब आप दया करते हैं --

अतिशय प्रबल देव तव माया । छूटै तबहि करहु जब दाया।।[73]

गुरु नानक प्रभु से दया का वरदान मांगते हुए कहते हैं कि हे प्रभो ! तू मेरे ऊपर दया कर ताकि मैं तेरे नाम का वर्णन कर सकूं --

करहु दइआ तेरा नामु वखाणा ।।1।।[74]

ईर्ष्या और परनिन्दा में लोग डूबे रहते हैं। राम-नाम और गुरु-शब्द के बिना ऐसे लोग नरक के अधिकारी बनते हैं। गुरु नानक ऐसे लोगों से कहते हैं कि सबके प्रति दया धारण करो --

---

70-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 578

71-- वही, पृ0 611

72-- वही, पृ0 214

73-- विनायक राव, पूर्वोक्त, पृ0 47

74-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 371

अहिनिसि नन्दा तातिं पराई हिरदै नामु न सरब दइआ ।
बिनु गुर सबद न गति पति पावहि राम नाम बिनु नरकि गइआ।।4।।[75]

गुरु नानक ने प्रभु को दयालु कहा है किन्तु वह स्वयं कितने दयालु थे, यह वर्णन करना कठिन है । ऐसा दयार्द्र हृदय विरले ही महात्माओं में होता है । बुद्ध में था, क्राइस्ट में था, मीरां में था। क्राइस्ट और बुद्ध ने दया से ही प्रेरित हो जगत् के उद्धार करने का मार्ग रचा था।[76] गुरु नानक भी उन महात्माओं में से एक थे ।

सारांश यह है कि गुरु नानक की जीवों के प्रति दया अवर्णनीय है । उन्हें अगर दया का सागर कहा जाए तो भी उनकी अपरिमित दया का तिरस्कार ही होता है । मनुष्य उनकी दया का अनुमान लगाने में असमर्थ है क्योंकि गुरु नानक की दया मनुष्य की कल्पना से कहीं अनन्तगुणा अधिक नहीं बल्कि असीम और अत्यन्त विलक्षण भी है । प्राणी मात्र को उनके प्रेम और दया के तत्व को समझना चाहिए । उनका तत्व नहीं जानते तभी मनुष्य लाभ नहीं उठा रहे हैं । गुरु नानक का प्रभाव गुरु नानक के लिए थोड़े ही है, वह तो जनता के लाभ उठाने के लिए ही है। ऐसे प्रभावशाली का प्रभाव संसार के उद्धार के लिए ही है । हृदय से जो उनका ऐसा प्रभाव मानता है, वही लाभ उठा लेता है ।

8.5 दान

'दान' का शाब्दिक अर्थ है देने का कार्य, वह धमार्थ कर्म, जिसमें श्रद्धा या दयापूर्वक दूसरे को धन आदि दिया जाता है ।[77] हलायुध कोश में

75-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 511

76-- भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र, 'माधव,' पूर्वोक्त, पृ0 5

77-- विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव, 1952, पूर्वोक्त, पृ0 740

दान के अर्थ देव ब्राह्मणादिसम्प्रदान द्रव्य मोचनं, त्याग:, विहापितम्, उत्सर्जनं, विसर्जनं, विश्राणनं, वितरणं, स्पर्शनं, प्रतिपादनं, प्रादेशनं, निर्वपणम्, अपवर्जनम्, अंहति:, दाय:, प्रदानं, ददनं, विश्रणनं, दति:, अंहती, उत्सर्ग:, अतिसर्जनं, स्पर्श:, विसर्ग: त्यजनं, प्रदेशनम्[78] आदि दिए गए हैं। अथर्ववेद 3 । 24 । 5 के अनुसार दान दिया हुआ वही धन प्रारब्ध बनकर दूसरे जन्म में मनुष्य को प्राप्त हुआ करता है । दानी को मानवता सहज में ही प्राप्त हो जाती है ।[79]

भक्त अपने को अत्यन्त दीन भिखारी समझकर, परब्रह्म परमात्मा से याचना करता रहता है । वह ऐसा बड़ा दाता है कि सभी प्राणियों को देता ही रहता है। अगर वह चाहे तो बिना मांगे ही देता रहता है, ऐसी क्रिया निरन्तर चलते रहने पर भी उसके भण्डार में कभी कमी नहीं आती। यथा--

अणमंगिआ दानु दीजै दाते तेरी भगति भरे भंडारा ।4।।[80]

प्रभु ही एकमात्र दाता है, अन्य सब प्राणि याचक हैं । गुरु नानक कहते हैं कि मैं तुम्हारे सिवा अन्य किसकी स्तुति करूं ?

तू दाता सभ जाचिक तेरे तुधु बिनु किसु सालाही ।4।।[81]

सच्चे परमात्मा का दान भी सच्चा है। दयालु प्रभु कृपा करके इस दान को देता है --

सचे साची दाति देहि दइआलु है ।।7।।[82]

78-- जयशंकर जोशी, 1967, पूर्वोक्त, पृ0 351

79-- कल्याण वर्ष 62, संख्या 12, पृ0 996

80-- जयराम मि, सं0 2018, पृ0 317, 162, 207, 521, 458

81-- वही, पृ0 317   82-- वही, पृ0 306

प्रभु बहुत बड़ा दाता है, उसके दानों की गणना कोई नहीं कर सकता। उसके दिए हुए दानों की कीमत भी नहीं आंकी जा सकती --

तेरे दाने कीमति ना पवै तिसु दाते कवणु सुमारु।।2।।[83]

यह तो ऊपर वाले की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह दान देना चाहता है या नहीं। जीव का अभिमान करना व्यर्थ है। उसके करने से ही सब कुछ होता है --

कीता कहा करे मनि मानु। देवणहारे कै हथि दानु।।
भावै देइ न देई सोइ। कीते कै कहिऐ किआ होइ।।1।।[84]

प्रभु के सम्बन्ध में कितना भी कहा जाए किन्तु कथन से उसमें कमी नहीं आ सकती। मांगने वालों की संख्या अनेक है, परन्तु दाता तो एक वही है --

केता आखणु आखीऐ आखणि तोटि न होइ।
मंगण वाले केतड़े दाता एको सोइ।।2।।[85]

गुरु नानक कहते हैं कि प्रभु (राम) हमारा दाता अभी से नहीं बना है, बल्कि युग-युगान्तरों से दाता रहा है --

जुगि जुगि दाता प्रभु रामु हमारा।।1।।रहाउ।।[86]

समाज में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो दान देने में गर्व महसूस करते हैं। चाहे वह दान सोने का हो, घोड़े-हाथियों का अथवा भूमिदान हो, इसके

83-- जयराम मिश्र, सं० 2013, पृ० 216

84-- वही, पृ० 129

85-- वही, पृ० 110

86-- वही, पृ० 237

भीतर अभिमान या गर्व महसूस करना बुरी बात है । गुरु नानक उन गर्व महसूस करने वाले सज्जनों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि मुझे तो गुरु द्वारा सच्चा दान मिल गया है अर्थात् मेरा मन राम-नाम से बिंध गया है --

कंचन के कोट दतु करी बहु हैवर गैवर दानु ।
भूमि दानु गऊआ घणी भी अंतरि गरबु गुमानु ।।
रामनामि मनु बेधिआ गुरि दीआ सचु दानु ।।4।।[87]

इस पद में प्रभु की ओर से मनुष्य के लिए सर्वोपरि दान का उल्लेख किया गया है। गुरु से यदि पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो जाए तो उस ज्ञान रूपी दान की तुलना किसी दूसरे दान से नहीं की जा सकती । यथा--

नानक गुरु संतोखु रुखु धरमु फुलु फल गिआनु ।
रसि रसिआ हरिआ सदा पकै करमि धिआनि ।।
पति के साद खादा लहै दाना कै सिरि दानु ।।38।।[88]

गुरु नानक प्राणी को प्रभु के दानों से अवगत कराते हुए कहते हैं कि प्रभु जितना बड़ा है उसके दान भी उतने ही बड़े हैं --

जेवडु साहिबु तेवड दाती दे दे करे रजाई ।।37।।[89]

भक्त परमात्मा से याचना करता रहता है कि गुरु से मिलकर उसे सबसे बड़ा दान हरिनाम प्राप्त हो सके --

दरि मंगतु जाचै दानु हरि दीजै कृपा करि ।
गुरमुखि लेहु मिलाइ जनु पावै नामु हरि ।।7।।[90]

87-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 155

88-- वही, पृ० 191

89-- वही, पृ० 191

90-- वही, पृ० 469

इस पद में गुरु नानक ने उन लोगों की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया है जो दान देने के पश्चात सन्तोष का अनुभव करते हैं और उससे भी हजारों गुना अधिक मांगते हैं --

सतीआ मनि संतोखु उपजै देणै कै वीचारि ।
दे दे मंगहि सहसा गूणा सोभ करे संसारु ।।11।।[91]

पूर्वजन्म में लिखा हो तभी सन्तों के चरणों की धूलि प्राप्त होती है । गुरु नानक प्रभु से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि मुझे सन्तों के चरणों की धूलि का दान मिले --

दानु महिंडा तली खाकु जे मिलै त मसतकि लाईऐ ।
कूड़ा लालचु छडीऐ होइ इक मनि अलखु धिआईऐ ।।
फलु तेवहो पाईऐ जेवेही कार कमाईऐ ।
जे होवै पूरबि लिखिआ ता धूड़ि तिना दी पाईऐ ।8।।[92]

पवन, जल, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु और महेश सभी उस प्रभु के याचक हैं । अपने विचार के अनुसार प्रभु सबको दान देता है --

पवणु पाणी अगनि तिनि कीआ ब्रहमा बिसनु महेस अकार ।
सरबे जाचिक तूं प्रभु दाता दाति करे अपुनै बीचार ।।4।।[93]

तैंतीस करोड़ देवता, प्रभु से मांगते हैं परन्तु उसके भण्डार में फिर भी कमी नहीं पड़ती। इसी बात को स्पष्ट करते हुए गुरु नानक कहते हैं कि मांगने

91-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 332

92-- वही, पृ0 339

93-- वही, पृ0 360

वाले के पात्र में प्रभु का दिया समा नहीं सकता अर्थात् उसका पात्र छोटा पड़ जाता है --

कोटि तेतीस जाचहि प्रभ नाइक दे दे तोटि नाही भंडार ।
ऊधै भांडै कछु न समावै सीधै अंमृतु परै निहार ।।5।।[94]

दाता प्रभु गुरु के माध्यम द्वारा दान देता रहता है । कुछ लोगों को यह दान अच्छा नहीं लगता। गुरु नानक देव कहते हैं कि ऐसे निन्दक व्यक्तियों के मुंह निन्दा से काले होते हैं --

रे जी गुर की दाति न मेटै कोइ मेरै ठाकुरि आपि दिवाई ।
निंदक नर काले मुख निंदा जिन्ह गुर की दाति न भाई ।।4।।[95]

इस पद में गुरु नानक ने दाता प्रभु से दया का दान मांगा है। यथा---

दइआ दानु दइआलु तू करि करि देखणहारु ।
दइआ करहि प्रभ मेलि लैहि खिन महि ढाहि उसारि ।।
दाना तू बीना तुही दाना कै सिरि दानु ।
दालद भंजन दुख दलण गुरमुखि गिआनु धिआनु ।।35।।[96]

गुरु के बिना इस संसार में कोई भी दाता नहीं है। उस गुरु की कीमत आंकी नहीं जा सकती--

गुर बिनु दाता को नही कीमति कहणु न जाइ ।।4।।[97]

गुरु नानक संतोषियों का हित चाहते हुए परमात्मा से पुकार करते हैं कि

94-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 360

95-- वही, पृ0 362

96-- वही, पृ0 521

97-- वही, पृ0 589

इन्हें सच्चा नाम दान में देना--

तू प्रभु समि तुधु सेवदे इक ढाढी करे पुकार ।
देहि दानु संतोखिआ सचा नामु मिलै आधारु ।।3।।[98]

कुछ लोग परमात्मा के दिए हुए दान नहीं ले सकते । ऐसे प्राणियों को गुरु नानक सतर्क करते हुए कहते हैं कि तुमने जागृत अवस्था में भी दान नहीं लिए, जबकि कुछ लोगों को प्रभु ने नींद में ही सभी दान प्रदान कर दिए --

दाती साहिब संदीआ किआ चलै तिसु नालि ।
इक जागंदे न लहंनि इकना सुतिआ देइ उठालि ।।1।।[99]

गुरु नानक मानव जाति को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि परमात्मा के समान दूसरा कोई भी दाता नहीं । सभी लोग ध्यान से सुन लें --

सतिगुरु जेवडु दाता को नही समि सुणिअहु लोक सबाइआ।...3।।[100]

यह सच है कि मनुष्य परमात्मा से निरन्तर मांगता ही रहता है और मांगना भी चाहिए । दुनिया से भला कोई मांग भी क्या सकता है ? मान लो कोई वस्तु या धन मांग भी लिया फिर उसे वक्त पर न लौटाया तो देने वाला अपनी वस्तु या धन अवश्य मांग लेगा। दुनिया तो खुद एक भिखारिन है । मांगना तो उस दाता (प्रभु) से चाहिए जहां कभी भी इन्कार नहीं होता और मनुष्य वस्तु या धन होते हुए भी कई बार देने से इन्कार कर देता है। गुरु नानक उपरोक्त पंक्तियों को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि लोग मांगते रहते हैं और परमात्मा निरन्तर देता ही रहता है --

---

98-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 763

99-- वही, पृ0 168

100-- वही, पृ0 330

आसहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारु ।।4।।[101]

उपर्युक्त से स्पष्ट होता है कि ईश्वर सबसे बड़ा दाता है। उसके समान अन्य कोई नहीं। मानव मात्र तो उसके समक्ष केवल याचक है। वह गुरु के माध्यम से दान देता है लेकिन सांसारिक मनुष्य इन दानों की परवाह नहीं करते।

8.6 दर्शन

वह बोध जो दृष्टि के द्वारा हो। साक्षात्कार, अवलोकन, भेंट, मुलाकात, तत्वज्ञान सम्बन्धी विद्या या शास्त्र जिसमें प्रकृति, आत्मा, परमात्मा जगत् के नियामक धर्म और जीवन के अन्तिम लक्ष्य आदि का निरूपण होता है। इसे नेत्र, आँख, स्वप्न, बुद्धि, धर्म, दर्पण भी कहते हैं।[102] प्रस्तुत अध्याय में 'दर्शन' शब्द का सम्बन्ध ईश्वर के साक्षात्कार से है। सद्गुरु की कृपा से जीवात्मा का परमात्मा से साक्षात्कार हो चुका है। अब जीवात्मा प्रभु के दर्शन किए बिना जीवित नहीं रह सकती। उसकी हर पल ईश्वर के दर्शन की इच्छा बनी रहती है --

बिनु दरसन कैसे जीवउ मेरी माई।
हरि बिनु जीअरा रहि न सकै खिनु सतिगुरि बूझ बुझाई।1।।[103]

मीरां भी गुरु नानक की तरह प्रभु-दर्शन किए बिना नहीं रह सकती --

प्यारे दरसन दीज्यो आय,
तुम बिन रह्यो न जाय। टेक।।233।।[104]

101-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 81

102-- रामचन्द्र वर्मा (सं0), सं0 2028 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 550

103-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 476

104-- ब्रजरत्नदास, पूर्वोक्त, पृ0 85

प्रभु का दर्शन किए बिना जीवात्मा की भूख-प्यास बनी रहती है । दर्शन करते ही भूख-प्यास मिट जाती है, मन शान्त हो जाता है और जीवात्मा इस प्रकार प्रफुल्लित हो जाती है जिस प्रकार जल से कमल खिल जाता है --

जब लगु दरसु न परसै प्रीतम तब लगु भूख पिआसी ।
दरसनु देखत ही मनु मनिआ जल रसि कमल बिगासी ।।1।।[105]

अगर मनुष्य प्रभु-दर्शन की इच्छा रखता है तो उसे अहंकार का त्याग करना पड़ेगा। गुरु नानक कहते हैं मैंने ऐसे ही किया है और सद्गुरु ने मुझे प्रभु का सच्चा दर्शन करा दिया--

नानक हउमै सबदि जलाइआ ।
सतिगुरि साचा दरसु दिखाइआ ।।8।।[106]

प्रभु-दर्शन के लिए लोग मन्दिरों में जाते हैं, नाना प्रकार की वस्तुएं चढ़ाते हैं पर मन्दिर में भगवान् के दर्शन का रहस्य है, उनके रूप, लावण्य, गुण, प्रभाव और चरित्र का स्मरण-मनन करके उनके चरणों में अपने को अर्पित कर देना। परन्तु ऐसा नहीं होता, इसका कारण रहस्य और प्रभाव जानने की त्रुटि ही है।[107] गुरु नानक कहते हैं प्रभु के दर्शन के निमित अनेक लोग तड़फते हैं, किन्तु दर्शन किसी विरले को ही गुरु कृपा से होता है --

तेरे दरसन कउ केती बिललाई ।
विरला को चीनसि गुर सबदि मिलाई ।।1।।रहाउ।।[108]

105-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 721

106-- वही, पृ0 712

107-- जयदयाल गोयन्दका, भक्तियोग का तत्व, सं0 2040, पूर्वोक्त, पृ0 7

108-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 712

गुरु नानक प्रभु-दर्शन के प्यासे रहते हैं इसलिए प्रभु के दर्शनों की भिक्षा मांगते हैं --

तउ दरसन की करउ समाइ ।

मै दरि मागतु भीखिआ पाइ ।।1।।रहाउ।। [109]

गुरु नानक की तरह सूरदास भी हरि-दर्शन के प्यासे हैं --

अखियां हरि दरसन की प्यासी ।

देख्यौ-चाहतिं कमल नैन कौ निसि दिन रहतिं उदासी ।।62।। [110]

अगर गुरु का दर्शन करने की इच्छा मन में पैदा हो तो उसके लिए आन्तरिक प्रेम होना जरूरी है । तभी गुरु दर्शन होता है --

अंतरि प्रेमु परापति दरसनु ।15।। [111]

अथवा जिन लोगों के पास पुण्य एकत्रित है, उन्हें गुरु के दर्शन का सौभाग्य मिलता है --

जिन्ह के पोतै पुंनु है तिन्ही दरसनु पाइआ ।।26।। [112]

गुरु नानक को केवल यही चिन्ता हो रही है कि दर्शन के बिना प्रियतम से रमण कैसे होगा--

भणति नानकु अंदेसा एही । बिनु दरसन कैसे रवउ सनेही ।।4।। [113]

प्रभु का दर्शन करके जीवात्मा आनन्द विभोर हो उठी है और निर्लेप हो गई है। उसके जन्म-मरण के दुख भी नष्ट हो गए हैं --

दरसनु देखि भई निहकेवल जनम मरण दुखु नासा ।।2।। [114]

109-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 428

110-- धीरेन्द्र वर्मा, सं0 2015 वि0, पूर्वोक्त, पृ0 165

111-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 641

112-- वही, पृ0 741

113-- वही, पृ0 578

114-- वही, पृ0 456

8.7 मानव मात्र के प्रति समभाव

गुरु नानक देव किसी प्रचलित धर्म अथवा जाति के अनुयायी नहीं थे। उनका धर्म केवल मानवता ही था। वे मानवता के हितार्थ जिए। उन्होंने मानवता में विचरण किया तथा मानवता को ही सर्वोत्तम समझा। लोगों की भलाई करने में इन्हें खुदा नज़र आता था। प्रत्येक मनुष्य में इन्हें दिव्य ज्वाला का प्रकाश दिखाई देता था। इनका प्रसिद्ध कथन है --

जाणहु जोति न पूछहु जाती आगै जाति न हे ।।1।।रहाउ।।[115]

अछूत लोगों के हक में आवाज़ बुलन्द करने वाले पहले महापुरुष गुरु नानक देव हैं। नीच अथवा दलित लोगों में रहने और गिने जाने में ये अपना गौरव समझते थे। इसी सम्बन्ध में गुरु नानक ने फरमाया --

जिथै नीच समा लीअन तिथै नदर तेरी बखसीस ।।[116]

गुरु नानक समाज में एकता और समता के दृढ़ पोषक थे। वे संसार के सभी मनुष्यों को समभाव से देखते थे। उनकी दृष्टि में सभी ऊँचे थे, कोई भी नीचा नहीं था। मानवता की मूल एकता को स्वीकार करते हुए वह कहते हैं --

सभु को उचा आखीऐ नीचु न दीसै कोइ ।
इकनै भांडे साजिऐ इकु चानणु तिहु लोइ ।।6।।[117]

संसार के सभी प्राणियों में समभाव पैदा करने के लिए उन्होंने अन्य लोगों को उत्तम और स्वयं को नीच जाति का भाट कहा है --

---

115-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 248

116-- वही, पृ० 102

117-- वही, पृ० 155

हउ ढाढी का नीच जाति होरि उतम जाति सदाइदे ।।7।।[118]

अपनी उदासियों के दौरान जब आप 'धरत लुकाई' को सुधारने का प्रयत्न कर रहे थे, तब आपने जाति-भेद की कोई परवाह न करते हुए हरेक जाति अथवा धर्म के लोगों को सुधारने का भरसक प्रयत्न किया। जहां आपने हिन्दू जाति के उत्थान का प्रयत्न किया वहां मुसलमानों को पीछे नहीं छोड़ा। यदि आपने एक ओर मक्का के काजियों का यह भ्रम दूर किया कि खुदा केवल उनकी मस्जिद में ही बसता है तो दूसरी ओर आपने हरिद्वार के पण्डितों का यह भ्रम भी दूर किया कि वो सूर्य देवता को जल देकर अपने पूर्वजों को जल पहुंचा सकते हैं। इनकी वाणी में हिन्दू धर्म, योग मत तथा इस्लाम सब प्रकार की विचारधारा मिले-जुले रूप में निखर कर आई है। उदाहरण के लिए --

(1) वखतु न पाइओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु ।[119]

(2) मुसलमाना सिफति सरीअति पड़ि-पड़ि करहि बीचारु ।।
बंदे सि पवहि विचि बंदी वेखण कउ दीदारु ।।[120]

गुरु नानक देव किसी एक धर्म, मज़हब या नस्ल के अनुयायी नहीं थे जिस का पक्का प्रमाण आपकी अन्तिम समय की घटना से मिलता है। जब गुरु नानक स्वर्गवास हो गए तब हिन्दू और मुसलमान दोनों कौमों के बीच झगड़ा हो गया। हिन्दुओं का कथन था कि गुरु नानक के शरीर को हिन्दू रस्मों के अनुसार जलाना है, मुसलमान कहने लगे कि मुस्लिम रीतियों के अनुसार दफनाना है। झगड़ा बढ़ता देखकर बजुर्गों ने यह फैसला किया कि दोनों

118-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 338

119-- वही, पृ० 83

120-- वही, पृ० 332

धर्म वाले अपने अपने फूल गुरु नानक के शरीर के साथ रख दें। जिस धर्म वाले के फूल ज्यों के त्यों रहे वह अपनी रस्मों के अनुसार गुरु नानक का अन्तिम संस्कार कर दे। कहते हैं कि जब गुरु नानक की देह से चादर उठाई गई, तब उनकी देह वहां नहीं थी। दोनों धर्म वालों यानि हिन्दुओं और मुसलमानों के फूल ज्यों के त्यों हरे थे। इस घटना से सिद्ध होता है कि गुरु नानक के जीवन के साथ सभी कौमों का अटूट सम्बन्ध था। अत: गुरु नानक सारी मानवता के सर्व-साझे रहबर, आगू तथा नेता थे। आपने सारी मानवता के हितार्थ अपना जीवन न्यौछावर कर दिया। आप सारी जिन्दगी मानवता के दु:खों को हरने में प्रयत्नशील रहे। इन्हें सब मनुष्य समान नज़र आते थे।

सारांश में कहा जा सकता है कि गुरु नानक की दृष्टि में उस समय की सारी विश्व-मनुष्यता थी। राजा से लेकर मज़दूर तक, ब्राह्मण-- काज़ी से चंडाल तक, किसान से लेकर वज़ीर तक सोहागिन से लेकर वेश्याओं तक सब वर्ण, सब जातियां उनकी दृष्टि में समान थीं। उन्होंने मानव मात्र के प्रति न्यायशील तथा उदार दृष्टिकोण मूर्तिमान किया है।

8.8 कामनाओं का संस्कार

मानवता पर आज जो दु:ख, निराशा, आक्रोश फैला हुआ है, उसके समस्त कारणों के मूल में मानव की असीम आकांक्षाएं हैं। ये अमरवेलि की भांति निरन्तर स्वयं पल्लवित होती रहती है और धीरे-धीरे अपने आश्रयदाता पर अपना अधिकार जमा लेती है। कुप्रवृत्तियों का कोई भी भाग इससे अछूता नहीं रहता। इनके कारण मनुष्य देहाभिमानी हो जाता है। इनका दमन करना कोई आसान काम नहीं है। गुरु नानक देव जैसा व्यक्ति ही ऐसा काम कर सकता है। उन्होंने अपनी इच्छाओं का दमन करके परमात्मा के निर्मल पद को पहचान लिया है --

मनुआ मारि निरमलु पदु चीनिआ हरि रस रते अधिकाई ।6।।[121]

गुरु नानक की तरह कबीर ने भी अपनी इच्छाओं का दमन करते हुए लिखा है-

हम घर जाला आपना, लिए मुराड़ा हाथि ।
अब घर जालौं तास का, जो चलै हमारे साथि ।। 12।।[122]

अर्थात् कबीर ने अपनी इच्छाओं का दमन कर दिया है, जो व्यक्ति उनका अनुसरण करना चाहता है वह पहले अपनी इच्छाओं का दमन करे । अपनी कामनाओं को मार कर परमात्मा में अनुरक्त होने वाला व्यक्ति गुरु नानक को बड़ा पसन्द है --

सो जनु ऐसा मैं मनि भावै ।
आपु मारि अपरंपरि राता गुर की कार कमावै ।। 1।।रहाउ।।[123]

सांसारिक प्राणी अहंकार रूपी विषय-वासनाओं से लिप्त रहते हैं । ये लोग पराई स्त्री और पराए धन की ओर आकर्षित होते रहते हैं और उन्हें दिन-रात लूटते हैं । गुरु नानक काम, क्रोध, दुष्ट भाव, पराई निन्दा तथा अहंकार का परित्याग करने को कहते हैं --

परदारा पर धनु परलोभा हउमै बिखे विकार ।
दुसट भाउ तजि निंद पराई कामु क्रोध चंडार ।।2।।[124]

रविदास की उक्ति का गुरु नानक से साम्य प्रतीत होता है --

राम बिन संसै गांठ न छूटै ।
काम क्रोध मोह, मद माया, इन पांचन मिलि लूटी।टेक।। 13।।[125]

121-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 724
122-- सीताराम चतुर्वेदी, 1971, पूर्वोक्त, पृ0 83
123-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 695
124-- वही, पृ0 748, 661
125-- वीरेन्द्र पाण्डेय, संत रविदास और उनका काव्य, लखनऊ : नवभारत प्रेस, 1955, पृ0 102

गुरु नानक चाहते थे कि संसार के लोग विषय-वासनाओं से मुक्त रहें और भगवद्‌भक्ति की ओर ध्यान दें। इसलिए उन्होंने कामनाओं को दबाने का अनथक प्रयत्न किया। उनका कहना था कि परमात्मा की प्राप्ति इच्छाओं को दबाने से ही हो सकती है, चतुराई से कदापि नहीं --

चतुराई नह चीनिआ जाइ । बिनु मारे किउ कीमति पाइ।।1।।रहाउ।।[126]

कामनाओं का दमन करने से ईश्वर की निकटता प्राप्त होती है और काम, क्रोध, अहंकार, ममता इत्यादि भावनाएं दग्ध हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में ईश्वर के प्रति शाश्वत नवीन प्रेम पैदा होता है --

क्रोधु निवारि जले हउ ममता प्रेमु सदा नउरंगी ।2।।[127]

8.9 अहंकार (हउमै) का परित्याग

अहंकार का स्वरूप

'सिध गोसटि' में सिद्धों ने गुरु नानक देव से प्रश्न किया कि जगत् की उत्पत्ति किस प्रकार होती है और किस दु:ख से यह नष्ट हो जाता है —

कितु कितु विधि जगु उपजै पुरखा ।
कितु कितु दुखि बिनसि जाई ।।68।।[128]

गुरु नानक ने उपर्युक्त गम्भीर प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया --

हउमै विधि जगु उपजै पुरखा नामि विसरिऐ दुखु पाई।।68।।[129]

126-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 219

127-- वही, पृ0 724

128--वही, पृ0 546

129-- वही, पृ0 546

गुरु अमरदास की उक्ति भी गुरु नानक की युक्ति से साम्य रखती है --[130]

हउमै नावै नालि विरोध है, दुइ ना वसहि इक ठाइ।।1।।9।।

योगवसिष्ठ में भी अहंकार को ही सृष्टि उत्पत्ति का मूल कारण बताया गया है।[131] गुरु नानक के मत अनुसार अहंकार की उत्पत्ति तभी होती है जब नाम भूल जाता है --[132]

हउमै विचि जगु उपजै पुरखा नामि विसरिए दुखु पाइ।।68।।

गुरु नानक संसार की उत्पत्ति को अहंकार से नहीं मानते। उनके अनुसार संसार के लोगों के सारे काम अहंकार ग्रस्त हैं। आसा राग में उन्होंने कहा है कि अहंकार में मनुष्य इस जगत् में आता है, अहंकार में यहां से चला जाता है, अहंकार में जन्म लेता है, अहंकार में मर जाता है। अहंकार में किसी वस्तु को प्राप्त करता है, अहंकार में खो देता है, अहंकार में वह सच्चा तथा झूठा होता है, अहंकार में वह अपने पाप-पुण्यों को विचारता है, अहंकार के कारण ही वह स्वर्ग अथवा नरक में पड़ता है। अहंकार के वशीभूत हंसता है, रोता है, पापों से भर जाता है, कभी पुण्य द्वारा धो देता है, अहंकार में ही वह जाति और वर्ण (श्रेणी) खो देता है। अहंकार में मूर्ख होता है, कभी चतुर बनता है। अहंकार के कारण ही जीव माया में पड़ा रहता है और अनेक बार उत्पन्न होता है। यदि इस अहंकार के स्वरूप को मनुष्य ~~समझ~~ समझ ले, तब उसे परमात्मा का दरवाज़ा दिखाई देने लगता है। गुरु नानक कहते हैं कि वास्तविक ज्ञान के बिना ऐसे लोग कथा-पकथन में परेशान रहते हैं --

---

130-- जयराम मिश्र, 1960, पूर्वोक्त, पृ० 120

131-- वही, पृ० 121

132-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 546

हउ विचि आइआ हउ विचि गइआ ।

-- -- -- --

हउमै बूझै ता दरु सूझै ।[133]

गुरु नानक द्वारा वर्णित अहंभाव की प्रवृत्तियाँ तथा गीता के सोलहवें अध्याय में वर्णित आसुरी प्रवृत्तियों में अत्यधिक साम्य है। यथा--

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ।।20।।[134]

अर्थात् ऐसे मूढ़ लोग लगातार अनेक जन्मों में आसुरी या गन्दी और पतित योनियों में जन्म लेने के कारण मुझ (परमात्मा) को नहीं जान पाते । फलत: उनकी और भी अधम गति होती है ।

इससे स्पष्ट है कि `हउमै` जीवात्मा की सांसारिक यात्रा का प्रमुख कारण है । रजोगुण, तमोगुण एवं सत्वगुण के संयोग से नाना भांति की सृष्टि-रचना होती है । अनेक प्रकार के जीव उत्पन्न होते हैं । अनेक प्रकार के कर्म इसी `हउमै` के कारण किए जाते हैं। इन कर्मों के प्रभाव और संस्कार जीवात्मा को सूक्ष्म शरीर द्वारा बांधे रहते हैं । इस प्रकार जीव अनेक योनियों में भटकता रहता है और जीव का अम आपापन निरन्तर जारी रहता है ।[135]

हउमै इतना भयानक रोग है कि केवल मनुष्य ही इस रोग के वशीभूत नहीं, बल्कि पवन, पानी, वैश्वानर, धरती, सातों समुद्र, नदियां, खण्ड,

---

133-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 334

134-- सहजानन्द सरस्वती, पूर्वोक्त, पृ0 843

135-- शेरसिंह, गुरमति दर्शन, अमृतसर : शि0 गु0 प्र0 क0, प्रथम संस्करण, 1951, पृ0 254

पाताल, षट् दर्शन पर इसका प्रभुत्व है । यहाँ तक कि त्रिदेव भी इस रोग से मुक्त नहीं है --

नानक हउमै रोग बुरे ।

जह देखा तह तह एका वेदन आप वरपसै लबदि धुरे।।1।।रहाउ।।[136]

भेद

जयराम मिश्र ने मुख्य रूप से इसके सात भेद बताए हैं जिनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है --

(1) धार्मिक अथवा आध्यात्मिक अहंकार : बहुत से साधक स्वयं को ध्यानी, ज्ञानी, तपस्वी, योगी और ब्रह्मचारी समझने लगते हैं अर्थात् उनमें मैं ज्ञानी, ध्यानी, योगी, तपस्वी, ब्रह्मचारी हूं, इत्यादि की भावना का उदय होने लगता है। यही धार्मिक अथवा आध्यात्मिक अहंकार है । गुरु नानक की पैनी दृष्टि इस प्रकार की बातों से अवगत है । उन्होंने स्पष्ट कहा कि लाखों भलाईयां, लाखों पुण्यकर्म, तीर्थों में लाखों तप, जंगलों में योगियों का सहज योग, योद्धाओं की लाखों बहादुरी तथा रणभूमि में उनका प्राण त्याग, श्रुतियों के लाखों पाठ, यदि अहंभाव से किए गए हैं, तो वे सब मिथ्या बुद्धि से किए गए हैं --

लख नेकीआ-चंगिआईआ लख पुंना परवाणु

नानक मती मिथिआ करमु सचा नीसाणु ।।25।।[137]

(2) विद्यागत अहंकार : बहुत सेलोग इस अहंकार के वशीभूत होते

136-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 698

137-- वही, पृ0 335

हैं। इस प्रकार का अहंकार आध्यात्मिक प्रगति में बाधक होता है। ऐसे विधागत अहंकारियों का चित्रण करते हुए गुरु नानक ने कहा है -- "यदि पढ़-पढ़ कर काफिले भर दिए जाएं, पढ़-पढ़ कर नावें लाद दी जाएं, पढ़-पढ़ कर गड्ढे भर दिए जाएं और अध्ययन में ही सारे वर्ष, सारे मास, सारी आयु, सारी सांसें व्यतीत कर दी जाएं, फिर भी गुरु नानक के मत से यही बात उचित है कि यह सब सिर खपाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।" यथा--

पढ़ि पढ़ि गडी लदीअहि पढ़ि पढ़ि भरीअहि साथ ।
पढ़ि पढ़ि बेड़ी पाईऐ पढ़ि पढ़ि गडीअहि खात ।।
पढ़ि अहि जेते बरस बरस पढ़ीअहि जेते मास ।
पढ़ीऐ जेती आरजा पढ़ीअहि जेते सास ।।
नानक लेखै इक गल होरु हउमै लखणा झाख ।।26।। [139]

(3) कर्मकाण्ड और वेश-सम्बन्धी अहंकार : बहुत से साधक संसार में अपनी प्रसिद्धि बनाने के लिए इसी अहंकार से ग्रस्त होते हैं, फिर भी इन्हें चैन नहीं मिलता। कर्मकाण्ड और वेश सम्बन्धी अहंकार का विवेचन करते हुए गुरु नानक ने कहा है कि मनुष्य जितने अधिक वेश बनाता है, उतना अधिक शरीर को कष्ट देता है। इसके अतिरिक्त अन्न न खाना, वस्त्र धारण न करना, मौन रखना, नंगे पांव चलना, गन्दगी भक्षण करना, सिर में राख डालना, जंगलों, मढ़ियों तथा श्मशानों में रहना, इन सब को गुरु नानक ने व्यर्थ के पाखण्ड कहा है --

लिखि लिखि पड़िआ तेता कड़िआ । बहु तीरथ भविआ तेतो लविआ।।
बहु भेख किआ देही दुखु दीआ। सहु वे जीआ अपणा कीआ।।
अनु न खाइआ सादु गवाइआ । बहु दुखु पाइआ दूजा भाइआ ।।
वसत्र न पहिरै अहिनिसि कहरै । मोनि विगूता किउ जागै गुर बिनु सूता।।

138-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 336

अलु मलु खाई सिरि छाई पाई । मूरखि अंधै पति गवाइ ।

रहै बेबाही मही मसाणि । अंधु न जाणै फिरि पछुताणि ।।27।।[139]

ऐसे लोगों को सद्गुरु ही सुख दे सकता है --

सतिगुर भेटे सो सुखु पाए ।[140]

(4) जाति-सम्बन्धी अहंकार : "मैं ब्राह्मण हूं, मैं क्षत्रिय हूं, मैं कुलीन हूं" इत्यादि का अहंकार समाज के बीच झगड़ों का कारण बनता है। गुरु नानक ने जाति-सम्बन्धी अहंकार को दूर करने के लिए लोगों को इस प्रकार कहा --

जाणहु जोति न हे पूछहु जाति आगै जाति न हे ।[141]

(5) धन-सम्बन्धी अहंकार : धन-सम्बन्धी अहंकार मनुष्य को राक्षसी कर्म करने की प्रेरणा देते हैं। ऐसे अहंकार के वशीभूत लोग दिन-रात सम्पत्ति एकत्रित करने में लगे रहते हैं। इन लोगों का कोई आदर्श नहीं होता। इन्हें महर, मलूक, ~~सब~~ सरदार, राजा, बादशाह, चौधरी, राय, खान कहलाने की आकांक्षा सताती रहती है। किन्तु ऐसे मनमुख अहंकारी की हालत वैसे ही होती है जिस प्रकार दावाग्नि में पड़कर तृण समूह की होती है --

सुइना रुपा सचीए मालु जालु जंजालु ।4।।

-- -- -- --

महर मलूक कहाईऐ राजा राउ कि खानु ।

139-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 336-37

140-- वही, पृ0 337

141-- वही, पृ0 248

चउधरी राउ सदाइऐ जलि बलीऐ अभिमानु ।।
मनमुखि नामु विसारिआ जिउ डनि दधा कानु ।।6।।
हउमै करि करि जाइसी जो आइआ जग माहि ।
सभु जगु काजल कोठड़ी तनु मनु देह सुआहि ।। [142]

(6) परिवार-सम्बन्धी अहंकार : परिवार-सम्बन्धी अहंकार का प्रबल मोह संसार में सर्वत्र फैला हुआ है। सांसारिक मनुष्य कौटुम्बिक आकर्षणों से आबद्ध रहते हैं। गुरु नानक देव कहते हैं कि जो सांसारिक व्यक्ति बहिन, मामा-मामी भौजाई, सास, फूफी, नानी, मौसी, देवर जेठानी आदि में अहंबुद्धि रखते हैं, वे सचमुच मूर्ख हैं। यह बात याद रखने योग्य है कि संसार का कोई भी सम्बन्ध अन्त में हमारी सहायता नहीं करेगा--

ना भैणा भरजाईयां ना से ससुड़ीआह ।
-- -- -- --
फुफी नानी मासीआ देर जेठानड़ीआह ।
आवनि वंनि ना रहनि पूर भरे पहीआह ।।2।।
मामे ते मामाणीआ भाइर बाप ना माउ ।।3।। [143]

माता-पिता, पुत्र, कन्या, नारी-पुत्र-कलत्र सभी बन्धन के हेतु हैं। ये अहंकार के कारण घोर बन्धन में पड़े हैं --

बंधन मात-पिता संसारि । बंधन सुत कंनिआ अरु नारि ।।2।।
बंधन करम धरम हउ कीआ । बंधन पुत कलतु मनि बीआ ।।3।। [144]

142-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 158

143-- वही, पृ० 603

144-- वही, पृ० 291

(7) रूप-यौवन सम्बन्धी अहंकार : धनी-निर्धन तथा कुरूप व्यक्ति भी इस अहंकार से ग्रस्त हैं। आजकल के नवयुवक तथा नवयुवतियों में इसकी प्रबलता अधिक पाई जाती है । गुरु नानक ने स्थान स्थान पर इसकी प्रबलता का वर्णन किया है। एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि पांच ठग राज, माल, रूप, जाति और यौवन संसार में अत्यन्त प्रबल हैं। उन्होंने किसी की भी लज्जा नहीं छोड़ी --

राजु मालु रूपु जाति जोबनु पंजे ठग ।
एनी ठगीं जगु ठगिआ किनै न रखी लज ।।[145]

इसी बात को गुरु नानक ने राग मलार में इस प्रकार कहा --

राजु मालु जोबनु सभु छांव ।[146]

अर्थात् राज, धन, यौवन आदि वस्तुएं छाया के समान क्षणभंगुर हैं ।

गुरु नानक ने यह भी बताया कि रूप और काम की आपस में प्रबल मैत्री है -- 'रूपै कामै दोसती'[147] उन्होंने यह स्पष्ट किया कि रूप सम्बन्धी अहंकार की क्षुधा कभी शान्त नहीं होती --

रूपी भुख न उतरै जां देखां तां भुख ।
जेते रस सरीर के तेते लगहि दुख ।। 10 ।।[148]

तन-धन, कांचन और कामिनी को देखकर गर्व करना मूर्खता है। गुरु नानक कहते हैं ऐसे लोग राम-नाम को भूलकर भ्रमित होते रहते हैं --

---

145-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 768

146-- वही, पृ० 751

147-- वही, पृ० 768

148-- वही, पृ० 765

तनु धनु देखत गरबि गइआ ।
कनिक कामनी सिउ हेतु वधाइहि की नामु विसारहि भरमि
गइआ ।।1।।रहाउ।। [149]

उपरोक्त विवेचन से भली-भांति स्पष्ट है कि हउमै विनाश का कारण है । अहंकार के कारण बड़े-बड़े दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं । केवल सद्गुरु ही 'हउमै' के बन्धनों को तोड़ सकता है --

हउमै बन्धन सतिगुरि तोड़े चितु चंचलु चलणि न दीना है।26। [150]

गुरु नानक संसार के लोगों को डूबते हुए नहीं देखना चाहते थे, इसलिए उन्होंने लोगों को समझाने का भरसक प्रयत्न किया। अपने उपदेशों में उन्होंने बार-बार कहा है कि अभिमान को छोड़कर प्रभु का आदेश मानना श्रेयस्कर है। जब पति (परमात्मा) का आदेश मिला तो क्षण भर में इस नश्वर संसार को त्यागना है --

मूरख मन काहे करसहि माणा ।
उठि चलणा खसमै भाणा ।।1।।रहाउ।। [151]

गुरु नानक अहंकार आदि मनोविकारों को छोड़ने के महत्त्व को प्रतिष्ठापित करते हुए आगे कहते हैंकि जो व्यक्ति इन को छोड़कर जीवन व्यतीत करता है, वह सत्य परमात्मा के समान होता है। ऐसा व्यक्ति न केवल अपना ही जीवन सफल बना लेता है, वरन् अपने निकटवर्तियों का भी उद्धार कर देता है --

ना हम चंगे आखीअह बुरा न दिसै कोइ ।
नानक हउमै मारीऐ सचे जेहड़ा सोइ ।।8।।2।।10।। [152]

149-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 510

150-- वही, पृ० 626

151-- वही, पृ० 574

152-- वही, पृ० 603

मानव का जन्म गुरु नानक ने तब सफल समझा है, जब वह अभिमान आदि को छोड़कर प्रभु की शरण में लीन होकर उसका गुणगान करने लगता है। इस तन और धन को नष्ट होते देर नहीं लगती। यथा--

इसु तन धन का कहहु गरबु कैसा ।
बिनसत बार न लागै बवरे हउमै गरबि खपै जगु ऐसा।।1।।रहाउ।। [153]

पुन: भक्त शिरोमणि गुरु नानक देव प्रभु की स्मृति को हृदय में बसाकर अभिमान (हउमै) को मारने का उपदेश देते हैं। यथा--

भोलिआ हउमै सुरति विसारि ।
हउमै मारि बीचारि मन गुण विचि गुणु लै सारि ।।1।।रहाउ।। [154]

अहं एक प्रधान और व्यापक बदी है। यह जीवन में हर समय एक या दूसरे रूप में उपस्थित रहती है । कुछ मनुष्य बिना गुणों के ही अभिमान करते रहते हैं। ऐसे मनुष्यों को गुरु नानक देव ने असली गधों की उपाधि से विभूषित किया है --

नानक ते नर असलि खर जि बिनु गुण गरबु करंत ।।15।। [155]

उपरोक्त से स्पष्ट है कि गुरु नानक ने अहंकार-नाश के उपाय भी बताए हैं जिनसे साधक का मन अहंकार का त्याग करने को बाध्य हो जाता है। इससे सबसे बड़ी प्राप्ति यह है कि गुरु का विश्वास बढ़ता है जिससे यम के दूत अपने मूल कर्तव्य को भूलकर चाकरी करने लगते हैं --

भली सरी जि उबरी हउमै मुई घराहु ।
दूत लगे फिरि चाकरी सतिगुर का वेसाहु ।।1।। [156]

153-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 754

154-- वही, पृ० 700

155-- वही, पृ० 808

156-- वही, पृ० 110

इस प्रकार संक्षेपत: कहा जा सकता है कि गुरु नानक ने जीव के जीवन का लक्ष्य भगवत् प्राप्ति ही बताया है। जब मनुष्य माया की मायावी शक्तियों को समझकर बच निकलता है और गुरमुखों के संग अपना आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने लगता है, तब वह अपने जीवन के लक्ष्य भगवत् प्राप्ति की दिशा में अग्रसर होने लगता है ।

8.10 भौतिक-आध्यात्मिक रोग मुक्ति

यह संसार दु:खों का घर है। मनुष्य ने परमात्मा को बिल्कुल भुला दिया है, परिणामस्वरूप उसे अनेक प्रकार के कष्ट सहने पड़ते हैं और अनेक रोगों का सामना करना पड़ता है। अन्धे अविवेकी मन को सजा तो मिलती है--

> खसमु विसारि कीए रस भोग । ता तनि उठि खलोए रोग ।।
> मन अंधे कउ मिलै सजाइ । वैद न भोले दारू लाइ ।।2।।[157]

गुरु नानक सांसारिक रोगों से मुक्त हो चुके थे। उन्हें तो प्रभु-प्रेम का रोग लगा हुआ था। प्रभु की याद में वह मस्त रहते थे, यहां तक कि खाने-पीने तक की सुध नहीं रहती थी। इस चिन्ता के निवारण के लिए परिवार के सदस्यों ने वैद्य को बुलाया। गुरु नानक ने भोले वैद्य से कहा कि तुम्हारी दवाई से शरीर में दर्द और दु:ख बढ़ रहा है, अत: दवाई मत लगा --

> वैद न भोले दारू लाइ ।
> दरदु होवै दुखु रहै सरीर । ऐसा दारू लगै न बीर ।।1।।रहाउ।।[158]

गुरु नानक की तरह मीरां भी प्रभु-प्रेम के रोग में ग्रस्त है --

---

157-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 750

158-- वही, पृ0 750

पानी ज्यूं पीली पड़ी रे, लोग कहैं पिंड रोग ।
छानै लंघण मैं किया रे, राम मिलण कै जोग ।।207।। [159]

प्रभु प्रेम की पीड़ा की कसक रविदास को भी हो रही है जो राम रसायन रूपी औषधि से ही मिट सकती है --

'रविदास' मोरे मन लागियो, राम प्रेम को तीर ।
राम रसायन जउ मिलहिं, तउ हरै हमारो पीर ।।6।। [160]

गुरु नानक बाल्यवस्था से ही प्रभु प्रेम एवं विरह में व्याकुल रहते थे। निम्नलिखित 'सलोक' में उन्होंने वैद्य को समझाकर अपने आन्तरिक प्रेम की स्थिति बताई है--

वैदु बुलाइआ वैदगी पकड़ि ढूंढोले बाहं ।
भोला वैदु न जाणई करक कलेजे माहि ।।4।। [161]

अर्थात् वैद्य बांह पकड़ कर नाड़ी देखता और मर्ज ढूंढता है, किन्तु भोला वैद्य यह नहीं जानता कि गुरु नानक के कलेजे में दर्द है । बाह्य उपचारों से इलाज सम्भव नहीं। आन्तरिक प्रेम को वह जानने वाले गुरु नानक के पास भला अहंकार आदि का रोग कैसे ठहर सकता था ? इसका वर्णन करते हुए वह कहते हैं कि अहंकार का रोग बहुत बुरा होता है। जहां भी देखो, वहां इसी अहंकार का दु:ख है। यह रोग गुरु के शब्द द्वारा ही दूर हो सकता है --

नानक हउमै रोग बुरे ।
जह देखा तह एका वेदन आपे बखसै सबदि धुरे ।।1।।रहाउ।। [162]

159-- ब्रजरत्न दास, पूर्वोक्त, पृ0 76
160-- पृथ्वी सिंह 'आजाद', पूर्वोक्त, पृ0 73
161-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 761
162-- वही, पृ0 698

वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी, माता-पिता, माया, देह, कुटुम्बी, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा, समस्त नदियां, सात समुद्र, खण्ड, पाताल, छः प्रकार के वेशधारी (योगी, संन्यासी, जंगम, बोधी, सरोवड़े तथा वैरागी), नाना प्रकार के हठी-निग्रही सब रोगी हैं। वेद तथा कतेब इत्यादि धार्मिक ग्रन्थ क्या कर सकते हैं ? इसके अतिरिक्त विभिन्न रसों का आस्वादन करने वाले, कंदमूल खाने वाले, तीर्थों में भ्रमण करने वाले लोग भी 'सांसारिक रोगों से मुक्त नहीं है । दुविधा रोग तो और अधिक बड़ा है, इस रोग में पड़कर मनुष्य माया का मोहताज बन जाता है --

पउणु पाणी बैसंतरु रोगी रोगी धरति सभोगी ।

-- -- -- -- --

दुविधा रोगु सु अधिक वडेरा माइआ का मुहताजु भइआ।।8।। [163]

इस संसार में बड़े-बड़े रोग हैं। इन रोगों का निवारण केवल एक सद्गुरु ही कर सकता है क्योंकि वही इन रोगों को जानता है। गुरु नानक कहते हैं कि सद्गुरु से मेरा मिलाप हो गया और सांसारिक रोग समाप्त हो गए --

रोगु वडो किउ बांधउ धीरा । रोगु बुझै सो काटै पीरा ।।
मैं अवगण मन माहि सरीरा । ढूढत खोजत गुरि मेले बीरा।।3।। [164]

अतएव यह कहा जा सकता है कि गुरु नानक ईश्वरीय प्रेम को पहचान चुके थे। ईश्वरीय प्रेम का तत्व परम रहस्यमय है। जो भी व्यक्ति इस तत्व को पहचान लेता है, वह प्रेममय बन जाता है। उसका उपचार वैद्य के द्वारा संभव नहीं होता। वह इलाज-रहित हो जाता है क्योंकि यह हृदय के भावलोक का रोग है जो वैद्य की सीमा से बाहर है। इस रोग को समझने में वही व्यक्ति

163-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 698

164-- वही, पृ0 714

समर्थ हो सकता है जिसने इस रोग की पीड़ा का अनुभव किया हो ।

8.11 पाखण्ड खण्डन एवं नानकवाणी

गुरु नानक देव के समय, सदियों की राजनीतिक दासता तथा बौद्धिक और मानसिक पतन के कारण लोगों के धार्मिक जीवन का भ्रष्ट हो जाना स्वाभाविक था। हिन्दू जाति धर्म के आध्यात्मिक प्रभाव से निकल कर कुछ दूसरी धर्म विधियां, पूजा और उपासना की रीतियां तथा संस्कारों को आत्मिक कल्याण अथवा मुक्ति का साधन समझ बैठी थी। हिन्दू वर्ग के सभी सम्प्रदाय वैष्णव, जैनी, योगी, संन्यासी व्यर्थ कर्मकाण्डों तथा अन्धविश्वासों में उलझे हुए थे। गुरु नानक ने इन कर्मकाण्डों तथा धार्मिक अन्धविश्वासों को हिन्दू-जाति के सामूहिक विकास में बाधक समझ के इनकी कड़े शब्दों में आलोचना की । इन आडम्बरों और कर्मकाण्डों को रचने में विशेष हाथ ब्राह्मण वर्ग का रहा है। ब्राह्मण जाति का उद्भव भले ही धार्मिक कर्तव्यों की पालना करने के लिए, हिन्दुओं की सहायता तथा उन्हें सुशिक्षित करने के उद्देश्य को सन्मुख रख के हुआ था और शुरू-शुरू में यह बड़ी लग्न और पवित्रता से चलता भी रहा, यहां तक कि सामाजिक रिवाजों को भी इसने पूरा किया परन्तु ब्राह्मण काल में जब इन्हें दान में बहुमूल्य पदार्थ मिलने लगे, तब ये सुख साधना और भोग-विलास में पड़ गए तथा इनका बौद्धिक पतन होना आरम्भ हो गया । धीरे-धीरे ये लोग अपने हितों की पूर्ति के लिए हिन्दू-जाति का लहू चूसने लगे । बौद्ध धर्म ने ब्राह्मणवाद पर कड़ी चोट की, परन्तु बौद्ध धर्म के पतन के पश्चात् ब्राह्मणवाद का पूर्ण बोलबाला रहा। ब्राह्मणों ने हिन्दू-जाति पर सदियों तक अधिकार जमाए रखने के लिए, कर्मकाण्डों अथवा पाखण्ड-पूर्ण रीतियों को इतना जटिल बना दिया कि ब्राह्मणों के बिना ये पूरी नहीं हो सकती थी। कर्मकाण्ड प्रथा इतनी बलवान हो गई कि इसने मूल धर्म को ही ग्रस लिया और स्वयं को एक स्वतन्त्र संस्था के रूप में स्थापित कर लिया ।

गुरु नानक देव के आगमन के समय इन धर्मों तथा विश्वासों का आपस में दंगल मचा हुआ था। प्रत्येक धर्म और विश्वास स्वयं को उचित और दूसरे धर्मों तथा विश्वासों को अनुचित ठहरा रहा था तथा इस बात का खुल्लमखुल्ला प्रचार भी किया जा रहा था जिस कारण इन धर्मों तथा विश्वासों की आपस में बहस हो जाती थी। अन्य धर्म और पैगम्बरों ने किसी दूसरे धर्म का ज़िक्र नहीं किया अगर किया है तो वह उच्च भावना अधीन नहीं । परन्तु गुरु नानक प्रत्येक धर्म के मानने वाले को अपने धर्म में पक्का और सच्चा बनने की प्रेरणा देते हैं तथा कभी भी धर्म बदलने को नहीं कहते । प्रत्येक धर्म मनुष्य को आत्मिक प्रेरणा देता है। गुरु नानक ने मुसलमानों को वास्तविक मुसलमान बनने की शिक्षा देते हुए कहा --

> मुसलमान कहावणु मुसकलु जा होइ ता मुसलमाणु कहावै ।
> आवलि अउलि दीनु करि मिठा मसकलमाना मालु मुसावै ।।
> होइ मुसलिमु दीन मुहाणै मरण जीवण का भरमु चुकावै ।
> रब की रजाइ मंने सिर उपरि करता मंने आपु गवावै ।।
> तउ नानक सरब जीआ मिहरमति होइ त मुसलमाणु कहावै ।।[165]

गुरु नानक देव के इस मधुर और स्पष्ट उपदेश को सारी हिन्दू और मुस्लिम जनता ने सुना। मुसलमानों में यह धारणा थी कि यदि जामे (कपड़े) में रक्त लग जाए, तो वह अपवित्र हो जाता है और वह नमाज पढ़ने के लायक नहीं रहता। राग माझ के अन्तर्गत गुरु नानक ने इस बात का खण्डन किया है --

> जे रतु लगै कपड़ै जामा होइ पलीतु ।
> जो रतु पीवहि माणसा तिन किउ निरमलु चीतु ।।[166]

165-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 181

166-- वही, पृ० 178

अर्थात् यदि जामे (कपड़े) में रक्त लग जाए, तो जामा अपवित्र हो जाता है किन्तु जो मनुष्यों का रक्त पीते हैं (अत्याचार और अन्याय से उनका धन लेते हैं), उनका चित्त किस प्रकार निर्मल रह सकता है ? अपवित्र मन से पढ़ी गई नमाज भी स्वीकार नहीं हो सकती। वे मनुष्य पवित्र नहीं कहे जा सकते जो केवल शरीर को धोकर पवित्र बन कर बैठ जाते हैं । गुरु नानक का कथन है कि वे ही लोग पवित्र हैं, जिनके मन में वह प्रभु निवास करता है --

> सूचे एहि न आखीअहि बहनि जि पिंडा धोइ ।
> सूचे सेई नानका जिन मनि वसिआ सोइ ।।[167]

श्राद्ध की प्रथा का भी गुरु नानक ने कड़े शब्दों में खण्डन किया। पण्डितों का यह विचार था कि श्राद्धों में दिया गया दान मृत-आत्मा को लगता है इससे बढ़कर पाखण्ड और हो भी क्या सकता है । गुरु नानक ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि आगे तो वही चीज जाएगी जो स्वयं अपने हाथों से दान की हो और वह भी श्रम की कमाई की हो --

> अगै वसतु सिञाणीऐ पितरी चोर करेइ ।
> नानक अगै सो मिलै जि खटे घाले देइ ।।[168]

उस समय समाज में स्त्री को आदरणीय स्थान प्राप्त नहीं था। सिद्धों, नाथों एवं योगियों ने स्त्री को भगवद् भक्ति में बाधक बताया और उससे दूर रहने का उपदेश दिया। जिस नारी ने जन्म दिया, बड़े-बड़े महात्मा, सन्त, पीर, पैगम्बर तथा महान राजागण उत्पन्न किए, उस नारी का इससे बढ़कर अपमान और क्या हो सकता है ? गुरु नानक ने इस बात का खण्डन किया और नारी को समाज में उच्च स्थान दिया। राग आसा के अन्तर्गत गुरु जी ने निम्न श्लोक द्वारा नारी की परिभाषा दी --

---

167-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 350

168-- वही, पृ० 350

मंहि जमीर मंहि निमीरे मंहि मंगणु वीआहु
मंहु होवै दोसती मंहु चलै राहु
मंहु मुआ मंहु भालीरे मंहि होवै बंधानु
सो किउ मंदा आखीरे जितु जमहि राजान ।[169]

नारी गरिमा का कितने मार्मिक शब्दों में चित्रण किया है। तत्कालीन शासकों ने नारी को अपनी कामुकता से अत्यधिक पीड़ित किया था। गुरु नानक देव ने जहां मुसलमानों को वास्तविक मुसलमान बनने की शिक्षा दी, वहां साथ-साथ उन्होंने ब्राह्मणों, योगियों और शाक्तों को भी वास्तविकता से अवगत कराया --

पढ़ि पुस्तक संधिआ बादं । सिल पूजसि बगुल समाधं ।।
मुखि झूठु बिभूखन सारं । त्रै पाल विहाल विचारं ।।[170]

अन्त में, इतना ही कह सकते हैं कि गुरु नानक देव उस समय प्रकट हुए, जब धर्म की रक्षा के लिए ऐसे व्यक्तित्व की आवश्यकता थी ।

8.12 धर्म की बाह्यरुचिता एवं नानक वाणी

पंडित लोग धोती पहनकर और तिलक लगाकर स्वयं को श्रेष्ठ समझते थे, किन्तु उनका व्यवहार अनुकूल नहीं था। गुरु नानक ने `आसा दी वार` में ऐसे लोगों का भली-भांति खण्डन किया है। उस समय ब्राह्मण लोग जनेऊ पहनते थे, परन्तु उसके वास्तविक स्वरूप से अपरिचित थे। गुरु नानक ने जनेऊ पहनने का खण्डन नहीं किया बल्कि उसके माध्यम से उसके गुणों की व्याख्या अवश्य की। जब आंखें, नाक-कान, हाथ पांव सभी बिना जनेऊ के हैं तब केवल

169-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 352

170-- वही, पृ० 802

गले में जनेऊ पहन कर कुछ भी प्राप्त नहीं होगा अर्थात् इन्द्रियों को धागे या रस्सी से नहीं बांधा जा सकता। यदि मन और इन्द्रियों को पापों की ओर जाने से नहीं रोक सकते तो बेकार यज्ञोपवीत से कोई लाभ होने वाला नहीं। उन्होंने पांडे को स्पष्ट शब्दों में कहा कि जनेऊ के धागे की कपास दया होनी चाहिए उसका सूत संतोष और उसकी गांठें सत्य होनी चाहिए, यदि ऐसा जनेऊ तुम्हारे पास है तो मुझे अवश्य पहना दो --

दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु ।
एहु जनेऊ जीअ का हई त पांडे घतु ।।
ना एहु तुटै न मलु लगै न एहु जलै न जाइ ।
धंनु सु माणस नानका जो गलि चले पाइ ।।29।। [171]

शरीर को हठयोग आदि से मारने के बजाय मनुष्य को चाहिए कि वह मन के लोभ, मोह और अहंकार को समाप्त करे । मन में सन्तोष, दया तथा परोपकार की भावना का होना आवश्यक है । गुरु नानक के काल में योगी पाखण्डपूर्ण थे तथा माया और मोह के चक्रों में ग्रस्त थे । गुरु नानक ने राग रामकली के अन्तर्गत इन योगियों पर इस प्रकार व्यंग्य किया है --

भसम चढ़ाइ करहि पाखंड ।
माइआ मोहि सहहि जम डंडु ।।
फूटै खापरु भीख न भाइ ।
बंधनि बाधिआ आवै जाइ ।।3।। [172]

कोई भी मार्ग जिसमें पाखण्ड होगा, परमात्मा की ओर ले जाने वाला मार्ग नहीं हो सकता। जिस ज्ञान के साथ अहंकार तथा पाखण्ड जुड़ जाता है, उस

171-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 346

172--वही, पृ0 502

स्थिति में प्रभु प्राप्ति सम्भव नहीं । मानसिक शक्तियों के सहारे, करामातों से, ऋद्धियों-सिद्धियों से शक्ति के घमण्ड तथा पाखण्डपूर्ण जीवन व्यतीत करने से प्रभु मिलन नहीं होता । जिस जीवन में पाखण्ड तथा अहंकार नहीं, वही जीवन सर्वोत्तम जीवन है । गुरु नानक ने पाखण्डों तथा झूठे कर्मकाण्डों का निषेध किया है। बार आसा में गुरु नानक ने एक खत्री को धिक्कारा है--

गऊ बिरहामण कउ करु लावहु गोबरि तरणु न जाई ।
धोती टिका तै जपमाली धानु मलेछां खाई ।।
अंतरि पूजा पडहि कतेबा संजमु तुरका भाई ।
छोडीले पाखंडा । नामि लइए जाहि तरंदा ।।[173]

कहने का तात्पर्य यह है कि गऊ और ब्राह्मण पर तो कर वसूल कर रहे हो, किन्तु साथ ही गाय के गोबर के बल पर संसार सागर से पार उतरना चाहते हो । दिखावे के लिए धोती-टिक्का लगाते हो, कुरान पढ़ते हो, ये पाखण्ड सब व्यर्थ हैं। इससे प्रभु मिलन सम्भव नहीं ।

यदि किसी योगी को कोई सिद्धि या अन्य कोई शक्ति मिल जाए तो बड़ी बात नहीं क्योंकि वास्तविक योगी कहलाना बड़ा कठिन है । योग की प्राप्ति कंथा पहनने या डंडा लेने में नहीं है और न ही शरीर पर भस्म लगाने में है, न मुंह मुंडवाने ने शृंगी बजाने में है। योग की वास्तविक युक्ति तो तभी सम्भव है जब बीच में माया का पर्दा हट जाए --

जोगु न खिंथा जोगु न डंडै जोगु न भसम चड़ाईऐ ।
जोगु न मुंदी मूंडि मुडाइऐ जोगु न सिङी वाईऐ ।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ ।।
गली जोगु न होई ।[174]

173-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 348
174-- वही, पृ0 441

उन्होंने योग का विरोध नहीं किया, बल्कि योगमार्ग में आए बाह्याडम्बर का विरोध किया। तत्कालीन हिन्दू-जाति बाह्याडम्बरों की विडंबना से पीड़ित थी । धार्मिक संकीर्णता ही समस्त सामाजिक अनाचारों का कारण थी। उनकी मूक वेदना को गुरु नानक वाणी में ही स्वर मिला। लोग मन की शुद्धता के ~~स्न~~ बजाय शारीरिक शुद्धता पर जोर दे रहे थे । गुरु नानक ने प्राचीन परिपाटियों जैसे कि सूतक प्रथा का कड़े शब्दों में खण्डन किया। उनका कथन है --

जे करि सूतकु मंनीऐ सभ तै सूतकु होइ ।
गोहे अतै लकड़ी अंदरि कीड़ा होइ ।।[175]

इसके अतिरिक्त सूतक का स्वरूप क्या है, इसका स्पष्टीकरण गुरु नानक ने इस प्रकार किया है --

मन का सूतकु लोभु है जिहवा सूतकु कूड़ु ।
अखी सूतकु वेखणा परतृअ परधन रूप ।।[176]

हिन्दू-मुसलमान दोनों वर्गों के लोग गुरु के बिना ही बहिश्त (स्वर्ग) की प्राप्ति के लिए अन्धे हो रहे थे । बाह्याडम्बरों के सहारे ये लोग आशा के कच्चे धागे से बन्धे अज्ञानता के अन्धेरे में हाथ-पैर मार रहे थे। गुरु नानक का विचार है कि गुरु के बिना प्रभु प्राप्ति सम्भव नहीं । गुरु आध्यात्मिकता के बीजों को प्रस्फुटित कर उनमें अनुभव का रस भरता है। उनका विचार है --

गुर बिनु किनै न पाइओ केती कहै कहार ।[177]

175-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 351

176-- वही, पृ० 351

177-- वही, पृ० 302

अर्थात् चाहे कितना भी कहा जाए, गुरु के बिना हरि को किसी ने भी प्राप्त नहीं किया।

8.13 स्वार्थहीनता

संसार में बहुत से लोग स्वार्थी हैं। उनके प्रत्येक काम में स्वार्थ की भावना निहित रहती है। स्वार्थपूर्ति हेतु ये लोग बड़ा पाप भी कर लेते हैं। यहां तक कि धर्म-कर्म में भी इनका विश्वास स्वार्थ की पूर्ति कीओर रहता है। गुरु नानक यहां राजागण की बात करते हैं। यदि येलोग दान देते हैं उसमें भी इन्हें आशा रहती है --

राजे धरमु करहि परचाए। आसा बंधे दान कराए ।।[178]

स्त्री-पुरुष का आपस में धन के लिए प्रेम है। जब तक धन नहीं है, तो कोई आए कोई जाए।

इसतरी पुरखै खटिऐ भाउ। भावै आवउ भावै जाउ ।।[179]

लोग शास्त्र वेद कुछ नहीं मानते। अपने-अपने स्वार्थ की पूजा हो रही है --

सासतु वेद न मानै कोइ। आपो आपै पूजा होइ ।।[180]

ऐसे मनमुख लोग रिश्वत लेकर झूठी गवाही देने में हिचकिचाते नहीं। गुरु नानक कहते हैं ऐसे दुर्बुद्धियों के गले में भय की फांसी पड़ती है --

लै कै वढ़ी देनि उगाही दुरमति का गलि फाहा है ।।3।।[181]

गुरु नानक समाज में आचरणहीन, पापियों एवं वाममार्गियों के कट्टर विरोधी थे। रिश्वत लेना, कम तोलना तथा दूसरों का हक छीनना

178-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 615

179-- वही, पृ० 562

180-- वही, पृ० 562

181-- वही, पृ० 637

ये सब उन्हें पसन्द नहीं था। आवरण के पीछे पाप करने वाला व्यक्ति उन्हें नीच दिखाई देता था। इसीलिए गुरु नानक ने अपने चारों ओर फैले हुए सामाजिक अनाचार करने वालों को फटकारा है। मानव समाज का उचित मार्गदर्शन करने के लिए उन्होंने अपनी वाणी में प्रेरणा दी है ।

8.14 विनम्रता

मीठा बोलना आप एक उत्तम गुण मानते हैं । यह गुण कड़वे स्वभाव वाले को भी आकर्षित कर सकता है । इस गुण की प्राप्ति में किसी प्रकार का व्यय नहीं करना पड़ता। कड़वे वचन बोलने वाले व्यक्ति का हर जगह तिरस्कार होता है । गुरु नानक का वचन है --

मिठत नीवी नानका गुण चंगिआइआ ततु ।।[182]

उनकी दृष्टि में मंदा अथवा फिक्का बोलना अतिनिन्दनीय था। उनका कहना था फिक्का अथवा कड़वा बोलने से तन और मन दोनों भ्रष्ट हो जाते हैं । अप्रिय वचन बोलने वाला व्यक्ति परमात्मा के दरबार में भी अस्वीकृत किया जाता है --

नानक फिकै बोलिए तनु मनु फिका होइ ।
फिको फिका सदीऐ फिके फिकी सोइ ।।
फिका दरगह सटीऐ मुहि थुका फिके पाइ ।
फिका मूरखु आखीऐ पाणा लहै सजाइ ।।42।।[183]

गुरु नानक वाणी का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि गुरु नानक ने स्थान-स्थान पर स्वयं को प्रभु का दास माना है। उनके जीवन-चरित से यह शिक्षा मिलती है कि इतने उच्चकोटि के सन्त होते हुए भी

182-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 344

183-- वही, पृ0 353

उन्होंने विनम्रता को नहीं छोड़ा । उन्होंने इन उपदेशों को जनता में बांटने से पहले खुद पर लागू किया था। इसलिए उन्होंने लोगों को स्वार्थपरायणता की भावना को त्यागने और विनम्रता की भावना को मन में रखकर गुरु शब्द की कमाई करने का उपदेश दिया है। गुरु नानक देव की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन्होंने अपने उपदेशों को हिन्दू-मुसलमानों के प्रति बिना किसी अहंकार के बड़ी विनम्रता से निवेदित किया था। इसीलिए उनके उपदेश अन्य सन्तों की अपेक्षा सहज एवं प्रभावशाली बन पड़े हैं ।

8.15 परिवार-सम्बन्ध : मानवीय अन्तर्सम्बन्ध

हम जिन-जिन बातों से इस संसार में बन्धे हुए हैं, ठीक उन्हीं बातों से भगवान से भी जुड़ सकते हैं। सच तो यह है कि इन सम्बन्धों के अतिरिक्त भी कोई सम्बन्ध है इसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते, इसलिए इन्हीं सब सम्बन्धों को लेकर भगवान से भी मिलना है । हम किसी के पुत्र हैं, किसी के पिता, किसी के मित्र, किसी के प्रेमी, किसी के प्रेमास्पद। परमार्थ के पथ में ये सभी नाते वस्तुत: अपना आस्पद पाकर दिव्य हो जाते हैं क्योंकि हम अपने सभी नाते भगवान में स्थापित करना चाहते हैं ।[184]

किसके साथ कैसा सम्बन्ध बनाना चाहिए, ये सभी बातें गुरु नानक ने मनुष्य को समझाई है । माता, पिता, भाई, सास-ससुर और विवाह इत्यादि का सम्बन्ध बताते हुए गुरु नानक कहते हैं --

माता मति पिता संतोखु । सतु भाई करि एहु विसेखु ।।1।।
कहणा है किछु कहण न जाइ । तउ कुदरति कीमति नहीं पाइ।।1।। रहाउ।।

184-- भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव,' पूर्वोक्त, पृ0 52

सरम सुरति दुइ ससुर भए । करणी कामणि करि मन लए ।।2।।
साहा संजोगु वीआहु विजोगु । सचु संतति कहु नानक जोगु ।।3।।[185]

अर्थात् बुद्धि को माता, संतोष को पिता, सत्य को भाई बनाओ । ये ही विशेष सम्बन्ध हैं । परमात्मा के सम्बन्ध में कथन करना व्यर्थ है क्योंकि उसके सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता और न ही उसकी कीमत पाई जा सकती है । इन्हीं सम्बन्धों की बात करते हुए गुरु नानक आगे कहते हैं कि लज्जा और परमात्मा की सुरति को सास-ससुर बनाओ तथा शुभ करनी को स्त्री बनाओ। विवाह और सन्तान के सम्बन्धों के बारे में गुरु नानक कहते हैं कि सत्संगका मेल विवाह की लग्न हो, सांसारिक विषयों से वियोग विवाह हो और सत्य को संतान बनाओ । यही सम्बन्ध ठीक है ।

उपरोक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि गुरु नानक सांसारिक सम्बन्धों की सार्थकता जानते थे । उन्हें मालूम था कि सांसारिक सम्बन्ध माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री इत्यादि सब के सब यहीं रह जाएंगे और अन्तिम समय में कोई भी साथ नहीं देगा---

माता पित भाई सुत चतुराई संगि न संपै नारे ।[186]

8.16 समाहार

गुरु नानक तीर्थ और तीर्थ स्नान के महत्व से इन्कार नहीं करते, पर उनके अनुसार गुरु का दर्शन, गुरु-शब्द पर विचार करना, नाम-स्मरण, सत्य बोलना, प्रभु रूपी मित्र की संगति में रहना तीर्थस्नान से कहीं बढ़कर है। जो तीर्थस्नान दिखावे के लिए किया जाता है, उसे गुरु नानक ने निःसार

185-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 202

186-- वही, पृ0 318

कहा है । इससे स्पष्ट होता है कि गुरु नानक उन्हीं क्रियाओं को स्वीकार करते हैं जिनसे मानव का कल्याण होता है ।

सिक्ख धर्म में सेवा के महत्व को महत्वपूर्ण माना गया है। नानक वाणी में सेवा और उसके फल का विश्लेषण हुआ है और मनुष्य को निष्काम-भाव से सेवा करने की प्रेरणा दीगई है। धन, ऐश्वर्य, शरीर, मन आदि सभी भगवान ने सेवा के लिए दिए हैं । अत: निष्काम भाव से सेवा करनी चाहिए। यही गुरु नानक देव का उपदेश है।

गुरु नानक कर्मयोगी थे इसलिएवे श्रम के महत्व को समझते थे। दूसरों के कमाए हुए धन से आनन्द मानकर जीवनयापन को वे बुरा मानते थे। वे इस साम्यवादी विचार के थे कि अगर दूसरों के पास अधिक धन है, दूसरे ने अधिक परिश्रम करके कमाया है तो उसे छीन लो, इस धारणा के विरुद्ध थे। उनकी दृष्टि में पराई वस्तु हिन्दू के लिए गोमांस और मुसलमान के लिए सुअर के मांस सदृश समान रूप से त्याज्य थी । रिश्वत लेना, कम तोलना, अपने फायदे के लिए झूठ बोलना, दूसरों का हक छीनना ये जितने भी स्वार्थ-पूर्ण कार्य हैं, गुरु नानक इनका विरोध करते हैं और मनुष्य को स्वार्थहीनता का सबक सिखाते हैं। समाज में शोषण किसी का भी नहीं होना चाहिए । इसके लिए गुरु नानक विनम्रता का उपदेश देते हैं । मन में हमेशा विनम्रता और गरीबी की भावना रखनी चाहिए। मन में जितनी अधिक विनम्रता होगी, उतना ही ज्यादा ध्यान प्रभु-भक्ति में लगता है ।

नानक वाणी में प्रभु की दया-दृष्टि को भी प्रतिपादित किया गया है। प्रभु की दया शाश्वत है जिसका कोई लेखा नहीं है। अनेक योद्धा, भिक्षार्थी हैं, उसकी दया के, किन्तु प्रभु दया के प्रतिकार में कुछ भी नहीं चाहता इसलिए उसे दयालु कहा जाता है। वह बहुत बड़ा दाता है। वह अपनी

कृपा, दया, भक्ति के माध्यम से बिना मांगे ही दान देता रहता है। उसका भण्डार बहुत बड़ा है उसमें कभी भी कमी नहीं आती ।

गुरु नानक प्रभु-दर्शन को बहुत महत्त्व देते हैं। जब भक्त को परमात्मा से लगाव हो जाता है और दोनों एकाकार हो जाते हैं, ऐसी अवस्था में आत्मा-परमात्मा का दर्शन किए बिना नहीं रह सकती। दर्शन करने के उपरान्त वह कमल के फूल की भांति प्रफुल्लित हो जाती है । प्रभु दर्शन के लिए सद्गुरु का सहारा लेना आवश्यक है । गुरु नानक प्रभु की दया-दृष्टि से परिचित थे इसलिए उनके दिल में किसी तरह का मतभेद नहीं था। यही कारण है उन्होंने लाखों लोगों के हृदय में प्रेम और करुणा की ज्योति जलाई और सब धर्मों और मनुष्यों की समानता का प्रचार किया। मानवमात्र को भौतिक स्तर से उठाकर आध्यात्मिक स्तर पर रखना उनका उद्देश्य था। वे समस्त सृष्टि के प्रत्येक प्राणी को उस परमपिता की सन्तान मानते थे । और मानव की एकता को स्थापित करके लोगों का भला चाहते थे, पर उन्हें यह मालूम था कि कामनाओं का दमन किए प्रभु की निकटता सम्भव नहीं । इसलिए नानकवाणी में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार इत्यादि दोषों से दूर रहने की शिक्षा दी गई है । गुरु नानक का विचार है अहंकार का रोग बहुत भयानक और बुरा है क्योंकि सर्वत्र इसका प्रसार हुआ है। गुरु नानक इसका उपाय गुरु की शरण बताते हैं । गुरु की शिक्षा ही अहंकार का नाश कर सकती है, तभी मनुष्य का गुरु के ऊपर विश्वास बढ़ सकता है।

सांसारिक रोगों से मुक्त हो चुके थे। उन्हें तो ईश्वरीय प्रेम का रोग लगा था इसलिए उन्होंने भगवान् से कई प्रकार के सम्बन्ध स्थापित कर प्रभु भक्ति का उपदेश दिया है जो आज भी मनुष्य के लिए कल्याणकारी है ।

कर्मकाण्डीय विधान तथा बाह्यरूपिता को भी गुरु नानक वाणी

में कोई स्थान नहीं मिला है। पण्डित, पुजारी, मुल्ला-मौलवी, पथभ्रष्ट एवं विवेकशून्य होकर जप, तिलक, माला, रोजा, नमाज आदि को ही सदाचार का मापदण्ड समझने लगे थे। पशु बलि और नरबलि द्वारा देवताओं को प्रसन्न बताया, धर्म का सत्य रूप बाह्याचारों एवं बाह्याडम्बरों में नहीं है वरन् आत्मा या ब्रह्म की अनुभूति में है । ब्रह्म और आत्मा की अनुभूति के लिए सत्यता, औदार्य, क्षमाशीलता, दया, समता की भावना की आवश्यकता है। गरीबों और दुखियों की सहायता करना तीर्थ-व्रत करने की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर है । रोग से पीड़ित एवं आर्त-क्रन्दन करने वाले की सेवा करना सालिग्राम की मूर्ति धोने की अपेक्षा कहीं अधिक न्याय एवं तर्कसंगत है ।

नवम् अध्याय

मध्यकालीन भारतीय धर्म-साधना के सन्दर्भ में गुरु नानकवाणी

गुरु नानक वाणी में धर्म साधना के बाह्य उपक्रमगत अध्याय का सन्दर्भ बिन्दु रहा है जिनमें तीर्थ, तीर्थ स्नान, सेवा, दया, दान, मानवमात्र के प्रति समभाव, कामनाओं का संस्कार, अहंकार का परित्याग, भौतिक-आध्यात्मिक रोग मुक्ति, पाखण्ड-खण्डन, धर्म की बाह्यरूपिता, स्वार्थहीनता एवं परिवार सम्बन्ध अथवा मानवीय अन्तर्सम्बन्ध समाविष्ट हैं। प्रस्तुत अध्याय 'मध्यकालीन भारतीय धर्म-साधना के सन्दर्भ में गुरु नानक वाणी' के परिप्रेक्ष्य में नानकवाणी में स्वीकार्य-अस्वीकार्य तत्व, नानकवाणी की मौलिकता एवं विशिष्टता आदि का विवेचन-विश्लेषण अपेक्षित है ।

9.1 अस्वीकार्य-तत्व

मध्ययुगीन समाज में फैले अनाचार और भ्रष्टाचार सामाजिक पतन का कारण थे । मध्ययुग में बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिन्हें नानकवाणी में स्वीकार भी किया गया है और नहीं भी । जहां रूढ़ियों और बाह्य आडम्बरों का प्रश्न है, इन्हें नानकवाणी में अस्वीकार किया गया है । गुरु नानक के युग में और उसके बाद भी इन रूढ़ियों को पूरी तरह समझा न गया, इसका प्रमाण यह है कि रूढ़ि-पंथकता अथवा परम्परानिष्ठता आज भी उसी रूप में प्रचलित है जैसी तब थी। इनमें धीरे-धीरे सुधार हो रहा है ।

परन्तु शताब्दियों से चली हुई अन्धविश्वास एवं धर्मान्धता की परतों का जोर इतना अधिक है कि इसमें सुधार की प्रत्यक्षता परिलक्षित नहीं होती। नानकवाणी में जिन तत्वों को स्वीकार और अस्वीकार किया गया है, उनका वर्णन इस प्रकार है ।

गुरु नानक युगीन जनसाधारण ने अनाचारों एवं अत्याचारों को भाग्यरूप में स्वीकार कर लिया था। उस समय ऐसी रूढ़ परम्पराएं विद्यमान थी जिनका लोग पालन करते थे, लेकिन गुरु नानक ऐसी रूढ़ परम्पराओं को जो मानवता की आध्यात्मिक और कुछ सीमा तक भौतिक उन्नति में बाधा डालती है, अस्वीकार नहीं करते । जैसे श्राद्ध प्रथा है, गुरु नानक कहे शब्दों में इसका विरोध करते हैं। उनके अनुसार वही वस्तु साथ जाएगी जो स्वयं अपने हाथों से दान की हो और वह भी श्रम की कमाई की हो --

जे मोहाका घरु मुहै घरु मुहि पितरी देइ ।
अगै वसतु सि ाणीऐ पितरी चोर करेइ ।।
वढीअहि हथ दलाल के मुसफी एह करेइ ।
नानक अगै सो मिलै खटे घाले देइ ।।35।।[1]

`वार आसा` जैसी दीर्घ आलोचनात्मक संरचना में कई प्रकार के अन्धविश्वासों जैसे `सूतक` आदि का विरोध किया गया है। इस प्रकार के निरर्थक अन्धविश्वासों में पुरोहितों का स्वार्थ भी निहित रहता था। जैसे सूतक की समाप्ति पर वे दक्षिणा लेकर घर का शुद्धिकरण करते थे और अपनी पेट-पूजा भी करते थे। इस प्रकार आध्यात्मिक दृष्टि से परखकर गुरुनानक यथार्थ `सूतक` का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मन का सूतक लोभ,

---

1-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 350

जीभ का सूतक झूठ बोलना, आंखों का सूतक परस्त्री का रूप सौन्दर्य और पर धन देखना, कानों का सूतक दूसरों की चुगली करना है --

मन का सूतकु लोभु है जिहवा सूतकु कूड़ु ।
अखी सूतकु वेखणा परत्रिअ परधन रूप ।।
कनी सूतकु कनि पै लाइतबारी खाहि ।
नानक हंसा आदमी बधे जमपुरि जाहि ।।38।।[2]

इसी वर्ग की अगली बात जनेऊ प्रथा है। उस समय के ब्राह्मण जनेऊ तो पहनते थे, किन्तु उसकी वास्तविकता से अपरिचित थे। गुरु नानक ऐसा जनेऊ पहनना अस्वीकार करते हैं। उन्होंने पाण्डे को स्पष्ट शब्दों में कहा अगर जनेऊ के धागे की कपास दया, उसका सूत संतोष और उसकी गाठें सत्य है फिर ऐसा जनेऊ तुम मुझे अवश्य पहना सकते हो --

दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु ।
एहु जनेऊ जीअ का हई त पाडे घतु ।।
ना एहु तुटै न मलु लगै न एहु जलै न जाइ ।
धंनु सु माणस नानका जो गलि चले पाइ ।।29।।[3]

जिन के मन में खोट और हृदय में बुराई हो परन्तु धर्म एवं पवित्रता का पाखण्ड रचते हों, उनका मानव अनुराग से सिक्त सशक्त भाषा में तिरस्कार किया गया है। उस समय के ब्राह्मण गाय पर कर वसूल करते थे, किन्तु साथ ही गाय के गोबर के बल पर संसार-सागर से पार उतरना चाहते थे। दिखावे के लिए धोती टिक्का पहनना, मुसलमानों का कुरान पढ़ना गुरु नानक को

2-- जयराम मिश्र, सं0 2013, पृ0 351

3-- वही, पृ0 346

स्वीकार्य नहीं था --

माणस खाणे करहि निवाज । छुरी वगाइनि तिन गलि ताग ।।
तिन घरि ब्रहमण पूरहि नाद । उना भी आवहि ओई साद ।।[4]

ऐसे लोग असत्यभाषी थे, जबकि गुरु नानक वाणी सत्य का सागर है, फिर भला गुरु नानक उन लोगों को कैसे सहन कर सकते थे जिनकी झूठी पूंजी है, झूठा व्यापार है, झूठ बोलकर जो रोज़ी चलाते हैं और शर्म-धर्म से कोसों दूर हैं ?

कूड़ी रासि कूड़ा वापारु । कूड़ु बोलि करहि आहारु ।।
सरम धरम का डेरा दूरि । नानक कूड़ु रहिआ भरपूरि ।।[5]

कोई भी मार्ग जिसमें पाखण्ड है, उसे गुरु नानक स्वीकार नहीं करते । भले ही मनुष्य बाह्यशुद्धता के लिए स्नान, सफाई, मूर्ति-पूजा आदि करे, किन्तु जब तक उसका मन शुद्ध नहीं है, तब तक कोई लाभ नहीं --

नावहि धोवहि पूजहि सैला । बिनु हरि राते मैलो मैला ।।[6]

गुरु नानक मुसलमानों के बाह्याचारों को अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि काजी होकर न्याय के लिए बैठता है, लोगों को दिखाने के लिए तस्बीह (माला) फेरता है, 'खुदा-खुदा' करता है और रिश्वत लेकर अपनी ईमानदारी खो बैठता है --

काजी होइ कै बहै निआइ । फेरे तसबी करे खुदाइ ।।
वढी लैके हकु गवाए । जे को पूछै ता पढ़ि सुणाए ।।[7]

4-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 348

5-- वही, पृ० 348

6-- वही, पृ० 506

7-- वही, पृ० 562

भेष जो दिखावे के लिए पहने जाते हैं, गुरु नानक के अनुसार उन्हें पहनना शरीर को कष्ट देना ही है --

बहु भेख कीआ देही दुखु दीआ...।[8]

दूसरों का हक छीनना गुरु नानक को अस्वीकार्य है । उनका विचार है पराया हक मुसलमान के लिए सुअर और हिन्दू के लिए गाय है --

हकु पराइआ नानका उसु सुअर उस गाइ ।[9]

गुरु नानक बाह्याचार की अपेक्षा मानसिक शुद्धता पर अधिक बल देते हैं । इसी सन्दर्भ में वह मांस-सेवन को घृणित नहीं मानते । 'राग मलार' में उन्होंने पण्डित को विस्तार सहित समझाया है कि मनुष्य मांस में स्थित होता, जन्म लेता, पलता और बड़ा होता है। उसका सारा शरीर मांस का है, विवाह करने के पश्चात् भी मांस की बनी हुई स्त्री को घर ले आता है, मांस से मांस की उत्पत्ति होती है, उसके सारे सम्बन्ध मांस के ही होते हैं । मूर्ख लोग मांस-मांस कहकर झगड़ा करते हैं। यज्ञ और विवाह आदि शुभ अवसरों पर भी मांस का प्रयोग होता आया है, रात्रि के संयोग के समय प्रकारान्तर के साथ मांस का सेवन होता है। राजे, बादशाह, स्त्री-पुरुष सभी मांस से ही उत्पन्न हुए हैं --

पहिलां मासहु निंमिआ मासै अंदरि वासु ।
जीउ पाइ मासु मुहि मिलिआ हडु चंमु तनु मासु ।।
मासहु बाहरि कढिआ मंमा मासु गिरासु ।
मुहु मासै का जीभ मासै की मासै अंदरि सासु ।।

8-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 336

9-- वही, पृ0 179

वडा होआ वीआहिआ घरि ले आइआ मासु ।
मासहु ही मासु उपजै मासहु सभो साकु ।।
-- -- -- --
मासु मासु करि मूरखु झगड़े गिआनु धिआनु नही जाणै ।
कउणु मासु कउणु सागु कहावै किसु महि पाप समाणै ।।
गैंडा मारि होम जग कीए देवतिआ की बाणै ।
मासु छोडि बैसि नकु पकड़हि राती माणस खाणै ।।
फड़ु करि लोकां नो दिखलावहि गिआनु धिआनु नही सूझै ।
नानक अंधे सिउ किआ कहीऐ कहै न कहिआ बूझै ।।[10]

अर्थात् लोग ज्ञान-ध्यान कुछ भी नहीं जानते । उन्हें यह भी मालूम नहीं कि कौन सी वस्तु मांस कहलाती है और कौन सी साग और किस वस्तु में पाप समाया है। देवताओं के स्वभाव को देखकर ये लोग मांस खाना पसन्द करते हैं, गैंडे मारकर होमयज्ञ किए जाते हैं । जो व्यक्ति मांस खाना छोड़कर नाक पकड़ते हैं कि बदबू आ रही है, वे रात को मनुष्यों का भक्षण कर जाते हैं। ये लोग पाखण्ड करके ही लोगों को दिखाते हैं ।

उपरोक्त बात को एक उदाहरण देकर स्पष्ट किया जा सकता है। मान लो एक आदमी प्याज नहीं खाता और बुरे काम करता है, दूसरी ओर एक आदमी प्याज खाता है और बुरे काम नहीं करता। अब देखना तो यह है कि दोनों में श्रेष्ठ कौन है । प्याज न खाने वाले का तो कोई सिद्धान्त ही नहीं है जबकि प्याज खाने वाला सिद्धान्त पर चल रहा है, अत: प्याज खाने वाला ही श्रेष्ठ हुआ । गुरु नानक देव के कहने का आशय भी यही

10-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 770-71

प्रतीत होता है । उस समय के पण्डितगण मांस खाने से तो परहेज़ करते थे, मगर पाखण्डपूर्ण आचरण और निम्नवर्ग का शोषण उनके नित्य कर्म थे । अत: गुरु नानक के विचार के अनुसार लोगों का शोषण करना मांस खाने से कोई कम नहीं है । तभी वह इस बात को अस्वीकार करते हैं कि मांस खाने से चौका भ्रष्ट होता है या पाप होता है । यही बात स्पष्ट करने के लिए उन्होंने यह बात कही है कि मनुष्य तो मांस का ही बना है , फिर उससे छूतछात क्यों ?

9.2 वाणी में स्वीकार्य तत्व

मध्ययुग के सभी सन्तों और समाज-सुधारकों ने सत्य आचरण पर सबसे अधिक बल दिया। गुरु नानक द्वारा प्रतिपादित मनुष्य जीवन का मूल आधार सत्य-आचरण है । उनकी सहज-साधना सत्य वृत्तियों का ही रूप है । इस साधना को सम्पन्न करने वाला साधक ही गुरमुख कहला सकता है । स्पष्ट है कि गुरु नानक का यह स्वीकार्य तत्त्व है, उनके उपदेशों का मूलाधार ही सदाचार है । वह संसार के सभी धन्धों से सत्य को ऊंचा मानते हैं, परन्तु सत्य से भी ऊपर सत्य आचरण को मानते हैं --

सचहु ओरै सभु को उपरि सचु आचारु ।।5।।[11]

भक्तिकालीन सिद्धों, नाथों एवं योगियों ने स्त्री को भक्ति में बाधक माना और उससे दूर रहने का उपदेश दिया, परन्तु नानकवाणी में उसकी महत्ता को स्वीकार करके उसे समाज में गौरवपूर्ण स्थान दिया गया है —

सो किउ मंदा आखीऐ जितु जंमहि राजान ।।
भंडहु ही भंडु, ऊपजै भंडै बाझु न कोइ ।।

11-- जयराम मिश्र, सं० 2013, पृ० 155

नानक मंहै बाहरा एको सचा सोइ ।।[12]

गुरु नानक के समय जाति-सम्बन्धी प्रबल प्रतिबन्धों का विकास हो चुका था। कुछ लोगों को छूतछात एवं सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक दृष्टि से उच्च वर्ग वाले स्वीकार नहीं करते थे । गुरु नानक नीच और दलित वर्ग में गिने जाने में अपना आत्म-गौरव समझते हैं --

जिथै नीच समालीअन तिथै नदर तेरी बखसीस ।।[13]

इसमें सन्देह नहीं कि गुरु नानक सामाजिक एकता चाहते थे, किन्तु समाज को वह निष्कलंक भी बनाना चाहते थे, इसलिए उनकी वाणी में मानवमात्र की एकता और समता को स्वीकार किया गया है। सभी व्यक्ति ऊंचे हैं कोई भी नीचा नहीं है --

सभु को ऊचा आखीऐ नीचु न दीसै कोइ....।[14]

नानकवाणी में तीर्थ यात्रा और तीर्थ स्नान की महत्ता स्वीकार कर उसे नवीन रूप दिए गए हैं । इसमें उल्लिखित है कि गुरु का दर्शन अनेक बार तीर्थ-स्नान करने से अधिक फलदायक है --

अठसठि तीरथ मजना गुर दरसु परापति होइ ।।2।।[15]

मध्यकालीन सन्तों-भक्तों ने नाम-माहात्म्य पर बहुत बल दिया है। नानकवाणी में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। नाम ही सच्चा साथी है इसके अतिरिक्त और कुछ भी साथ नहीं जाएगा --

---

12-- जयराम मिश्र, सं० 2018, पृ० 352

13-- वही, पृ० 102

14-- वही, पृ० 155

15-- वही, पृ० 393

बिनु नावै किछु संगि न जाना ।।[16]

स्पष्ट है गुरु नानक नम नामस्मरण के महत्व को अधिक से अधिक रूप में स्वीकार करते हैं। निर्वाण पद की प्राप्ति हेतु श्रम के महत्व को स्वीकार किया गया है। उनके अनुसार इस शरीर को धरती, शुभ कर्मों को बीज, सारंगपाणि को सींचने केलिए जल, मन ही किसान और प्रभु को हृदय में बसा लेना चाहिए । इस प्रकार निर्वाण पद की प्राप्ति हो सकती है --

इहु तनु धरती बीजु करमा करो सलिल आपाउ सारिंगपाणी ।
मनु किरसाणु हरि रिदै जंमाइ लै इउ पावसि पदु निरबाणी।।[17] 2।।

मध्यकाल में जितने भी सन्त अथवा भक्त हुए हैं, सभी ने गुरु के महत्व को प्रतिपादित किया है क्योंकि गुरु बिना ज्ञान की कल्पना नहीं की जा सकती। नानक वाणी में गुरु-महिमा का स्थान-स्थान पर उल्लेख हुआ है । सम्पूर्ण नानक वाणी गुरु-महिमा से भरी हुई है । इससे स्पष्ट होता है कि गुरु नानक गुरु की आवश्यकता को अत्यधिक अनिवार्य समझते हैं । उनके अनुसार गुरु शिव, विष्णु, ब्रह्मा और पार्वती माता है --

गुरु ईसरु गुरु गोरखु बरमा गुरु पारबती माई ।।[18]

गुरु-सेवा का बड़ा महत्व है। इसे स्वीकार करते हुए गुरु नानक ने वाणी में लिखा है बिना गुरु की सेवा किए प्रभु की दृष्टि में मनमुख की कोई कीमत नहीं --

गुरमुखि होइत छूटीऐ मनमुखि पति खोई ।।1।।रहाउ।।[19]

16-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 478, 258, 593, 684

17-- वही, पृ0 125

18-- वही, पृ0 81

19-- वही, पृ0 302

गुरु नानकवाणी में सामाजिक व पारिवारिक सम्बन्धों को स्वीकार किया गया है। इसका कारण गुरु नानक देव का स्वयं गृहस्थ होना ही हो सकता है, इसलिए वह सामाजिक सम्बन्धों को स्वीकार करते हैं --

सो गिरही जो निग्रहु करै ।
जपु तपु संजमु भीखिआ करै ।।
पुंन दान का करे सरीरु ।
सो गिरही गंगा का नीरु ।।4।।[20]

इसके अतिरिक्त नाम-स्मरण, नाम-संग्रह, ध्यान, जाप, चिन्तन, मनन, निष्काम कर्म, अहंकार त्याग, स्वार्थहीनता, विनम्रता एवं इच्छाओं को त्यागने आदि को स्वीकार किया गया है, इनका विस्तार सहित वर्णन अगले अध्यायों में किया जाएगा।

इस प्रकार गुरु नानक मध्यकालीन क्लासिकी ह्रास और जड़ता के प्रति विरोधात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। वह अपने समय की राजनीतिक अवस्था से पूरी तरह असन्तुष्ट थे। भारतीय परम्परा पर आधारित साम्राज्य-वाद छिन्न-भिन्न हो चुका था, जिसके आदर्श मुसलमान साम्राज्य के सम्राट हो चुके थे, तथा जिसके स्मृति शेष भारतीय पुराण परम्परा में अनेक चक्रवर्ती धर्म-परायण सम्राटों के रूप में उपलब्ध थे। गुरु नानक अपने समकालीन राजाओं, जागीरदारों तथा ताल्लुकेदारों के प्रति पूर्ण असन्तोष व्यक्त करते हैं, पर उसका निदान व्यवस्था की छिन्न-भिन्नता के रूप में प्रस्तावित न करके समन्वय-वाद की आदर्श परिकल्पना के रूप में व्यक्त करते हैं --

राजा तखति टिकै गुणी भै पंचाइणु रतु ।।2।।[21]

20-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 564

21-- वही, पृ0 581

उच्च दार्शनिक एवं धार्मिक सन्दर्भ में भी वह सिद्ध, तान्त्रिक, जोगी, कापालिक, वाममार्गी साधकों आदि के सिद्धान्तों के प्रति पूरी तरह असंतोष व्यक्त करते हैं --

सिध साधिक कैते मुनि देवा ।
हठि निग्रह न तृपतावहि भैवा ।।6।।[22]

इसी प्रकार जैन धर्म के घटिया वितण्डावाद तथा उससे सम्बद्ध उनके पाखण्डों तथा रूढ़ियों के प्रति गुरु नानक वितृष्णा व्यक्त करते हैं। जैनी सिर के बाल नुचवा कर गंदा पानी पीते हैं, जूठी रोटी मांग कर खाते हैं, अपना मल फैलाते हैं, मुंह से गंदी सांस लेते हैं और पानी देखकर सहमते हैं। उनके बाल नोचने वालों के हाथों में राख लगा दी जाती है, मां-बाप के कर्म को गंवा देते हैं, अतएव इनके कुटुम्बी ढाड़ें मार कर रोते हैं। इस लोक को तो ऐसे ही गंवाकर परलोक को भी गंवा देते हैं। मरणोपरान्त पिंडदान, श्राद्ध, दीपक आदि कुछ भी नहीं करते। अठसठ तीर्थ भी उन्हें पनाह नहीं देते, ब्राह्मण उनका अन्न नहीं खाते। वे सिर पर कपड़ा बांधे रखते हैं, किसी सभा दरबार में नहीं जाते, कमर में प्याले बांधे हैं, हाथ में सूत का बना हुआ एक प्रकार का झाड़ू रखते हैं जिससे कीड़े-मकोड़ों को बुहारते हैं ताकि मरने न पाए, आगे-पीछे एक पंक्ति में चलते हैं। न वे योगी हैं न जंगम, न काजी, न मुल्ला। हिंसा के भय से वे पानी नहीं पीते, स्नान नहीं करते, पर उन्हें यह नहीं मालूम कि देवताओं ने मंदराचल पर्वत को मथानी बनाकर समुद्र-मंथन किया तो उसमें से चौदह रत्न उत्पन्न हुए, जल ही के सहारे अड़सठ तीर्थ स्थापित हुए और स्नान करके ही पूजा की जाती है। ये लुंचित शरीर वाले शैतानी हैं, इन्हें जल और स्नानादि की महत्ता अच्छी नहीं लगती --

---

22-- जयराम मिश्र, सं0 2013, पृ0 509

सिरु खोहाइ पीअहि मलवाणी जूठा मंगि मंगि खाही ।

नानक सिर खुथे सैतानी एना गल न भाणी ।।[23]

भक्ति के लोकरंजक रूप की अपेक्षा उसका लोकसंग्रह एवं लोककल्याण का रूप गुरु नानक को मान्य है और यह स्वरूप भी शास्त्रीय मूल्यों के पुनर्जागरण के रूप में हरिनाम रूपी वृक्ष के माध्यम से ही गुरु नानक पुनःस्थापना के प्रयास में प्रवृत्त होते हैं --

ऐथै ओथै निबही नालि ।
विणु नावै होरि करम न भालि ।।2।।[24]

इस प्रकार गुरु नानक मध्यकाल में समग्र मध्यकालीन समाज व्यवस्था, मूल्यदृष्टि, साहित्यिक परम्परा तथा नैतिक मर्यादा के प्रति खण्डनात्मक विरोध व्यक्त न करके क्लासिकी पुनर्जागरण के सन्दर्भ में भारतीय व्यवस्था की पुनर्स्थापना का उपक्रम करते हैं। इस दृष्टि से गुरु नानक की नव्यशास्त्रवादी दृष्टि ठेठ मध्यकाल में नितान्त मौलिक तथा नितान्त ग्रहणीय प्रयास सिद्ध होता है। उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी के पुनर्जागरण में गुरु नानक की भूमिका अत्यधिक प्रभावी एवं महत्वपूर्ण रही है। भारतीय सन्दर्भ में शास्त्रीय विचार-तत्वों एवं मध्यकालीन लोकजागरण की अपूर्णता के सन्दर्भ में मध्यकालीन शास्त्रीय नवजागरण के तत्वों के परिप्रेक्ष्य में गुरु नानक की शास्त्रीय दृष्टि की परिमाणात्मक एवं समीक्षा इस अध्याय का आधार है।

9.3 नानकवाणी की मौलिकता एवं विशिष्टता

राधाकृष्णन का कथन है कि प्रत्येक मौलिक धर्म-संस्थापक अपनी

24-- जयराम मिश्र, सं0 2013, पृ0 794,262

व्यक्तिगत, समाजगत तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुरूप ही अपने धार्मिक सन्देश देता है।[25] गुरु नानकवाणी भी जहां मूल रूप में मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष को उजागर करती है वहां समकालीन समाज के हरेक पक्ष को उजागर करके सर्वसाधारण को सार्थक बनाती है । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। यह सामाजिक भाईचारे में रहता है । दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह अनेक लोगों के सम्पर्क में आता है। आजीविका कमाने हेतु उसे कड़ा परिश्रम करना पड़ता है । अत: हर पल मनुष्य समाज से सम्बन्धित रहता है । गुरु नानक भी अपने युग के समाज से सम्बन्धित थे, इसलिए उन्होंने उस समय की त्रुटियों के बारे अपनी वाणी में बार-बार संकेत किया है तथा मनुष्य जीवन को आदर्श बनाने हेतु उपाय भी बताए हैं । गुरुनानक वाणी की सबसे बड़ी विशिष्टता यह है कि वह प्रवृत्तिमूलक है और राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति जागरूक भी है । उस समय आर्थिक एवं सामाजिक विषमता की विभीषिकाएं मानव-जीवन को संत्रस्त कर रही थीं। भारतीय समाज विनाश की कगार पर खड़ा था, किसी भी समय नष्ट-भ्रष्ट होने के लिए प्रतीक्षारत था --

खुरासान खसमाना कीआ हिंदुसतानु डराइआ ।

-- -- -- --

एती मार पई करलाणे तैं की दरदु न आइआ ।।1।।[26]

समाज नित्य प्रति नई बुराइयों एवं रूढ़ियों से ग्रस्त होता जा रहा था। हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण, शूद्र, जाति-पांति के मध्य की खाई निरन्तर

25-- राधाकृष्णन, द हिन्दू व्यू आफ लाइफ, लन्दन : जौर्ज ऐलन एण्ड एनविन, 1937, पृ0 25

26-- जयराम मिश्र, सं0 2013, पृ0 276

चौड़ी होती जा रही थी। ऐसे युग में जब समाज पूर्ण रूप से खण्डित हो रहा था, लोकजीवन को 'गुरु नानक वाणी' की बड़ी आवश्यकता थी। यह वाणी समाज के लिए एक प्रेरणा और पथ था। इसमें सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक धरातल पर साम्य की जो प्रतिष्ठा की गई है, वह नि:सन्देह क्रान्तिकारी भावना का प्रतीक है --

सभु को उचा आखीऐ नीचु न दीसै कोइ ।
इकनै भांडे साजिऐ इकु चानणु तिहु लोइ ।।8।।[27]

क्रान्ति को लाने के लिए जिस निर्भीकता और दृढ़ता की आवश्यकता थी, उसका इसमें प्राचुर्य है । सम्पूर्ण वाणी में लोकमंगल की कामना निहित है, यह मंगलसाधना लोक-प्रेम की समानार्थक है । इसका उद्देश्य बुराइयों को मिटाना है, आलोचना करना नहीं । इसलिए समाज की दुर्बलता को बड़ी करुणा से देखकर उसे निकालने के मौलिक प्रयत्न किए गए हैं । भय, भर्त्सना और भक्ति इसके ऐसे शस्त्र हैं जिनके द्वारा राजनीतिक विभीषिकाओं और सामाजिक विषमताओं को परास्त कर दिया है ।

गुरु नानक वाणी में सामाजिक व पारिवारिक सम्बन्धों का खण्डन नहीं किया गया क्योंकि गुरु नानक स्वयं गृहस्थ थे और सामाजिक सम्बन्धों को स्वीकार करते थे --

सो गिरही जो निग्रहु करै । जपु तपु संजमु भीखिआ करै ।।
पुंन दान का करे सरीरु। सो गिरही गंगा का नीरु ।।4।।[28]

27-- जयराम मिश्र, सं0 2028, पृ0 155

28-- वही, पृ0 564

जहाँ कहीं भी नानकवाणी में पारिवारिक सम्बन्धों का खण्डन किया गया है, वह मात्र यह बताने के लिए कि कहीं भी कोई भेद नहीं है । सभी जीव एक हैं और सबमें एक परमात्मा का वास है । वह घट-घट में समाया हुआ है --

(1) देही अंदरि नामु निवासी । आपे करता है अविनासी ।।[29]

(2) घटि घटि उपाइ रहे प्रभ छाजै ।[30]

सामाजिक या पारिवारिक सम्बन्धों के खण्डन में गुरु नानक का यही प्रयोजन रहा है । उन्होंने वेदों या पुराणों की कभी आलोचना नहीं की, यदि की है तो मात्र कर्मकाण्डी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर की है । नानकवाणी में वेदों अथवा कुरान को कभी झूठा नहीं कहा गया है, झूठा तो वह है जो उन पर आचरण नहीं करता । पण्डित, शूद्र कोई भी नहीं है सब में एक ही ज्योति विद्यमान है --

जाणहु जोति न पूछहु जाती आगै जाति न हे।।1।।रहाउ।।[31]

परम सत्ता की प्राप्ति हेतु संयम का होना अतिआवश्यक बताया गया है --

जीवदिआ मरु मारि न पछोताईऐ ।[32]

सम्पूर्ण नानकवाणी नैतिकता पर आधारित है। माया को सबसे बड़ा व्याघात माना गया है --

माइआ मोहणी नीघरीआ जीउ कूड़ि मुठी कूड़िआरे ।।3।।[33]

29-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 620

30-- वही, पृ0 626

31-- वही, पृ0 248

32-- वही, पृ0 193

33-- वही, पृ0 243

जहाँ कहीं भी वाणी में संसार के पारिवारिक सम्बन्धों को मिथ्या माना गया है, उसका कारण माया के स्वरूप को स्पष्ट करना ही है । यह माया परमात्मा और जीवात्मा को कभी नहीं मिलने देती। माया जीवात्मा को पथभ्रष्ट करती है और अपने अनेक रूपों को दिखाकर जीवात्मा को आकर्षित कर लेती है । जीवात्मा उसे सत्य मान लेता है । इससे सत्य समझने की बुद्धि ही माया-बुद्धि कहलाती है जिसके कारण जीवात्मा को कष्ट उठाना पड़ता है । माया से मुक्ति को ही नानकवाणी में जीवन मुक्ति माना गया है । जीवनमुक्त व्यक्ति अहंकार रहित होता है --

जीवन मुकतु सो आखीऐ जिसु विचहु हउमै जाइ ।।6।।[34]

जीवन मुक्त व्यक्ति की कल्पना मुक्ति परम्परा को गुरु नानक की मौलिक देन है ।

माया का सम्बन्ध मन से जोड़कर इसे भ्रम मानते हुए माया के विभिन्न रूपों में चित्रित किया है। इसका प्रसार सर्वत्र है और इसने सभी को किसी न किसी रूप में बांध रखा है, किन्तु नानकवाणी में माया से दूर रहने का उपदेश दिया गया है । यह सन्तों की दासी है । साधना के क्षेत्र में यह बड़ी बाधक है । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि गुरु नानक वाणी का साधना पक्ष बड़ा प्रबल है ।

नानक वाणी में सत्य की महिमा का गुणगान किया गया है। सत्य प्रभु से चित लगाकर पुन: जन्म नहीं लेना पड़ता --

सचे सिउ चितु लाइ बहुड़ि न आईऐ ।।2।।[35]

34-- जयराम मिश्र, सं0 2018, पृ0 587

35-- वही, पृ0 299

इसमें 'कथनी' और 'करनी' के विभेद को स्वीकार नहीं किया गया। जो कुछ कहा गया है, उसे किया भी जाए । इस प्रकार व्यक्तिमात्र के लिए यह आवश्यक है कि वह जो कुछ कहे, उसे व्यवहार या आचरण में भी लाए । क्योंकि केवल कहने मात्र से किसी काम में सिद्धि या सफलता कदापि नहीं मिल सकती और न ही किसी वस्तु की प्राप्ति हो सकती है । सत्य ही गुरु और ब्रह्म है । इसमें सत्य के लिए ही हिन्दुओं और मुसलमानों के आडम्बरों का विरोध किया गया है । गुरु नानक ने जनता को चेतनशील बनाने के लिए कविता की थी। उनका काव्य-कौशल दिखाने के लिए नहीं था अपितु सामान्य जनता का पथ-प्रदर्शन करना था। उन्हें जो श्रेष्ठ व उचित लगा अपनी वाणी में कह दिया, जो निकृष्ट और अरुचिकर लगा उसका उन्होंने विनम्र भाव से खण्डन किया। नानकवाणी में लगभग सारी विश्व-मनुष्यता का वर्णन हुआ है । राजा या सुल्तान से लेकर मज़दूर तक, ब्राह्मण-काज़ी से लेकर चंडाल तक, पीर-पैगम्बर से लेकर मुरीद तक, सुहागिन से लेकर वेश्याओं तक, किसान से लेकर महते वज़ीर तक, गुरु से लेकर शिष्य तक सब वर्ण, सब जातियों-श्रेणियों और सब स्थितियों का वर्णन विश्लेषण हुआ है । इस प्रकार नानक वाणी ने मानसिक इन्कलाब लाकर मानवीय कीमतों, मानवीय स्वभाव को बदलकर मनुष्य की चिन्तन क्रिया को नई और शक्तिशाली दिशा प्रदान की है । इस में तद्युगीन समस्याओं का पर्याप्त मात्रा में समाधान मिलता है। भारतीय समाज की जड़-आस्थाओं की निरर्थकता को सिद्ध करते हुए उसे सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया गया है ।

समाज के बारे में नानकवाणी में जिन सूत्रों का निर्माण हुआ है, वे सार्वकालिक होते हुए भी नवीन हैं । सामाजिक-सुधार सम्बन्धी प्रयोग मध्ययुग में जितने उपयोगी रहे, अब भी उतने ही ग्राह्य और अनुकरणीय हैं। सामाजिकता और मानव मूल्यों के निर्धारण में गुरु नानक वाणी का स्थान

निश्चित ही पर्याप्त महत्वपूर्ण है । नानकवाणी की प्रासंगिकता का सवाल समसामयिक सार्थकता तक ही समाप्त नहीं हो जाता। आज की समाज-व्यवस्था को परम्परायुक्त तार्किक स्वरूप देने के लिए जितने संघर्ष आयोजित होंगे, उन से भी नानकवाणी का सम्बन्ध बनता है । प्रत्येक मनुष्य को विचार और कर्म का पूरा भाग देने शोषणामुक्त करने की लड़ाई जब तक चलती रहेगी, नानकवाणी तब तक प्रासंगिक बनी रहेगी ।

9.4 समाहार

गुरु नानक ने सामाजिक बाह्याचार की जो नि:सारता बतलाई है, इसके दो रूप इनकी वाणी में मिलते हैं-- एक तो हिन्दुओं के बाह्याचारों का विरोध, दूसरा मुसलमानों के बाह्याचारों का विरोध। ब्रह्म (ईश्वर) की उपासना में गुरु नानक ने आडम्बर एवं पाखण्ड की कोई आवश्यकता नहीं मानी है । गुरु नानक को मुसलमानों एवं हिन्दुओं से सम्प्रदाय के रूप में किसी प्रकार का वैर-विरोध नहीं था। उन्हें दु:ख केवल उन्हीं बातों से होता था, जहां हिन्दू और मुसलमान धर्म के नाम पर मिथ्या बातों को ही बढ़ावा दे रहे थे । वे व्यक्ति-व्यक्ति, जाति-जाति एवं समाज-समाज में परस्पर लड़ते-झगड़ते, मरते-मारते एवं मनुष्यता के नाते अत्याचार करते थे । गुरु नानक ने हिन्दुओं और मुसलमानों के सामाजिक बाह्याचारों का डटकर विरोध किया है। उन्होंने बाह्याचारों के विरुद्ध जो उद्गार प्रकट किए हैं, वे खीफ से नहीं हैं, आन्तरिक भावना से उद्भूत सुधार की शुभेच्छा की ही परिणति है ।

नानकवाणी में सैद्धान्तिक मत की अपेक्षा व्यावहारिक कार्य-कलापों पर विशेष ध्यान दिया गया है । नानकवाणी एक सामाजिक दर्शन है, जो मनुष्य के सापेक्ष जीवन और चरित्र-निर्माण से सर्वाधिक सम्बन्ध

रखती है । इसकी व्यावहारिकता कोरे आदर्शवाद में परिणत न होकर मनुष्य के आचरण एवं चारित्रिक विकास में परिवर्तित हो जाती है । नानक वाणी में ऐसे समाज तथा उसमें रहने वाले मनुष्यों की कल्पना की गई है, जहां प्रत्येक जाति, धर्म, वर्ण और सामाजिक प्रतिबन्धों से मुक्त मानव केवल मानव कहलाता है । चरित्र-निर्माण के साथ-साथ इसमें मनुष्य के आत्मबल एवं मानसिक उन्मुक्तता को भी विकसित करने की प्रेरणा दी गई है । व्यष्टिगत साधना और समष्टिगत साधना, दोनों पक्षों का भी नानकवाणी में समान भाव से प्रतिपादन हुआ है। व्यक्ति समाज की इकाई है। व्यक्ति का गुण-दोष समाज का गुण-दोष होता है । व्यक्ति पतन के गड्ढे में गया तो समाज को गड्ढे में जाने से बचाना, असम्भव है । अतएव व्यक्ति के उत्थान के लिए नानकवाणी में पूरी-पूरी व्यवस्था हुई है तथा आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक असमानताओं को जड़-मूल से मिटाने का प्रयत्न किया गया है । दूसरों को भी लोक कल्याण करने की प्रेरणा दी गई है ।

नानक वाणी की विशिष्टता है क्लिष्टता से सरलता की ओर उन्मुख होना । साधना के आडम्बरपूर्ण एवं मिथ्या स्वरूप को नानकवाणी में तनिक भी अपनाया नहीं गया है क्योंकि गुरु नानक का सदैव यह मत रहा है कि दार्शनिक तथ्य तथा साधना-पद्धति जनसाधारण के लाभ की तथा लोकोपयुक्त होनी चाहिए। ....इसमें विश्व की नानात्व मूर्तियों में एकत्वपूर्ण अद्वैत तत्व के परिव्याप्त होने की बात कही गई है तथा जन-साधारण को सरल भाषा के माध्यम से मूल तत्व को जीते-जागते विश्व के बीच दिखाने का प्रयास किया गया है । गुरु नानक की दृष्टि में जगत् का मूल तत्व ही सत्य है, अन्ततम अस्तित्व है, अद्वैत तथा चरम सत्य है। उसके अतिरिक्त सम्पूर्ण विश्व का नाम रूपात्मक खेल कुछ भी नहीं है । भवसागर को सहज रूप से पार करने के लिए गुरु और हरिनाम का सहारा आवश्यक माना गया है।

इस प्रकार गुरु नानक की प्रत्येक रचना पर गुरु और हरिनाम की अमिट छाप है। इसलिए यह कहना उचित होगा कि महान् पारखी, सिद्धहस्त साधक, ज्ञानी, भक्त गुरु नानक की वाणी सभी अमूल्य सिद्धान्त-रत्नों से परिपूर्ण है। नानकवाणी अनुभूतिपरक है और इसी से वह जीवनोपयोगी, व्यवहार-सुलभ तथा लोककल्याणकारी है।

तृतीय भाग

समापन

दशम् अध्याय : उपसंहार

10.1 अध्ययन का सार

10.2 उपलब्धियाँ एवं निर्णय

10.3 शोध-संकेत

दशम् अध्याय

उपसंहार

10.1 अध्ययन का सार

सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध को चार भागों में विभक्त किया गया है जिन में नौ अध्याय हैं। प्रथम भाग में तीन अध्याय, द्वितीय भाग में छः अध्याय एवं तृतीय भाग में एक अध्याय है । चतुर्थ भाग में सहायक सन्दर्भ सूची दी गई है।

प्रथम अध्याय में विषय-कथन के अनन्तर सम्बद्ध साहित्य का सर्वेक्षण हुआ है । विषय परिसीमन के बाद अध्ययन का महत्वांकन हुआ है और अध्ययन के अनुक्रम की संक्षिप्त रूपरेखा भी प्रस्तुत की गई है ।

द्वितीय अध्याय में सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत धर्म एवं साधना का तत्व-विवेचन प्रस्तुत किया गया है । इसमें धर्म के विभिन्न स्वरूपों का क्रमिक वर्णन किया गया है ।

तृतीय अध्याय में गुरु नानक देव के जन्म, जीवनवृत्त तथा युगीन परिवेश का राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक सन्दर्भों में विवेचन

हुआ है । तत्पश्चात उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व का परिचय देकर युग नेतृत्व की भूमिका आदि के सन्दर्भ में विचार हुआ है ।

चतुर्थ अध्याय में गुरु नानक काव्य की धर्म-परिकल्पना की पृष्ठभूमि के रूप में मध्ययुगीन लोकजागरण तथा मध्ययुग सम्बन्धी अवधारणा का ऐतिहासिक सन्दर्भ में विवेचन हुआ है । लोकजागरण के तात्त्विक सन्दर्भ में तथा लोकजागरण के निर्धारक तत्वों के आधार पर गुरु नानक के काव्य की विशिष्टता को रेखांकित किया गया है। परम्परित भारतीय मत-सम्प्रदायों और मध्यकालीन भारतीय सूफी साधना की पृष्ठभूमि में भी गुरु नानक देव की वाणी में धर्म के स्वरूप पर विचार का प्रयास हुआ है । गुरु नानक वाणी में मानवतावादी दृष्टि, धर्म की अवधारणा, हुक्म एवं सृष्टि, धर्म एवं सदाचार, आत्मसाक्षात्कार, सहजावस्था, नैतिकता तथा धर्म के वास्तविक एवं कर्मकाण्डी सन्दर्भों में भी विवेचन का प्रयास हुआ है ।

पंचम अध्याय में ब्रह्म तथा जीव के सन्दर्भों में विचार का प्रयास हुआ है । ब्रह्म के सगुण-निर्गुण और निर्गुण सगुण उभय स्वरूप, सत्यनाम की महिमा तथा गुरु नानक देव का ईश्वर के प्रति विश्वास को अंकित व रेखांकित करने का प्रयास हुआ है । तत्पश्चात् प्रभु-कृपा का वर्णन किया गया है ।

षाष्ठ अध्याय में गुरु नानक वाणी में भक्ति के स्वरूप के सम्बन्ध में वर्णन-विश्लेषण हुआ है । इसमें भक्ति की व्युत्पत्ति, परिभाषा, स्वरूप और नवधा भक्ति पर चर्चा हुई है । तत्पश्चात् नाम माहात्म्य, शृंगार भाव, भक्ति रस की परिकल्पना और गुरु नानक देव की ईश्वर के प्रति मिलन की प्रबल आकांक्षा का आंकलन हुआ है ।

सप्तम् अध्याय के अन्तर्गत गुरु नानक वाणी में साधना के तत्व

और सोपान के सन्दर्भों में विवेचन का प्रयास हुआ है। गुरु की अवधारणा एवं महत्व, शरीर, माया तथा मन की परिकल्पना को चित्रित किया गया है । नानक वाणी में ध्यान, जाप, नाम संग्रह, भय एवं भयमुक्ति, कर्म, अस्तेय, मोक्ष और योगमार्ग का सविस्तार वर्णन किया गया है । पवित्रता, संयम, मनन और आचरण के सन्दर्भों में भी विवेचन का प्रयास हुआ है ।

अष्टम् अध्याय में गुरु नानक वाणी में धर्म साधना के बाह्य उपक्रमों पर प्रकाश डाला गया है । इसमें तीर्थ-तीर्थस्नान का वास्तविक और अवास्तविक स्वरूप, सेवा, दया, दान तथा मानवमात्र के प्रति समभाव को दर्शाया गया है। कामनाओं का संस्कार, अहंकार-परित्याग, भौतिक-आध्यात्मिक रोग मुक्ति, पाखण्ड-खण्डन तथा धर्म की बाह्यरूपिता के विवेचन का प्रयास हुआ है। स्वार्थहीनता और मानवीय अन्तर्सम्बन्धों को भी चित्रित किया गया है ।

नवम् अध्याय में मध्यकालीन भारतीय धर्म-साधना के सन्दर्भ में नानक-वाणी के परिप्रेक्ष्य में स्वीकार्य और अस्वीकार्य तत्वों तथा नानकवाणी की मौलिकता एवं विशिष्टता और प्रासंगिकता पर विचार व्यक्त किए गए हैं ।

दशम् अध्याय में अध्ययन का सार देने के बाद शोध की उपलब्धियों को रेखांकित किया गया है। इस अध्याय शोधार्थी का यह प्रयत्न रहा है कि अपने अध्ययन की निर्धारित सीमारेखा के अन्तर्गत गुरु नानक देव की समग्र धर्म-साधना में व्याप्त विविधमुखी मूल्य-दृष्टि का समाहित सार प्रस्तावित हो सके । युग संक्रमण और धर्मसाधना की सैद्धान्तिक आधार-भूमि पर विभिन्न अध्यायों में विवेचन के परिणाम रूप में प्राप्त उपलब्धियों को यहां क्रमिक रूप से देने का प्रयास हुआ है। यह अपेक्षा की जा सकती है कि गुरु नानक की धर्म-साधना सम्बन्धी मूल्यांकन विवेचन का यह पक्ष विषय से सम्बद्ध पाठक-चिन्तक वर्ग के लिए रुचिकर होगा।

10.2 उपलब्धियां एवं निर्णय

10.21 नानक वाणी : युगीन राजनीतिक यथार्थ

प्रत्येक कवि अथवा साहित्यकार की कृति अपने समय के समाज का प्रतिबिम्ब होता है । गुरु नानक द्वारा प्रतिपादित वाणी में उपर्युक्त कथन की अक्षरशः पुष्टि होती है । उत्तरी भारत में मध्ययुग के समय बहुत से धर्म-संस्थापक हुए किन्तु विषम राजनैतिक परिस्थिति का चित्रण किसी ने भी नहीं किया। भक्तिकालीन संत कवियों में केवल गुरु नानक ही ऐसे महापुरुष हैं जिनकी वाणी में धर्म एवं दर्शन के साथ-साथ राजनैतिक चित्रण भी हुआ है । यह तीन प्रकार का है । पहले प्रकार के चित्रण में गुरु नानक ने आदर्श राजा की कल्पना की है । उस समय ऐसी धारणा प्रचलित थी कि राजा परमात्मा का प्रतिनिधि होता है और वह जो कुछ भी करता है ठीक ही करता है । गुरु नानक के समय में राजा लोग अपना कर्तव्य भूल चुके थे इसलिए उन्होंने आदर्श राजा में उन गुणों की कल्पना की जो तत्कालीन राजाओं में नहीं थे । गुरु नानक का कहना था कि राजा जनता के लिए होता है और उसे राज्य-प्रबन्ध के कार्य में जनता की राय लेनी चाहिए तभी वह अधिक समय के लिए राज्य कर सकता है । राजा का न्यायशील होना भी आवश्यक है । इन संकेतों से गुरु नानक की जनतन्त्रवादी भावना को कुछ अभिव्यक्ति मिल सकी है । इससे यह बात भी सिद्ध होती है कि गुरु नानक ने अपने समकालीन चिन्तकों और सुधारकों से कहीं बढ़ कर सोचा और लोक कल्याण की भावना को और विकसित किया।

राजनैतिक क्षेत्र सम्बन्धी दूसरा चित्रण प्रस्तुत करते हुए गुरु नानक ने तत्कालीन राजाओं, उनके राज्य-प्रबन्ध के बारे में तथा उनके कर्मचारियों की दशा का वर्णन किया है। उस समय के राजागण प्रजा के हितैषी न

होकर सिंह के समान हिंसक और उनके चौधरी कुत्ते के समान लालची थे, जो सोती हुई प्रजा को जगाकर उन्हें दु:खी कर रहे थे। राजाओं के नौकर अपने तीखे नाखूनों से प्रजा को चीर-चीर कर उसका लहू चाट रहे थे। बादशाह लोगों ने रंग और तमाशों के चाव में अपने कर्तव्य का स्मरण गंवा दिया। अर्थात् न तो डटकर बाबर का मुकाबिला किया और न प्रजा की रक्षा की।

राजनैतिक क्षेत्र सम्बन्धी तीसरा चित्रण उन प्रसंगों में हुआ है जहां बाबर के आक्रमण को वर्णित किया गया है। इसके भी दो पक्ष सामने आते हैं। एक तो आक्रमण के समय बाबर की सेना के सिपाहियों द्वारा प्रजा पर हुए अत्याचार में देखा जा सकता है। बाबर पाप (जुल्म) की बारात लेकर काबुल से चढ़ आया है और बलात् हिन्दू रूपी कन्या का दान मांगता है। शर्म और धर्म दोनों ही छिप गए हैं और झूठ प्रधान होकर फिर रहा है। काजियों और ब्राह्मणों की बात समाप्त हो गई है और उनके स्थान पर विवाह शैतान पढ़वाता है। तात्पर्य यह है कि लड़कियों को बलात् छीन कर आक्रमणकारी अपनी पत्नी बना लेते हैं और पण्डितों अथवा काजियों द्वारा विवाह या निकाह कराने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। दूसरा, हारे हुए पक्ष का चित्रण सामने आता है। जिन स्त्रियों के सिर की मांग में पट्टी थी और उस मांग में शृंगार के लिए सिन्दूर डाला गया था, उनके सिरों की केशराशि कैंची से मूंड़ दी गई है और धूल उड़-उड़कर उनके गले तक पहुंचती है। जो महलों के अन्तर्गत निवास करती थीं, उन्हें अब बाहर अन्य लोगों के समीप बैठने का स्थान भी नहीं मिलता। सैनिकों के खेल, अस्तबल, घोड़े, नगाड़े, शहनाइयां, तलवारें, म्यानें, रथ, वर्दियों तथा उनके सुन्दर मुख कुछ भी दिखाई नहीं देता। इसके अतिरिक्त बाबर के आक्रमण और मुगलों-लोधियों के युद्ध का बड़ा सजीव चित्रण उन्होंने किया है। बाबरवाणी में आक्रमण का गुरु नानक ने जो चित्रण किया है, उसे पढ़ कर कौन मनुष्य है जो कांप नहीं उठता ?

10.22 मध्यकालीन लोकजागरण : गुरु नानक की विशिष्टता

मध्यकाल में जन्म से लेकर मध्यकालीन लोक-जागरण तथा लौकिक क्रान्ति का प्रभाव ग्रहण करते हुए भी गुरु नानक अपनी विशिष्टता बनाए रखते हैं। क्लासिकी भारतीय महानता और गरिमा से वह सुपरिचित थे। बाद में क्लासिकी मूल्य-व्यवस्था और जीवन-व्यवस्था के ह्रास को भी वह अनुभव करते हैं। पर मध्यकाल के मुख्य मतवादी, धार्मिक और साम्प्रदायिक प्रतिक्रियात्मक रूपों से वह अपनी विशिष्टता बनाए रखते हैं। सन्तमत अपने भक्ति, श्रद्धा तथा वैष्णवता के गुणों के बावजूद भी सामाजिक सन्दर्भों में खण्डनात्मक तथा नकारात्मक रुख अपनाता है। उसके पूर्ववर्ती नाथपंथ, सिद्ध तथा तान्त्रिक सम्प्रदाय तो लोक के अभ्युदय की महत्वपूर्ण भूमिका निर्माण करने के बाद भी व्यवहारत: गुह्य, असामाजिक तथा जादू-टोने आदि से समन्वित साधनाओं और रूढ़ियों का रूप धारण कर चुके थे। सूफी साधकों में प्रेम की पीर, काव्य की प्रबन्धात्मकता तथा ह्रासशील सामन्ती व्यवस्था का अस्वीकार तो अवश्य था, पर वे भी केवल जीवन के एकमात्र पक्ष को ही अभिव्यक्ति दे पा रहे थे। सम्भवत: गुरु नानक की दूरदर्शी प्रतिभा ने इस तथ्य को पहचान लिया था। इस प्रकार मध्यकालीन समाज-व्यवस्था, शासन-व्यवस्था, परिवार-व्यवस्था, धर्म, सम्प्रदाय, मत, लोक-व्यवहार, सब प्रकार के ह्रास और हीनता में गुरु नानक जड़ रूढ़ियों का समर्थन तो नहीं करते, पर अन्य मत-मतान्तरों की तरह वह केवल खण्डनात्मक, विनाशक और विध्वंसक अथवा पलायनवादी मुद्रा भी धारण नहीं करते। वह सर्वधर्म परायणता का महनीय स्वरूप परिकल्पित करके मध्यकालीन अंधकार की विच्छिन्नता का आश्वासन भारतीय जनता के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। मध्यकालीन लोकजागरण की पृष्ठपीठिका में यही तत्व गुरु नानक की महनीय समन्वयात्मक तथा सृजनात्मक देन के रूप में स्वीकार्य है।

10.23 गुरु नानक वाणी : ब्रह्म तथा जीव का सन्दर्भ

गुरु नानक वाणी में मुख्यत: ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप का ही प्रतिपादन हुआ है। निर्गुण ब्रह्म मनन, चिन्तन या अनुसंधान का विषय भले ही बन जाए, पर भक्त की भावना और पूर्ण समर्पण का विषय नहीं बन सकता। गुरु नानक का ब्रह्म अनिवर्चनीय, वर्णनातीत एवं `सच खण्ड` वासी है। `सच खण्ड` की कल्पना आध्यात्मिक जगत् को गुरु नानक की नवीन और मौलिक देन कही जा सकती है। यद्यपि गुरु नानक वाणी में ब्रह्म की व्यावहारिक सत्ता का प्रतिपादन कर उसके सगुण स्वरूप का ही वर्णन किया गया है तथापि गुरु नानक की मूल आस्था निर्गुण ब्रह्म में ही है । ब्रह्म ही पारमार्थिक सत्य है । वह स्वयं ही ज्ञान स्वरूप तथा चित्स्वरूप है। वह परमात्मतत्व हर समय, हर जगह, हरेक वस्तु में अपरिवर्तित रूप में विद्यमान रहने के कारण सत् कहा जाता है । वह अपने आपको स्वयं ही जानता है, इसलिए उसे चेतन भी कहते हैं । ब्रह्म के प्रति गुरु नानक का अशंक विश्वास है । गुरु नानक ने आत्मा और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं माना है । उनके अनुसार जीव के लिए आत्मा ही चैतन्य शक्ति है, जो वस्तुत: असीम व अनन्त चैतन्य शक्ति का ही अंश है ।

10.24 जीवनमुक्त

मुक्ति प्राप्त करने वाले साधक को जीवनमुक्त कहा जाता है । ये तीन प्रकार के हैं -- जीवनमुक्त, विदेहमुक्त और नित्यमुक्त । जो जीव शरीर धारण करते हुए प्रभुभक्ति अथवा आत्मज्ञान द्वारा बंधनमुक्त हो जाते हैं, वे जीवन मुक्त कहलाते हैं । जो जीव देह के नष्ट होने पर मुक्ति प्राप्त करते हैं, वो विदेह-मुक्त हैं । जो जीव कर्मवश होकर जन्म-मरण को प्राप्त नहीं होते और अवतार धारण करके स्वेच्छा से अथवा परमात्मा की

इच्छा से अलग-अलग लोकों में विचरण करते हैं, वो नित्य-मुक्त हैं। इन तीनों में गुरु नानक जीवन-मुक्त व्यक्ति के प्रति आकर्षित हुए हैं क्योंकि गुरु नानक मुक्ति को मृत्यु उपरान्त प्राप्त होने वाला कोई पदार्थ नहीं मानते। उनका गुरमुख व्यक्ति जीवित अवस्था में ही मुक्त है। वह जगत् से पलायन नहीं करता और संसार में रहते हुए लोक कल्याण की ओर लगा रहता है। जीवन-मुक्त व्यक्ति मानवता के कल्याण के लिए बड़ा उपयोगी है। गुरु नानक की ऐसी धारणा मुक्ति-परम्परा को मौलिक देन है। वर्तमान युग में त्रस्त एवं दु:खी मानवता को सुख पहुंचाने के लिए जीवन-मुक्त व्यक्ति लाभदायक सिद्ध हो सकता है। गुरु नानक का आदर्श पुरुष` गुरमुख` जीवन-मुक्त व्यक्ति का साक्षात् उदाहरण है।

10.25 सत्य आचरण

गुरु नानक ने धर्म की सरल और व्यावहारिक बातों को जनता के सामने रखा। धर्म से जो कुछ भी प्राप्त होता है, वह उसकी आचार और नीति के कारण ही प्राप्त होता है। इसी कारण गुरु नानक ने अपना जोर आचार और नीति पर ही दिया है। सत्य से भी ऊपर उन्होंने सत्य-आचरण को माना है। उनके हृदय में असीम साहस और अदम्य उत्साह था। जहां कहीं मानव के व्यवहार में उन्हें अन्याय के दर्शन हुए उसका ही उन्होंने विरोध किया है। हमारा देश उपदेशकों से तो भरा पड़ा है, पर उन्हें आचरण की कसौटी पर खोटा उतरता देख मन क्षुब्ध हो जाता है। पर गुरु नानक देव ने 500 वर्ष पहले सत्य-आचरण का आदर्श अपनी कथनी और करनी दोनों में सिद्ध कर दिया।

10.26 योग : वास्तविक एवं बाह्यरूपी

गुरु नानक ने अनेक प्रकार के नागा, अवधूत, कनफटे, कुमार्गगामी

योगियों को देखा और उन्हें आध्यात्मिक रूपकों द्वारा वास्तविक योग समझाने का प्रयत्न किया । गुरु नानक के अनुसार यथार्थ या आन्तरिक साधना में बाह्य वेश, मुंद्रा आदि आवश्यक नहीं है क्योंकि उसमें तो संतोष और श्रम की मुंद्रा, प्रतिष्ठा की झोली, परमात्मा के ध्यान की विभूति, नाशवान शरीर की कंथा, युक्ति और विश्वास का डंडा, ब्रह्मज्ञान की भक्ति, दया का भण्डारी, और घट-घट में होने वाले नाद का शृंगिनाद होता है।

10.27 शब्द-सुरति योग

शब्द में सुरति टिकाना अथवा शब्द का मनन करना गुरु नानक के आदर्श 'गुरमुख' का योग है । इस शब्द अथवा नाम की प्राप्ति गुरु द्वारा होती है । इसलिए जब तक गुरु की प्राप्ति नहीं होती, तब तक नाम नहीं मिलता और नाम के बिना योग सम्पन्न नहीं हो सकता। गुरु नानक द्वारा प्रतिपादित योग से स्पष्ट है कि उन्होंने शब्द-सुरति योग में गुरु और नाम का सर्वप्रमुख स्थान माना है । यही उनका 'सहजयोग' है।

10.28 मानवतावाद

गुरु नानक का एकमात्र उद्देश्य मानव को भौतिक स्तर से उठाकर आध्यात्मिक स्तर पर रख देना था। उनका महत्त्व इस बात में विशेष है कि उन्होंने विभक्त मानव की कल्पना न करके सर्वांगीण मानव की कल्पना की। मानवता की सेवा को वह भगवान की सेवा मानते थे। उनकी यह युक्ति --- 'विचि दुनिया सेव कमाइये तां दरगै बैसन पाइए' उनके मानवतावाद का निचोड़ है । उनके विचार में मानवता की सेवा हीभगवान की सेवा है ।

10.29 समाजवाद

गुरु नानक ने जन-साधारण को अपना जीवन समाजवाद के अनुरूप

डालने की प्रेरणा दी । उन्होंने जन-साधारण के समक्ष समाजवाद का एक नवीन रूप रखा । उनकी समाजवाद की भावना के अनुसार जहाँ मनुष्य के लिए अपनी मेहनत और ईमानदारी से धन कमाना वांछित था, वहीं धन कमाने पर उसे अपने स्वयं के लिए तथा दूसरों पर व्यय करना भी आवश्यक था। मानव का सहारा और बल धन न होकर भगवान का नाम और उसका स्मरण था । उनके समाजवाद में सब लोग एक साथ संगत में बैठकर भजन, पूजन-कीर्तन आदि कर सकते थे । सामाजिक भेदभाव को व्यावहारिक रूप से दूर करने के लिए उन्होंने सामुदायिक भोजन अथवा 'लंगर' की प्रथा चलाई, जिसमें अमीर-गरीब सभी एक साथ मिलकर एक जैसा भोजन ग्रहण कर सकते थे । उनके ~~सहभ~~ सहभोज में सम्मिलित राजा भी वही भोजन उसी परिवेश में करता था जैसे कि एक निर्धन । लंगर की प्रथा में एक विशेष विचारणीय बात यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी श्रद्धा और सामर्थ्य के अनुसार इसमें सहयोग दे सकता है । आर्थिक सहयोग की अपेक्षा शारीरिक श्रम भी देय माना जाता है। आज भी गुरुद्वारों में कोई व्यक्ति पानी भरता है, कोई जूते उठाकर उन्हें यथास्थान रखता है, कोई जूठे बर्तन मांजता है, कोई खाना बनाता है, कोई खिलाता है। अर्थात्, कोई भी काम वह अपनी इच्छानुसार और सामर्थ्य से करता है। इस प्रकार वह सेवा करने में समान रूप से भाग ले सकता है ।

10.2(10) सम्प्रदाय की सामाजिक प्रतिबद्धता

गुरु नानक ने अपने धर्म को किसी निश्चित परम्परा में नहीं बांधा और न ही इसकी विकासोन्मुख प्रवृत्ति को रोका। कबीर, वल्लभाचार्य आदि ने भी धार्मिक सुधार के लिए आवाज़ उठाई परन्तु इनका जीवन की अवास्तविकता, अनित्यता और अयथार्थता पर इतना विश्वास था कि इन्होंने मनुष्य की सामाजिक स्थिति के सुधार के लिए सोचने और उसे जनता के सम्मुख रखने के प्रति विशेष आग्रह नहीं दिखाया । प्राय: धर्म-सम्प्रदायों में साधुओं, संन्यासियों,

परिव्राजकों तथा साधकों की संस्थाओं का विकास अवश्य हुआ-- पर वे सामाजिक सुधार-परिष्कार की अपेक्षा अपने साम्प्रदायिक बाह्याचारों अथवा वैयक्तिक साधनाओं में ही अधिक अनुरक्त रहे । इसके विपरीत गुरु नानक अपने समाज-कल्याण के दर्शन को व्यावहारिक सामाजिक स्तर पर ले आते हैं । दशम् गुरु गोविन्द सिंह द्वारा खालसा पंथ की स्थापना तथा उस पंथ की पूर्ण सामाजिक प्रतिबद्धता गुरु नानक देव की सामाजिक प्रतिबद्धता का ही व्यावहारिक विकास तथा परिणति माना जाना चाहिए।

10.2(11) गुरु नानक वाणी में स्वीकार्य एवं अस्वीकार्य तत्त्व

नानकवाणी में धर्म के क्षेत्र में धार्मिक क्रिया-कलापों का खण्डन, अवतारवाद, बहुदेववाद, मूर्तिपूजा, हिंसा, धार्मिक पुस्तकों के ज्ञान एवं तर्क और वाद-विवाद आदि को अस्वीकार किया गया है । गुरु नानक ने धर्म के क्षेत्र में अन्ध-विश्वासों को दूर करने का अनथक प्रयास किया। सामाजिक अन्ध-विश्वासों के प्रति वे केवल बौद्धिक सहानुभूति मात्र देकर ही नहीं रह गए। उन्होंने वही बात कही जिस बात को अनुभव किया। गुरु नानक ने पहले से ही यह स्वीकार किया है कि ब्रह्म साधना के लिए अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं है, वह तो घट में ही विराजमान है । मानव धर्म के प्रसार के लिए उन्होंने हृदय की पवित्रता, सहजीकरण एवं सत्संग पर विशेष बल दिया। गुरु नानक ने पंडितों और मुल्लाओं के बाह्याचारों का जो खण्डन किया है, इससे यह प्रतीत होता है कि गुरु नानक के हृदय में उनके लिए एक टीस थी, एक तड़फ थी। इसलिए उन्होंने दोनों को ही सम्बोधित कर दोनों की भलाई के लिए उपदेश दिए हैं ।

10.2(12) नारी उत्थान एवं नारी मुक्ति

भारतीय नारी भी सदियों से पुरुष-प्रधान समाज द्वारा शोषित

रही है । वह मात्र पुरुष की वासना की तृप्ति तथा सन्तानोत्पत्ति का साधन-मात्र बनकर रह गई थी । गुरु नानक ने नारी की इस दयनीय स्थिति से दयार्द्र होकर अपनी वाणी में उसके शोषण सम्बन्धी मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किए तथा उसको उसके अधिकारों से वंचित करके अपना दास बनाने वाली समाज-व्यवस्था, धर्म, सम्प्रदाय, तथाकथित जननेताओं, धार्मिक मुल्ला आदि सभी की तीव्र भर्त्सना करके उसकी मुक्ति का स्वर उठाया । परम्परित सामन्तवादी व्यवस्था जहां नारी पर क्रूर नैतिक नियन्त्रण लगाने की पक्षधर थी, वहां गुरु नानक उसे अधिकाधिक स्वतन्त्रता देने की बात करते हैं ।

10.2(13) आदर्शरूप परिकल्पना

गुरु नानक ने वैरागी, संन्यासी, अवधूत, पाखण्डी, गृहस्थ, उदासी इत्यादि कुछ साधकों के आदर्श रूप की परिकल्पना भी की है जिनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है --

वैरागी

वास्तविक वैरागी वही है जो ब्रह्म को (मन की ओर) उलटे और आश्रय रूप परमात्मा को दशम् द्वार में आरोपित कर दे । वह अहर्निश आन्तरिक ध्यान में निमग्न रहे । वह वैरागी सत्य स्वरूप अर्थात् परमात्मा का ही रूप हो जाता है ।

संन्यासी

जो सद्गुरु की सेवा करता है, अपने भीतर से अहंकार नष्ट कर देता है, वही वास्तविक संन्यासी है । वह भोजन और वस्त्र की आशा नहीं रखता, जो बिना चिन्ता किए मिलता है उसे पाकर सन्तुष्ट रहता है, वह बकवास नहीं करता, क्षमा-धन का संग्रह करता है और तमोगुण को हरिनाम

द्वारा जला डालता है, ऐसा गृहस्थ, संन्यासी अथवा योगी धन्य है जो प्रभु के चरणों में अपना चित्त लगाता है ।

पाखण्डी

वही पाखण्डी है जो शरीर को धोता है, शरीर की अग्नि में ब्रह्माग्नि प्रज्वलित करता है, स्वप्न में भी वीर्य को गिरने नहीं देता, ऐसे पाखण्डी न वृद्धावस्था होती है न मरण ।

गृहस्थ

वही गृहस्थ है जो इन्द्रियों तथा मन का ~~वि~~ निग्रह करता है, परमात्मा से जप, तप और संयम की भिक्षा मांगता है, अपने शरीर को पुण्यदान करने वाला बनाता है। जो गंगाजल की भांति पवित्र और निर्मल है, वही गृहस्थ है ।

उदासी

वही उदासी है, जो उदासीन--- विरक्त धर्म का पालन करता है। वह नीचे-ऊंचे सभी स्थानों में उस निरंजन का निवास स्थान समझे। वह अपने ही अन्तर्गत चन्द्रमा और सूर्य का ज्ञान एकत्र करे। ऐसे उदासी के शरीर का नाश नहीं होता।

अवधूत

वही अवधूत है जो अपनापन जला दे, कष्ट सहन को ही भिक्षा का भोजन बनाए, हृदय रूपी नगर में ज्ञान की भिक्षा मांगे। वही अवधूत है, जो परमात्मा के देश में चढ़ता है ।

क्षात्रिय (खत्री)

जो कर्मोंका शूरवीर है, वही क्षात्रिय है । वह अपने शरीर को पुण्यदान करने वाला बना लेता है । वास्तविक खेत को पहचान कर दान का बीज बोता है, ऐसा क्षात्रिय परमात्मा के दरबार में प्रामाणिक समझा जाता है ।

ब्राह्मण

जो ब्रह्म को जानता है, वही ब्राह्मण है । वह जप, तप और संयम करता है, शुभ कर्मों को करता है, शक्ति सन्तोष के धर्म को रखता है और माया के बन्धनों को तोड़कर मुक्त हो जाता है । ऐसा ब्राह्मण जगत् के पूजने योग्य है । ब्रह्मतत्व को विचार करने वाला ब्राह्मण स्वयं तो तरता है,अपने समस्त वंश को भी तार देता है ।

10.2(14) पाखण्ड-खण्डन : ब्राह्मण अथवा पण्डित का सन्दर्भ

उस समय के ब्राह्मण और पण्डित शुद्ध जीवन-यापन को तिलांजलि दे चुके थे । गुरु नानक ने इनकी आडम्बरपूर्ण तथा साररहीन बातों का घोर विरोध किया है । ये धार्मिक ग्रन्थों का पाठ तो करते हैं लेकिन उनके बीच के रहस्य को समझने का यत्न नहीं करते । ये उजली धोती पहनते हैं, ललाट में तिलक, गले में माला पहनते हैं किन्तु अन्तर्गत क्रोध भरा हुआ है । जब किसी धार्मिक ग्रन्थ को पढ़ते हैं तो ऐसे लगते हैं मानों किसी नाट्यशाला में अभिनय कर रहे हों । इसके अतिरिक्त ये मूर्तियों को स्नान और उनकी सफाई करते हैं, मूर्तिपूजा करते हैं, किन्तु बिना हरि में अनुरक्त हुए मैले के मैले ही हैं । जब तक अहंकार का त्याग नहीं करते तब तक इनका परमात्मा से मेल नहीं हो सकता । 'राग आसा' में गुरु नानक ने काया को ब्राह्मण, मन को धोती,

ज्ञान को यज्ञोपवीत, ध्यान को कुशा के पत्ते, नाम को पवित्रता, नाम-स्मरण को पूजा की सामग्री, माया के जलाने को पूजा और प्रेम, तत्व को पहचानना ही दशम् द्वार की प्राप्ति, नाम को मुख में रखना पाठ करना और विचार में स्थित होना तथा भाव के भोजन का भोग लगाने की शिक्षा दी है । इससे भ्रम और भय का भी निवारण हो जाता है । परमात्मा की छवि पहरेदार है, इससे कामादिक चोर नहीं लगते । इसके साथ-साथ गुरु नानक ने वास्तविक खेती के रूपक द्वारा उन्हें सन्मार्ग का उपदेश भी दिया है। उनके उपदेश के अनुसार हाथों को अर्थात् सेवा-वृत्ति को कुएं के अरहट के पात्रों की माला बना कर उसके अन्तर्गत अपने मन को युक्त कर। हरि-प्राप्ति रूपी अमृत से अपनी जीवन रूपिणी क्यारी को सींच । काम क्रोध को खुरपे अथवा रम्बे बना । इस प्रकार धरती की गुड़ाई कर । इससे सुख मिलेगा। इस प्रकार करने पर ही मनुष्य हरी रूपी माली का पुत्र बन सकता है ।

10.2(15) जैन धर्म सम्बन्धी धारणा

हर सम्प्रदाय में कालान्तर में कुछ रूढ़ियों तथा जड़ प्रचलनों का प्रवेश हो जाता है । विश्व के श्रेष्ठतम, धर्मों में परिगण्य जैन धर्म में भी, ऐसी कुछ कुरीतियां आ गई थीं, इसलिए गुरु नानक इनके सम्बन्ध में भी अपना स्पष्ट मत व्यक्त करते हैं । वे जैनियों की निन्दा इसलिए करते हैं क्योंकि वे वास्तविक मार्ग को भूलकर कुराह पर जा रहे थे। उन्होंने क्षुब्ध होकर उनके बाह्याचारों की तीव्र भर्त्सना की। जैनी लोग सिर के बाल नुचवाकर गंदा पानी पीते हैं और जूठा मांग-मांग कर खाते हैं । ये अपना मल फैलाते हैं और मुंह से गंदी सांस लेते हैं, पानी देखकर सहमते हैं, भेड़ों की तरह बाल नुचवाते हैं । ये किसी प्रकार की सांसारिक मर्यादा का पालन नहीं करते । गुरु नानक ने `राग माझ` में इनका विस्तार सहित वर्णन किया है ।

गुरु नानक की उपर्युक्त भर्त्सना का यही आशय प्रतीत होता है कि जैनी लोग अपनी कमज़ोरियों को समझें और उन्हें दूर करके अपने धर्म का ठीक-ठीक पालन कर सकें।

10.2(16) पाखण्ड-खण्डन : इस्लामी धर्मनेताओं का सन्दर्भ

धार्मिक क्षेत्र में धार्मिक सुधारक तथा काजी तस्बीह (माला) फेरते और न्याय करने का काम करते थे पर रिश्वत लेकर अपनी ईमानदारी गंवा देते थे। वे झूठ बोलकर हराम की कमाई खाते थे। भला गुरु नानक जैसे व्यक्ति से इस प्रकार का भ्रष्टाचार सहन कैसे होता। उन्होंने कुमार्गगामी काजियों को समझाया कि जामे में रक्त लग जाए तो जामा अपवित्र हो जाता है, किन्तु जो लोग मनुष्यों का रक्त पीते हैं, अत्याचार और अन्याय से उनका धन अपहरण करते हैं, उनका चित्त किस प्रकार निर्मल रह सकता है ? अपवित्र मन से पढ़ी हुई नमाज़ किस प्रकार स्वीकार हो सकती है ? वास्तव में सच्चा काजी या मुल्ला वह है जिसने अपनेपन का त्याग कर दिया है और नाम को ही एकमात्र आधार बना लिया है।

10.2(17) सच्चे मुसलमान की परिकल्पना

गुरु नानक देव ने सच्चे मुसलमान के लक्षण भी बताए हैं। सच्चा मुसलमान बनने के लिए यह आवश्यक है कि उसे औलिया (सन्तों) का मज़हब प्रिय लगे। तत्पश्चात् जैसे मिसकल से लोहे का जंग साफ किया जाता है, उसी प्रकार अपनी कमाई का धन गरीबों में बांटकर उसे नेक कमाई बनाए। इस प्रकार मज़हब के सम्मुख चलकर सच्चा मुसलमान बने और जीवन-मरण के भ्रम को समाप्त कर दे। परमात्मा की मर्जी को शिरोधार्य करे, कर्ता को सब कुछ माने, आपापन को मिटा दे और सब प्राणियों के प्रति दयाभाव रखे। इसी प्रकार मुसलमानों की पांच नमाजे हैं, उनके पांच वक्त हैं और उन पांचों

नमाज़ों के पांच नाम हैं। पर गुरु नानक की दृष्टि में पांच नमाज़ें इस प्रकार हैं --- सत्य पहली नमाज़ है, हक की कमाई दूसरी, परमात्मा से सब का भला मांगना तीसरी, नीयत को साफ रखना चौथी और परमात्मा के यश की महिमा की प्रशंसा पांचवीं नमाज़ है। इन पांचों के साथ-साथ श्रेष्ठ आचरण का कलमा पढ़ा जाए, तभी वह सच्चा मुसलमान कहलवा सकता है।

10.3 शोध-संकेत

गुरु नानक वाणी का अध्ययन करते-करते कुछ ऐसे प्रस्थान बिन्दुओं से गुजरना पड़ा है जो अभी तक शोधकार्य से अछूते रहे हैं अथवा जिनकी ओर पाठक या चिन्तक वर्ग का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है। इसलिए उन पर काम करने की संभावना अभी तक बनी हुई है। भविष्य के शोध-कर्ताओं की सूचना एवं सुविधा के लिए ऐसे शोध-संकेत देना उचित होगा --

भाषा-विज्ञान-शैली-विज्ञान : गुरु नानक वाणी का भाषा-वैज्ञानिक तथा शैली-वैज्ञानिक सन्दर्भों में काम करने की सम्भावना अभी तक बनी हुई है।

गुरु नानक के राजनैतिक विचार : सिक्ख इतिहास तथा उसके राजनैतिक परिप्रेक्ष्य पर बहुत काम हुआ है, परन्तु गुरु नानक देव के राजनैतिक विचारों पर समुचित काम करने की अपेक्षा अभी तक बनी हुई है।

तुलनात्मक अध्ययन : गुरु नानक देव के साहित्य, दर्शन तथा साधना पक्षों का भारतीय तथा अभारतीय सन्तों, साधकों और दार्शनिकों के विचारों के साथ तुलनात्मक अध्ययन अभी अपेक्षित है।

नानक वाणी : पुराकथा--पुरावृत्तात्मक सन्दर्भ : गुरु नानक वाणी का अध्ययन भारतीय पुराण-परम्परा, पुराकथा तथा पुरावृत्त के सन्दर्भों में उसकी वस्तुगत स्वीकारात्मक-नकारात्मक अथवा प्रतीकात्मक योजना के सन्दर्भ में अभी अपेक्षित है ।

चतुर्थ भाग

प रि शि ष्ट

परिशिष्ट

सहायक सन्दर्भ सूची : आकारादि क्रमानुसार

अर्जुन देव, सुखमनी साहिब, अमृतसर : चतर सिंह जीवन सिंह ।

अग्रवाल, चमन लाल, 1979, नानक वाणी का भाषायी तथा दार्शनिक निरूपण, दिल्ली : अग्रवाल प्रकाशन ।

अब्दुल्ला, 1958, तारीख-ए-दाउदी इन इलियट एण्ड डाउसन IV, कलकत्ता : सुशील गुप्ता ।

अली, असद, 1971, भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव, दिल्ली : एस0 आई0 एस0 प्रकाशन ।

अवस्थी, कृपाशंकर, 1978, योगसूत्र, हरदोई (उ0 प्र0) : पुनीत प्रकाशन ।

असद, माज़दा, 1968, रसखान काव्य तथा भक्ति भावना, देहरादून : साहित्य सदन ।

आज़ाद, पृथ्वी सिंह, 1973, रविदास दर्शन (श्रीगुरु रविदास जी की साखियां), चण्डीगढ़ : श्रीगुरु रविदास संस्थान ।

आप्टे, वामन शिवराम, 1966, संस्कृत हिन्दी कोश, दिल्ली : मोतीलाल बनारसी दास ।

आत्रेय, भीखन लाल, 1959, योग वसिष्ठ और उसके सिद्धान्त, बनारस ।

इनसाइक्लोपिडीया ब्रिटेनिका (भाग-19), 1910, लन्दन :
इनसाइक्लोपिडीया क0 लि0 ।

ईश्वरी प्रसाद, 1955, भारतीय मध्ययुग का इतिहास, इलाहाबाद :
इण्डियन प्रेस ।

उपाध्याय, बलदेव, 1971, भारतीय दर्शन, वाराणसी : शारदा मन्दिर ।

उपाध्याय हरिभाउ, 1976, भागवत धर्म (दूसरा भाग), दिल्ली :
सस्ता साहित्य मण्डल ।

ऋग्वेद

एम्बरी, ऐनिसलेय टी0, 1966, दि हिन्दू ट्रेडीशन्ज़, न्यूयार्क :
दी माडर्न लाइब्रेरी ।

कबीर, 1954, बीजक, टीकाकार विचारदास शास्त्री, इलाहाबाद :
रामनारायण लाल ।

कावे, पाण्डुरंग वामन, 1963, धर्मशास्त्र का इतिहास, (अनु0) अर्जुन चौबे ।
कश्यप, लखनऊ : हिन्दी साहित्य सूचना विभाग ।

कालिका प्रसाद, (सं0), सं0 2030, बृहत हिन्दी कोश, वाराणसी :
ज्ञानमण्डल ।

कोहली, कुलवन्त कौर, 1979, गुरु नानक देव जी का संकल्प, पटियाला :
भाषा विभाग ।

कोहली, सुरेन्द्र सिंह, 1969, फिलासफी आफ गुरु नानक, चण्डीगढ़ :
पब्लिकेशन ब्यूरो ।

कौशम्बी, डी0 डी0, 1976, मिथक और यथार्थ, (अनु0) नन्द किशोर नवल, दिल्ली : भारतीय अनुसंधान परिषद् ।

खेमका, राधेश्याम, कल्याण, गोरखपुर : गीता प्रेस ।

गुप्त, हरिराम, 1973, हिस्टरी आफ सिक्ख गुरुज़, दिल्ली : यू0 सी0 कपूर एण्ड सन्ज़ ।

गुप्त, हरिराम, 1984, हिस्टरी आफ द सिक्खज़, दिल्ली : मुन्शी राम मनोहर लाल ।

गुप्ता, सरोज, 1975, राम चरितमानस की सूक्तियों का विवेचनात्मक अध्ययन, जयपुर : राजस्थान प्रकाशन ।

गुरुदत्त, 1964, धर्म संस्कृति और राज्य, दिल्ली : भारतीय साहित्य सदन ।

गुरुमुखानन्द, 1987, राम संदेश, देहरादून : स्वामी रामतीर्थ मिशन प्रकाशन ।

गैरोला, वाचस्पति, 1962, भारतीय धर्म व्यवस्था, इलाहाबाद : लोक भारती प्रकाशन ।

गोयन्दका, जयदयाल, सं0 2038, सच्चा सुख, गोरखपुर गीता प्रेस ।

गोयन्दका जयदयाल, सं0 2038, श्री भरत जी में नवधा भक्ति, गोरखपुर : गीता प्रेस ।

गोयन्दका, जयदयाल, सं0 2039, ध्यान और मानसिक पूजा, गोरखपुर : गीता प्रेस ।

गोयन्दका, जयदयाल, सं0 2040, आत्मोद्धार के सरल उपाय, गोरखपुर : गीता प्रेस ।

गोयन्दका, जयदयाल, सं0 2040, कर्मयोग का तत्व, गोरखपुर : गीता प्रेस ।

गोयन्दका, जयदयाल, सं0 2040, भक्तियोग का तत्व, गोरखपुर : गीता प्रेस ।

चटोपाध्याय, सतीश चन्द्र, धीरेन्द्र मोहन, 1961, भारतीय दर्शन, पटना : पुस्तक भण्डार ।

चतुर्वेदी, गिरधर शर्मा, 1964, दर्शन अनुचिन्तन, कलकत्ता : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन ।

चतुर्वेदी, परशुराम, 1966, दादू दयाल ग्रन्थावली, वाराणसी : ना0 प्र0 सभा ।

चतुर्वेदी, परशुराम, 1972, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, इलाहाबाद : लीडर प्रेस ।

चतुर्वेदी, सीताराम, 1971, कबीर संग्रह, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन ।

चतुरसेन, 1958, भारतीय संस्कृति का इतिहास, मेरठ : रस्तोगी एण्ड कम्पनी ।

चरक, सं0 2033, चरक संहिता (प्रथम भाग), व्या0 सत्यनारायण शास्त्री, वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत संस्थान ।

चातक, गोविन्द, 1986, आधुनिक हिन्दी शब्दकोश, दिल्ली : तक्षशिला प्रकाशन ।

चुनीलाल, 1971, तुलसी पदावली, दिल्ली : प्रभात प्रकाशन ।

छाबड़ा, जी० एस०, 1971, एडवान्सड हिस्ट्री आफ पंजाब, जालन्धर : न्यू एकैडमिक ।

जग्गी, रत्न सिंह, 1969, गुरु नानक दी विचारधारा, दिल्ली : नवयुग ।

जग्गी, रत्न सिंह, 1970, गुरु नानक रचनावली, पटियाला : भाषा विभाग।

जान, डाउसन, 1957, ए क्लासीकल डिक्शनरी आफ हिन्दू माइथोलोजी एण्ड रिलिजन ज्योग्राफी, हिस्ट्री एण्ड लिट्रेचर, राउलेज एण्ड केगनपाल लि० ।

जायसवाल, सुवीरा, 1976, वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, कलकत्ता : भारतीय अनुसंधान विकास परिषद् ।

जेम्स हेस्टिंग चार्ल्स स्कबीबनर एण्ड सन्ज़, 1958, इन साइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड इथिक्स, (भाग-8), न्यूयार्क ।

जोशी जयशंकर (सं०), सं० 2014, हलायुधकोश, वाराणसी : सरस्वती भवन ।

ट्रम्प, एरनैस्ट, 1877, आदिग्रन्थ, लन्दन : एलेन एण्ड क० ।

टीटस, हैराल्ड, 1968, लिविंग इशूज़ आफ फिलासफी, दिल्ली : युरेसिया ।

तालिब, गुरबचन सिंह, 1970, गुरु नानक व्यक्तित्व और विचार, जालन्धर : गुरदास कपूर एण्ड सन्ज़ ।

तिवारी, नंद किशोर, 1974, मध्ययुग के भक्तिकाल में माया, इलाहाबाद : शोध साहित्य प्रकाशन ।

तिवारी, भगवानदास, 1974, मीरां की प्रामाणिक पदावली, इलाहाबाद : साहित्य भवन ।

तिवारी, भोलानाथ, 1962, वृहत पर्यायवाची कोश, इलाहाबाद : किताब महल ।

तिवारी, भोलानाथ, महेन्द्र चतुर्वेदी, 1970, व्यावहारिक हिन्दी अंग्रेजी कोश, दिल्ली : नैशनल ।

तिवारी, भोलानाथ, प्र० व० न०, तुलसी शब्द सागर, इलाहाबाद : हिन्दुस्तानी एकेडमी ।

तिवारी, विश्वनाथ, 1972, न को हिन्दू ना मुसलमान, चण्डीगढ़ : पब्लिकेशन ब्यूरो ।

दामोदरन, के०, प्र० व० न०, भारतीय चिन्तन परम्परा, (सं०), राम शरण शर्मा मुन्शी, दिल्ली : पीपल्ज़ पब्लिशिंग हाऊस।

दास, ब्रजरत्न, सं० 2013, मीरा माधुरी, वाराणसी : हिन्दी साहित्य कुटीर ।

दास, भगवान, 1985, समन्वय, काशी : भारतीय भण्डार ।

दास, श्याम सुन्दर (सं०), 2021 वि०, कबीर ग्रन्थावली, वाराणसी : ना० प्र० सभा ।

दास, श्याम सुन्दर (सं०), 2027 वि०, हिन्दी शब्द सागर (सातवां भाग), काशी : ना० प्र० स० ।

दिनकर, रामधारी सिंह, 1956, संस्कृति के चार अध्याय, दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज़ ।

द्विवेदी, हजारी प्रसाद, 1960, कबीर, दिल्ली : राजकमल ।

द्विवेदी, हजारी प्रसाद, 1961, हिन्दी साहित्य की भूमिका, बम्बई : हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर ।

द्विवेदी, हजारी प्रसाद, 1962, अशोक के फूल, दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल ।

द्विवेदी, हजारी प्रसाद, 1979, सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण, दिल्ली : राजकमल ।

दीप, दलीप सिंह, 1969, जात गुरु बाबा, चण्डीगढ़ : अमन प्रकाशन ।

दीवाना, मोहन सिंह उबरा, 1952, पंजाबी भाषा अते गुरमति ज्ञान, अमृतसर : कस्तूरी लाल एण्ड सन्ज़ ।

दीक्षित, आनन्द प्रकाश, 1959, तुलसीदास वस्तु और शिल्प, आगरा : सरस्वती पुस्तक सदन ।

देवराज, 1957, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, उत्तर प्रदेश : प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग ।

देवीदयाल चतुर्वेदी, नारायण चतुर्वेदी, (मार्च, नवम्बर), 1955, सरस्वती, इलाहाबाद ।

देवी भागवत पुराण (भाषा टीका), सं0 2011 वि0, बम्बई : वेंकटेश्वर प्रेस ।

नरुला, डी0 एस0, 1978, गुरु नानक संगीतज्ञ, जालन्धर : न्यू बुक कम्पनी ।

नारंग, जी0 सी0, 1946, ट्रांसफारमेशन आफ सिक्खइज्ज़म, दिल्ली : न्यू बुक सोसाइटी ।

नारद भक्तिसूत्र, गोरखपुर : गीता प्रेस ।

नैष्टिक बल्देव, 1971, तीर्थ-सन्देश, मुजफ्फरनगर, वैदिक योगाश्रम ।

पतंजलि, सं0 2028, योगदर्शन, गोरखपुर : गीता प्रेस ।

पदम, 1972, गुरु नानक : एक विवेचन, जालन्धर : के0 लाल एण्ड कं0 ।

पदम, प्यारा सिंह, 1969, नानक शायिर ऐव कहत है, पटियाला : प्यारा सिंह पदम ।

पाठक, आर0 सी0 (सं0), प्र0 व0 न0, भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोश, बनारस : श्री गंगा पुस्तकालय ।

पाठक, नरेन्द्र, 1970, गुरु नानक देव, दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन ।

पाण्डे, राम खेलावन, 1967, भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक चेतना ; पटना : अनुपम प्रकाशन ।

पाण्डे, राम ~~खेलावन~~, नारायण, 1966, भक्तिकाव्य में रहस्यवाद, दिल्ली : नैशनल ।

पाण्डेय, राजबली, 1966, हिन्दू संस्कार, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन।

पाण्डेय, वीरेन्द्र, 1955, सन्त रविदास और उनका काव्य, लखनऊ : नव भारत प्रेस ।

प्रभाकर, महेन्द्र सिंह, 1969, गुरु नानक व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पटना : ज्ञानपीठ ।

बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त, सं0 2003 वि0, गोरखबाणी, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन ।

बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त (अनु0), हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, लखनऊ : अवध पब्लिशिंग हाऊस ।

ब्रह्मानन्द, 1981, हठयोग प्रदीपिका, बम्बई : श्री ब्रह्मानन्द कल्याण ।
बादरायण वेदव्यास, सं0 2009, ब्रह्मसूत्र, गोरखपुर : गीता प्रेस
बैनर्जी, इन्दू भूषण, 1963, एवोल्यूशन आफ द खालसा (खण्ड-1), कलकत्ता : ए0 मुखर्जी ।

बैनर्जी, सुरेश चन्द्र, धर्मसूत्र, उत्पत्ति एवं विकास का अध्ययन, कलकत्ता : पंथी पुस्तक सदन ।

भटनागर, रामरत्न, 1971, तुलसी नवमूल्यांकन, इलाहाबाद : स्मृति प्रकाशन ।

भाई, गुरदास, 1952, वारां, अमृतसर, श्री0 गु0 प्र0 क0 ।

भाई, गुरदास, 1959, पुरातन जन्म साखी, अमृतसर ।

भाई बाले वाली जन्मसाखी, लिथ्थो संस्करण ।

भारती, धर्मवीर, 1961, सिद्ध साहित्य, इलाहाबाद : किताब महल ।

भारद्वाज, मैथिलीप्रसाद, 1970, मध्यकालीन रोमांस, दिल्ली : रिसर्च ।

भोटूरि, सत्यनारायण, 1967, विश्वज्ञान संहिता (भाग-1), दिल्ली : दिल्ली विकास सम समिति ।

मलिक, जगदीश नारायण, 1959, हिन्दू नीतिशास्त्र, पटना : भारती भवन ।

महतो, गनौरी, 1974, रामचरितमानस : नानापुराण निगमागम सम्मत, इलाहाबाद : शोध साहित्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण ।

माचवे, प्रभाकर, सुरेन्द्र नारायण दफ्तुआर, 1974, विभिन्न धर्मों में ईश्वर कल्पना, पटना : बिहार ग्रन्थ अकादमी ।

माधव, भुवनेश्वर नाथ मिश्र, 1957, मीरा की प्रेम साधना, पटना : श्री अजन्ता प्रेस ।

मिश्र, उमेश, 1964, भारतीय दर्शन, लखनऊ : हिन्दी समिति सूचना, सूचना विभाग ।

मिश्र, जयराम, 1960, श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन, इलाहाबाद : साहित्य भवन ।

मिश्र, जयराम, 1961, नानक वाणी, इलाहाबाद : मित्र प्रकाशन ।

मिश्र, जयराम, 1972, गुरु नानक देव जीवन और दर्शन, इलाहाबाद : लोक भारती प्रकाशन ।

मिश्र, राम प्रसाद, 1967, हिन्दी का नवीन इतिहास, कानपुर : साहित्य निकेतन ।

मिश्र, राम प्रसाद, 1972, हिन्दू धर्म, दिल्ली : सूर्य प्रकाशन ।

मैकनीकल, निकाल, 1934, दि लिविंग रिलीजनस आफ दि इण्डियन पीपलज़, लन्दन : स्टूडैंट क्रिश्चियन्ज़ मूवमैण्ट प्रेस ।

युनैस्को, 1965, सैक्रेड राइटिंग्ज आफ दि सिक्खज़, लन्दन: जौरज ऐलिन एण्ड यूविन ।

रमैश कुन्तल मैघ (सं0), नवम् गुरु पर बारह निबन्ध, अमृतसर : अम गुरु नानक देव विश्वविद्यालय ।

रवीन्द्र, 1969, श्री अरविन्द जीवन और दर्शन, दिल्ली : नवभारती सहकार प्रतिष्ठान ।

राजे, सुमन, 1975, साहित्येतिहास संरचना और स्वरूप, कानपुर: ग्रन्थम रामबाग।

राधाकृष्णन, 1937, द हिन्दू व्यू आफ लाइफ, लन्दन : जोर्ज एलैन एण्ड एनविन ।

राधाकृष्णन, 1957, हिस्ट्री आफ फिलासफी इस्टर्न एण्ड वेस्टर्न, (भाग-1), लन्दन : जार्ज ऐलन एण्ड एनविल (लि0) ।

राधाकृष्णन, 1968, आधुनिक युग में धर्म, दिल्ली : राजकमल ।

राधाकृष्णन, 1972, भारतीय दर्शन (दूसरा भाग), अनु0 नन्द किशोर गोभिल विद्यालंकार, दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज़ ।

रानी, शकुन्तला, 1970, महाभारत में धर्म, भरतपुर : भारती पुस्तक मन्दिर, प्रथम प्रकाशन ।

रामानुज, सं0 2008 वि0, गीता पर रामानुज भाष्य, गोरखपुर : गीता प्रेस ।

राव, विनायक, 1919, राम चरितमानस, भोपाल : मध्य प्रदेश ।

लतीफ, मोहम्मद, 1964, हिस्टरी आफ द पंजाब, दिल्ली : यूरेसिया ।

लांबा, लाजिंदर सिंह, 1969, नानक साइर एव कहत है, दिल्ली : पंजाबी बुक स्टोर ।

लिटिल, विलियम्ज़, दि शारटर आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, आक्सफोर्ड : क्लैरेन्डर प्रेस ।

वर्मा, धीरेन्द्र, सं0 2015, सूरसागर-सार, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन ।

वर्मा, धीरेन्द्र, सं0 2020, हिन्दी साहित्य कोश भाग-1, (पारिभाषिक शब्दावली), वाराणसी : ज्ञानमण्डल ।

वर्मा, रामचन्द्र, सं0 2008, प्रामाणिक हिन्दी कोश, बनारस : हिन्दी साहित्य कुटीर ।

वर्मा, रामचन्द्र, सं0 2019, मानक हिन्दी कोश (खण्ड-1), प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन ।

वर्मा, रामचन्द्र, सं0 2028, संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर, काशी : ना0 प्र0 सभा ।

व्यासदेव, सं0 2018, पातञ्जल योगदर्शनम्, अजमेर : श्री मदन लाल लक्ष्मी निवास ।

वल्लभाचार्य, तत्वदीप (सप्रकाश); बनारस : विद्या विलास प्रेस ।

वाग्भट, 1959, अष्टांग हृदयम् (विद्योतनी हिन्दी टीका सहित), अनु0 अत्रिदेव गुप्त, वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सिरीज़ ।

वारेन, रेनेवेलक आस्टिन, प्र0 व0 न0, साहित्य सिद्धान्त, (अनु0) बी0 एस0 पालीवाल, हिन्दी : लोक भारती ।

वासवानी, टी0 एल0, 1957, गुरु नानक प्रोफेट आफ लाइफ, पूना : ईस्ट एण्ड वेस्ट सिरीज़ ।

विद्यालंकार, अत्रिदेव, 1960, आयुर्वेद इतिहास, वाराणसी : भार्गव भूषण प्रेस ।

विनय, 1966, महाभारत का आधुनिक प्रबन्ध काव्यों पर प्रभाव : दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन, प्रथम संस्करण ।

विष्णु पुराण, गोरखपुर : गीता प्रेस ।

शर्मा, गणेश दत्त, 1977, ऋग्वेद में दार्शनिक तत्व, गाज़ियाबाद : विमल प्रकाश ।

शर्मा, गीतारानी, 1987, तुलसीकृत दोहावली में भक्तितत्त्व, दिल्ली : प्रवीण शर्मा शब्द और शब्द ।

शर्मा, चरणदास, 1971, तुलसी के काव्य में नैतिक मूल्य, दिल्ली : भारतीय ग्रन्थ निकेतन ।

शर्मा, चरणसखी, 1984, तुलसी काव्य में धर्म और आचरण का स्वरूप, दिल्ली : प्रवीण प्रकाशन ।

शर्मा, तुलसीराम, 1976, श्वेताश्वतरोपनिषद्, दिल्ली : ईस्टर्न बुक लिंकर्स ।

शर्मा, द्वारका प्रसाद, 1957, संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, इलाहाबाद : राम नारायण लाल ।

शर्मा, दीपचन्द, 1966, संस्कृत काव्य में शकुन, मेरठ : साहित्य भण्डार ।

शर्मा, नित्यानन्द, प्र० व० न०; हिन्दी साहित्य का मध्यकाल, अलीगढ़ : भारत प्रकाशन ।

शर्मा, मुन्शीराम, 1958, भक्ति का विकास, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन ।

शर्मा, मुन्शीराम, सं० 2010, भारतीय साधना और सूर साहित्य, कानपुर : साधना प्रेस ।

शर्मा, राजनाथ, माया अग्रवाल, 1989, कबीर वाणी-सार, दिल्ली : अनीता प्रकाशन ।

शर्मा, सरनाम सिंह, 1952, हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव, इलाहाबाद : रामनारायण लाल ।

शर्मा, सरनाम सिंह, 1960, कबीर एक विवेचन, दिल्ली : हिन्दी साहित्य संसार ।

शर्मा, श्रीराम, 1962, रिलीजस पौलिसी आफ द मुगल एम्परर्ज़, बम्बई : एशिया ।

श्वेताश्वतरउपनिषद्, गोरखपुर : गीता प्रेस ।

श्वैनर, हरबर्ट डब्ल्यू, सं० 2020, धर्म का स्वरूप अमरीका में, इलाहाबाद : लीडर प्रेस ।

शास्त्री, नरेन्द्र सिंह, 1964, वेदान्त सार, मेरठ : साहित्य भण्डार ।

शुक्ल रामचन्द्र, 1953, चिन्तामणि (भाग-1), प्रयाग : इण्डियन प्रेस ।

शुक्ल, रामचन्द्र, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास, सं० 2030 वि०, तुलसी ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड), (रामचरितमानस), वाराणसी : ना० प्र० सभा ।

शुक्ल, रामचन्द्र, सं० 2093 वि०, जायसी ग्रन्थावली, काशी : ना० प्र० सभा, षाष्टम संस्करण ।

शैपोरी हैरी एल०, (अनु० रामानुजलाल), 1971, मानव संस्कृति और समाज, भोपाल : मध्य प्रदेश अकैडमी ।

शंकराचार्य, प्र० व० न०, विवेक चूड़ामणि, गोरखपुर : गीता प्रेस ।

श्रीमद्भागवत्, गोरखपुर : गीता प्रेस

श्रीवास्तव, मुकुन्दी लाल, सं० 2013, ज्ञान शब्दकोश, बनारस : ज्ञानमण्डल ।

श्रीवास्तव, विश्वेश्वर नारायण, 1952, हिन्दी राष्ट्र भाषा कोश, प्रयाग : इण्डियन प्रेस ।

श्रीवास्तव वीरेन्द्रपाल, 1974, गोस्वामी तुलसीदास सम्बन्धी समीक्षाओं और शोधों का अनुशीलन, इलाहाबाद : स्मृति प्रकाशन ।

श्रुतिकान्त, 1973, भारतीय देव भावना और मध्यकालीन हिन्दी साहित्य, दिल्ली : वाणी प्रकाशन ।

स्ट्रीप, हरबर्ट, 1968, फार रिलीज़न आफ रशिया, न्यूयार्क : हार्पर एण्ड रॉ पब्लिशर्ज ।

सत्येन्द्र, 1960, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, आगरा : विनोद पुस्तक भवन ।

स्नातक, विजयेन्द्र, रूपगोस्वामी, 1963, हिन्दी भक्ति रसामृत सिंधु, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ।

सरस्वती, सहजानन्द, 1985, गीता-हृदय, इलाहाबाद : किताब महल ।

सहगल, मनमोहन, 1965, संत काव्य का दार्शनिक विश्लेषण, चण्डीगढ़ : भारतेन्दु भवन ।

सहगल, मनमोहन, 1971, गुरु ग्रन्थ साहिब : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, पटियाला भाषा विभाग ।

सहगल, मनमोहन, 1978, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, लखनऊ : भुवन वाणी ट्रस्ट ।

सहायक, रामजी लाल, 1962 ई0, कबीर दर्शन, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ ।

सांस्कृत्यायन, राहुल, 1951, मानव समाज, कलकत्ता : आधुनिक पुस्तक भवन ।

सिंह, करतार, 1937, लाइफ आफ गुरु नानक देव, अमृतसर : जयदेव सिंह जोगेन्दर सिंह ।

सिंह, कान्ह, 1960, महान कोष, पटियाला : भाषा विभाग ।

सिंह, खुशवन्त, 1963, ए हिस्ट्री आफ द सिक्खज़, लंदन : प्रिंसटन प्रेस ।

सिंह, गुरमुख निहाल, 1970, गुरु नानक : जीवन, युग एवं शिक्षाएं, दिल्ली : नैशनल ।

सिंह, तेजा गंडा सिंह, 1950, ए शार्ट हिस्टरी आफ द सिक्खज़, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास : ओरियन्ट लौंगमैन्ज़ लि० ।

सिंह, बख्शीश, 1968, पंजाब अंडर सुल्तानज़, दिल्ली : स्टार्लिंग ।

सिंह, भाई वीर, 1959, पुरातन जन्म साखी, अमृतसर ।

सिंह, भाग्यवती, सं० 2019, तुलसी की काव्य कला, आगरा : सरस्वती पुस्तक सदन ।

सिंह, महीप, 1970, गुरु नानक और विद्रोह की भूमिका, (सं०) हरबंस सिंह, गुरु नानक द प्रोफिट आफ दा पीपल, दिल्ली : सिंह सभा ।

सिंह, मोहन, 1970, सिध गोष्ठी इक सर्वपखी अधियैन, लुधियाना : लाहौर बुक शाप ।

सिंह, शमीर, 1976, गुरु तेग बहादुर जी : जीवन काव्य व चिन्तन, अमृतसर : देवेन्द्र सिंह प्रेमनगर ।

सिंह, शेर, 1951, गुरमति दर्शन, अमृतसर : शि० गु० प्र० क०, प्रथम संस्करण ।

सिंह, हरबंस, 1969, गुरु नानक एंड औरीजिन्ज़ आफ दि सिक्ख फेथ, बम्बई : एशिया पब्लिशिंग ।

सिंह, ज्ञान, 1952, तवारीख गुरु खालसा, अमृतसर : बाज़ार माई सेवा ।

सुखदास, साधुराम, सं0 2040, जीवन का कर्तव्य, गोरखपुर : गीता प्रेस ।

सूर्यकान्त (अनु0), 1963, वैदिक धर्म एवं दर्शन (द्वितीय भाग), आवेकीथ दिल्ली : मोती लाल बनारसीदास ।

हरगुलाल, 1967, मध्यकालीन कृष्ण काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, दिल्ली : भारतीय साहित्य मन्दिर ।

हर्बर्ट, गैरिसन, 1950, दि बैगराउंड आफ इंग्लिश लिट्रैचर क्लासिकल एंड रोमांटिक, लन्दन ।

हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार (भाष्यकार), सं0 2016, मनुस्मृति, दिल्ली : सार्वदेशिक प्रेस।

हांडा, सीता, गुरु नानक पंच शताब्दी वर्ष, गुरु नानक व्यक्तित्व व्यक्तित्व और विचार, जयपुर : चिन्मय प्रकाशन ।

हीरा, राजवंश सहाय, 1973, भारतीय साहित्य शास्त्र कोश, पटना : बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी ।

त्रिपाठी, राम प्रसाद, सं0 2023 वि0, हिन्दी विश्वकोश भाग-8, वाराणसी : ना0 प्र0 सभा, प्रथम संस्करण ।

त्रिपाठी, राममूर्ति, 1975, तंत्र और मंत्र, इलाहाबाद : साहित्य भवन ।

त्रिपाठी, राममूर्ति, 1977, आगम और तुलसी, नई दिल्ली : मैकमिलन कम्पनी आफ इंडिया लि0 ।

त्रिपाठी, शम्भूरत्न, 1963, भारतीय संस्कृति और समाज,
कानपुर : किताब घर ।

ज्ञानी, शिव दत्त, 1944, भारतीय संस्कृति, दिल्ली : राजकमल ।